निराला रचनावली

3

निराला के उपन्यासों में अद्भुत दिवास्वप्न देखनेवाला एक युवक है, जो बहुत रोमैंटिक है और इच्छापूर्ति की कल्पनाओं से भरे हुए नायक के रूप में दिखायी पड़ता है। सहसा कुछ दूर जाने के बाद उपन्यास में जैसे ही कुल्लीभाट या बिल्लेसुर-जैसे चरित्र या गाँव के किसान आते हैं, दिवास्वप्न की काल्पनिकता को तोड़ता अत्यन्त जीवन्त यथार्थ प्रकट होता है। वह कथा को ही नहीं, पूरे ढाँचे को लेकर ऐसा रूप ले लेता है कि आप कह नहीं सकते कि वह पश्चिम के बने-बनाये ढाँचेवाला उपन्यास है या एक लम्बी कहानी।... निश्चित रूप से उपन्यास पर सैद्धान्तिक ग्रन्थ **निराला** ने नहीं पढ़े होंगे। कितने विदेशी उपन्यास उन्होंने पढ़े थे, इसकी मुझे कोई जानकारी नहीं है। लेकिन कोई एक ढाँचा था, जिसमें वे अपने व्यापक अनुभव को ढाल रहे थे। ध्यान देने की बात है कि गढ़ाकोला-डलमऊ में रहने के दौरान, और संघर्ष के दौरान, **निराला** एक ओर कविताएँ लिख रहे थे और दूसरी ओर जो बहुत-सी चीजें कविताओं में नहीं आ सकती थीं, चाहे उनकी लम्बी कविताएँ हों या छोटे गीत या यथार्थवादी गीत, उनके लिए वे किसी दूसरी विधा और माध्यम के ढाँचे की भी तलाश कर रहे थे। वे उसी ढाँचे में अपनी बात कहने के लिए विवश थे।... हमारे यहाँ पश्चिमी ढाँचे में भारतीय नामधारी पात्रों को लेकर और भारतीय कहलानेवाले परिवेश को सामने रखते हुए कुछ ऐसी रचनाएँ लिखी गयीं, जो उपन्यास का और भारतीय उपन्यास का आभास देती थीं। लेकिन सच्चा भारतीय उपन्यास किस प्रकार दूसरे सर्जनात्मक दबावों के द्वारा पैदा हो रहा था, इसकी कुंजी **निराला** के कथात्मक साहित्य से मिल सकती है।

नामवर सिंह

रचनावली के इस खण्ड में **निराला** के चार उपन्यासों – **अप्सरा, अलका, प्रभावती** तथा **निरुपमा** – को रखा गया है, जो उनके कथा-साहित्य की प्रारम्भिक पहचान कराते हैं। कथा-पात्रों के स्वप्निल कल्पना-लोक और वास्तविक जीवन-संघर्ष का इनमें अपूर्व चित्रण हुआ है। दूसरे शब्दों में, इन उपन्यासों के माध्यम से हम कल्पना से यथार्थ-बोध की ओर एक सार्थक यात्रा करते हैं और पराधीन भारत की संघर्षशील युवा पीढ़ी हमारे लिए और अधिक आत्मीय एवं प्रासंगिक हो उठती है।

उपन्यास

अप्सरा, अलका, प्रभावती,
निरुपमा

तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं चंचल गति सुर-सरिता

सम्पादक
नन्दकिशोर नवल

निराला रचनावली

3

मूल्य
प्रति खण्ड रु० 75.00
सम्पूर्ण सैट रु० 600.00

रामकृष्ण त्रिपाठी

द्वितीय संस्करण
मार्च, 1983

प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
8 नेताजी सुभाष मार्ग,
नयी दिल्ली - 110 002

मुद्रक
रुचिका प्रिन्टर्स
नवीन शाहदरा
दिल्ली - 110 032

आवरण तथा
प्रारम्भिक पृष्ठ :
प्रभात आफसेट प्रेस,
दरियागंज, नयी दिल्ली

कला-पक्ष
आवरण के लिए
निराला का रेखांकन :
हरिपाल त्यागी

कला - संयोजना :
चाँद चौधरी

NIRALA
RACHANAVALI
Collected Works of
Suryakant Tripathi 'Nirala'
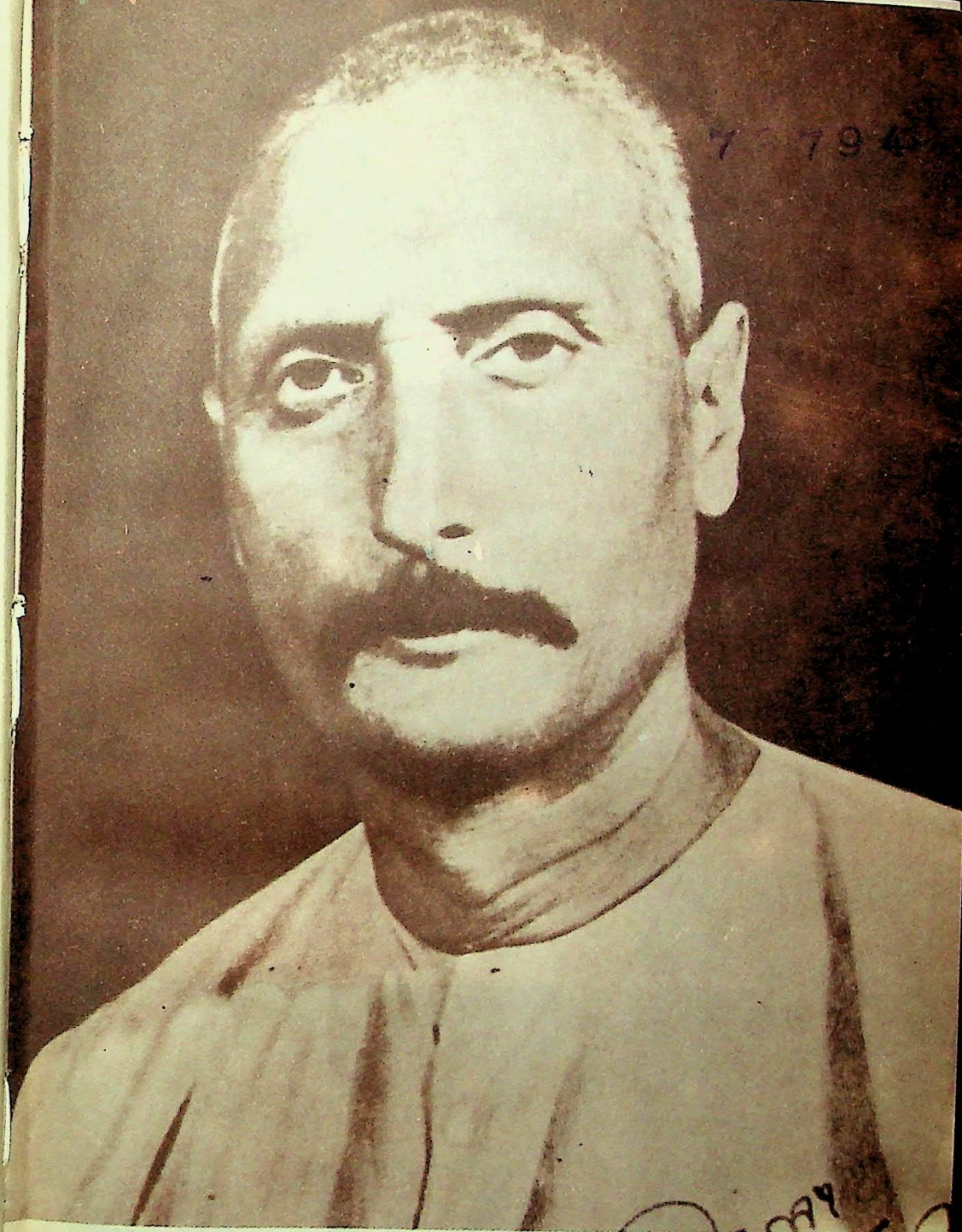
29 मार्च 1949

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के साथ

1941

हिन्दी परिषद, मेरठ
निराला, इन्दुमंती, होमवती देवी, अज्ञेय, जैनेन्द्र, डॉ रामविलास शर्मा

1946

1934

आभार

निराला रचनावली प्रकाशित हो रही है, यह राजकमल के लिए गौरव की बात है। जिस प्रकार महाकवि की जीवन-यात्रा संघर्षपूर्ण रही, उसी प्रकार इस **रचनावली** के प्रकाशन में तरह-तरह की कठिनाइयाँ और बाधाएँ सामने आयीं। किन्तु बड़े धैर्य के साथ हमने सभी कठिनाइयों को हल किया और इसके प्रकाशन में सभी निराला-प्रेमियों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहयोग हमें मिला।

रचनावली में भारती भण्डार, इलाहाबाद, की आठ पुस्तकें [गीतिका, अनामिका, तुलसीदास, आराधना, सुकुल की बीवी, प्रबन्ध-प्रतिमा, निरुपमा और अपरा], निराला प्रकाशन, दारागंज, इलाहाबाद, की चार पुस्तकें [प्रभावती, बिल्लेसुर बकरिहा, चोटी की पकड़ और चतुरी चमार] तथा लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, की आठ पुस्तकें [अर्चना, वेला, नये पत्ते, कुकुरमुत्ता, अणिमा, देवी, काले कारनामे और रवीन्द्र-कविता-कानन] संकलित की गयी हैं और इन संस्थाओं ने अपनी पुस्तकें **रचनावली** में संकलित करने की सहर्ष अनुमति दी है। यह स्वस्थ परम्परा हिन्दी-प्रकाशन के लिए स्वागत-योग्य है।

रचनावली में जिन चित्रों का उपयोग किया गया है वे हमें सर्वश्री अमृतलाल नागर, ओंकार शरद, अजितकुमार, नेमिचन्द्र जैन, रामकृष्ण त्रिपाठी तथा इण्डियन आर्ट स्टूडियो देहरादून के श्री नवीन नौटियाल से प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त श्री बरुआ द्वारा सम्पादित 'महाकवि निराला अभिनन्दन ग्रन्थ' से भी कई चित्र लिये गये हैं।

रचनावली के पत्रोंवाले खण्ड में आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की पुस्तक 'निराला के पत्र' से महाकवि द्वारा शास्त्रीजी को लिखे गये पत्र संकलित हुए हैं। श्री सोहनलाल भार्गव, लखनऊ, ने स्वर्गीय श्री दुलारेलाल भार्गव के नाम लिखे गये पत्र, और श्री रामकृष्ण त्रिपाठी, इलाहाबाद, ने अपने नाम लिखे गये पत्र, जो 'निराला की साहित्य साधना' के तीसरे खण्ड में संकलित हैं, **रचनावली** में संकलित करने की सहर्ष अनुमति दी।

उपरोक्त सभी संस्थाओं और महानुभावों तथा परोक्ष रूप से सहायक होनेवाले अन्य व्यक्तियों के हम आभारी हैं। उनके सहयोग से ही यह स्वप्न साकार हुआ है।

19 जनवरी, '83 **शीला सन्धू**

तीसरा खण्ड

निराला ने उपन्यास-लेखन भी दो चरणों में किया है। पहले चरण में उन्होंने **अप्सरा, अलका, प्रभावती** और **निरुपमा** नामक उपन्यास लिखे और दूसरे चरण में **कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा, चोटी की पकड़** और **काले कारनामे** नामक उपन्यास। **रचनावली** के खण्ड तीन में उनके पहले चरण के उपन्यास संकलित किये गये हैं।

अप्सरा 'सुधा' (मासिक, लखनऊ) के छः अंकों (अगस्त, 1930 से जनवरी, 1931 तक) में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुई थी। पुस्तक-रूप में उसका प्रकाशन संवत् 1988 वि. (1931 ई.) में गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ से हुआ। इस उपन्यास की भूमिका के नीचे निराला ने 1 जनवरी, 1931 की तिथि दी है। इससे अनुमान होता है कि यह 1931 ई. के आरम्भ में ही निकल गया था। **अलका** का प्रकाशन-वर्ष संवत् 1990 वि. (1933 ई.) है। अक्तूबर, 1933 को 'सुधा' में 'नये फूल' शीर्षक स्तम्भ के अन्तर्गत जो सूचना दी गयी है, उसके अनुसार यह 1933 के सितम्बर में छपकर बाहर आयी। यह भी गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ से ही प्रकाशित हुई थी।

प्रभावती 1936 ई. में सरस्वती पुस्तक भण्डार, लखनऊ से निकली। इसके प्रथम संस्करण में श्री रूपनारायण पाण्डेय लिखित जो भूमिका है, उसके नीचे 17 फरवरी, 1936 की तिथि दी गयी है। निराला ने पुस्तक के समर्पण के नीचे 1 मार्च, 1936 की तिथि दी है। इससे यह समझा जा सकता है कि यह उपन्यास 1936 ई. के पूर्वार्ध में प्रकाशित हुआ था। 17 अप्रैल, 1936 को निराला आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री को पत्र में लिखते हैं: "**सखी** और **प्रभावती** मेरे पास रखी हैं. पर मैं भेज नहीं सकता।" (**निराला के पत्र**)। इससे उक्त अनुमान की पुष्टि होती है। **निरुपमा** का प्रकाशन-वर्ष भी 1936 ई. ही है। यह भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद से निकली थी। इसमें समर्पण के नीचे निराला ने 21 मार्च, 1936 की तिथि दी है। इससे यह प्रतीत होता है कि यह उपन्यास भी 1936 ई. के पूर्वार्ध में ही बाहर आया था, लेकिन ऐसी बात है नहीं। यह 1936 ई. के नवम्बर के आरम्भ में बाहर आया। ऐसा सोचने का आधार भी निराला के पत्र ही हैं। 19 जून, 1936 को उन्होंने शास्त्रीजी को लिखा: "**गीतिका** छप रही है सरस्वती प्रेस में भारती भण्डार द्वारा, **निरुपमा** भी लीडर प्रेस में।" (उपर्युक्त)।

फिर 7 नवम्बर, 1936 के पत्र में वे उन्हें सूचना देते हैं कि "**गीतिका** कल तैयार हो जायगी, **निरुपमा** हो चुकी है।" (उपर्युक्त)।

निरुपमा के आरम्भिक दो परिच्छेद 16 जनवरी, 1934 की 'सुधा' में प्रकाशित हुए थे। इसका मतलब यह है कि इस उपन्यास को लिखने में निराला ने 1933 ई. के अन्त में ही हाथ लगा दिया था, पर यह पूरा सम्भवत: 1935 ई. के अन्त में हुआ। 14 अगस्त, 1935 के पत्र में उन्होंने शास्त्रीजी को लिखा था कि "**प्रभावती** कुछ बाकी है।" (उपर्युक्त)। इससे यह अर्थ निकाला जा सकता है कि निराला ने **प्रभावती** की रचना **निरुपमा** के बाद शुरू की और उसे उससे पहले पूरा कर लिया। इस तरह उनका तीसरा पूरा उपन्यास **प्रभावती** ही ठहरता है, **निरुपमा** नहीं। उन्होंने **निरुपमा** की भूमिका में स्पष्ट शब्दों में लिखा भी है: "हिन्दी के उपन्यास-साहित्य को **निरुपमा** मेरी चौथी भेंट है।"

निराला के पहले चरण के प्राय: चारों उपन्यासों का कथानक घटना-प्रधान है। उनमें लेखक का ध्यान जैसे परिवेश के चित्रण पर नहीं, बल्कि एक रोचक कथा गढ़ने पर है। पात्र यथार्थजगत् से नहीं उठाये गये हैं, उन्हें कल्पना से अपने आदर्शों के अनुरूप गढ़ा गया है। भाषा जैसे जीवन-संग्राम में काम आनेवाला अस्त्र न होकर अलंकरण की वस्तु है। स्थान-स्थान पर निराला लम्बे-लम्बे वाक्योंवाली ऐसी चित्रात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं कि थोड़ी देर के लिए कविता और गद्य का अन्तर मिटता हुआ दिखलायी पड़ता है। लेकिन यह उनके इन उपन्यासों का एक पहलू है।

उपन्यासकार के रूप में निराला के पास महिषादल, कलकत्ता, गढ़ाकोला, डलमऊ और लखनऊ के अनुभव थे। उन्होंने इन्हीं को आधार बनाकर अपने उपन्यास लिखे। इन उपन्यासों की रचना का काल भारतीय स्वाधीनता-आन्दोलन का काल है। स्वाधीनता-आन्दोलन एक ओर उपनिवेश-विरोधी था और दूसरी ओर सामन्त-विरोधी। निराला के इन उपन्यासों में जनवादी चेतना से ओत-प्रोत नवशिक्षित तरुण और तरुणियाँ हैं, जो सामन्ती रूढ़ियों को तोड़कर समाज के सम्मुख एक आदर्श रखते हैं। उनके मार्ग में बाधाएँ आती हैं, पर वे उनसे विचलित नहीं होते और संघर्ष करते हुए अपने लक्ष्य तक पहुँचते हैं। निराला नवशिक्षित तरुणियों को खासतौर से अपने इन उपन्यासों में प्रस्तुत करते हैं। नारी-जाति की मुक्ति पर उनका विशेष आग्रह रहा है। अपनी 'मुक्ति' शीर्षक एक कविता में उन्होंने सामन्ती बन्धनों में जकड़ी हुई नारी को सम्बोधित कर रहा है: "तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा/पत्थर की, निकलो फिर,/गंगा-जल-धारा।" (द्वितीय **अनामिका**)। उनकी नारी-मुक्ति की इस आकांक्षा का ठीक से प्रत्यक्षीकरण उनके उपन्यासों में होता है, कविता में नहीं।

लेकिन ऐसी बात नहीं है कि निराला के इन उपन्यासों में केवल उनकी मुक्ति की आकांक्षा अभिव्यक्त हुई है। इन उपन्यासों में यथार्थ जीवन का चित्रण भी है। **अप्सरा** में कल्पना की प्रधानता है (बावजूद इसके कि उसमें किसानों का संगठन करने के अपराध में लखनऊ-षड्यन्त्र केस में गिरफ्तार होनेवाले चन्दन नामक तरुण का भी वर्णन है), लेकिन **अलका** कल्पना और यथार्थ के सम्मिश्रण से बना

हुआ उपन्यास है। इन दोनों उपन्यासों में क्रमशः किसान-आन्दोलन और ग्राम-जीवन का जैसा यथार्थ चित्रण हुआ है, वैसा प्रेमचन्द के उपन्यासों के अलावा उस युग के किसी अन्य उपन्यास में नहीं हुआ। इन दो उपन्यासों में स्वभावतः निराला की भाषा के भी दो स्तर देखने को मिलते हैं। एक भाषा वह है, जिसमें कल्पना-प्रसूत चित्रकारी है और दूसरी भाषा वह है, जिसमें यथार्थचित्रण से आनेवाली नयी शक्ति और धार है।

प्रभावती निराला का ऐतिहासिक उपन्यास है। यह पृथ्वीराज-जयचन्दकालीन उत्तर भारत के राजाओं के आपसी संघर्ष को लेकर लिखा गया है, जिसका कारण प्रायः विवाह और कन्यादान हुआ करता था। उसमें एक पक्ष वीर नारियों का भी था, यह दिखलाना निराला का उद्देश्य है। उन्होंने इस उपन्यास में यमुना, प्रभावती, विद्या, रत्नावली आदि ऐसी तरुणियों का वर्णन किया है, जो नैतिकता के लिए जान पर खेलती रहीं। ये भारत की वीर नारियाँ हैं। ऐसे चरित्रों के निर्माण के पीछे भारतीय परम्परा का गहरा ज्ञान तो है ही, आधुनिकता की—नारी-उत्थान के आन्दोलन की—गहरी चेतना भी है।

निराला के साहित्य में कल्पना और यथार्थ का अन्तर्विरोध शुरू से रहा है। यह कविता से पहले उनके कथा-साहित्य में अधिक तीखे रूप में प्रकट हुआ था। इस दृष्टि से उनके पहले चरण के इन उपन्यासों का महत्त्व असन्दिग्ध है।

रानीघाट लेन, महेन्द्रू, **नन्दकिशोर नवल**
पटना-800006
19 जून, 1982

उपन्यास

अप्सरा

अप्सरा को साहित्य में सबसे पहले मन्द गति से सुन्दर-सुकुमार कवि-मित्र सुमित्रानन्दन पन्त की ओर बढ़ते हुए देखा, पन्त की ओर नहीं। मैंने देखा, पन्तजी की तरफ़ एक स्नेह-कटाक्ष कर, सहज फिरकर उसने मुझसे कहा, इन्हीं के पास बैठकर इन्हीं से मैं अपना जीवन-रहस्य कहूँगी, फिर चली गयी।

—'निराला'

वक्तव्य

अन्यान्य भाषाओं के मुकाबले हिन्दी में उपन्यासों की संख्या थोड़ी है। साहित्य तथा समाज के गले पर मुक्ताओं की माला की तरह इने-गिने उपन्यास ही हैं। मैं श्री प्रेमचन्दजी के उपन्यासों के उद्देश्य पर कह रहा हूँ। इनके अलावा और भी कई ऐसी रचनाएँ हैं, जो स्नेह तथा आदर-सम्मान प्राप्त कर चुकी हैं। इन बड़ी-बड़ी तोंदवाले औपन्यासिक सेठों की महफ़िल में मेरी दंशिताधरा अप्सरा उतरते हुए बिलकुल संकुचित नहीं हो रही—उसे विश्वास है, वह एक ही दृष्टि से इन्हें अपना अनन्य भक्त कर लेगी। किसी दूसरी रूपवाली अनिंद्य सुन्दरी से भी आँखें मिलाते हुए वह नहीं घबराती, क्योंकि वह स्पर्द्धा की एक ही सृष्टि, अपनी ही विद्युत् से चमकती हुई चिर-सौन्दर्य के आकाश-तत्त्व में छिप गयी है।

मैंने किसी विचार से अप्सरा नहीं लिखी, किसी उद्देश्य की पुष्टि भी इसमें नहीं। अप्सरा स्वयं मुझे जिस-जिस ओर ले गयी, दीपक-पतंग की तरह मैं उसके साथ रहा। अपनी ही इच्छा से अपने मुक्त जीवन-प्रसंग का प्रांगण छोड़ प्रेम की सीमित, पर दृढ़ बाँहों में सुरक्षित, बँध रहना उसने पसन्द किया।

इच्छा न रहने पर भी प्रासंगिक काव्य, दर्शन, समाज, राजनीति आदि की कुछ बातें चरित्रों के साथ व्यावहारिक जीवन की समस्या की तरह आ पड़ी हैं, वे अप्सरा के ही रूप-रुचि के अनुकूल हैं। उनसे पाठकों को शिक्षा के तौर पर कुछ मिलता हो, अच्छी बात है; न मिलता हो, रहने दें; मैं अपनी तरफ़ से केवल अप्सरा उनकी भेंट कर रहा हूँ।

लखनऊ
1 । 1 । 31

—'निराला'

एक

इडेन-गार्डेन में, कृत्रिम सरोवर के तट पर, एक कुंज के बीच, शाम सात बजे के करीब, जलते हुए एक प्रकाश-स्तम्भ के नीचे पड़ी हुई एक कुर्सी पर सत्रह साल की चम्पे की कली-सी एक किशोरी बैठी सरोवर की लहरों पर चमकती चाँद की किरणें और जल पर खुले हुए, काँपते, बिजली की बत्तियों के कमल के फूल एक-चित्त से देख रही थी। और दिनों से आज उसे कुछ देर हो गयी थी, पर इसका उसे खयाल न था।

युवती एकाएक चौंककर काँप उठी। उसी बेंच पर एक गोरा बिलकुल सटकर बैठ गया। युवती एक बगल हट गयी। फिर कुछ सोचकर, इधर-उधर देख, घबरायी हुई, उठकर खड़ी हो गयी। गोरे ने हाथ पकड़कर जबरन बेंच पर बैठा लिया। युवती चीख उठी।

बाग में उस समय इक्के-दुक्के आदमी रह गये थे। युवती ने इधर-उधर देखा, पर कोई नजर न आया। भय से उसका कण्ठ भी रुक गया। अपने आदमियों को पुकारना चाहा, पर आवाज़ न निकली। गोरे ने उसे कसकर पकड़ लिया।

गोरा कुछ निश्छल प्रेम की बात कह रहा था कि पीछे से किसी ने उसके कालर में उँगलियाँ घुसेड़ दीं, और गर्दन के पास कोट के साथ पकड़कर साहब को एक बित्ता बेंच से ऊपर उठा लिया, जैसे चूहे को बिल्ली। साहब के कब्जे से युवती छूट गयी। साहब ने सिर घुमाया। आगन्तुक ने दूसरे हाथ से युवती की तरफ सिर फेर दिया, "अब कैसी लगती है ?"

साहब झपटकर खड़ा हो गया। युवक ने कालर छोड़ते हुए जोर से सामने रेल दिया। एक पेड़ के सहारे साहब सँभल गया, फिरकर उसने देखा, एक युवक अकेला खड़ा है। साहब को अपनी वीरता का खयाल आया। "टुम पीछे से हमको पकड़ा।" कहते-कहते वह युवक की ओर लपका। "तो अभी दिल की मुराद पूरी नहीं हुई !" युवक तैयार हो गया। साहब को बॉक्सिग (घूसेबाजी) का अभिमान था, युवक को कुश्ती का। साहब के वार करते ही युवक ने कलाई पकड़ ली, और वहीं से बाँधकर बहल्ले में दे मारा, और छाती पर बैठ कई रद्दे कस दिये। साहब वेहोश हो गया। युवती खड़ी सविनय ताकती रही। युवक ने रूमाल भिगोकर साहब का मुँह पोंछ दिया। फिर उसी को सिर पर रख दिया। जेब से कागज निकाल बेंच के सहारे एक चिट्ठी लिखी, और साहब की जेब में रख दी। फिर

युवती से पूछा, "आपको कहाँ जाना है ?"

"मेरी मोटर सड़क पर खड़ी है। उस पर मेरा ड्राइवर और बूढ़ा अर्दली बैठा होगा। मैं हवाखोरी के लिए आयी थी। आपने मेरी रक्षा की, मैं सदैव-सदैव आपकी कृतज्ञ रहूँगी !"

युवक ने सिर झुका लिया।

"आपका शुभ नाम ?" युवती ने पूछा।

"नाम बतलाना अनावश्यक समझता हूँ। आप जल्द यहाँ से चली जायें।"

युवक को कृतज्ञता की सजल दृष्टि से देखती हुई युवती चल दी। रुककर कुछ कहना चाहा, पर कह न सकी। युवती फील्ड के फाटक की ओर चली, युवक हाई-कोर्ट की तरफ। कुछ दूर जाने के बाद युवती फिर लौटी। युवक नज़र से बाहर हो गया था। वह गयी, और साहब की जेब से चिट्ठी निकालकर चुपचाप चली आयी।

दो

कनक धीरे-धीरे अठाहरवें वर्ष के पहले चरण में आ पड़ी। अपार अलौकिक सौन्दर्य, एकान्त में, कभी-कभी अपनी मनोहर रागिनी सुना जाता। वह कान लगा उसके अमृत-स्वर को सुनती पान किया करती। अज्ञात एक अपूर्व आनन्द का प्रवाह अंगों को आपाद-मस्तक नहला जाता। स्नेह की विद्युल्लता काँप उठती। उस अपरिचित कारण की तलाश में विस्मय से आकाश की ओर ताककर रह जाती। कभी-कभी खिले हुए अंगों के स्नेह-भार में एक स्पर्श मिलता, जैसे अशरीर कोई उसकी आत्मा में प्रवेश कर रहा हो। उस गुदगुदी में उसके तमाम अंग काँपकर खिल उठते। अपनी देह के वृन्त अपलक खिली हुई ज्योत्स्ना के चन्द्र-पुष्प की तरह, सौन्दर्योज्ज्वल पारिजात की तरह एक अज्ञात प्रणय की वायु डोल उठती। आँखों में प्रश्न फूट पड़ता, संसार के रहस्यों के प्रति विस्मय।

कनक गन्धर्व-कुमारिका थी। उसकी माता सर्वेश्वरी बनारस की रहनेवाली थी। नृत्य-संगीत में वह भारत-प्रसिद्ध हो चुकी थी। बड़े-बड़े राजे-महाराजे जल्से में उसे बुलाते, उसकी बड़ी आवभगत करते। इस तरह सर्वेश्वरी ने अपार सम्पत्ति एकत्र कर ली थी। उसने कलकत्ता-बहूबाजार में आलीशान अपना एक खास मकान बनवा लिया था, और व्यवसाय की वृद्धि के लिए, उपार्जन की सुविधा के विचार से, प्रायः वहीं रहती भी थी। सिर्फ बुढ़वा-मगल के दिनों, तवायफों तथा रईसों पर अपने नाम की मुहर मार्जित कर लेने के विचार से, काशी-आवास करती थी। वहाँ भी उसकी एक कोठी थी।

सर्वेश्वरी की इस अथाह सम्पत्ति की नाव पर एकमात्र उसकी कन्या कनक

ही कर्णधार थी, इसलिए कनक में सब तरफ से ज्ञान का थोड़ा-थोड़ा प्रकाश भर देना—भविष्य के सुख-पूर्वक निर्वाह के लिए, अपनी नाव खेने की सुविधा के लिए, उसने आवश्यक समझ लिया था। वह जानती थी, कनक अब कली नहीं, उसके अंगों के कुल दल खुल गये हैं। उसके हृदय के चक्र में चारों ओर के सौन्दर्य का मधु भर गया है। पर उसका लक्ष्य उसकी शिक्षा की तरफ था। अभी तक उसने उसका जातीय शिक्षा का भार अपने हाथों नहीं दिया। अभी दृष्टि से ही वह कनक को प्यार कर लेती, उपदेश दे देती थी। कार्यतः उसकी तरफ से अलग थी। कभी-कभी जब व्यवसाय और व्यवसायियों से फ़ुर्सत मिलती, वह कुछ देर के लिए कनक को बुला लिया करती। और, हर तरफ से उसने कन्या के लिए स्वतन्त्र प्रबन्ध कर रखा था। उसके पढ़ने का घर ही में इन्तजाम कर दिया था। एक अँगरेज-महिला, श्रीमती कैथरीन, तीन घण्टे उसे पढ़ा जाया करती थीं। दो घण्टे के लिए एक अध्यापक आया करते थे।

इस तरह वह शुभ्र-स्वच्छ निर्झरिणी विद्या के ज्योत्स्ना-लोक के भीतर से मुखर शब्द-कलरव करती हुई ज्ञान के समुद्र की ओर अबाध बह चली। हिन्दी के अध्यापक उसे पढ़ाते हुए अपनी अर्थ-प्राप्ति की कलुषित कामना पर पश्चात्ताप करते, कुशाग्रबुद्धि शिष्या के भविष्य का पंकिल चित्र खींचते हुए मन-ही-मन सोचते, इसकी पढ़ाई ऊसर वर्षा है—तलवार में ज्ञान, नागिन का दूध पीना। इसका काटा हुआ एक कदम भी नहीं चल सकता। पर नौकरी छोड़ने की चिन्ता-मात्र से व्याकुल हो उठते थे। उसकी अँगरेजी की आचार्या उसे बाइबिल पढ़ाती हुई बड़ी एकाग्रता से उसे देखती, और मन-ही-मन निश्चय करती थी कि किसी दिन उसे प्रभु ईसा की शरण में लाकर कृतार्थ कर देगी। कनक भी अँगरेजी में जैसी तेज थी, उसे अपनी सफलता पर ज़रा भी द्विधा न थी। उसकी माता सोचती, इसके हृदय को जिन तारों से बाँधकर मैं इसे सजाऊँगी, उनके स्वर-झंकार से एक दिन संसार के लोग चकित हो जायेंगे; इसके द्वारा अप्सरा-लोक में एक नया ही परिवर्तन कर दूंगी, और वह केवल एक ही अंग में नहीं, चारों तरफ; मकान के सभी शून्य छिद्रों को, जैसे प्रकाश और वायु भरते रहते हैं, आत्मा का एक ही समुद्र जैसे सभी प्रवाहों का चरम परिणाम है।

इस समय कनक अपनी सुगन्ध से आप ही आश्चर्यचकित हो रही थी। अपने बालपन की बालिका तन्वी कवयित्री को चारों ओर केवल कल्पना का आलोक देख पड़ता था, उसने अभी उसकी किरण-तन्तुओं से जाल बुनना नहीं सीखा था। काव्य था, पर शब्द रचना नहीं—जैसे उस प्रकाश में उसकी तमाम प्रगतियाँ फँस गयी हों, जैसे इस अवरोध से बाहर निकलने की वह राह न जानती हो। वहीं उसका सबसे बड़ा सौन्दर्य उसमें एक अतुल नैसर्गिक विभूति थी। संसार के कुल मनुष्य और वस्तुएँ उसकी दृष्टि में मरीचिका के ज्योति-चित्रों की तरह आतीं, अपने यथार्थ स्वरूप में नहीं।

कनक की दिनचर्या बहुत साधारण थी। दो दासियाँ उसकी देख-रेख के लिए थीं, पर उन्हें प्रतिदिन दो बार उसे नहला देने और तीन-चार बार वस्त्र बदलवा देने के इन्तजाम में ही जो कुछ थोड़ा-सा काम था, बाकी समय यों ही कटता था।

कुछ समय साड़ियाँ चुनने में लग जाता था। कनक प्रतिदिन शाम को मोटर पर किले के मैदान की तरफ निकलती थी। ड्राइवर की बगल में एक अर्दली बैठता था। पीछे की सीट पर अकेली कनक। कनक प्राय: आभरण नहीं पहनती थी। कभी-कभी हाथों में सोने की चूड़ियाँ डाल लेती थी। गले में एक हीरे की कनी का जड़ाऊ हार। कानों में हीरे के दो चम्पे पड़े रहते। सन्ध्या-समय, सात बजे के बाद से दस तक और दिन में भी इसी तरह सात से दस तक पढ़ती थी। भोजन-पान में बिलकुल सादगी, पर पुष्टिकारक भोजन उसे दिया जाता था।

तीन

धीरे-धीरे, ऋतुओं के सोने के पंख फड़का, एक साल और उड़ गया। मन के खिलते हुए प्रकाश के अनेक झरने उसकी कमल-सी आँखों से होकर बह गये। पर अब उसके मुख से आश्चर्य की जग-ज्ञान की मुद्रा चित्रित हो जाती। वह स्वयं अब अपने भविष्य के तट पर तूलिका चला लेती है। साल-भर से माता के पास उसे नृत्य और संगीत की शिक्षा मिल रही है। इधर उसकी उन्नति के चपल क्रम को देख सर्वेश्वरी पहले की कल्पना की अपेक्षा शिक्षा के पथ पर उसे और दूर तक ले चलने का विचार करने लगी, और गन्धर्व-जाति के छूटे हुए पूर्व गौरव को स्पर्द्धा से प्राप्त करने के लिए उसे उत्साह भी दिया करती थी। कनक अपलक ताकती हुई माता के वाक्यों को सप्रमाण सिद्ध करने का मन-ही-मन निश्चय करती, प्रतिज्ञाएँ करती। माता ने उसे सिखलाया, "किसी को प्यार मत करना। हमारे लिए प्यार करना आत्मा की कमजोरी है, यह हमारा धर्म नहीं।"

कनक ने अस्फुट वाणी में मन-ही-मन प्रतिज्ञा की, "किसी को प्यार नहीं करूँगी। यह हमारे लिए आत्मा की कमजोरी है, धर्म नहीं।"

माता ने कहा, "संसार के और लोग भीतर से प्यार करते हैं, हम लोग बाहर से।"

कनक ने निश्चय किया, "और लोग भीतर से प्यार करते हैं, मैं बाहर से करूँगी।"

माता ने कहा "हमारी जैसी स्थिति है, इस पर ठहरकर भी हम लोक में वैसी ही विभूति, वैसा ही ऐश्वर्य, वैसा ही सम्मान अपनी कला के प्रदर्शन से प्राप्त कर सकती हैं; साथ ही, जिस आत्मा को और लोग अपने सर्वस्व का त्याग कर प्राप्त करते हैं, उसे भी हम लोग अपनी कला के उत्कर्ष के द्वारा, उसी में, प्राप्त करती हैं—उसी में लीन होना हमारी मुक्ति है। जो आत्मा सभी सृष्टियों की सूक्ष्मतम तन्तु की तरह उनके प्राणों के प्रियतम संगीत को झंकृत करती, जिसे लोग बाहर के कुल सम्बन्धों को छोड़, ध्वनि के द्वारा तन्मय हो प्राप्त करते, उसे हम अपने बाह्य

यन्त्र के तारों से झंकृत कर, मूर्ति में जगा लेतीं, फिर अपने जलते हुए प्राणों का गरल, उसी शिव को, मिलकर पिला देती हैं। हमारी मुक्ति इस साधना द्वारा होती है, इसीलिए ऐश्वर्य पर हमारा सदा ही अधिकार रहता है। हम बाहर से जितनी सुन्दर, भीतर से उतनी ही कठोर इसीलिए हैं। और-और लोग बाहर से कठोर, पर भीतर से कोमल हुआ करते हैं इसीलिए वे हमें पहचान नहीं पाते और अपने सर्वस्व तक का दान कर हमें पराजित करना चाहते हैं। हमारे प्रेम को प्राप्त कर, जिस पर केवल हमारे कौशल के शिव का ही एकाधिकार है, जब हम लोग अपने इस धर्म के गर्त से, मौखरिये की रागिनी सुन मुग्ध हुई नागिन की तरह, निकल पड़ती हैं, तब हमारे महत्त्व के प्रति भी हमें कलंकित अहल्या की तरह शाप से बाँध, पतित कर चले जाते हैं। हम अपनी स्वतन्त्रता के सुखमय विहार को छोड़ मौखरिये की संकीर्ण टोकरी में बन्द हो जाती हैं, फिर वही हमें इच्छानुसार नचाता, अपनी स्वतन्त्र इच्छा के वश में हमें गुलाम बना लेता है। अपनी बुनियाद पर इमारत की तरह तुम्हें अटल रहना होगा, नहीं तो फिर अपनी स्थिति से ढह जाओगी, बह जाओगी।"

कनक के मन में होंठ काँपकर रह गये, "अपनी बुनियाद में इमारत की तरह अटल रहूँगी!"

अखबारों में बड़े-बड़े अक्षरों में सूचना निकली—

'कोहनूर-थियेटर में'

शकुन्तला! शकुन्तला!! शकुन्तला!!

शकुन्तला—मिस कनक

दुष्यन्त—राजकुमार वर्मा, एम. ए.

प्रशंसा में और भी बड़े-बड़े आकर्षक शब्द लिखे हुए थे। थिएटर-शौकीनों को हाथ बढ़ाकर स्वर्ग मिला। वे लोग थिएटरों का तमाम इतिहास कण्ठाग्र रखते थे। जितने भी ऐक्टर (अभिनेता) और बड़ी-छोटी जितनी भी मशहूर एक्ट्रेस (अभिनेत्रियाँ) थीं, उन्हें सबके नाम मालूम थे, सबकी सूरतें पहचानते थे, पर यह मिस कनक अपरिचित थी। विज्ञापन के नीचे कनक की तारीफ भी खूब की गयी थी। लोग टिकट खरीदने के लिए उतावले हो गये। टिकट-घर के सामने अपार भीड़ लग गयी, जैसे आदमियों का सागर तरंगित हो रहा हो। एक-एक झोंके से बाढ़ के पानी की तरह वह जन-समुद्र इधर-से-उधर डोल उठता था। बॉक्स, आर्केस्ट्रा, फर्स्ट क्लास में भी और-और दिनों से ज्यादा भीड़ थी।

विजयपुर के कुँवर साहब भी उन दिनों कलकत्ते की सैर कर रहे थे। इन्हें

स्टेट से छः हजार मासिक जेब-खर्च के लिए मिलता था। वह सब नयी रोशनी, नये फैशन में फूँककर ताप लेते थे। आपने भी एक बॉक्स किराये पर लिया। थिएटर की मिसों की प्रायः आपकी कोठी में दावत होती थी, और तरह-तरह के तोहफे आप उनके मकान पहुँचा दिया करते थे। संगीत का आपको अजहद शौक था। खुद भी गाते थे, पर आवाज जैसे ब्रह्मभोज के पश्चात् कड़ाह रगड़ने की। लोग इस पर भी कहते थे, क्या मंजी हुई आवाज है ! आपको भी मिस कनक का पता मालूम न था। इससे और उतावले हो रहे थे। जैसे ससुराल जा रहे हों, और स्टेशन के पास गाड़ी पहुँच गयी हो।

देखते-देखते सन्ध्या के छह का समय हुआ। थिएटर गेट के सामने पान खाते, सिगरेट पीते, हँसी-मजाक करते हुए बड़ी-बड़ी तोंदवाले सेठ छड़ियाँ चमकाते, सुनहली डण्डी का चश्मा लगाये हुए कॉलेज के छोकरे, अँगरेजी अखबारों की एक-एक प्रति लिये हुए हिन्दी के सम्पादक सहकारियों पर अपने अपार ज्ञान का बुखार उतारते हुए, पहले ही से कला की कसौटी पर अभिनय की परीक्षा करने की प्रतिज्ञा करते हुए टहल रहे थे। इन सब बाहरी दिखलावों के अन्दर सबके मन की आँखें मिसों के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थीं, उनके चकित-दर्शन, चंचल चलन को देखकर चरितार्थ होना चाहती थीं। जहाँ बड़े-बड़े आदमियों का यह हाल था, वहाँ थर्ड क्लास तिमंजिले पर फटी-हालत, नंगे-बदन, रूखी-सूरत, बैठे हुए बीड़ी-सिगरेट के धुएँ से छत भर देनेवाले, मौके-बेमौके तालियाँ पीटते हुए 'इनकोर-इनकोर' के अप्रतिहत शब्द से कानों के पर्दे पार कर देनेवाले, अशिष्ट, मुँहफट, कुली-क्लास के लोगों का बयान ही क्या ? वहीं इन धन-कुबेरों और संवाद-पत्रों के सर्वज्ञों, वकीलों, डॉक्टरों, प्रोफेसरों और विद्यार्थियों के साथ ये लोग भी कला के प्रेम में साम्यवाद के अधिकारी हो रहे थे।

देखते-देखते एक लारी आयी। लोगों की निगाह तमाम बाधाओं को चीरती हुई, हवा की गोली की तरह, निशाने पर जा बैठी। पर, उस समय, गाड़ी से उतरने पर, वे जितनी—मिस डली, मिस कुन्दन, मिस हीरा, पन्ना, मोती, पुखराज, रमा, क्षमा, शान्ति, शोभा, किसमिस और अंगूर-बालाएँ— थीं जिनमें किसी ने हिरन की चाल दिखायी, किसी ने मोर की, किसी ने नागिन-जैसी—सब-की-सब जैसे डामर से पुती, अफ्रीका से हाल ही आयी, प्रोफेसर डीवर या मिस्टर चटर्जी की सिद्ध की हुई, हिन्दुस्तान की आदिम जाति की ही कन्याएँ और बहनें थीं, और ये सब इतने बड़े-बड़े लोग इन्हें ही कला की दृष्टि से देख रहे थे। कोई छः फीट ऊँची, तिस पर नाक नदारद। कोई डेढ़ ही हाथ की छटंकी, पर होंठ आँखों की उपमा लिये हुए आकर्ण-विस्तृत। किसी की साढ़े तीन हाथ की लम्बाई चौड़ाई में बदली हुई—एक-एक कदम पर पृथ्वी काँप उठती। किसी की आँखें मक्खियों-सी छोटी और गालों में तबले मढ़े हुए। किसी की उम्र का पता नहीं, शायद सन् 57 के गदर में मिस्टर हडसन को गोद खिलाया हो। इस पर ऐसी दुलकी चाल सबने दिखायी, जैसे भुलभुल में पैर पड़ रहे हों। गेट के भीतर चले जाने के कुछ सेकेण्ड तक जनता तृष्णा की विस्तृत अपार आँखों से कला के उस अप्राप्य अमृत का पान करती रही।

कुछ देर बाद एक प्राइवेट मोटर आयी। बिना किसी इंगित के ही जनता की क्षुब्ध तरंग शान्त हो गयी। सब लोगों के अंग रूप की तड़ित् से प्रहत निश्चेष्ट रह गये। सर्वेश्वरी का हाथ पकड़े हुए कनक मोटर से उतर रही थी। सबकी आँखों के सन्ध्याकाश में जैसे सुन्दर इन्द्र-धनुष अंकित हो गया हो। सबने देखा, मूर्त्तिमती प्रभात की किरण है।

उस दिन घर से अपने मन के अनुसार सर्वेश्वरी उसे सजा लायी थी। धानी रंग की रेशमी साड़ी पहने हुए, हाथों में सोने की, रोशनी से चमकती हुई चूड़ियाँ, गले में हीरे का हार; कानों में चम्पा; रेशमी फीते से बँधे तरंगित, खुले, लम्बे बाल; स्वस्थ, सुन्दर देह; कान तक खिंची, किसी की खोज-सी करती हुई बड़ी-बड़ी आँखें; काले रंग से कुछ स्याह कर तिरछायी हुई भौंहें। लोग स्टेज की अभिनेत्री शकुन्तला को मिस कनक के रूप में अपलक नेत्रों से देख रहे थे।

लोगों के मनोभावों को समझकर सर्वेश्वरी देर कर रही थी। मोटर से सामान उतरवाने, ड्राइवर को मोटर लाने का वक्त बतलाने, नौकर को कुछ भूला हुआ सामान मकान से ले आने की आज्ञा देने में लगी रही। फिर धीरे-धीरे कनक का हाथ पकड़े हुए, अपने अर्दली के साथ, ग्रीन-रूम की तरफ चली गयी।

लोग जैसे स्वप्न देखकर जागे। फिर चहल-पहल मच गयी। लोग मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे। धन-कुबेर सेठ दूसरे परिचितों से आँखों के इशारे करने लगे। इन्हीं लोगों में विजयपुर के कुँवर साहब भी थे। और, न जाने कौन-कौन से राजे-महाराजे सौन्दर्य के समुद्र से अतंद्र अम्लान निकली हुई इस अप्सरा की कृपा-दृष्टि के भिक्षुक हो रहे थे।

जिस समय कनक खड़ी थी, कुँवर साहब अपनी आँखों से नहीं, खुर्दबीन की आँखों से उसके बृहत् रूप के अंश में अपने को सबसे बड़ा हक़दार साबित कर रहे थे, और इस कार्य में उन्हें ज़रा भी संकोच नहीं हो रहा था। कनक उस समय मुस्किरा रही थी।

भीड़ तितर-बितर होने लगी। खेल आरम्भ होने में पौन घण्टा और रह गया। लोग पानी, पान, सोडा-लेमनेड आदि खाने-पीने में लग गये। कुछ लोग बीड़ियाँ फूँकते हुए खुली, असभ्य भाषा में कनक की आलोचना कर रहे थे।

ग्रीन-रूम में अभिनेत्रियाँ सज रही थीं। कनक नौकर नहीं थी, उसकी मा भी नौकर नहीं थी। उसकी मा उसे स्टेज पर पूर्णिमा के चाँद की तरह एक ही रात में लोगों की दृष्टि में खोलकर प्रसिद्ध कर देना चाहती थी। थिएटर के मालिक पर उसका काफी प्रभाव था। साल में कई बार उसी स्टेज पर, टिकट ज्यादा बिकने के लोभ से, थिएटर के मालिक उसे गाने तथा अभिनय करने के लिए बुलाते थे। वह जिस रोज स्टेज पर उतरती, रंगशाला दर्शक-मण्डली से भर जाती। कनक रिहर्सल में कभी नहीं गयी, यह भार उसकी माता ने ले लिया था।

कनक को शकुन्तला का वेश पहनाया जाने लगा। उसके कपड़े उतार दिये गये। एक साधारण-सा वस्त्र, वल्कल की जगह, पहना दिया गया। गले में फूलों का हार। बाल अच्छी तरह खोल दिये गये। उसकी सखियाँ अनुसूइया और प्रियंवदा भी सज गयीं। उधर राजकुमार को दुष्यन्त का वेश पहनाया जाने लगा। और-

और पात्र भी सजाकर तैयार कर दिये गये।

राजकुमार भी कम्पनी में नौकर नहीं था। वह शौकिया बड़ी-बड़ी कम्पनियों में उतरकर प्रधान पार्ट किया करता था। इसका कारण खुद मित्रों से बयान किया करता। कहा करता था, हिन्दी के स्टेज पर लोग ठीक-ठीक हिन्दी उच्चारण नहीं करते, वे उर्दू के उच्चारण की नकल करते हैं, इससे हिन्दी का उच्चारण बिगड़ जाता है। हिन्दी के उच्चारण में जीभ की स्वतन्त्र गति होती है। यह हिन्दी ही की शिक्षा के द्वारा दुरुस्त होगी। कभी-कभी हिन्दी में वह स्वयं भी नाटक लिखा करता। यह शकुन्तला-नाटक उसी का लिखा हुआ था। हिन्दी की शुभकामना से प्रेरित हो उसने विवाह भी नहीं किया। इससे उसके घरवाले कुपित भी हुए थे, पर उसने परवा नहीं की। कलकत्ता-सिटी-कॉलेज में वह हिन्दी का प्रोफेसर है। शरीर जैसा हृष्ट-पुष्ट, वैसा ही वह सुन्दर और बलिष्ठ भी है। कलकत्ता की साहित्य-समितियाँ उसे अच्छी तरह पहचानती हैं।

तीसरी घण्टी बजी। लोगों की उत्सुक आँखें स्टेज की ओर लगीं। पहले बालिकाओं ने स्वागत-गीत गाया, पश्चात् नाटक शुरू हुआ। पहले-ही-पहल कण्व के तपोवन में शकुन्तला के दर्शन कर दर्शकों की आँखें तृप्ति से खुल गयीं। आश्रम के उपवन की वह खिली हुई कली अपने अंगों की सुरभि से कम्पित दर्शकों के हृदय को, संगीत की मधुर मीड़ की तरह काँपकर उठती देह की दिव्य द्युति से, प्रसन्न-पुलकित कर रही थी। जिधर-जिधर चपल तरंग की तरह वह डोलती-फिरती, लोगों की अचंचल, अपलक दृष्टि उधर-ही-उधर उस छवि-स्वर्ण-किरण से लगी रहती। एक ही प्रत्यंग-संचालन से उसने लोगों पर जादू डाल दिया। सभी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। उसे गौरवपूर्ण आश्चर्य से देखने लगे।

महाराजा दुष्यन्त का प्रवेश हुआ। देखते ही कनक चौंक उठी। दुष्यन्त भी, अपनी तमाम एकाग्रता से, उसे अविस्मय देखते रहे। यह मौन अभिनय लोगो के मन में वास्तविक दुष्यन्त और शकुन्तला की झलक भर गया। कनक मुस्किरायी। दोनों ने दोनों को पहचान लिया था।

उनके अभ्यन्तर भावों की प्रसन्नता की छाया दर्शकों पर भी पड़ी। लोगों ने कहा, "कितना स्वाभाविक अभिनय हो रहा है!"

क्रमशः आलाप-परिचय, राग-रस-प्रियता आदि अभिनीत होते रहे। रंगशाला में सन्नाटा छाया हुआ था, मानो सब लोग निर्वाक् कोई मनोहर स्वप्न देख रहे हों। गान्धर्व रीति से विवाह होने लगा। लोग तालियाँ पीटते, सीटियाँ बजाते रहे। शकुन्तला ने अपनी माला दुष्यन्त को पहना दी, दुष्यन्त ने अपनी शकुन्तला को। स्टेज खिल गया।

ठीक इसी समय, बाहर से भीड़ को ठेलते, चेकरों की भी परवा न करते हुए, कुछ कांस्टेबिलों को साथ ले, पुलिस के दारोगाजी बड़ी गम्भीरता से स्टेज के सामने आ धमके। लोग विस्मय की दृष्टि से एक दूसरा नाटक देखने लगे। दारोगाजी ने मैनेजर को पुकारकर कहा, "यहाँ इस नाटक-मण्डली में, राजकुमार वर्मा कौन है? उसके नाम वारण्ट है, हम उसे गिरफ्तार करेंगे।"

तमाम स्टेज थर्रा गया। उसी समय लोगों ने देखा, राजकुमार वर्मा, दुष्यन्त

की ही सम्राट्-चाल से निश्शंक, वन्य दृश्य-पट के किनारे से, स्टेज के बिल्कुल सामने आकर खड़ा हो गया, और वीर-दृष्टि से दारोगा को देखने लगा। वह दृष्टि कह रही थी— हमें गिरफ्तार होने का बिलकुल खौफ नहीं। कनक भी शकुन्तला के अभिनय को सार्थक करती हुई, किनारे से चलकर अपने प्रिय पति के पास आ, उसका हाथ पकड़ दारोगा को निस्संकोच दृप्त दृष्टि से देखने लगी। कनक को देखते ही शहद की मक्खियों की तरह दारोगा की आँखें उससे लिपट गयीं। दर्शक नाटक देखने के लिए चंचल हो उठे।

"हमने रुपये खर्च किये हैं। हमारे मनोरंजन का टैक्स लेकर फिर उसमें बाधा डालने का सरकार को कोई अधिकार नहीं। यह दारोगा की मूर्खता है, जो अभियुक्त को यहाँ कैद करने आया। निकाल दो उसे।" कॉलेज के एक विद्यार्थी ने जोर से पुकारकर कहा।

"निकालो, निकालो, निकाल बाहर करो।" हजारों कण्ठ एक साथ कह उठे।

ड्राप गिरा दिया गया।

"निकल जाओ, निकल जाओ।" पटापट तालियों के वाद्य से स्टेज गूंज उठा। सीटियाँ बजने लगीं। "अहा हा हा ! कुर्बान जाऊँ साफा ! कुर्बान जाऊँ डण्डा ! छछूंदर-जैसी मूँछें ! यह कद्दू-जैसा मुँह !"

दारोगाजी का सिर लटक पड़ा। "भागो, भागो, भागो" के बीच उन्हें भागना ही पड़ा। मैनेजर ने कहा, "नाटक हो जाने के बाद आप उन्हें गिरफ्तार कर लीजिएगा। मैं उनके पास गया था। उन्होंने आपके लिए यह संवाद भेजा है।"

दारोगा को मैनेजर गेट पर ले जाने लगे। पर उन्होंने स्टेज के भीतर रहकर नाटक देखने की इच्छा प्रकट की। मैनेजर ने टिकट खरीदने के लिए कहा। दारोगाजी एक बार घूरकर रह गये। फिर अपने लिए एक आर्केस्ट्रा का टिकट खरीद लिया। कांस्टेबिलों को मैनेजर ने थर्ड क्लास में ले जाकर भर दिया। वहाँ के लोगों को मनोरंजन की दूसरी सामग्री मिल गयी।

थिएटर होता रहा। मिस कनक द्वारा किया हुआ शकुन्तला का पार्ट लोगों को बहुत पसन्द आया। एक ही रात में वह शहर-भर में प्रसिद्ध हो गयी।

नाटक समाप्त हुआ। राजकुमार को ग्रीन-रूम से निकलते ही गिरफ्तार कर लिया गया।

पाँच

एक बड़ी-सी, अनेक प्रकार के देश-देश की अप्सराओं, बादशाहजादियों, नर्तकियों के सत्य तथा काल्पनिक चित्रों तथा बेलबूटों से सजी हुई, दालान। झाड़-फानूस टँगे हुए, फर्श पर कीमती गलीचा-कारपेट बिछा हुआ। मखमल की गद्दीदार कुर्सियाँ।

कोच और सोफे तरह-तरह की मेजों के चारों ओर कायदे से रखे हुए। बीच-बीच में बड़े-बडे आदमी के आकार में ड्योढ़े शीशे। एक तरफ टेबल-हारमोनियम और एक तरफ पियानो रक्खा हुआ। और-और यन्त्र भी—सितार, सुर-बहार, एसराज, वीणा, सरोद, बैंजो, वेला, क्लारियोनेट, कारनेट, मँजीरे, तबले, पखावज, सारंगी आदि यथास्थान सुरक्षित रक्खे हुए।

छोटी-छोटी मेजों पर चीनी-मिट्टी के कीमती शो-पीस रखे हुए। किसी-किसी में फूलों के तोड़े। रंगीन शीशे-जड़े तथा झँझरियोंदार डबल दरवाजे लगे हुए। दोनों किनारों पर मखमल की सुनहरी जालीदार झूल चौथ के चाँद के आकार से पड़ी हुई। बीच में छः हाथ की चौकोर करीब डेढ़ हाथ की ऊँची गद्दी, तकिये लगे हुए। उस पर अकेली बैठी हुई, रात आठ बजे के लगभग, कनक सुरबहार बजा रही है। मुख पर चिन्ता की एक रेखा स्पष्ट खिंची हुई उसके बाहरी सामान से चित्त बहलाने का हाल बयान कर रही है। नीचे लोगों की भीड़ जमा है। सब कान लगाये सुरबहार सुन रहे हैं।

एक दूसरे कमरे से एक नौकर ने आकर कहा, "माजी कहती हैं, कुछ गाने के लिए कहो।" कनक ने सुना। नौकर चलने लगा, कनक ने उससे हारमोनियम दे जाने के लिए कहा। हारमोनियम आने पर उसने सुरबहार बढ़ा दिया। नौकर उस पर गिलाफ चढ़ाने लगा। कनक दूसरे सप्तक के 'सी' स्वर पर उँगली रखकर बेली करने लगी। गाने से जी उचट रहा था, पर माता की आज्ञा थी, उसने गाया—

"प्यार करती हूँ, अलि, इसलिए मुझे भी करते हैं वे प्यार,
बह गयी हूँ अजान की ओर, इसलिए बह जाता संसार।
रुके नहीं धनि-चरण घाट पर,
देखा मैंने मरन-बाट पर
टूट गये सब आट-ठाठ, घर,
टूट गया परिवार—
तभी सखि, करते हैं वे प्यार।
आप बही या बहा दिया था,
खिंची स्वयं या खींच लिया था,
नहीं याद कुछ कि क्या किया था,
हुई जीत या हार—
तभी री, करते हैं वे प्यार।
खुले नयन, जब रही सदा तिर—
स्नेह-तरंगों पर उठ-उठ गिर;
सुखद पालने पर मैं फिर-फिर
करती थी शृंगार—
मुझे तब करते हैं वे प्यार।
कर्म-कुसुम अपने सब-चुन-चुन,
निर्जन में प्रिय के गिन-गिन गुन,
गूँथ निपुण कर से उनको सुन,

पहनाया था हार—
इसलिए करते हैं वे प्यार।"

कनक ने कल्याण में भरकर इमन गाया। नीचे कई सौ आदमी मन्त्रमुग्ध-से खड़े हुए सुन रहे थे। गाने से प्रसन्न हो, सर्वेश्वरी भी अपने कमरे से उठकर, कनक के पास आकर बैठ गयी। गाना समाप्त हुआ। सर्वेश्वरी ने प्यार से कन्या का चिन्तित मुख चूम लिया।

तभी नीचे से एक नौकर ने आकर कहा, "विजयपुर के कुँवर साहब के यहाँ से एक बाबू आये हैं। कुछ बातचीत करना चाहते हैं।"

सर्वेश्वरी नीचे अपने दो-मंजिलवाले कमरे में उतर गयी। यह कनक का कमरा था। अभी कुछ दिन हुए कनक के लिए, सर्वेश्वरी ने सजाया था। कुछ देर बाद सर्वेश्वरी लौटकर ऊपर आयी। कनक से कहा, "कुँवर साहब विजयपुर तुम्हारा गाना सुनना चाहते हैं।"

"मेरा गाना सुनना चाहते हैं!" कनक सोचने लगी। "अम्मा!" कनक ने कहा, "मैं रईसों की महफिल में गाना नहीं गाऊँगी।"

"नहीं, वह यहीं आयेंगे। बस, दो-चार चीजें सुना दो। तबियत अच्छी न हो, तो कहो, कह दें, फिर कभी आयेंगे।"

"अच्छा अम्मा, किसी कीमती, खूबसूरत पत्ते पर गिरी हुई ओस की बूंद अगर हवा के झोंके से जमीन पर गिर जाय तो अच्छा या प्रभात के सूर्य से चमकती हुई उसकी किरणों से खेलकर फिर अपने निवास-स्थान—आकाश को चली जाय?"

"दोनों अच्छे हैं उसके लिए। हवा के झूले का आनन्द किरणों से हँसने में नहीं, वैसे ही किरणों से हँसने का आनन्द हवा के झूले में नहीं। और, अन्ततः वास-स्थान तो पहुँच ही जाती है, गिरे या डाल पर सूख जाय!"

"और अगर हवा में झूलने से पहले ही सूखकर उड़ गयी हो?"

"तब तो बात ही और है।"

"मैं उसे यथार्थ रंगीन पंखोंवाली परी मानती हूँ।"

"क्या तू खुद भी ऐसी ही परी बनना चाहती है!"

"हाँ, अम्मा! मैं कला को कला की दृष्टि से देखती हूँ। क्या उससे अर्थ-प्राप्ति करना उसके महत्त्व को घटा देना नहीं?"

"ठीक है। पर यह एक प्रकार का समझौता है। अर्थवाले अर्थ देते हैं, और कला के जानकार उसका आनन्द। संसार में एक-दूसरे से ऐसा ही सम्बन्ध है।"

"कला के ज्ञान के साथ-ही-साथ कुछ ऐसी गन्दगी भी हम लोगों के चरित्र में रहती है, जिससे मुझे सख्त नफरत है।"

माता चुप रही। कन्या के विशद अभिप्राय को ताडकर कहा, "तुम इससे बच रहकर भी अपने ही जीने से छत पर जा सकती हो, जहाँ सबकी तरह तुम्हें भी आकाश तथा प्रकाश का बराबर अंश मिल सकता है।"

"मैं इतना सब नहीं समझती। समझती भी हूँ, तो भी मुझे कला को एक सीमा में परिणत रखना अच्छा लगता है। ज्यादा विस्तार से वह कलुषित हो जाती है, जैसे बहाव का पानी। उसमें गन्दगी डालकर भी लोग उसे पवित्र मानते हैं, पर

कुएँ के लिए यह बात सार्थक नहीं। स्वास्थ्य के विचार से कुएँ का पानी बहते हुए पानी से बुरा नहीं। विस्तृत व्याख्या तथा अधिक बढ़ाव के कारण अच्छे-से-अच्छे कृत्य बुरे धब्बों से रँगे रहते हैं।"

"प्रवृत्ति के वशीभूत हो लोग अनर्थ करने लगते हैं। यही अत्याचार धार्मिक अनुष्ठानों में प्रत्यक्ष हो रहा है, पर बृहत् अपनी महत्ता में बृहत् ही है। बहाव और कुएँवाली बात जँचकर भी फीकी रही।"

"सुनो, अम्मा ! तुम्हारी कनक अब तुम्हारी नहीं रही। उसके हार में ईश्वर ने एक नीलम जड़ दिया है।"

सर्वेश्वरी ने तअज्जुब की निगाह से कन्या को देखा। कुछ-कुछ उसका मतलब वह समझ गयी, पर उसने कन्या से पूछा, "तुम्हारे कहने का मबतल ?"

"यह।" कनक ने हाथ की चूड़ी, कलाई उठाकर, दिखायी।

सर्वेश्वरी हँसने लगी, "तमाशा कर रही है ? यह कौन-सा खेल ?"

"नहीं अम्मा !" कनक गम्भीर हो गयी। चेहरे पर एक स्थिर प्रौढ़ता झलकने लगी, "मैं ठीक कहती हूँ, मैं ब्याही हुई हूँ। अब मैं महफिल में गाना नहीं गाऊँगी। अगर कहीं गाऊँगी भी, तो खूब सोच-समझकर, जिससे मुझे सन्तोष रहे।"

सर्वेश्वरी अपलक दृष्टि से कनक को देखती रही।

"यह विवाह कब हुआ, और किससे हुआ ? किया किसने ?"

"यह विवाह आपने किया, ईश्वर की इच्छा से, कोहनूर-कम्पनी के स्टेज पर कल हुआ, दुष्यन्त का पार्ट करनेवाले राजकुमार के साथ, शकुन्तला के रूप में सजी हुई तुम्हारी कनक का। ये चूड़ियाँ, एक-एक दोनों हाथों में, इस प्रमाण की रक्षा के लिए मैंने पहन ली हैं। और देखो···" कनक ने जरा-सी सेंदुर की बिन्दी सिर पर लगा ली थी, "अम्मा, यह एक रहस्य हो गया। राजकुमार को···"

माता ने बीच में ही हँसकर कहा, "सुहागिनें अपने पति का नाम नहीं लिया करतीं !"

"पर मैं लिया करूँगी। मैं कोई घूंघट काढ़नेवाली सुहागिन तो हूँ नहीं। कुछ पैदायशी स्वतन्त्र हक मैं अपने साथ रखूँगी, नहीं तो कुछ दिक्कत पड़ सकती है। गाने-बजाने पर भी मेरा ऐसा ही विचार रहेगा। हाँ, राजकुमार को तुम नहीं जानतीं। उन्होंने ही मुझे इडेन-गार्डेन में बचाया था।"

कन्या की भावना पर, ईश्वर की विचित्र घटनाओं को भीतर से इस प्रकार मिलाने पर, कुछ देर तक सर्वेश्वरी सोचती रही। देखा, उसके हृदय के कमल पर कनक की इस उक्ति की किरण सूर्य की किरण की तरह पड़ रही थी, जिससे आप-ही-आप उसके सब दल प्रकाश की ओर खुलते जा रहे थे। तरंगों से उसका स्नेह-समुद्र कनक के रेखा-तट को छूने लगा। एकाएक स्वाभाविक परिवर्तन को प्रत्यक्ष लक्ष्य कर सर्वेश्वरी ने अप्रिय, विरोधी प्रसंग छोड़ दिया। हवा का रुख जिस तरफ हो उसी तरफ नाव को बहा ले जाना उचित है, जबकि लक्ष्य केवल सैर है, कोई गम्य स्थान नहीं।

हँसकर सर्वेश्वरी ने पूछा, "तुम्हारा इस प्रकार स्वयंवरा होना उन्हें भी मंजूर

है न, या अन्त तक शकुन्तला की ही दशा भोगनी होगी ?और, वह तो कैद भी हो गये हैं।"

कनक संकुचित लज्जा से द्विगुणित हो गयी। कहा, "मैंने उनसे तो इसकी चर्चा नहीं की। करना भी व्यर्थ है। इसे मैं अपनी हद तक रखूँगी। किसके कैसे खयालात हैं, मुझे क्या मालूम ! अगर वह मुझे, मेरे कुल का विचार कर, ग्रहण न करें, तो इस तरह का अपमान बरदाश्त कर जाना मेरी शक्ति से बाहर है। वह कैद शायद उसी मामले में हुए हैं।"

"उनके बारे में और भी कुछ तुम्हारा समझा हुआ है ?"

"मैं और कुछ भी नहीं जानती, अम्मा ! पर कल तक···सोचती हूँ, थानेदार को बुलाकर कुछ पूछूँ, और पता लगाकर भी देखूँ कि क्या कर सकती हूँ।"

सर्वेश्वरी ने कुंवर साहब के आदमियों के पास कहला भेजा कि कनक की तबियत अच्छी नहीं, इसलिए किसी दूसरे दिन गाना सुनने की कृपा करें।

छह

कनक का जमादार एक पत्र लेकर, बड़ा बाजार थाने में, दारोगाजी के पास गया।

दारोगाजी बैठे हुए एक मारवाड़ी को किसी काम में शहादत के लिए, समझा रहे थे कि उनके लिए, और खासतौर से सरकार के लिए, इतना-सा काम कर देने पर वह मारवाड़ी महाशय को कहाँ तक पुरस्कृत कर सकते हैं, सरकार की दृष्टि में उनकी कितनी इज्जत होगी और उन्हें कितने बड़े आर्थिक लाभ की सम्भावना है। मारवाड़ी महाशय बड़े नम्र शब्दों में, डरे हुए, पहले तो इनकार करते रहे, पर दारोगाजी की वक्तृता के प्रभाव से, अपने भविष्य के चमकते हुए भाग्य का काल्पनिक चित्र देख-देख, पीछे से हाँ-न के बीच खड़े हुए मन-ही-मन हिल रहे थे—कभी इधर कभी उधर। उसी समय कनक के जमादार ने खत लिये हुए उन्हें घुटनों तक झुककर सलाम किया।

दारोगा साहब ने 'आज तख्त बैठो दिल्लीपति नर' की नजर से क्षुद्र जमादार को देखा। बढ़कर उसने चिट्ठी दे दी।

दारोगाजी तुरन्त चिट्ठी खोलकर पढ़ने लगे। पढ़ते जाते और मुस्किराते जाते थे। पढ़कर जेब में हाथ डाला। एक नोट था पाँच रुपये का। जमादार को दे दिया। कहा, "तुम चलो। कह देना, हम अभी आये।" अँगरेजी में पत्र यों था—

3, बहूबाजार-स्ट्रीट,
कलकत्ता
3. 4.'18

प्रिय दारोगा साहब,

आपसे मिलना चाहती हूँ। जब से स्टेज पर से आपको देखा—आहा ! कैसी गजब की हैं आपकी आँखें। दुबारा जब तक नहीं देखती, मुझे चैन नहीं। क्या आप कल नहीं मिलेंगे ?

आप ही की—
कनक

थानेदार साहब खूबसूरत न थे, पर उन्हें उस समय अपने सामने शाहजादे सलीम का रंग फीका और किसी परीजाद की आँख भी छोटी जान पड़ी। तुरन्त उन्होंने मारवाड़ी महाशय को बिदा कर दिया। तहकीकात करने के लिए मछुवा बाजार जाना था, यह काम छोटे थानेदार के सिपुर्द कर दिया, यद्यपि वहाँ बहुत-से रुपये गुण्डों से मिलनेवाले थे।

उठकर कपड़े बदले, और सादी, सफेद पोशाक में वह बाजार की सैर करने चल पड़े। पत्र जेब में रखने लगे, तो फिर उन्हें अपनी आँखों की बात याद आयी। तुरन्त शीशे के सामने जाकर खड़े हो गये, और तरह-तरह से मुँह बना-बनाकर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे। उनके मन को, उस सूरत से, उन आँखों से तृप्ति न थी, पर जबरन मन को समझा रहे थे। दस मिनट तक इसी तरह अपनी सूरत देखते रहे। शीशे के सामने वैसलीन ज्यादा-सी पोत ली। मुँह धोया। पाउडर लगाया। सेण्ट छिड़का। फिर आईने के सामने खड़े हो गये। मन को फिर भी न अच्छा लगा, पर जोर दे-देकर अपने को अच्छा साबित करते रहे।

कनक के मन्त्र ने स्टेज पर ही इन्हें वशीभूत कर लिया था। अब पत्र भी आया, और वह भी प्रणय-पत्र के साथ-साथ प्रशंसा-पत्र। उनकी विजय का इससे बड़ा और कौन-सा प्रमाण होता ! कहाँ उन्हें ही उसके पास प्रणय-भिक्षा के लिए जाना था, कहाँ वही उनके प्रेम के लिए उनकी जादू-भरी निगाह के लिए पागल है। इस पर भी उनका मन उन्हें सुन्दर नहीं मानता, यह उनके लिए सहन कर जानेवाली बात थी !

एक कांस्टेबिल को टैक्सी ले आने के लिए भेज दिया था। बड़ी देर से खड़ी हुई टैक्सी हॉर्न दे रही थी, पर वह अपने बिगड़े हुए मन से लड़ रहे थे।

कांस्टेबिल ने आकर कहा, "दारोगाजी, बड़ी देर से टैक्सी खड़ी है।"

तब आपने छड़ी उठायी और थाने से बाहर हो गये। सड़क पर टैक्सी खड़ी थी, बैठ गये। कहा, "बहूबाजार।"

ड्राइवर बहूबाजार चल दिया। जकरिया-स्ट्रीट के बराबर टैक्सी पहुँची, तब आपको याद आया कि टोपी भूल आये हैं। कहा, "अरे ड्राइवर, भाई, जरा फिर थाने चलो।"

गाड़ी फिर थाने आयी। आप अपने कमरे से टोपी लेकर फिर टैक्सी पर पहुँचे। टैक्सी पुनः बहूबाजार चली।

तीन नम्बर के आलीशान मकान के नीचे टैक्सी खडी हो गयी। पुरस्कृत जमादार ने लौटकर अपने पुरस्कार का हाल कनक से कह दिया था। कनक ने उसे ही द्वार पर दारोगा साहब के स्वागत के लिए रक्खा था, और समझा दिया था

कि बड़े अदब से, दो-मंजिलेवाले कमरे में, जिसमें मैं पढ़ती थी, बैठाना, और तब मुझे खबर देना।

जमादार ने सलाम कर थानेदार साहब को उसी कमरे में ले जाकर एक कोच पर बैठाया, और फिर ऊपर कनक को खबर देने के लिए गया।

कमरे में, शीशेदार आलमारियों में, कनक की किताबें रखी थीं। उनकी जिल्दों पर सुनहरे अक्षरों से किताबों के नाम लिखे हुए थे। दारोगाजी विद्या की तौल में कनक को अपने से छोटा एवं अमान्य समझ रहे थे, परन्तु उन किताबों की तरफ देखकर उसके प्रति उनके दिल में कुछ इज्जत पैदा हो गयी। उसकी विद्या की मन-ही-मन बैठे हुए वह थाह ले रहे थे।

कनक ऊपर से उतरी। साधारणतया जैसी उसकी सज्जा मकान में रहती थी, वैसी ही—सभ्य तरीके से एक जरी की किनारीदार देसी साड़ी, मोजे और ऊँची एड़ी के जूते पहने हुए।

कनक को आते देख थानेदार साहब खड़े हो गये। कनक ने हँसकर कहा, "गुड मार्निंग !"

थानेदार कुछ झेंप गये। डरे कि कहीं बातचीत का सिलसिला अँगरेजी में इसने चलाया, तो नाक कट जायेगी। इस व्याधि से बचने के लिए उन्होंने स्वयं ही हिन्दी में बातचीत छेड़ दी, "आपका नाटक,कल देखा, मैं सच कहता हूँ, ईश्वर जाने, ऐसा नाटक जिन्दगी-भर मैंने नहीं देखा।"

"आपको पसन्द आया, मेरे भाग्य ! मा तो उसमें तरह-तरह की त्रुटियाँ निकालती हैं। कहती हैं, अभी बहुत कुछ सीखना है—तारीफवाली अभी कोई बात नहीं हुई।"

कनक ने बातचीत का रुख बदला। सोचा, इस तरह व्यर्थ ही समय नष्ट करना होगा। बोली, "आप हम लोगों के यहाँ जलपान करने में शायद संकोच करें ?"

मोटी हँसी हँसकर दारोगा ने कहा, "संकोच ? संकोच का तो यहाँ नाम नहीं, और फिर तु···आ···आपके यहाँ !"

कनक ने दारोगाजी का आन्तरिक भाव समझ लिया था। नौकर को आवाज दी। नौकर आया। उसने खाना लाने के लिए कहकर आलमारी से खुद उठकर एक रेड-लेबल और दो बोतलें सोडे की निकालीं।

शीशे के एक ग्लास में एक बड़ा पेग ढालते हुए कनक ने कहा, "आप मुझे 'तुम' ही कहें। कितना मधुर शब्द है—तुम ! 'तुम' मिलानेवाला है, 'आप' शिष्टता की तलवार से दो जुड़े हुओं को काटकर जुदा कर देनेवाला।"

दारोगाजी बाग-बाग हो गये। बादल-से काले मुँह की हँसी में सफेद दाँतों की कतार बिजली की तरह चमक उठी। कनक ने बड़े जोर से सिर गड़ाकर हँसी रोकी।

थानेदार साहब की तरफ अपने जीवन का पहला ही कटाक्ष कर कनक ने देखा, तीर अचूक बैठा है, पर उसके कलेजे में बिच्छू डंक मार रहे थे।

कनक ने ग्लास में कुछ सोडा डालकर थानेदार साहब को दिया। वह बिना

हाँ-न किये ही लेकर पी गये।

कनक ने दूसरा पेग ढाला, उसे भी पी गये। तीसरा ढाला, उसे भी पी लिया।

तब तक नौकर खाना लेकर आ गया। कनक ने सहूलियत से मेज पर रखवा दिया।

थानेदार साहब ने कहा, "अब मैं तुम्हें पिलाऊँ?"

कनक ने भौंहें चढ़ा लीं, "आज शाम को नवाब साहब मुर्शिदाबाद के यहाँ मेरा मुजरा है, माफ कीजिएगा, किसी दूसरे दिन आइएगा, तब पिऊँगी। पर मैं शराब नहीं पीती, 'पोर्ट वाईन' पीती हूँ। आप मेरे लिए एक लेते आइएगा।"

थानेदार साहब ने कहा, "अच्छा, खाना तो साथ खाओ।"

कनक ने एक टुकड़ा उठाकर खाया। थानेदार भी खाने लगे। कनक ने कहा, "मैं नाश्ता कर चुकी हूँ, माफ फरमाइएगा, बस।"

उसने वहीं, नीचे रक्खे हुए, ताँबे के एक बड़े-से बर्तन में हाथ-मुँह धोकर डिब्बे से निकालकर पान खाया। दारोगाजी खाते रहे। कनक ने डरते हुए चौथा पेग तैयार कर सामने रख दिया। खाते-खाते थानेदार साहब उसे भी पी गये। कनक उनकी आँखों में चढ़ता सरूर देख रही थी।

धीरे-धीरे थानेदार साहब का प्रेम प्रबल रूप धारण करने लगा। शराब की जैसी वृष्टि हुई थी, उनकी नदी में वैसी ही बाढ़ भी आ गयी। कनक ने पाँचवाँ पेग तैयार किया। थानेदार साहब भी प्रेम की इस परीक्षा में फेल हो जानेवाले आदमी न थे। इनकार नहीं किया। खाना खा चुकने के बाद नौकर ने उनके हाथ धुला दिये।

धीरे-धीरे उनके शब्दों में प्रेम का तूफान उठ चला। कनक डर रही थी कि वह इतना सब सहन कर सकेगी या नहीं। वह उन्हें माता की बैठक में ले गयी। सर्वेश्वरी दूसरे कमरे में चली गयी थी।

गद्दे पर पड़ते ही थानेदार साहब लम्बे हो गये। कनक ने हारमोनियम उठाया। बजाते हुए पूछा, "वह जो कल दुष्यन्त बना था, उसे गिरफ्तार क्यों किया आपने, कुछ समझ में नहीं आया।"

"उससे हैमिल्टन साहब नाराज हैं। उस पर बदमाशी का चार्ज लगाया गया है।" करवट बदलकर दारोगाजी ने कहा।

"ये हैमिल्टन साहब कौन हैं?"

"अपने सुपरिंटेण्डेण्ट पुलिस हैं।"

"कहाँ रहते हैं?" कनक ने एक गत का एक चरण बजाकर पूछा।

'रौडन-स्ट्रीट, नं. 5 उन्हीं का बँगला है।"

"क्या राजकुमार को सजा हो गयी?"

"नहीं, कल पेशी है। पुलिस की शहादत गुजर जाने पर सजा हो जायेगी।"

"मैं तो बहुत डरी, जब आपको वहाँ देखा।"

आँखें मूँदे हुए दारोगाजी मूछों पर ताव देने लगे।

कनक ने कहा, "पर मैं कहूँगी, आप-जैसा खूबसूरत जवान बना-चुना मुझे

दूसरा नहीं नजर आया।"

दारोगाजी उठकर बैठ गये। इसी सिलसिले में प्रासंगिक-अप्रासंगिक, सुनने-लायक, न सुनने-लायक, बहुत-सी बातें कह गये। धीरे-धीरे लड़कर आये हुए भैंसे की आँखों की तरह आँखें खूनी हो चलीं। भले-बुरे की लगाम मन के हाथ से छूट गयी। इस अनर्गल शब्द-प्रवाह को बेहोश होने की घड़ी तक रोक रखने के अभि-प्राय से कनक गाने लगी।

गाना सुनते-ही-सुनते मन विस्मृति के मार्ग से अन्धकार में बेहोश हो गया।

कनक ने गाना बन्द कर दिया। उठकर दारोगाजी के पॉकेट की तलाशी ली। कुछ नोट थे, और उसकी चिट्ठी। नोटों को उसने रहने दिया, चिट्ठी निकाल ली।

कमरे में तमाम दरवाजे बन्द कर ताली लगा दी।

सात

कनक घबरा उठी। क्या करे, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। राजकुमार के बारे में जितना ही सोचती, चिन्ताओं की छोटी-बड़ी अनेक तरंगों, आवर्तो से मन मथ जाता, पर उन चिन्ताओं के भीतर से उपाय की कोई मणि नहीं मिल रही थी, जिसकी प्रभा उसके मार्ग को प्रकाशित करती। राजकुमार के प्रति उसके प्रेम का यह प्रखर प्रवाह, बँधी हुई जल-राशि से छूटकर अनुकूल पथ पर बह चलने की तरह, स्वाभाविक और सार्थक था। पहले ही दिन उसने राजकुमार के शौर्य का जैसा दृश्य देखा था, उसके सबसे एकान्त स्थान पर, जहाँ तमाम जीवन में मुश्किल से किसी का प्रवेश होता है, पत्थर के अक्षरों की तरह उसका पौरुष चित्रित हो गया था। सबसे बड़ी बात जो रह-रहकर उसे याद आती थी, वह राजकुमार की उसके प्रति श्रद्धा थी।

कनक ने ऐसा चित्र अब तक नहीं देखा था, इसलिए उस पर राजकुमार का स्थायी प्रभाव पड़ गया। माता की समस्त मौखिक शिक्षा इस प्रत्यक्ष उदाहरण के सामने पराजित हो गयी। और, वह जिस तरह की शिक्षा के भीतर आ रही थी, परिचय के पहले ही प्रभात में किसी मनोहर दृश्य पर उसकी दृष्टि का बँध जाना, अटक जाना उसके उस जीवन की स्वच्छ, अबाध प्रगति का उचित परिणाम ही हुआ। उसकी माता शिक्षित तथा समझदार थी, इसलिए उसने कन्या के सबसे प्रिय जीवनोन्मेष को बाहरी आवरण द्वारा ढक देना उसकी बाढ़ के साथ ही जीवन की प्रगति को भी रोक देना समझा था।

सोचते-सोचते कनक को याद आया, उसने साहब की जेब से एक चिट्ठी निकाली थी, फिर उसे अपनी फाइल में रख दिया था। वह तुरन्त उठकर फाइल की तलाशी लेने लगी। चिट्ठी मिल गयी।

साहब की जेब से वह राजकुमार की चिट्ठी निकाल लेना चाहती थी, पर हाथ एक दूसरी चिट्ठी लगी। उस समय घबराहट में, वहाँ उसने पढ़कर नहीं देखा। घर जाकर खोला, तो काम की बातें न मिलीं। उसने चिट्ठी को फाइल में नत्थी कर दिया। उसने देखा था, युवक ने पेंसिल से पत्र लिखा है, पर यह स्याही से लिखा गया था। इसकी बातें भी उस सिलसिले से नहीं मिलती थीं। इस तरह ऊपरी ृष्टि से देखकर ही, उसने चिट्ठी रख दी। आज निकालकर फिर पढ़ने लगी। एक बार, दो बार, तीन बार, पढ़ा। बड़ी प्रसन्न हुई। यह वही हैमिल्टन साहब थे। वह हों, न हों, पर यह पत्र हैमिल्टन साहब ही के नाम लिखा गया था—उसके एक दूसरे अँगरेज मित्र मिस्टर चर्चिल द्वारा। मजमून था, रिश्वत और अन्याय का। कनक की आँखें चमक उठीं।

इस कार्य में सहायता की बात सोचते ही उसे मिसेज कैथरिन की याद आयी। अब कनक पढ़ती नहीं, इसीलिए मिसेज कैथरिन का आना बन्द है। कभी-कभी आकर मिल जातीं, मकान में पढ़ने की किताबें पसन्द कर जाया करती हैं। वह अब भी कनक को वैसे ही प्यार करती हैं। कभी-कभी पाश्चात्य कला—संगीत और नृत्य—की शिक्षा के लिए साथ योरप चलने की चर्चा भी करतीं। सर्वेश्वरी की भी उसे योरप भेजने की इच्छा थी, पर पहले वह अच्छी तरह से उसे अपनी शिक्षा दे देना चाहती थी।

कनक ने ड्राइवर से मोटर लाने के लिए कहा, और कपड़े बदलकर चलने को तैयार हो गयी।

मोटर में बैठकर ड्राइवर से पार्क-स्ट्रीट चलने के लिए कहा।

कितनी व्यग्रता! जितने भी दृश्य आँखों पर पड़ते हैं, जैसे बिना प्राणों के हों। दृष्टि कहीं भी नहीं ठहरती। पलकों पर एक ही स्वप्न संसार की अपार कल्पनाओं से मधुर हो रहा है। व्यग्रता ही इस समय यथार्थ जीवन है, और सिद्धि के लिए वेदना के भीतर से काम्य-साधना अन्तर्जगत् के कुल अन्धकार को दूर करने के लिए उसका एक ही प्रदीप पर्याप्त है। उसके हृदय की लता को सौन्दर्य की सुगन्ध से पूरित रखने के लिए उसका एक ही फूल बस है। तमाम भावनाओं के तार अलग-अलग स्वरों में झंकार करते हैं। उसकी रागिनी से एक ही तार मिला हुआ है। असंख्य ताराओं की आवश्यकता नहीं, उसके झरोखे से एक ही चन्द्र की किरण उसे प्रिय है। तमाम संसार जैसे अनेक कलरवों के बुदबुद-गीतों से समुद्वेलित, क्षुब्ध और पैरों को स्खलित कर बहा ले जानेवाला विपत्ति-संकुल है। एक ही बए को हृदय से लगा, तैरती हुई, वह पार जा सकेगी। सृष्टि के सब रहस्य इस महाप्रलय में डूब गये हैं। उसका एक ही रहस्य, तपस्या से प्राप्त अमर वर की तरह, उसके साथ सम्बद्ध है। शंकित दृष्टि से वह इस प्रलय को देख रही है।

पार्क-स्ट्रीट आ गया। कैथरिन के मकान के सामने गाड़ी खड़ी करवा कनक उतर पड़ी। नौकर से खबर भिजवायी। कैथरिन बँगले से बाहर निकली, और बडे स्नेह से कनक को भीतर ले गयी।

कैथरिन से कनक की बातचीत अँगरेजी में ही होती थी। आने का कारण पूछने पर कनक ने साधारण कुल किस्सा बयान कर दिया। कैथरिन सुनकर पहले

तो कुछ चिन्तित-सी हुई, फिर कुछ सोचकर मुस्किरायी। कनक की सरल बातों से उसे बड़ा आनन्द हुआ। "तुम्हारा विवाह चर्च में नहीं, थिएटर में हुआ! तुमने एक नया काम किया।" उसने कनक को इसके लिए बधाई दी।

"कल पेशी है।" कनक उत्तर-प्राप्ति की दृष्टि से देख रही थी।

"मेरे विचार से मिस्टर हैमिल्टन के पास इस समय जाना ठीक नहीं। वह ऐसी हालत में अधिक जोर-दबाव नहीं डाल सकते। और, इस पत्र से उन पर एक दूसरा मुकदमा चल सकता है, पर यह सब मुफ्त ही दिक्कत बढ़ाना है। अगर आसानी से अदालत का काम हो जाय, तो इतनी परेशानी से क्या फायदा?"

"आसानी से अदालत का काम कैसे हो?"

"तुम घर जाओ, मैं हैमिल्टन को लेकर आती हूँ। मेरी-उनकी अच्छी जान-पहचान है। ख़ूब सज-धजकर रहना, और अँगरेजी तरीके से नहीं, हिन्दोस्तानी तरीके से।" कहकर कैथरिन हँसने लगी।

आचार्या से मुक्ति का अमोघ मन्त्र मिलते ही कनक ने भी परी की तरह अपने सुख के काल्पनिक पंख फैला दिये।

कैथरिन गैरेज में अपनी गाड़ी लेने चली गयी, कनक रास्ते पर टहलती रही। कैथरिन हँसती हुई, "जल्दी जाओ" कहकर रोडन-स्ट्रीट की तरफ चली, और कनक बहूबाजार की तरफ।

घर आकर कनक मा से मिली। सर्वेश्वरी दारोगा की गिरफ्तारी से कुछ व्याकुल थी। कनक की बातों से उसकी शंका दूर हो गयी। कनक ने माता को अच्छी तरह, थोड़े शब्दों में, समझा दिया। माता से उसने कुल जेवर पहना देने के लिए कहा। सर्वेश्वरी हँसने लगी। नौकर को बुलाया। जेवर का बॉक्स उठवा तिमंजिले पर कनक के कमरे की ओर चली।

सभी रंगों की रेशमी साड़ियाँ थीं। कनक के स्वर्ण-रंग को दोपहर की आभा में कौन-सा रंग ज्यादा खिला सकता है, सर्वेश्वरी इसकी जाँच कर रही थी। उसकी देह से सटा-सटाकर उसकी और साड़ियों की चमक देखती रही। उसे हरे रंग की साड़ी पसन्द आयी। पूछा, "बता सकती हो, उस समय यह रंग क्यों अच्छा होगा?"

"उहूँ!" कनक प्रश्न और कौतुक की दृष्टि से देखने लगी।

"तेज धूप में हरे रंग पर नजर ज्यादा बैठती है, उसे आराम मिलता है।"

उस बेशकीमती कामदार साड़ी को रखकर कनक नहाने चली गयी। माता एक-एक कर समस्त बहुमूल्य हीरे, पन्ने, पुखराज के जड़ाऊ जेवर निकाल रही थी। कनक नहाकर धूप में, चारदीवार के सहारे, पीठ के बल खड़ी, बाल सुखा रही थी। मन राजकुमार के साथ अभिनय की सुखद कल्पना में लीन था। वह अभिनय को प्रत्यक्ष की तरह देख रही थी। उन्होंने कहा है, सोचती, 'मैं तुम्हें कभी नहीं भूलूँगा।' अमृत-रस से सर्वांग तर हो रहा था। बाल सूख गये, पर वह खड़ी ही रही।

तभी मा ने पुकारा, ऊँची आवाज से। कल्पना की तन्द्रा टूट गयी। वह धीरे-धीरे माता के पास चली।

सर्वेश्वरी कन्या को सजाने लगी। पैर, कमर, कलाई, बाजू, वक्ष, गला और मस्तक अलंकारों से चमक उठे। हरी साड़ी के ऊपर तथा भीतर से रत्नों के प्रकाश की छटा, छुरियों-सी निकलती हुई किरणों के बीच उसका सुन्दर, सुडौल चित्र-सा खिंचा हुआ मुख, एक नजर आपाद-मस्तक देखकर माता ने तृप्ति की साँस ली।

कनक एक बड़े-से आईने के सामने जाकर खड़ी हो गयी। देखा, राजकुमार की याद आयी, कल्पना में दोनों की आत्माएँ मिल गयीं; देखा, आईने में वह हँस रही थी।

नीचे से आकर नौकर ने खबर दी, मेम साहब के साथ एक साहब आये हुए हैं।

कनक ने उन्हें ऊपर ले आने के लिए कहा।

कैथरिन ने हैमिल्टन साहब से कहा था कि उन्हें ऐसी एक सुन्दरी भारतीय पढ़ी-लिखी युवती दिखाएँगी, जैसी उन्होंने शायद ही कहीं देखी हो। वह गाती भी लाजवाब है, और अँगरेजों की तरह उसी लहजे में अँगरेजी भी बोलती है।

हैमिल्टन साहब, कुछ दिल से और कुछ पुलिस में रहने के कारण, सौन्दर्योपासक बन गये थे। इतनी खूबसूरत, पढ़ी-लिखी भारतीय युवती से, विना परिश्रम के ही, कैथरिन उन्हें मिला सकती है, ऐसा शुभ अवसर छोड़ देना उन्होंने किसी सुन्दरी के स्वयंवर में बुलाये जाने पर भी लौट आना समझा। कैथरिन ने यह भी कहा था कि आज अवकाश है, दूसरे दिन इतनी सुगमता से भेंट भी नहीं हो सकती। साहब तत्काल कैथरिन के साथ चल दिये थे। रास्ते में कैथरिन ने समझा दिया था कि किसी अशिष्ट व्यवहार से वह अँगरेज-जाति को कलंकित नहीं करेंगे, और यदि उसे अपने प्रेम-जाल में फँसा सकें, तो यह जाति के लिए गौरव की बात होगी। साहब दिल-ही-दिल प्रेम-परीक्षा में कैसे उत्तीर्ण होंगे, इसका प्रश्न-पत्र हल कर रहे थे, तब तक ऊपर से कनक ने बुला भेजा।

कैथरिन आगे-आगे, साहब पीछे-पीछे चले। साहब ने चलते समय चमड़े के कलाईवन्द में बँधी हुई घड़ी देखी। बारह बज रहे थे।

नौकर दोनों को तिमंजिले पर ले गया। मकान देखकर साहब के दिल में अदेख सुन्दरी के प्रति इज्जत पैदा हुई थी। कमरे की सजावट देखकर साहब आश्चर्य में पड़ गये। सुन्दरी को देखकर तो साहब के होश ही उड़ गये! दिल में कुछ घबराहट हुई, पर कैथरिन कनक से बातचीत करने लगी, तो कुछ सँभल गये। सामने दो कुर्सियाँ पड़ी थीं। कैथरिन और साहब बैठ गये। यों अन्य दिन उठकर कनक कैथरिन से मिलती, पर आज वह बैठी ही रही। कैथरिन इसका कारण समझ गयी। साहब ने इसे हिन्दोस्तानी कुमारियों का ढंग समझा। कनक ने सूरत देखते ही साहब को पहचान लिया, पर साहब उसे नहीं पहचान सके। तब से इस सूरत में साज के कारण बड़ा फर्क था।

साहब अनिमेष आँखों से उस रूप की सुधा को पीते रहे। मन-ही-मन उन्होंने उसकी बड़ी प्रशंसा की। उसके लिए, यदि वह कहे तो, साहब सर्वस्व देने को तैयार थे। कैथरिन ने साहब को समझा दिया था कि उसके कई अँगरेज प्रेमी हैं, पर अभी उसका किसी से प्यार नहीं हुआ, यदि वह उसे प्राप्त कर सकें, तो राजकन्या के साथ ही राज्य भी उन्हें मिल जायेगा; कारण उसकी माँ की जाय-

दाद पर उसी का अधिकार है।

कैथरिन ने साहब का परिचय देते हुए कहा, "मिस कनक, इनसे मिलो। यह हैं मिस्टर हैमिल्टन, पुलिस-सुपरिन्टेण्डेण्ट, 24 परगना। तुमसे मिलने के लिए आये हैं। इन्हें अपना गाना सुनाओ।"

कनक ने उठकर हाथ मिलाया। साहब उसकी सभ्यता से बहुत प्रसन्न हुए।

कनक ने कहा, "हम लोग पृथक्-पृथक् आसन से वार्तालाप करेंगे, इससे आलाप का सुख नहीं मिल सकता। साहब अगर पतलून उतार डालें, मैं इन्हें धोती दे सकती हूँ, तो संगसुख की प्राप्ति पूरी मात्रा में हो। कुर्सी पर बैठकर पियानो, टेबल-हारमोनियम बजाये जा सकते हैं, पर आप लोग तो यहाँ हिन्दोस्तानी गीत ही सुनने के लिए आये हैं जो सितार और सुरबहार से अच्छी तरह अदा होंगे, और उनका बजाना बराबर जमीन पर बैठकर ही हो सकता है।"

कनक ने अँगरेजी में कहा। कैथरिन ने साहब की तरफ देखा।

नायिका के प्रस्ताव के अनुसार ही उसे खुश करना चाहिए, साहब ने अपने साहबी ढर्रे से समझा, और उन्हें वहाँ दूसरे प्रेमियों से बढ़कर अपने प्रेम की परीक्षा भी देनी थी। उधर कैथरिन की मौन चितवन का मतलब भी उन्होंने यही समझा। साहब तैयार हो गये। कनक ने एक धुली 48 इंच की बढ़िया धोती मँगा दी। कैथरिन ने साहब को धोती पहनना बतला दिया। दूसरे कमरे से साहब धोती पहन आये, और कनक के बराबर गद्दी पर बैठ गये; एक तकिये का सहारा कर लिया।

कनक ने सुरबहार मँगवाया। तार स्वर से मिलाकर पहले एक गत बजायी। स्वर की मधुरता के साथ-साथ साहब के मन में उस परी को प्राप्त करने की प्रतिज्ञा भी दृढ़ होती गयी।

कैथरिन ने बड़े स्नेह से पूछा, "यह किससे सीखा? अपनी मा से?"

"जी हाँ।" कनक ने सिर झुका लिया।

"अब एक गाना सुनाओ, हिन्दोस्तानी गाना; फिर हम चलेंगे, हमें देर हो रही है।"

कनक ने एक बार स्वरों पर हाथ फेरा। और फिर गाने लगी—

गाना (सारंग)

याद रखना इतनी ही बात।
नहीं चाहते, मत चाहो तुम,
मेरे अर्घ्य, सुमन-दल-नाथ!

मेरे वन में भ्रमण करोगे जब तुम,
अपना पथ-श्रम आप हरोगे जब तुम,
ढक लूँगी मैं अपने दृग-मुख,
छिपा रहूँगी गात—
याद रखना इतनी ही बात।

सरिता के उस नीरव-निर्जन तट पर
आओगे जब मन्द चरण तुम चलकर—
मेरे शून्य घाट के प्रति करुणाकर,

हेरोगे नित प्रात—
याद रखना इतनी ही बात।
मेरे पथ की हरित लताएँ, तृण-दल
मेरे श्रम-सिंचित, देखोगे अचपल,
पलक-हीन नयनों से तुमको प्रतिपल
हेरेंगे अज्ञात—
याद रखना इतनी ही बात।
मैं न रहूँगी जब, सूना होगा जग,
समझोगे तब यह मंगल-कलरव सब—
था मेरे ही स्वर से सुन्दर जगमग;
चला गया सब साथ—
याद रखना इतनी ही बात।

साहब एकटक मन की आँखों से देखते और हृदय के कानों से सुनते रहे। उस स्वर की सरिता अनेक तरंग-भंगों से बहती हुई जिस समुद्र से मिली थी, वहाँ तक सभी यात्राएँ पर्यवसित हो जाती थीं।

कैथरिन ने पूछा, "कुछ आपकी समझ में आया?"

साहब ने अनजान की तरह सिर हिलाया। कहा, "इनका स्वरों से खेलना मुझे बहुत पसन्द आया, पर गीत का अर्थ मैं नहीं समझ सका।"

कैथरिन ने थोड़े शब्दों में अर्थ समझा दिया।

"हिन्दोस्तानी भाषा में ऐसे भी गीत हैं?" साहब तअज्जुब करने लगे।

कनक को साहब देख रहा था। उसकी मुद्राएँ, भंगिमाएँ गाते समय इस तरह अपने मनोभावों को व्यंजित कर रही थीं, जैसे वह स्वर के स्रोत में बहती हुई प्रकाश के द्वार पर गयी हो, और अपने प्रियतम से कुछ कह रही हो, जैसे अपने प्रियतम को अपना सर्वस्व पुरस्कार दे रही हो।

संगीत के लिए कैथरिन ने कनक को धन्यवाद दिया, और साहब को अपने चलने का संवाद। साथ ही उन्हें समझा दिया कि उनकी इच्छा हो, तो कुछ वक्त वहाँ ठहर सकते हैं। कनक ने सुरबहार एक बगल रख दिया।

एकान्त की प्रिय कल्पना से, अभीप्सित की प्राप्ति के लोभ से, साहब ने कहा, "अच्छा आप चलें, मैं कुछ देर बाद आ जाऊँगा।"

कैथरिन चली गयी। साहब को एकान्त मिला। कनक बातचीत करने लगी।

साहब कनक पर कुछ अपना भी प्रभाव जतलाना चाहते थे, और दैवात् कनक ने प्रसंग भी वैसा ही छेड़ दिया, "देखिए, हम हिन्दोस्तानी हैं, प्रेम की बातें हिन्दी में कीजिए। आप 24 परगने के पुलिस-सुपरिन्टेण्डेण्ट हैं?"

"हाँ।" ठोड़ी ऊँची कर साहब ने सगर्व कहा, और जहाँ तक तनते बना, तन गये।

"आपकी शादी तो हो गयी होगी?"

साहब की शादी हो गयी थी, पर मेम साहब को कुछ दिन बाद आप पसन्द

नहीं आये, इसलिए इनके भारत आने से पहले ही वह इन्हें तलाक दे चुकी थी—एक साधारण से कारण को बहुत बढ़ाकर। पर यह साहब साफ इनकार कर गये, और इसे ही उन्होंने प्रेम बढ़ाने का उपाय समझा।

"अच्छा, अब तक आप अविवाहित हैं ? आपसे किसी का प्रेम नहीं हुआ ?"

"हमको अभी टक कोई पसण्ड नईं आया। हम टुमको पसण्ड करटा।" साहब कुछ नजदीक खिसक आये।

कनक डरी। उपाय एक ही उसने आजमाया था,, और उसी का उपयोग वह साहब के लिए भी कर बैठी। बोली, "शराब पीजिएगा ? हमारे यहाँ शराब पिलाने की चाल है।"

साहब पीछे कदम धरनेवाले न थे। उन्होंने स्वीकार कर लिया। कनक ने ईश्वर को धन्यवाद दिया।

नौकर से शराब और सोडा मँगवाया।

"तो अब तक किसी से प्यार नहीं किया ? सच कहिएगा।"

"आम शच बोलटा, किशी को बी नईं।"

साहब को पेग तैयार कर एक ग्लास में दिया। साहब बड़े अदब से पी गये। दूसरा, तीसरा, चौथा···पाँचवें पर इनकार कर गये। अधिक शराब जल्दी-जल्दी पी जाने से नशा तेज होता है, यह कनक जानती थी, इसीलिए वह फुर्ती कर रही थी। साहब को भी अपनी शराब-पाचन-शक्ति का परिचय देना था, साथ ही अपने अकृत्रिम प्रेम की परीक्षा।

कनक ने सोचा, भूत-सिद्धि की तरह हमेशा भूत को एक काम देते रहना चाहिए। नहीं तो, कहा गया है, वह अपने साधक पर ही सवारी कस बठता है।

कनक ने तुरन्त फरमाइश की, "कुछ गाओ और नाचो। मैं तुम्हारा विदेशी नाच देखना चाहती हूँ।"

"टब टुम बी आओ, हियाँ डांसिंग-स्टेज कहाँ ?"

"यहीं नाचो। पर मुझे नाचना नहीं आता, मैं तो सिर्फ गाती हूँ।"

"अच्छा, टुम बोलटा, टो हम नाच सकटा।"

साहब अपनी भोंपू-आवाज में गाने और नाचने लगे। कनक देख-देखकर हँस रही थी। कभी-कभी साहब का उत्साह बढ़ाती, "बहुत अच्छा, बहुत सुन्दर।"

साहब की नजर पियानो पर पड़ी। कहा, "डेक्खो, आबी हम पियानो बजाटा, फिर टुम कहेगा, टो हम नाचेगा।"

"अच्छा, बजाओ।"

साहब पियानो बजाने लगे। कनक ने तब तक अँगरेजी गीतों का अभ्यास नहीं किया था, पर कविता के यति-भंग की तरह सब स्वरों का सम्मिलित विद्रोह उसे असह्य हो गया। उसने कहा, "साहब, हमें तुम्हारा नाचना गाने से ज्यादा पसन्द है।"

साहब अब तक औचित्य की रेखा पार कर चुके थे। आँखें लाल हो रही थीं। प्रेमिका को नाच पसन्द है, सुनकर बहुत ही खुश हुए, और शीघ्र ही उसे प्रसन्न कर वर प्राप्त कर लेने की लालसा से नाचने लगे।

नौकर ने बाहर से संकेत किया। कनक उठ गयी। नौकर को इशारे से आदेश दे लौट आयी।

धड़-धड़-धड़ कई आदमी जीने पर चढ़ रहे थे। आगन्तुक बिलकुल कमरे के सामने आ गये। हैमिल्टन को नाचते हुए देखा। हैमिल्टन ने भी उन्हें देखा, पर उनकी परवा न कर नाचते ही रहे।

"ओ ! टुम डूसरे हो रॉबिंसन।" हैमिल्टन ने पुकारकर कहा।

"नहीं, मैं चौथा हूँ।" रॉबिंसन ने बढ़ते हुए जवाब दिया।

तितलियों-सी मूछें, लम्बे-तगड़े रॉबिंसन साहब मैजिस्ट्रेट थे। कैथरिन के पीछे-पीछे कमरे के भीतर गये। कई और आदमी भी साथ थे। कुर्सियाँ खाली थीं। बैठ गये। कैथरिन ने कनक से रॉबिंसन साहब से हाथ मिलाने के लिए कहा, "यह मजिस्ट्रेट हैं तुम अपना कुल किस्सा इनसे बयान कर दो।"

हैमिल्टन को धोती पहने नाचता हुआ देख रॉबिंसन बारूद हो गये थे। कनक ने हैमिल्टन की जेब से निकाली हुई चिट्ठी साहब को दे दी। पढ़ते ही आग में पेट्रोल पड़ गया।

कनक कहने लगी, "एक दिन मैं इडेन-गार्डेन में, तालाब के किनारेवाली बेंच पर अकेली बैठी थी। हैमिल्टन ने मुझे पकड़ लिया, और मुझे जैसे अशिष्ट शब्द कहे, मैं कह नहीं सकती। उसी समय एक युवक वहाँ पहुँच गया, उसने मुझे बचाया। हैमिल्टन उससे बिगड़ गया, और उसे मारने के लिए तैयार हो गया। दोनों में कुछ देर हाथापाई होती रही। उस युवक ने हैमिल्टन को गिरा दिया। और कुछ रद्दे जमाये, जिससे हैमिल्टन बेहोश हो गया। तब उस युवक ने अपने रूमाल से हैमिल्टन का मुँह धो दिया, और सिर पर उसी की पट्टी लपेट दी। फिर उसने एक चिट्ठी लिखी, और उसकी जेब में डाल दी। मुझसे जाने के लिए कहा। मैंने उससे पता पूछा, पर उसने नहीं बताया। वह हाईकोर्ट की राह चला गया। अपने बचानेवाले का पता मालूम कर लेना मैंने अपना फर्ज समझा, इसलिए वहीं फिर लौट गयी। चिट्ठी निकालने के लिए जेब में हाथ डाला, पर भ्रम से युवक की चिट्ठी की जगह यह चिट्ठी मिली। एकाएक कोहनूर-स्टेज पर मैं शकुन्तला का अभिनय करने गयी। देखा, वही युवक दुष्यन्त बना था। थोड़ी ही देर में दारोगा सुन्दरसिंह उसे गिरफ्तार करने गया, पर दर्शक बिगड़ गये थे, इसलिए अभिनय समाप्त हो जाने पर गिरफ्तार किया। राजकुमार का कुसूर कुछ भी नहीं; अगर है, तो सिर्फ यही कि उसने मुझे बचाया था।"

अक्षर-अक्षर साहब पर चोट कर रहे थे। कनक ने कहा, "और देखिए, यह हैमिल्टन के चरित्र का दूसरा पत्र।"

कनक ने दारोगा की जेब से निकाला हुआ पत्र भी साहब को दिखाया। इसमें हैमिल्टन के मित्र सुपरिन्टेण्डेण्ट मिस्टर मूर ने दारोगा को बिला वजह राजकुमार को गिरफ्तार कर, बदमाशी के सबूत दिलाकर सजा करा देने के लिए लिखा था। उसमें यह भी लिखा था कि इस काम से तुम्हारे ऊपर हम और हैमिल्टन साहब बहुत खुश होंगे।

मैजिस्ट्रेट रॉबिन्सन ने उस पत्र को भी ले लिया। पढ़कर दोनों की तिथियाँ

मिलायीं। सोचा। कनक की बातें बिल्कुल सच जान पड़ीं। रॉबिन्सन कनक से बहुत खुश हुए।

कनक ने भड़ककर कहा, "वह दारोगा साहब भी तो यहीं तशरीफ रखते हैं। आपको तकलीफ होगी, चलकर उनके भी उत्तम चरित्र का प्रमाण ले सकते हैं।"

रॉबिन्सन तैयार हो गये। हैमिल्टन को साथ चलने के लिए कहा। कनक आगे-आगे नीचे उतरने लगी।

सुन्दरसिंह के कमरे की ताली नौकर को दे दी, और कुछ दरवाजे खोल देने के लिए कहा। सब दरवाजे खोल दिये गये। भीतर सब लोग एक साथ घुस गये। दारोगा साहब करवट बदल रहे थे। रॉबिन्सन ने एक छड़ी लेकर खोद दिया। तब तक नशे में कुछ उतार आ गया था, पर फिर भी वह सँभलने लायक न थे। रॉबिन्सन ने डाँटकर पुकारा। साहबी आवाज से वह घबराकर उठ बैठे। कई आदमियों और अँगरेजों को सामने खड़ा देख चौंककर खड़े हो गये। पर सँभलने की ताब न थी, कटे हुए पेड़ की तरह वहीं ढेर हो गये। होश दुरुस्त थे, पर शक्ति न थी। दारोगा साहब फूट-फूटकर रोने लगे।

"साहब खड़े हैं और आप लेटे रहिएगा?" कनक के नौकर खोद-खोदकर दारोगा साहब को उठाने लगे। एक ने बाँह पकड़कर उन्हें खड़ा कर दिया।

उन्हें विवश देख रॉबिन्सन दूसरे कमरे की तरफ चल दिये। कहा, "इशे पड़ा रहने डो, हम शब शमझ गया।"

यह कनक का अध्ययन-कक्ष था। सजी हुई पुस्तकों पर नजर गयी। रॉबिन्सन उन्हें खोलकर देखने के लिए उत्सुक हो उठे। नौकर ने आलमारियाँ खोल दीं। साहब ने कई पुस्तकें निकालीं, उलट-पलटकर देखते रहे। इज्जत की निगाह से कनक की ओर देखकर अँगरेजी में कहा, "अच्छा, मिस कनक, तुम क्या चाहती हो?"

"सिर्फ इन्साफ।" कनक ने मँजे स्वर से कहा।

साहब सोचते रहे। निगाह उठाकर पूछा, "क्या तुम इन लोगों पर मुकद्दमा चलाना चाहती हो?"

"नहीं।"

साहब कनक को देखते रहे। आँखों में तअज्जुब था, और सम्मान। पूछा, "फिर कैसा इन्साफ?"

"राजकुमार को बिला वजह तकलीफ दी जा रही है। वह छोड़ दिये जायें।" कनक की पलकें झुक गयीं।

साहब कैथरिन को देख हँसने लगे। फिर हिन्दी में बोले, "अम कल ही छोड़ डेगा। टुमशे अम बहुट खुश हुआ।"

कनक चुपचाप खड़ी रही।

"टुमारी पटलून क्या हुआ मिस्टर हैमिल्टन?" हैमिल्टन को घृणा से देखकर साहब ने पूछा।

अब तक हैमिल्टन को होश ही न था कि वह धोती पहने हुए हैं। नशा इस समय भी पूरी मात्रा में था। जब एकाएक यह मुकद्दमा पेश हो गया, तब उनके

दिल से प्रेम का मनोहर स्वप्न सूर्य के प्रकाश से कटते हुए अन्धकार की तरह दूर हो गया। एकाएक चोट खाकर, नशे में होते हुए भी, वह होश में आ गये थे। कोई उपाय न था, इसलिए मन-ही-मन पश्चात्ताप करते हुए यन्त्रवत् रॉबिन्सन के पीछे-पीछे चल रहे थे। मुकद्दमे के चक्कर से बचने के अनेक उपायों का आविष्कार करते हुए वह अपनी हालत को भूल ही गये थे। पतलून की जगह धोती और वह भी एक दूसरे अँगरेज के सामने ! उन्हें कनक पर बड़ा क्रोध आया। मन में बहुत ही क्षुब्ध हुए। अब तक वीर की तरह सजा के लिए तैयार थे, पर अब लज्जा से आँखें झुक गयीं।

एक नौकर ने पतलून लाकर दिया। बगल के एक दूसरे कमरे में साहब ने उसे पहन लिया।

कनक को धैर्य देकर रॉबिन्सन चलने लगे। चलते समय हैमिल्टन और दारोगा को शीघ्र निकाल देने के लिए एक नौकर से कहा। कनक ने कहा, "ये लोग शायद अकेले घर तक न जा सकेंगे। आप कहें, तो मैं ड्राइवर से कह दूँ, इन्हें छोड़ आवे।"

रॉबिन्सन ने सिर झुका लिया, मानो अपना अदब जाहिर कर रहे हों। फिर धीरे-धीरे नीचे उतरने लगे। कैथरिन से उन्होंने धीमे शब्दों में कुछ कहा, नीचे उसे अलग बुलाकर। फिर अपनी मोटर में बैठ गये।

कनक ने अपनी मोटर से हैमिल्टन और दारोगा को उनके स्थान पर पहुँचवा दिया।

आठ

अदालत लगी हुई थी। एक हिस्सा रेलिंग से घिरा था। बीच में बड़े तख्त पर मेज और कुर्सी रक्खी थी। मैजिस्ट्रेट मिस्टर रॉबिन्सन बैठे थे। एक ओर कटघरे के अन्दर बन्दी राजकुमार खड़ा हुआ, एक दृष्टि से बेंच पर बैठी हुई कनक को देख रहा था, और देख रहा था उन वकीलों, बैरिस्टरों और कर्मचारियों को, जो उसे देख-देखकर आपस में एक-दूसरे को खोद-खोदकर मुस्किरा रहे थे, जिनके चेहरे पर, झूठ, फरेब, जाल, दगाबाजी, कठहुज्जती, दम्भ, दास्य और तोताचश्मी -- सिनेमा के बदलते हुए दृश्यों की तरह—आ-जा रहे थे, और जिनके पर्दे में छिपे हुए वे सुख-वैभव और शान्ति की साँस ले रहे थे। वहाँ के अधिकांश लोगों की दृष्टि निस्तेज, सूरत बेईमान, और स्वर कर्कश था। राजकुमार ने देखा, एक तरफ पत्रों के संवाददाता भी बठे हुए थे, एक तरफ वकील-बैरिस्टर तथा दर्शक।

वहाँ कनक उसके लिए सबसे वढ़कर रहस्यमयी थी। बहुत कुछ मानसिक प्रयत्न करने पर भी उसके आने का कारण वह न समझ सका। स्टेज पर कनक

को देखकर उसके प्रति दिल में अश्रद्धा, अविश्वास तथा घृणा पैदा हो गयी थी। जिस युवती का इडेन-गार्डेन में एक गोरे के हाथों से उसने बचाया, जिसके प्रति, सभ्य, सम्भ्रान्त महिला के रूप में देखकर, वह सभक्ति खिंच गया था, वह स्टेज की नायिका है, यह उसके लिए बरदाश्त से बाहर की बात थी। कनक का समस्त सौन्दर्य उसके दिल में पैदा हुए इस घृणा-भाव को प्रशमित तथा पराजित न कर सका। उस दिन स्टेज पर राजकुमार दो पार्ट कर रहा था—एक मन से, दूसरा जबान से, इसीलिए कनक की अपेक्षा वह कुछ उतरा हुआ समझा गया था। उसके सिर्फ दो-एक स्थल अच्छे हुए थे।

इजलास में कनक को बैठी देखकर उसने अनुमान लगाया, शायद पुलिस की गवाह या ऐसी ही कुछ होकर आयी है। क्रोध और घृणा से हृदय ऊपर तक भर आया। उसने सोचा, इडेन-गार्डेन में उससे गलती हो गयी। मुमकिन है, वह साहब की प्रेमिका रही हो, और व्यर्थ ही उसने साहब को दण्ड दिया। राजकुमार के हृदय-प्राचीर पर जो अस्पष्ट रेखा कनक की थी, बिलकुल मिट गयी। 'मनुष्य के लिए स्त्री कितनी बड़ी समस्या है। इसकी सोने-सी देह के भीतर कितना तीव्र जहर!' राजकुमार सोच रहा था, 'मैंने भी कितना बड़ा धोखा खाया! इसका दण्ड ही से प्रायश्चित्त करना ठीक है।'

राजकुमार को देखकर कनक की आँखों में आँसू आ गये। राजकुमार तथा दूसरों की आँखें बचा रूमाल से चुपचाप उसने आँसू पोंछ लिये। उस रोज लोगों की निगाह में कनक ही कमरे की रोशनी थी। उसे देखते हुए सभी की आँखें औरों की आँखों को धोखा दे रही थीं। सबकी आँखों की चाल तिरछी हो रही थी।

एक तरफ दारोगा साहब खड़े थे। चेहरा उतरा हुआ था। राजकुमार ने सोचा, शायद मुझे अकारण गिरफ्तार करने के विचार से यह उदास हैं। राजकुमार बिलकुल निश्चिन्त था।

दारोगा साहब ने रविवार के दिन रॉबिन्सन का जैसा रुख देखा था, उसके अनुसार शहादत के लिए दौड़-धूप करना अनावश्यक समझ अपने बरखास्त होने, सजा पाने और न जाने किस-किस तरह की कल्पनाएँ लड़ा रहे थे। इसी समय मैजिस्ट्रेट ने दारोगा साहब को तलब किया। पर यहाँ कोई तैयारी थी ही नहीं। बड़े करुण भाव से, दृष्टि में कृपा चाहते हुए, दारोगा साहब मैजिस्ट्रेट को देखने लगे।

अभियुक्त को छोड़ देना ही मैजिस्ट्रेट का अभिप्राय था, इसलिए उन्होंने, उसी रोज, उसके पैरवीकार सॉलिस्टर जयनारायण से उसकी भलमंसाहत के सबूत लेना आरम्भ किया। कनक एकाग्रचित्त हो मुकद्दमे की कार्रवाई देख रही थी।

राजकुमार के मन का एकाएक परिवर्तन हो गया। वह अपने पक्ष में प्रमाण पेश होते हुए देख चकित हो गया। कुछ समझ मे न आया उसकी। उस समय कनक का उत्साह देखकर वह अनुमान करने लगा कि शायद यह सब व्यवस्था इसी की की हुई है। कनक के प्रति उसकी भावनाएँ बदल गयीं—आँखों में श्रद्धा आ गयी, पर दूसरे ही क्षण, उपकृत द्वारा मुक्ति पाने की कल्पना कर, वह बेचैन हो उठा। उस-जैसे निर्भीक वीर के लिए, जिसने स्वयं ही यह सब आफत बुला ली थी, कितनी लज्जा की बात है कि वह एक साधारण बाजारू स्त्री की कृपा से मुक्त

हो। क्षोभ और घृणा से उसका सर्वांग मुर्झा गया। जोश में आ वह अपने कठघरे से पुकारकर बोला, "मैंने कुसूर किया है।"

मैजिस्ट्रेट लिख रहे थे। नजर उठाकर एक बार उसे देखा, फिर कनक को। कनक घबरा गयी। राजकुमार को देखा, वह निश्चिन्त दृष्टि से मैजिस्ट्रेट की ओर देख रहा था। कनक ने वकील को देखा। राजकुमार की तरफ फिरकर वकील ने कहा, "तुमसे कुछ पूछा नहीं जा रहा, अत: तुम्हें कुछ कहने का अधिकार नहीं।"

फैसला लेकर हंसते हुए वकील ने कहा, "राजकुमार छोड़ दिये गये।"

वकील को पुरस्कृत कर, राजकुमार का हाथ पकड़कर कनक अदालत से बाहर निकल चली। साथ-साथ कैथरिन भी चली। पीछे-पीछे हँसती हुई कुछ जनता।

रास्ते पर एक किनारे कनक की मोटर खड़ी थी। राजकुमार और कैथरिन के साथ कनक भी पीछे की सीट पर बैठ गयी, ड्राइवर गाड़ी ले चला।

एक अज्ञात मनोहर प्रदेश में राजकन्या की तलाश में विचरण करते हुए पूर्व-श्रुत राजपुत्र की कथा याद आयी। राजकुमार निर्लिप्त द्रष्टा की तरह वह स्वर्णिम स्वप्न देख रहा था।

मकान के सामने गाड़ी खड़ी हो गयी। कनक ने हाथ पकड़कर राजकुमार से उतरने के लिए कहा।

कैथरिन बैठी रही। दूसरे रोज आने का कनक ने उससे आग्रह किया। ड्राइवर उसे पार्क-स्ट्रीट ले चला।

ऊपर सीधे कनक माता के कमरे में गयी। बराबर राजकुमार का हाथ पकड़े रही। राजकुमार भावावेश में यन्त्रवत् उसके साथ-साथ चल रहा था।

"यह मेरी मा हैं।" राजकुमार से कहकर कनक ने माता को प्रणाम किया। आवेश में, स्वत:प्रेरित की तरह, अपनी दशा तथा परिस्थिति के ज्ञान से रहित, राजकुमार ने भी हाथ जोड़ दिये।

प्रणाम कर प्रसन्न कनक राजकुमार से सटकर खड़ी हो गयी। माता ने दोनों के मस्तक पर स्नेह-स्पर्श कर आशीर्वाद दिया, और नौकरों को बुलाकर, उन्हें हर्ष से एक-एक महीने की तनख्वाह देकर पुरस्कृत किया।

कनक राजकुमार को अपने कमरे में ले गयी। मकान देखते ही कनक के प्रति राजकुमार के भीतर सम्भ्रम का भाव पैदा हो गया था। कमरा देखकर उस ऐश्वर्य से वह और भी नत हो गया।

कनक ने उसे गद्दी पर आराम करने के लिए बैठाया। खुद भी एक बगल बैठ गयी।

"दो रोज से आँख नहीं लगी, सोऊँगा।"

"सोइए।" कनक ने आग्रह से कहा। फिर उठकर हाथ की बुनी, बेल-बूटेदार एक पंखी ले आयी, और बैठकर झलने लगी।

"नहीं, इसकी जरूरत नहीं, बिजली का पंखा तो है ही, खुलवा दीजिए।" राजकुमार ने सहज स्वर से कहा।

जैसे किसी ने कनक का कलेजा मसल दिया हो, 'खुलवा दीजिए।' ओह ! कितना दुराव ! आँखें छलछला आयीं। राजकुमार आँखें मूंदे पड़ा था। सँभलकर

कनक ने कहा, "पंखे की हवा गर्म होगी ।"

वह उसी तरह पंखा झलती रही । हाथ थोड़ी ही देर में दुखने लगे, कलाइयाँ भर आयीं, पर वह झलती रही । उत्तर में राजकुमार ने कुछ भी न कहा । उसे नींद लग रही थी । धीरे-धीरे सो गया ।

नौ

राजकुमार के स्नान आदि का कुल प्रबन्ध कनक ने उसके जागने से पहले ही नौकरों से करा रक्खा था । राजकुमार के सोते समय सर्वेश्वरी कन्या के कमरे में एक बार गयी, और उसे पंखा झलते देख, हँसकर लौट आयी । कनक माता को देखकर उठी नहीं । लज्जा से आँखें झुका उसी तरह बैठी पंखा झलती रही ।

दो घण्टे बाद राजकुमार की आँखें खुलीं । देखा, कनक पंखा झल रही है । बड़ा संकोच हुआ । उससे सेवा लेने के कारण लज्जा भी हुई । उसने कनक की कलाई पकड़ ली । कहा, "बस, आपको बड़ा कष्ट हुआ ।"

एक तीर पुनः कनक के हृदय-लक्ष्य को पार कर गया । चोट खा, काँपकर सँभल गयी । कहा, "आप नहाइएगा नहीं ?"

"हाँ, स्नान तो जरूर करूँगा, पर धोती ?"

कनक हँस पड़ी, "मेरी धोती पहन लीजिएगा ।"

"मुझे इसमें कोई लज्जा नहीं ।"

"तो ठीक है । थोड़ी देर में आपकी धोती सूख जायेगी ।"

कनक के यहाँ मर्दानी धोतियाँ भी थीं, पर स्वाभाविक हास्य-प्रियता के कारण नहाने के पश्चात् राजकुमार को उसने अपनी ही एक धुली हुई साड़ी दी । राजकुमार ने भी अम्लान, अविचल भाव से वह साड़ी मर्दों की तरह पहन ली । नौकर मुस्किराता हुआ उसे कनक के कमरे में ले गया ।

"हमारे यहाँ भोजन करने में आपको कोई एतराज तो न होगा ?"

"कुछ भी नहीं । मैं तो प्रायः होटलों में खाया करता हूँ ।" राजकुमार ने असंकुचित स्वर से कहा ।

"क्या आप मांस भी खाते हैं ?"

"हाँ, मैं सक्रिय जीवन के समय मांस को एक उत्तम खाद्य मानता हूँ, इसलिए खाता हूँ ।"

"इस वक्त तो आपके लिए बाजार से भोजन मँगवाती हूँ, शाम को पकाऊँगी ।" कनक ने विश्वस्त स्वर से कहा ।

राजकुमार ने देखा, जैसे अज्ञात, अब तक अपरिचित शक्ति से उसका अंग-अंग कनक की ओर खिंचा जा रहा था, जैसे चुम्बक की तरफ लोहे की सुइयाँ ।

केवल हृदय के केन्द्र में द्रष्टा की तरह बैठा हुआ वह उस नवीन प्रगति से परिचित हो रहा था।

वहीं बैठी हुई थाली में एक-एक खाद्य पदार्थ चुन-चुनकर कनक ने रक्खा। एक तश्तरी पर ढक्कनदार ग्लास में बन्द वासित जल रख दिया। राजकुमार भोजन करने लगा। कनक वहीं एक बगल बैठकर पान लगाने लगी। भोजन हो जाने पर नौकर ने हाथ धुला दिये।

पान की रकाबी कनक ने बढ़ा दी। पान खाते हुए राजकुमार ने कहा, "आपका शकुन्तला का पार्ट उस रोज बहुत अच्छा हुआ था। हाँ, धोती तो अब सूख गयी होगी?"

"इसे ही पहने रहिए! समझ लीजिए, अब आप ही शकुन्तला हैं। निस्सन्देह आपका पार्ट बहुत अच्छा हुआ था। आप कहें, तो मैं दुष्यन्त का पार्ट करने के लिए तैयार हूँ।"

मुखर कनक को राजकुमार कोई उत्तर न दे सका।

कनक उठकर दूसरे कमरे में गयी, और धुली हुई मर्दानी धोती ले आयी।

"इसे पहन लीजिए, यह मैली हो गयी है।" सहज आँखों से मुस्किराकर कहा कनक ने।

राजकुमार ने धोती पहन ली। कनक फिर चली गयी। अपनी एक रेशमी चादर ले आयी।

"इसे ओढ़ लीजिए।"

राजकुमार ने ओढ़ लिया।

एक नौकर ने आकर कनक से कहा, "माजी याद कर रही हैं।"

"अभी आयी।" कहकर कनक माता के पास चली गयी।

हृदय के एकान्त प्रदेश में जीवन का एक नया ही रहस्य खुल रहा है। वर्षा की प्रकृति की तरह जीवन की धात्री देवी नये साज से सज रही है। एक श्रेष्ठ पुरस्कार प्राप्त करने के लिए कभी-कभी, बिना उसके जाने हुए ही, लालसा के हाथ फैल जाते हैं। आज तक जिस एक ही सोत से बहता हुआ वह चला आ रहा था, अब एक दूसरा रुख बदलना चाहता है। एक अप्सरा-कुमारी, सम्पूर्ण ऐश्वर्य के रहते हुए भी, आँखों में प्रार्थना की रेखा लिये, रूप की ज्योति से जगमग, मानो उसी के लिए तपस्या करती आ रही है। राजकुमार चित्त को स्थिर कर विचार कर रहा था, यह सब क्या···है? क्या इस ज्योति से मिल जाऊँ···? न, जल जाऊँ तो? इसे निराश कर दूं···? बुझा दूं? न, मैं इतना कर्कश, तीव्र, निर्दय न हूँगा; फिर? आह! यह चित्र कितना सुन्दर, कितना स्नेहमय है?···इसे प्यार करूँ? न, मुझे अधिकार क्या? मैं तो प्रतिश्रुत हूँ कि इस जीवन में भोग-विलास को स्पर्श भी न करूँ, प्रतिज्ञा···! की हुई प्रतिज्ञा से टल जाना महापाप है! और यह···स्नेह का निरादर?

कनक के भावों से राजकुमार को अब तक मालूम हो चुका था कि वह पुष्प उसी की पूजा में चढ़ गया है। उसके द्वारा रक्षित होकर उसने अपनी चिर रक्षा का भार उसे सौंप दिया है। उसके आकार, इंगित और गति इसकी साक्षी हैं।

राजकुमार धीर, शिक्षित युवक था। उसे कनक के मनोभावों को समझने में देर नहीं लगी। जिस तरह उसके उपकार का कनक ने प्रतिदान दिया, उसकी याद कर कनक के गुणों के साथ उस कोमल स्वभाव की ओर वह आकर्षित हो चुका था। केवल लगाम अभी तक उसके हाथ में थी। उसकी रस-प्रियता के अन्तर्लक्ष्य को ताड़कर मन-ही-मन वह सुखानुभव कर रहा था, पर दूसरे ही क्षण इस अनुभव को वह अपनी कमजोरी भी समझता था। कारण, इसके पहले ही वह अपने जीवन की गति निश्चित कर चुका था—साहित्य तथा देश की सेवा के लिए वह आत्मार्पण कर चुका था। इधर कनक का इतना अधिक एहसान उस पर चढ़ गया था, जिसके प्रति उसकी मनुष्यता स्वत: नत-मस्तक हो रही थी। उसकी आज्ञा के प्रतिकूल आचरण की जैसे उसमें शक्ति ही न रह गयी हो। वह अनुकूल-प्रतिकूल अनेक प्रकार की ऐसी ही कल्पनाएँ कर रहा था।

सर्वेश्वरी ने कनक को सस्नेह पास बैठाकर कहा, "ईश्वर ने तुम्हें अच्छा वरदान दिया है। वह तुम्हें सुखी और प्रसन्न करे! आज एक नयी बात सुनाऊँगी। आज तक तुम्हें अपनी माता के सिवा पिता का नाम नहीं मालूम था। अब तुम्हारे पिता का नाम तुम्हें बता देना मेरा धर्म है। कारण, तुम्हारे कार्यों से मैं देखती हूँ, तुम्हारे स्वभाव में पिता-पक्ष ही प्रबल है। बेटी, तुम रणजीतसिंह की कन्या हो। तुम्हारे पिता जयनगर के महाराज थे। उन दिनों मैं वहीं थी। उनका शरीर नहीं रहा। होते, तो वह तुम्हें अपनी ही देख-रेख में रखते। आज देखती हूँ, तुम्हारे कुल के संस्कार ही तुममें प्रबल हैं। इससे मुझे प्रसन्नता है। अब तुम अपनी अनमोल, अलभ वस्तु सँभालकर रक्खो, उसे अपने अधिकार में करो। आगे तुम्हारा धर्म तुम्हारे साथ है।"

माता की सहृदय बातों से कनक को बड़ा सुख हुआ। स्नेह-जल से सिक्त होकर वह बोली, "अम्मा, यह सब तो वे कुछ जानते ही नहीं। मैं कह भी नहीं सकती। किसी तरह इशारा करती हूँ, तो कोई जैसे मुझे पकड़कर दबा देता है। कुछ बोलना चाहती हूँ, तो कण्ठ से आवाज ही नहीं निकलती।"

"तुम उन्हें कुछ दिन बहला रक्खो। समय आने पर सब बातें आप खुल जायेंगी। मैं अपनी तरफ से कोई कार्रवाई करूँगी, तो इसका उन पर बुरा असर पड़ेगा।"

नौकर से जेवर का बॉक्स बढ़ा देने के लिए सर्वेश्वरी ने कहा।

आज कनक के लिए सबसे बड़ी परीक्षा का दिन है। आज की विजय उसकी सदा की विजय है। इस विचार से सर्वेश्वरी बड़े विचार से सोने और हीरे के अनेक प्रकार के आभरणों से उसे सजाने लगी। बालों में सुगन्धित तेल लगा, किनारे से तिरछाई माँग काढ़, चोटी गूँथकर चक्राकार जूड़ा बाँध दिया। हीरे की कनी-जड़े सोने के फूलदार काँटे जूड़े में पिरो दिये। कनक ने अच्छी तरह सिन्दूर माँग में भर लिया। उसकी ललाई उस सिर का किसी के द्वारा कलम किया जाना सूचित कर रही थी। सर्वेश्वरी ने वसन्ती रंग की साड़ी पसन्द की। सिर से पैर तक कनक को सजा दिया उसने।

"अम्मा, मुझे तो यह सब भार लग रहा है। मैं चल न सकूँगी।"

सर्वेश्वरी ने कोई उत्तर नहीं दिया। कनक राजकुमार के कमरे की ओर चली। जीने पर उतरते समय आभरणों की झंकार से राजकुमार का ध्यान आकर्षित हुआ। अलंकारों की मंजीर-ध्वनि धीरे-धीरे निकट होती गयी। अनुमान से उसने कनक के आने का निश्चय कर लिया। दरवाजे के पास आते ही कनक के पाँव ठिठक गये। सर्वांग संकोच से शिथिल पड़ गया। कृत्रिमता पर बड़ी लज्जित हुई। मन को किसी प्रकार दृढ़ कर होंठ काटती, मुस्किराती, वायु को केशों की सुरभि से सुगन्धित करती हुई, धीरे-धीरे चलकर गद्दी के एक प्रान्त में, राजकुमार के बिलकुल निकट बैठ गयी।

राजकुमार ने केवल एक नजर कनक को देख लिया। हृदय ने प्रशंसा की। मन ने एकटक यह छवि खींच ली। तत्काल प्रतिज्ञा के अदम्य झटके से हृदय की प्रतिमा शून्य में परमाणुओं की तरह विलीन हो गयी। राजकुमार चुपचाप बैठा रहा। हृदय पर जैसे पत्थर रख दिया गया हो।

कनक के मन में राजकुमार के बहलाने की बात उठी। उठकर वह पास ही रक्खा सुरबहार उठा लायी। स्वर मिलाकर राजकुमार से कहा, "कुछ गाइए।"

"मैं गाता नहीं, आप गाइए। बड़ा सुन्दर गाती हैं आप।" 'आप' फिर कनक के प्राणों में चुभ गया। तिलमिला गयी। इस चोट से हृदय के तार और दर्द से भर गये। वह गाने लगी—

हमें जाना इस जग के पार।
जहाँ नयनों से नयन मिले,
ज्योति के रूप सहस्र खिले,
सदा ही बहती रे रस-धार—
वहीं जाना इस जग के पार।
कामना के कुसुमों को कीट
काट करता छिद्रों की छीट,
यहाँ रे सदा प्रेम की ईंट
परस्पर खुलती सौ-सौ बार।
डोल सहसा संशय में प्राण,
रोक लेते हैं अपना गान,
यहाँ रे सदा प्रेम में मान,
ज्ञान में बैठा मोह असार।
दूसरे को कस, अन्तर तोल,
नहीं होता प्राणों का मोल;
वहाँ के बल केवल वे लोल
नयन दिखलाते निश्छल प्यार।

अपने मुक्त पंखों से स्वर के आकाश में उड़ती हुई भावना की परी को अपलक नेत्रों से राजकुमार देख रहा था। स्वर के स्रोत में उसने भी हाथ-पैर ढीले कर दिये। अलक्ष्य अज्ञान में बहते हुए उसे अपार आनन्द मिल रहा था। आँखों में प्रेम का बसन्त फूट आया, संगीत में प्रेमिका कोकिला कूक रही थी। एक साथ प्रेम की

लीला में मिलन और विरह-प्रणय के स्नेह-स्पर्श से स्वप्न की तरह जाग उठे। सोती हुई स्मृति की विद्युत् शिखाएँ हृदय से लिपटकर लपटों में जलने-जलाने लगीं। तृष्णा की सूखी हुई भूमि पर वर्षा की धारा बह चली। दूर की किसी भूली हुई बात को याद करने के लिए, मधुर अस्फुट ध्वनि से श्रवण-सुख प्राप्त करने के लिए, दोनों कान एकाग्र हो चले। मन्त्र-मुग्ध मन में माया का अभिराम सुख-प्रवाह भर रहा था।

वह अकम्पित-अचंचल पलकों से प्रेम की पूर्णिमा में ज्योत्स्नामृत पान कर रहा था। देह की कैसी नवीन कान्ति! कैसे भरे हुए सहज-सुन्दर अंग। कैसी कटी-छटी शोभा! इसके साथ मँजा हुआ अपनी प्रगति का कैसा अबोध स्वर! जिसके स्पर्श से जीवन अमर, मधुर कल्पनाओं का केन्द्र बन रहा है। रागिनी की तरंगों से काँपते हुए उच्छ्वास, तान-मूर्च्छनाएँ उसी के हृदय-सागर की ओर अनर्गल विविध भंगिमाओं से बढ़ती चली आ रही हैं। कैसा कुशल छल! उसका सर्वस्व उससे छीन लिया, और इस दान में प्राप्ति भी कितनी अधिक, जैसे इसके तमाम अंग उसके हुए जा रहे हैं, और उसके इसके।

राजकुमार एकाग्रचित्त से रूप और स्वर पान कर रहा था। एक-एक शब्द से कनक उसके मर्म तक स्पर्श कर रही थी। संगीत के नशे में, रूप के लावण्य में, अलंकारों की प्रभा से चमकती हुई कनक मरीचिका के उस पथिक को पथ से भुलाकर बहुत दूर—बहुत दूर ले गयी। वह सोचने लगा, 'यह सुख क्या व्यर्थ है? यह प्रत्यक्ष ऐश्वर्य आकाश-पुष्प की तरह केवल काल्पनिक कहा जायेगा? यदि इस जीवन की कान्ति हृदय के मधु और सुरभि के साथ वृक्ष पर ही सूख गयी, तो क्या फल?'

"कनक, तुम मुझे प्यार करती हो?" सहसा वह कह उठा।

कनक को इष्ट मन्त्र के लक्ष जप के पश्चात् सिद्धि मिली। उसके हृदय-सागर को पूर्णिमा का चन्द्र दीख पड़ा। उसके यौवन का प्रथम स्वप्न, सत्य के रूप में मूर्तिमान् हो, आँखों के सामने आ गया। चाहा की जवाब दे, पर लज्जा से समस्त अंग जकड़-से गये। हृदय में एक अननुभूत विद्युत् प्रवेश कर गुदगुदा रही थी। ऐसी दशा आज तक कभी न हुई थी। मुक्त आकाश मे उड़ती हुई रंगीन परों की विहंग-परी राजकुमार के मन की डाल पर बैठी थी, पर किसी जंजीर से नहीं बँधी, किसी पिंजड़े में नहीं आयी, पर इस समय उसी की प्रकृति उसके प्रतिकूल हो रही है। वह चाहती है, कहूँ, पर प्रकृति उसे कहने नहीं देती। क्या यह प्यार वह प्रदीप है, जो एक ही एकान्त गृह का अन्धकार दूर कर सकता है? क्या वे सूर्य और चन्द्र नहीं, जो प्रति गृह को प्रकाशित करें?

इस एकाएक आये हुए लाज-पाश को काटने की कनक ने बड़ी कोशिश की, पर निष्फल हुई। उसके प्रयत्न की शक्ति से आकस्मिक लज्जा के आक्रमण में ज्यादा शक्ति थी। कनक हाथ में सुरबहार लिये, रत्नों की प्रभा में चमकती हुई, सिर झुकाये, चुपचाप बैठी रही। इस समय राजकुमार की तरफ निगाह भी नहीं उठ रही थी। मानो एक 'तुम' द्वारा जिसने उसे इतना दे दिया, जिसके भार से आप-ही-आप उसके अंग दाता की दृष्टि में नत हो गये, उस स्नेह-सुख का भाव

हटाकर आँखें उठाना उसे स्वीकार नहीं।

बड़ी मुश्किल से एक बार सजल, अनिमेष दृगों से, सिर झुकाये हुए ही उसने राजकुमार की ओर देखा। वह दृष्टि कह रही थी, "क्या अब भी तुम्हें अविश्वास है ?—क्या अभी और प्रमाण देने की आवश्यकता होगी ?"

उन आँखों की वाणी पढ़कर राजकुमार एक दूसरी परिस्थिति में पहुँच गया। जहाँ प्रचण्ड कान्ति विवेक को पराजित कर लेती है, किसी स्नेह अथवा स्वार्थ के विचार से दूसरी श्रृंखला तोड़ दी जाती है, अनावश्यक परिणाम को एक भूल समझकर।

सन्ध्या हो रही थी। सूर्य की किरणों का तमाम सोना कनक के सोने के रंग में, पीत सोने-सी साड़ी और सोने के रत्नाभूषणों में, मिलकर अपनी सुन्दरता एवं अपना प्रकाश देखना चाहता था, और कनक चाहती थी, सन्ध्या के स्वर्ण-लोक में अपने सफल जीवन की प्रथम स्मृति को हृदय में सोने के अक्षरों से लिख ले।

इंगित से एक नौकर को बुला कनक ने पढ़ने के कमरे से कागज, कलम और दावात ले आने के लिए कहा। सुरबहार वहीं, गद्दी पर, एक बगल रख दिया। नौकर कुल सामान ले आया।

कनक ने कुछ लिखा, और गाड़ी तैयार करने की आज्ञा दी। कागज नौकर को देते हुए कहा, "यह सामान नीचे की दूकान से जल्द ले आओ।"

राजकुमार को कनक की शिक्षा के बारे में अधिक ज्ञान न था। वह उसे साधारण पढ़ी-लिखी स्त्री में शुमार कर रहा था।

कनक जब लिख रही थी, तब लिपि देखकर उसे मालूम हो गया कि कनक अँगरेजी जानती है। लिखावट सुन्दर, सधी हुई दूर से मालूम दे रही थी।

"अब हवाखोरी का समय है।" कनक एक भार-सा अनुभव कर रही थी, जो बोलते समय उसके शब्दों पर भी अपना गुरुत्व रख रहा था। राजकुमार के संकोच की अर्गला, कनक के आदर, शिष्टता और स्वभाव के अकृत्रिम प्रदर्शन से आप-ही-आप खुल गयी। यों भी वह एक बहुत ही स्पष्ट, स्वतन्त्र प्रकृति का युवक था। अनावश्यक सभ्यता का प्रदर्शन उसमें नाम-मात्र को न था। जब तक वह कनक को समझ न सका, उसने शिष्टाचार बरता। फिर घनिष्ठ परिचय के पश्चात्, अभिनय से सत्य की कल्पना लेकर, दोनों ने एक-दूसरे के प्रति कार्यतः जैसा प्रेम सूचित किया था, राजकुमार उससे कनक के प्रसंग की बिलकुल खुले हुए प्रवाह की तरह, हवा की तरह स्पर्श कर, बहने लगा। वह देखता था, उससे कनक प्रसन्न होती है, यद्यपि उसकी प्रसन्नता बाढ़ के जल की तरह उसके हृदय के कूलों को छापकर नहीं छलकने पाती। केवल अपने सुख की पूर्णता, अपनी अन्तस्तरंगों की टलमल, प्रसन्नता अपनी सुखद स्थिति का ज्ञान-मात्र करा देती है।

"तुम अँगरेजी जानती हो, मुझे नहीं मालूम था।"

कनक मुस्किरायी, "हाँ, मुझे कैथरिन घर पर पढ़ा जाया करती थी। थोड़े ही दिन हुए, मैंने पढ़ना बन्द किया है। हम लोगों के साथ, अदालत से आते समय कैथरिन ही थी।"

राजकुमार के मानसिक सम्मान में कनक का दर्जा बढ़ गया। उसने उस ग्रन्थ

को पूर्णतया नहीं पढ़ा, इस अज्ञान-मिश्रित दृष्टि से कनक को देख रहा था। उसी समय नौकर एक कागज में बँधा हुआ कुछ सामान लाकर कनक के सामने रख गया।

कनक ने उसे खोलकर देखा। फिर राजकुमार से कहा, "लीजिए, पहन लीजिए। शाम हो रही है, टहल आवें प्रिंस-ऑफ-वेल्स घाट की तरफ।"

राजकुमार को बड़ा संकोच मालूम हुआ। पर कनक के आग्रह को टाल न सका वह। चुपचाप नये वस्त्र और जूते पहन लिये।

कनक ने कपड़े नहीं बदले। उन्हीं वस्त्रों में वह उठकर खड़ी हो गयी। राजकुमार के सामने ही एक बड़ा शीशा दीवार पर लगा था। कनक इस तरह खड़ी हुई कि उसकी साड़ी और कुछ दाहने अंग राजकुमार के आधे अंगों से छू गये। वह उसी तरह खड़ी हुई हृदय की आँखों से राजकुमार की दर्पण की आँखें देख रही थी। वहाँ उसे जैसे लज्जा न थी। राजकुमार ने भी छाया की कनक को देखा। दर्पण में चार असंकुचित नेत्र, जिनमें एक ही मर्म, एक ही स्नेह का प्रकाश था, मुस्किरा उठे।

अलंकारों के भार से कनक की सरल गति कुछ मन्द पड़ गयी थी। राजकुमार को बुलाकर वह नीचे उतरने लगी। कुछ देर तक खड़ा वह उसे देखता रहा। कनक नीचे उतर गयी। राजकुमार भी चला।

कार तैयार खड़ी थी। अर्दली ने पीछे की सीट का द्वार खोल दिया। कनक ने राजकुमार को बैठने के लिए कहा। राजकुमार बैठ गया। लोगों की भीड़ लग रही थी। अवाक् नेत्रों से आला-अदना सभी कनक को देख रहे थे। राजकुमार के बैठ जाने पर कनक भी वहीं एक बगल बैठ गयी। आगे की सीट पर, ड्राइवर की बायीं तरफ, अर्दली भी बैठ गया। गाड़ी चल दी। राजकुमार ने पीछे किसी को कहते हुए सुना, "वाह रे तेरे भाग!"

गाड़ी वेलिंगटन-स्ट्रीट से होकर धरमतल्ले की तरफ दौड़ने लगी।

सूर्य की अन्तिम किरणें दोनों के मुख पर सीधी पड़ रही थीं, जिससे कनक पर लोगों की निगाह नहीं ठहरती थी। सामने खड़े लोग उसे एकटक देखते रहते। इस प्रकार आभूषणों से सजी हुई महिला को अनवगुण्ठित, निस्त्रस्त, चितवन, स्वतन्त्र रूप से, खुली मोटर पर विहार करते प्रायः किसी ने नहीं देखा था। इस अकाट्य युक्ति को कटी हुई प्रमाण के रूप में प्रत्यक्ष कर लोगों को बड़ा आश्चर्य हो रहा था। कनक के वेश में उसके मातृपक्ष की तरफ जरा भी इशारा न था। कारण, उसके मस्तक का सिन्दूर ऐसे समस्त सन्देह की जड़ काट रहा था। कलकत्ता की अपार जनता की मानस प्रतिमा बनी हुई, अपने नवीन नयनों की स्निग्ध किरणों से दर्शकों को प्रसन्न करती, कनक किले की तरफ जा रही थी।

कितने ही, छिपकर आँखों से रूप पीनेवाले, मुँहचोर, हवाखोर, उसकी मोटर के पीछे अपनी गाड़ी लगाये हुए, अनर्गल शब्दों में उसकी समालोचना करते हुए, उच्च स्वर से कभी-कभी सुनाते हुए भी चले जा रहे थे। गाड़ी इडेन-गार्डेन के पास से गुजर रही थी।

"अभी वह स्थान—देखिए—नहीं देख पड़ता।" कनक ने राजकुमार का

हाथ पकड़कर कहा।

"हाँ, पेडों की आड़ है। यह क्रिकेट ग्राउण्ड है। वह क्लब है, जो पत्तियों में हरा-हरा दिखायी दे रहा है। एक बार फर्स्ट बटालियन से यहीं हम लोगों का फाइनल कूचबिहार-शील्ड-मैच हुआ था।" भूली बात के आकस्मिक स्मरण से राजकुमार का स्वर कुछ मन्द पड़ रहा था।

"आप किस टीम में थे ?"

"विद्या-सागर-कॉलेज की टीम में। तब मैं चौथे वर्ष में था।"

"स्कोर क्या रहा ?"

"356—130 से हम लोग जीते थे।"

"बड़ा डिफरेंस रहा।"

"हाँ।"

"किसी ने सेंचुरी भी की थी ?"

"हाँ, इसी से तो इतना अन्तर आ गया था। हमारे प्रो. बनर्जी बॉलिंग बहुत अच्छी करते थे।"

"सेंचुरी किसने की थी ?"

राजकुमार कुछ देर चुप रहा। फिर धीमे, सहज कण्ठ से कहा, "मैंने।"

गाड़ी अब प्रिंस-ऑफ्-वेल्स-घाट के सामने थी।

कनक ने ड्राइवर को आदेश दिया, "इडेन-गार्डेन लौट चलो।"

ड्राइवर ने मोटर घुमा दी।

राजकुमार किले के बेतार-के-तारवाले ऊँचे खम्भे को देख रहा था। कनक की ओर देखकर कहा, "इसकी कल्पना पहले हमारे जगदीशचन्द्र बसु के मस्तिष्क में आयी थी!"

मोटर बढ़ाकर ड्राइवर ने गेट के पास रोकदी। राजकुमार उतरकर कलकत्ता ग्राउण्ड का हो-हल्ला सुनने लगा।

कनक ने कहा, "क्या आज कोई विशेष मैच था ?"

"मालूम नहीं। लगता है, मोहनबागान तथा कलकत्तालीग में मैच हो रहा है, और शायद मोहनबागान ने गोल किया है। जीतने पर अँगरेज इतना हल्ला नहीं करते।"

दोनों धीरे-धीरे सामने बढ़ने लगे। मैदान बीच से पार करने लगे। किनारे की कुर्सियों पर बहुत-से लोग बैठे थे। कोई-कोई टहल रहे थे। पश्चिम की ओर योरपियन उनकी महिलाएँ और बालक थे, पूर्व की कतार में बंगाली, हिन्दोस्तानी, गुजराती, मराठी, मदरासी, पंजाबी, मारवाड़ी, सिन्धी आदि मुक्त कण्ठ से अपनी-अपनी मातृभाषा का महत्त्व प्रकट कर रहे थे। सहसा इन सबकी दृष्टि के आकर्षण का मुख्य केन्द्र उस समय कनक हो गयी। श्रुत-अश्रुत, स्फुट-अस्फुट अनेक प्रकार की, समीचीन-अर्वाचीन आलोचना-प्रत्यालोचनाएँ सुनती हुई, निस्संकोच, अम्लान, निर्भय, वीतराग, धीरे-धीरे, राजकुमार का हाथ पकड़े हुए, कनक फव्वारे की तरफ बढ़ रही थी। युवक राजकुमार की आँखों में वीर्य, प्रतिभा, उच्छृंखलता और तेज झलक रहा था।

"उधर चलिए।" कनक ने एक कुंज की ओर इशारा किया। दोनों उधर ही बढ़ चले।

दूसरा छोटा मैदान पार कर दोनों उसी पूर्व-परिचित कुंज की ओर बढ़े। बेंच खाली पड़ी थी। दोनों बैठ गये। सूर्यास्त हो चुका था। बत्तियाँ जल चुकी थीं। कनक मजबूती से राजकुमार का हाथ पकड़े हुए पुल के नीचे से डाँड बन्द कर आते हुए नाव पर कुछ नवयुवकों को देख रही थी। वे नाव घाट की तरफ ले गये। राजकुमार एक दूसरी बेंच पर बैठे हुए एक नवीन योरपीय जोड़े को देख रहा था। वह बेंच पुल के उस तरफ, खुली जमीन पर, खाई के किनारे थी।

"आपने यहीं मेरी रक्षा की थी।" कुछ भरे हुए सहज स्वर में कनक ने कहा।

"दैव-योग से मैंने देख लिया था, अन्यथा…"

"अब आपको सदा मेरी रक्षा करनी होगी।" कनक ने राजकुमार के हाथ को मुट्ठी में जोर से दबाया।

राजकुमार कुछ न बोला, सिर्फ कनक के स्वर से कुछ सजग होकर उसकी तरफ निहारा। उसके मुख पर बिजली का प्रकाश पड़ रहा था। आँखें एक दूसरी ही ज्योति से चमक रही थीं, जैसे वह एक प्रतिज्ञा की मूर्ति देख रहा हो।

"तुमने भी मुझे बचाया है।"

"मैंने तो अपने स्वार्थ के लिए आपको बचाया।"

"तुम्हारा कौन-सा स्वार्थ ?"

कनक ने सिर झुका लिया। कहा, "मैंने अपना धर्म-पालन किया।"

"हाँ, तुमने उस दिन के उपकार का पूरे अंशों में बदला चुका दिया।"

कनक काँप उठी। 'कितने कठोर होते हैं पुरुष ! इन्हें सँभलकर वार्तालाप करना नहीं आता। क्या यही यथार्थ उत्तर है ?' कनक सोचती रही। फिर तमक-कर कहा, "हाँ, मैंने ठीक बदला चुकाया, मैं भी स्त्री हूँ।" उसने राजकुमार का हाथ छोड दिया।

राजकुमार को कनक के कर्कश स्वर से सख्त चोट लगी। चोट खाने की आदत न थी। आँखें चमक उठीं। हृदय-दर्शी की तरह मन ने कहा, 'इसने ठीक उत्तर दिया, बदले की बात तुम्हीं ने तो उठायी थी।' राजकुमार के अंग शिथिल पड़ गये।

कनक को अपने उत्तेजित उत्तर के लिए कष्ट हुआ। उसने पुनः राजकुमार का हाथ पकड़ स्नेह-सिक्त, कोमल स्वर में कहा, "बदला क्या ! क्या मेरी रक्षा किसी आकांक्षा के विचार से तुमने की थी ?"

'तुमने !' राजकुमार का सम्पूर्ण तेज पिघलकर 'तुमने' में बह गया। हाथ आप-ही-आप उठकर कनक के कन्धे पर ठहर गया। विवश कण्ठ ने आप-ही-आप कहा, "क्षमा करो, गलती मेरी थी।"

सामने से बिजली की रोशनी और पत्तों के बीच से हँसती हुई चन्द्रज्योत्स्ना दोनों के मुख पर पड़ रही थी। पत्रों के मर्मर से मुखर बहती हुई अदृश्य हवा डालियों, पुष्प-पल्लवों और दोनों के बँधे हुए हृदयों को सुख की लालसा से स्नेह के झूले में हिलाकर चली गयी। दोनों कुछ देर चुपचाप बैठे रहे।

दोनों स्नेह-दीप के प्रकाश में, एकान्त हृदय के कक्ष में, परिचित हो गये। कनक पति की पावन मूर्ति देख रही थी, और राजकुमार प्रेमिका की सरस, लावण्यमयी, अपराजित आँखें—संसार के प्रलय से बचने के लिए उसके हृदय में लिपटी हुई एक कृशांगी सुन्दरी।

"एक बात पूछूं ?" कनक ने राजकुमार के कन्धे पर ठोढ़ी रखते हुए पूछा।

"पूछो।"

"तुम मुझे क्या समझते हो ?"

"मेरी सुबह की पलकों पर उषा की किरण।" राजकुमार कहता गया, "मेरे साहित्यिक जीवन-संग्राम की विजय।"

कनक के सूखे कण्ठ की तृष्णा को केवल तृप्त हो रहने को जल था; पूरी तृप्ति का भरा हुआ तड़ाग अभी दूर था।

राजकुमार कहता गया, "मेरी आँखों की ज्योति, कण्ठ की वाणी, शरीर की आत्मा, कार्य की सिद्धि, कल्पना की तस्वीर, रूप की रेखा, डाल की कली, गले की माला, स्नेह की परी, जल की तरंग, रात की चाँदनी, दिन की छाँह···!"

"बस-बस ! इतनी कविता एक ही साथ कि मैं याद भी न कर सकूँ। कवि लोग, सुनती हूँ, दो-ही-चार दिन में अपनी ही लिखी हुई पंक्तियाँ भूल जाते हैं।"

"पर कविता तो नहीं भूलते ?"

"तब काव्य की प्रतिमा उनके सामने दूसरे ही रूप में खड़ी होती है।"

"कवि एक ही सरस्वती में समस्त मूर्तियों का समावेश देख लेते हैं।"

"और यदि मानसिक विद्रोह के कारण सरस्वती के अस्तित्व पर भी सन्देह ने सिर उठाया ?"

"तो पक्की लिखा-पढ़ी भी बेकार है। कारण, किसी अदालत का अस्तित्व मानने-न-मानने पर ही स्थिर है।"

कनक चुप हो गयी। एक घण्टा रात बीत चुकी थी। उसे अपनी प्रतिज्ञा याद आयी। कहा, "आज मैंने कहा था, तुम्हें खुद पकाकर खिलाऊँगी। अब चलना चाहिए।"

राजकुमार उठकर खड़ा हो गया। कनक भी खड़ी हुई। राजकुमार का बायाँ हाथ अपने दाहने हाथ में लपेट, चाँदनी में चमकती, लावण्य की नयी लता-सी हिलती-डोलती सड़क की तरफ़ चली।

"मैं अब भी तुम्हें नहीं समझ सका, कनक !"

"मैं कोई गूढ़ समस्या बिल्कुल नहीं हूँ। तुम मुझी से मुझे समझ सकते हो, उसी तरह, जैसे अपने को आईने से; और तुम्हारे-जैसे आदमी के लिए, जिसने मेरे जीवन के कुछ अंक पढ़े हों, मुझे न समझ सकना मेरे लिए भी वैसे ही रहस्य की सृष्टि करता है। और, यह जानकर तुम्हें कुछ लज्जा होगी कि तुम मुझे नहीं समझ सके, पर अब मेरे लिए तुम्हें समझने की कोई दुरूहता नहीं रही।"

"तुमने मुझे क्या समझा ?"

"यह मैं नहीं बतलाना चाहती। तुम्हें मैंने···न, नहीं बतलाऊँगी।"

"क्यों, क्यों नहीं बतलाइएगा ? मैं भी आज सुनकर ही छोड़ूँगा।"

राजकुमार, कनक को पकड़कर, फव्वारे के पास खड़ा हो गया। उस समय वहाँ दूसरा कोई न था।

"चलो भी—सच, बड़ी देर हो रही है--मुझे अभी बड़ा काम है।"

"नहीं, अब बतलाना होगा।"

"क्या ?"

"यही, आप मुझे क्या समझीं ?"

"क्या समझीं ?"

"हाँ, क्या समझीं ?"

"लो, कुछ नहीं समझे, यही समझे।"

"अच्छा, अब शायरी होगी ?"

"तभी तो आपके सब रूपों में कविता बनकर रहा जायेगा। नहीं, अब ठहरना ठीक नहीं। चलो। अच्छा-अच्छा, नाराजगी ठीक नहीं, मैंने तुम्हें दुष्यन्त समझा ! कहो, बात अब भी साफ नहीं हुई ?"

"कहाँ हुई ?"

"और समझाना मेरी शक्ति से बाहर है। समय आया, तो समझा दिया जायेगा।"

राजकुमार मन-ही-मन में सोचता रहा, 'दुष्यन्त का पार्ट जो मैंने किया था, इसने उसका मजाक तो नहीं उड़ाया ? अभिनय कहीं-कहीं बिगड़ जो गया था। और ? और क्या बात होगी ?' राजकुमार जितना ही बुनता, कल्पना-जाल उतना ही जटिल होता जा रहा था। दोनों गाड़ी के पास आ गये। अर्दली ने दरवाजा खोल दिया। दोनों बैठ गये। मोटर चल दी।

दस

घर आकर कनक ने राजकुमार को अपने पढ़नेवाले कमरे में छोड़ दिया। स्वयं माता के पास चली गयी। नौकर ने आलमारियाँ खोल दीं। राजकुमार किताबें निकालकर देखने लगा। अँगरेजी-साहित्य के बड़े-बड़े कवि, नाटककार और उपन्यासकारों की कृतियाँ थीं। दूसरे देशों के बड़े-बड़े साहित्यिकों के अँगरेजी अनुवाद भी रक्खे थे। राजकुमार आग्रहपूर्वक किताबों के नाम देखता रहा।

कनक माता के पास गयी। सर्वेश्वरी ने सस्नेह कन्या को पास बैठा लिया।

"कोई तकरार तो नहीं की ?" माता ने पूछा।

"तकरार कैसी, अम्मा ! पर उड़ता हुआ स्वभाव है, यह पींजड़ेवाले नहीं हो सकते !" कनक ने लज्जा से रुकते हुए स्वर में कहा।

कन्या के भविष्य-सुख की कल्याण-कल्पना से माँ की आँखों में चिन्ता की

रेखा अंकित हो गयी। "तुम्हें प्यार तो करते हैं न ?" पुनः प्रश्न किया उसने।

कनक का सौन्दर्य-दीप्त मस्तक आप-ही-आप झुक गया, "हाँ, बड़े सहृदय हैं, पर दिल में एक आग है, जिसे मैं बुझा नहीं सकती। और, मेरे विचार से उस आग को बुझाने की कोशिश में मुझे अपनी मर्यादा से गिर जाना होगा। मैं ऐसा नहीं कर सकूँगी। चाहती भी नहीं। बल्कि देखती हूँ, मैं स्वभाव के कारण कभी-कभी उसमें हवा का काम कर जाती हूँ।"

"इसीलिए तो मैंने तुम्हें पहले समझाया था, पर तुम्हें अब अपनी तरफ से कोई शिक्षा मैं नहीं दे सकती।"

"आज अपने हाथों पकाया भोजन खिलाने का वादा किया है, अम्मा !" कनक उठकर खड़ी हो गयी। कपड़े बदलकर नहाने के कमरे में चली गयी। नौकर को तिमंजिलेवाले खाली कमरे में भोजन का कुछ सामान तैयार रखने को कहा।

राजकुमार एक कुर्सी पर बैठा संवाद-पत्र पढ़ रहा था। हिन्दी और अँगरेजी के कई पत्र कायदे से टेबिल पर रक्खे थे। एक पत्र में बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—

"चन्दनसिंह गिरफ्तार !"

आग्रह-स्फारित नेत्रों से एक साँस में राजकुमार कुछ इबारत पढ़ गया। लखनऊ-षड्यन्त्र के मामले में चन्दन गिरफ्तार किया गया था। दोनों एक ही साथ कॉलेज में पढ़ते थे। दोनों एक ही दिन अपने-अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिए मदान में आये थे। चन्दन राजनीति की तरफ गया था, राजकुमार साहित्य की तरफ। चन्दन का स्वभाव कोमल था, हृदय उग्र। व्यवहार में उसने कभी किसी को नीचा नहीं दिखाया। राजकुमार को स्मरण आया, वह जब उससे मिलता, झरने की तरह शुभ्र, स्वच्छ बहती हुई अपने स्वभाव की जल-राशि में नहला वह उसे शीतल कर देता था। वह सदा ही उसके साहित्यिक कार्यों की प्रशंसा करता रहता है। उसे वसन्त की शीतल हवा में सुगन्धित पुष्पों के प्रसन्न कौतुक-हास्य के भीतर के कोयलों, पपीहों तथा अन्यान्य वन्य विहंगों के स्वागत-गीत से मुखर डालों की छाया से होकर गुजरनेवाला देव-लोक का यात्री ही कहता रहा है, और अपने को ग्रीष्म के तपे हुए मार्ग का पथिक, सम्पत्तिवालों की क्रूर हास्य-कुंचित दृष्टि में फटा निस्सम्मान भिक्षुक, गली-गली की ठोकरें खाता हुआ, मारा-मारा फिरने-वाला, रसलेशरहित कंकाल बतलाया करता था। वही मित्र, दुख के दिनों का वही साथी, सुख के समय का वही संयमी आज निस्सहाय की तरह पकड लिया गया !

राजकुमार क्षुब्ध हो उठा। अपनी स्थिति से उसे घृणा हो गयी। एक तरफ उसका वह मित्र था, और दूसरी तरफ माया के परिमल वसन्त में कनक के साथ वह ? छिः-छिः, वह और चन्दन···?

राजकुमार की वृत्तियाँ एक ही अंकुश से सतर्क हो गयीं। उसकी प्रतिज्ञा घृणा की दृष्टि से उसे देख रही थी, 'साहित्यिक ! तुम कहाँ हो ? तुम्हें केवल रस-प्रदान करने का अधिकार है, रस-ग्रहण करने का नहीं।'

उसकी प्रकृति उसका तिरस्कार करने लगी, 'आज आँसुओं में अपनी शृंगार-छवि देखने के लिए आये हो ? कल्पना के प्रासाद-शिखर पर एक दिन एकाकी देवी

के रूप से तुमने पूजा की, आज दूसरी को प्रेयसी के रूप से हृदय से लगाना चाहते हो ! छिः-छिः, संसार से सहस्रों प्राणों के पावन संगीत तुम्हारी कल्पना से निकलने चाहिए। कारण, वहाँ साहित्य की देवी—सरस्वती ने अपना अधिष्ठान किया, जिनका सभी के हृदयों में सूक्ष्म रूप से वास है। आज तुम इतने संकुचित हो गये कि उस समस्त प्रसार को सीमित कर रहे हो ? श्रेष्ठ को इस प्रकार बन्दी करना असम्भव है, शीघ्र ही तुम्हें उस स्वर्गीय शक्ति से रहित होना होगा। जिस मेघ ने वर्षा की जलद राशि वाष्प के आकार से संचित कर रक्खी थी, आज यह एक ही हवा चिरकाल के लिए उसे तृष्णार्थ भूमि के ऊपर से उड़ा देगी।'

राजकुमार त्रस्त हो उठा। हृदय ने कहा, गलती की। निश्चय ने सलाह दी, प्रायश्चित्त करो। बन्दी की हँसती हुई आँखों ने कहा, 'साहित्य की सेवा करते हो न मित्र ? मेरी मा थी जन्मभूमि, और तुम्हारी मा भाषा। देखो, आज माता ने एकान्त में मुझे अपनी गोद में, अन्धकार की गोद में छिपा रक्खा है, तुम अपनी माता के स्नेह की गोद में प्रसन्न हो न ?'

व्यंग्य के सहस्रों शूल एक साथ चुभ गये। जिस माता की वह राजराजेश्वरी के रूप में ज्ञान की सर्वोच्च भूमि पर अलंकृत बैठी हुई देख रहा था, आज उसी के नयनों में पुत्र की दशा पर करुणाश्रु बरस रहे थे। एक ओर चन्दन की समादृत मूर्ति देखी, दूसरी ओर अपनी तिरस्कृत।

राजकुमार अधीर हो गया। देखा, सहस्रों दृष्टियाँ उसकी ओर इंगित कर रही हैं—यही है, यही है—इसी ने प्रतिज्ञा की थी, देखा, इसके कुल अंग गल गये हैं। लोग उसे देखकर घृणा से मुँह फेर लेते हैं। मस्तिष्क पर जोर देकर, आँखें फाड़कर देखा, साक्षात् देवी एक हाथ में पूजार्घ्य की तरह थाली लिये हुए, दूसरे में वासित जल, कुल रहस्यों की एक ही मूर्ति में निस्संशय उत्तर की तरह धीरे-धीरे, प्रशान्त हेरती हुई, अपने अपार सौन्दर्य की आप ही उपमा, कनक आ रही थी। जितनी दूर—जितनी दूर भी निगाह गयी, कनक साथ-ही-साथ, अपने परमाणुओं में फैलती हुई, दृष्टि की शान्ति की तरह, चलती गयी। चन्दन, भाषा-भूमि, कहीं भी उसकी प्रगति प्रतिहत नहीं। सबने उसे बड़े आदर तथा स्नेह की स्निग्धदृष्टि से देखा, पर राजकुमार के लिए सर्वत्र एक ही-सा व्यंग्य, कौतुक और हास्य !

कनक ने टेबिल पर तश्तरी रख दी। एक ओर लोटा रख दिया। नौकर ने ग्लास दिया, भरकर ग्लास भी रख दिया।

"भोजन कीजिए।" शान्त दृष्टि से राजकुमार को देख रही थी वह।

राजकुमार उद्विग्न था। उसके हाथ, उसकी आँखें, उसकी इन्द्रिय-तन्त्रियाँ उसके वश में न थीं। विद्रोह के कारण सब विशृंखल हो गयी थीं। उनका सम्राट् ही उस समय दुर्बल हो रहा था। भर्रायी आवाज से कहा, "नहीं खाऊँगा।"

कनक तड़प उठी।

"क्यों ?"

"इच्छा नहीं।"

"आखिर कोई वजह ?"

"कोई वजह नहीं।"

कनक सहम गयी। क्या जिसे होटल में खाते हुए कोई संकोच नहीं, वह विना किसी कारण उसका पकाया भोजन नहीं खा रहा ?

"कोई वजह नहीं ?" कनक कुछ कर्कश स्वर से बोली।

राजकुमार के सिर पर जैसे किसी ने लाठी मार दी। उसने कनक की तरफ देखा, आँखों से दोपहर की लपटें निकल रही थीं।

कनक डर गयी। खोजकर भी उसने अपना कोई कसूर नहीं पाया। आप-ही-आप साहस ने उमड़कर कहा, खायेंगे कैसे नहीं !

"मेरा पकाया हुआ है।"

"किसी का हो।"

"किसी का हो ! यह कैसा उत्तर ?" कनक कुछ संकुचित हो गयी। अपने जीवन पर सोचने लगी। खिन्न हो गयी। माता की बात याद आयी, वह महाराजकुमारी है। आँखों में साहस चमक उठा।

राजकुमार तमककर खड़ा हो गया। दरवाजे की तरफ बढ़ा। कनक वहीं मूर्तिवत्, निर्वाक्, अनिमेष नेत्रों से राजकुमार के आकस्मिक परिवर्तन को पढ़ रही थी। चलते देख स्वभावतः बढ़कर उसे पकड़ लिया।

"कहाँ जा रहे हो ?"

"छोड़ दो।"

"क्यों ?"

"छोड़ दो।"

राजकुमार ने झटका दिया, कनक का हाथ छूट गया। कलाई दरवाजे से लगी। चूड़ी फूट गयी। हवा में पीपल के पत्ते की तरह शंका से हृदय काँप उठा। चूड़ी कलाई में गड़ गयी थी, खून बह निकला।

राजकुमार का किसी भी तरफ ध्यान न था। वह बराबर बढ़ता गया। कलाई का खून झटकते हुए कनक ने बढ़कर बाँहों में बाँध लिया उसे।

"कहाँ जाते हो ?"

"छोड़ दो।"

कनक फूट पड़ी। आँसुओं का तार बँध गया। निःशब्द कपोलों से बहते हुए कई बूँद आँसू राजकुमार की दाहिनी भुजा पर गिरे। राजकुमार की जलती आग पर आकाश के शिशिरकणों का कुछ भी असर न पड़ा।

"नहीं खाओगे ?"

"नहीं।"

"आज यहीं रहो। बहुत-सी बातें हैं, सुन लो, फिर कभी न आना। मैं हमेशा तुम्हारी राह छोड़ दिया करूँगी।"

"नहीं।"

"नहीं ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"तबियत।"

"तबियत ?"

"हाँ।"

"जाओ।"

कनक ने छोड़ दिया। उसी जगह, तस्वीर की तरह खड़ी आँसुओं के धुन्ध से, एकटक देखती रही। राजकुमार सीधा नीचे उतर आया। दरवाजे से कुछ ही दूर तीन-चार आदमी खड़े आपस में बातें कर रहे थे—

"उस रोज गाना नहीं सुनाया।"

दूसरे ने कहा, "घर में कोई रहा होगा, इसीलिए बहाना कर दिया कि तबियत अच्छी नहीं।"

तीसरा बोला, "लो, एक यह जा रहे हैं!"

"अजी, यह कहाँ जायेंगे ? बेटा निकाल दिये गये होंगे। देखो न, सूरत क्या कहती है।"

राजकुमार सुनता जा रहा था। पास ही एक मोटर खड़ी थी। फुटपाथ पर खड़े ये चारों बातें कर रहे थे। घृणा से राजकुमार का अंग-अंग जल उठा। इन बातों से क्या उसके चरित्र पर कहीं सन्देह करने की जगह रह गयी ? इससे भी बड़ा प्रमाण और क्या होगा···? छि: इतना पतन भी राजकुमार-जैसा दृढ़-प्रतिज्ञ सह सकता है ? उसे लगा कि किसी अन्ध-कारागार से मुक्ति मिली, उसका उतनी देर के लिए रौरवभोग था, समाप्त हो गया।

वह सीधे कार्नवालिस स्ट्रीट की तरफ चला। चोरबागान, अपने डेरे, पर पहुँच ससंकोच कपड़े उतार दिये, धोती बदल डाली। नये कपड़े लपेटकर नीचे, एक बगल, जमीन पर रख दिये। हाथ-पैर धो अपनी चारपाई पर लेट रहा। बिज़ली की बत्ती जल रही थी।

चन्दन की याद आयी। बिजली से खिंची हुई-सी कनक यहाँ अपने प्रकाश में चमक उठी। राजकुमार जितनी ही घृणा, जितनी ही उपेक्षा कर रहा था, वह उतनी ही चमक रही थी। आँखों से चन्दन का चित्र उस प्रकाश में छाया की तरह विलीन हो जाता, केवल कनक रह जाती थी। कान बराबर उस मधुर स्वर को सुनना चाहते थे। हृदय से निरन्तर प्रतिध्वनि होने लगी, 'आज यहीं रहो। बहुत-सी बातें हैं, सुन लो, फिर कभी न आना मैं हमेशा ही तुम्हारी राह छोड़ दिया करूँगी।'

राजकुमार ने नीचे देखा, अखबारवाला झरोखे से उसका अखबार डाल गया था। उठाकर पढ़ने लगा। अक्षर लकीर-से मालूम पड़ने लगे। जोर से पलकें दबा लीं। हृदय में उदास खड़ी कनक कह रही थी, "आज रहो···।" राजकुमार उठकर बैठ गया। एक कुर्ता निकालकर पहनते हुए घड़ी की तरफ देखा, ठीक दस का समय था। बॉक्स खोलकर कुछ रुपये निकाले। स्लीपर पहनकर बत्ती बुझा दी। दरवाजा बन्द कर दिया। बाहर सड़क पर आ खड़ा देखता रहा।

'टैक्सी!"

टैक्सी खड़ी हो गयी : राजकुमार बैठ गया।

"कहाँ चलियेगा ?"

"भवानीपुर।"

टैक्सी एक दुमंजिले मकान के गेट के सामने, फुटपाथ पर, खड़ी हुई। राजकुमार ने भाड़ा चुका दिया। दरबान के पास जा खबर देने के लिए कहा।

"अरे भैया, यहाँ बड़ी आफत रही, अब आपको मालूम हो जायेगा। माताजी को साथ लेकर बड़े भैया लखनऊ चले गये हैं। घर में बहूरानी अकेली हैं।" एक साँस में दरबान सुना गया।

फिर दौड़ता हुआ मकान के नीचे से पुकारने लगा, "महरी, ओ महरी! सो गयी क्या?"

महरी नीचे आयी।

"क्या है? इतनी रात को महरी, ओ महरी।"

"अरे भई, खफा न हो, जरा बहूरानी को खबर कर दे, रज्जू बाबू खड़े हैं।"

"यह बात नीचे से नहीं कह सकते थे?" तीन जगह से लोच खाती हुई, खासतौर से दरबान को अपनी नजाकत दिखाने के उद्देश्य से, महरी चली गयी। इस दरबान से उसका कुछ प्रेम था, पर ध्वनि-तत्त्व के जानकारों को इस दरबान के प्रति बढ़ते हुए अपने प्रेम का पता लगाने का मौका अपने ही गले की आवाज से वह किसी तरह भी न देती थी।

ऊपर से उतरकर दासी राजकुमार को साथ ले गयी। साफ, अल्पसज्जित एक बड़े-से कमरे में 21-22 साल की एक सुन्दरी युवती पलँग पर, सन्ध्या की संकुचित सरोजनी की तरह, उदास बैठी हुई थी। पलकों के पत्र आँसुओं के शिशिर से भारी हो रहे थे। एक ओर एक विश्रृंखल अँगरेजी संवाद-पत्र पड़ा हुआ था।

"कई रोज बाद आये रज्जू बाबू! अच्छे तो हो न?" युवती ने सहज धीमे स्वर से पूछा।

"जी।" राजकुमार ने पलँग के पास जा, हाथ जोड़ सिर झुका दिया।

"बैठो।" कन्धे पर हाथ रख युवती ने प्रति-नमस्कार किया। पास की एक कुर्सी, पलँग के बिलकुल नजदीक खींचकर राजकुमार बैठ गया।

"रज्जू बाबू, तुम बड़े मुरझाये हुए हो। चार ही रोज में आधे रह गये, क्या बात है?"

"तबियत अच्छी नहीं थी।" इच्छा रहते हुए भी राजकुमार को अपनी विपत्ति सुनाना अनुचित जान पड़ा।

"कुछ खाया तो क्यों होगा?" युवती ने सस्नेह पूछा।

"नहीं, इस वक्त नहीं खाया।" राजकुमार ने चिन्ता से सिर झुका लिया।

"महरी!"

महरी सुखासन में बैठी हुई कुछ बीड़ों में चूना और कत्था छोड़ चिट्ट-चिट्ट सुपारी कतर रही थी। आवाज पा, सरौता रखकर दौड़ी।

"जी।" महरी पलंग के बगल में खड़ी हो गयी।

"मिठाई, नमकीन और कुछ फल तश्तरी में ले आ।"

महरी चली गयी।

"हम लोग तो बड़ी विपत्ति में फँस गये हैं, रज्जू बाबू! अखबार में तुमने

पढ़ा होगा।"

"हाँ, अभी ही पढ़ा है, पर विशेष बातें कुछ समझ नहीं सका।"

"मुझे भी नहीं मालूम। छोटे बाबू ने तुम्हारे भैया को लिखा था कि वहाँ किसानों का संगठन कर रहे हैं। इसके बाद ही सुना, लखनऊ-षड्यन्त्र में गिरफ्तार हो गये।" कहते-कहते युवती की आँखें भर आयीं।

राजकुमार ने एक लम्बी साँस ली। कुछ देर कमरा प्रार्थना-मन्दिर की तरह निस्तब्ध रहा।

"बात यह है कि राजकर्मचारी बहुत जगह, अकारण ही लांछन लगाकर, दूसरे विभाग के कार्यकर्त्ताओं को भी पकड़ लिया करते हैं।"

"अभी तो ऐसा ही जान पड़ता है।"

"ऐसी ही बात होगी, बहूजी! और, जो लोग छिपकर बागी हो जाते हैं, उन्हें बागी बनाने की जिम्मेदारी भी उन्हीं अधिकारियों पर है। उनके साथ इनका कुछ ऐसा तीखा बर्ताव होता है, ये जैसी नीची निगाह से उन्हें देखते हैं, वे बरदाश्त नहीं कर पाते, और उनकी मनुष्यता, जिस तरह भी सम्भव हुआ, इनके अधिकारों के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा कर बैठती है।"

"मुमकिन है, ऐसा ही कुछ छोटे बाबू के साथ भी हुआ हो।"

"बहूजी, चलते समय भैया और कुछ भी तुमसे नहीं कह गये?" तेज निगाह से राजकुमार ने युवती को देखकर कहा।

"ना।" युवती सरल नेत्रों से इसका आशय पूछ रही थी।

"यहाँ चन्दन की किसी दूसरी तरह की चिट्ठियाँ तो नहीं हैं?"

युवती घबरायी, "मुझे नहीं मालूम!"

"उनकी विप्लवात्मक किताबें होंगी ही, अगर ले नहीं गये?"

"मैंने उनकी आलमारी नहीं देखी।" युवती का कलेजा धक्-धक् करने लगा।

"तअज्जुब क्या, अगर कल पुलिस यहाँ सर्च करे।"

युवती त्रस्त चितवन से सहायता-प्रार्थना कर रही थी। "अच्छा हुआ, तुम आ गये, रज्जू बाबू! मुझे इन बातों से बड़ा डर लग रहा है।"

"बहूजी!" राजकुमार ने चिन्ता की नजर से, कल्पना द्वारा दूर परिणाम तक पहुँचकर, पुकारा।

"क्या?" स्वर के तार में शंका थी।

"ताली तो आलमारियों की होगी तुम्हारे पास? चन्दन की पुस्तकें और चिट्ठियाँ जितनी हों, सब एक बार देखना चाहता हूँ।"

युवती घबरायी हुई उठकर द्वार की ओर चली। खोजकर तालियों का एक गुच्छा निकाला। राजकुमार के आगे-आगे जीने से नीचे उतरने लगी, पीछे राजकुमार अवश्यम्भावी विपत्ति पर अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करता हुआ। नीचे एक बड़े-से हाल के एक ओर एक कमरा था। यही चन्दन का कमरा था। वह जब यहाँ रहता था, प्रायः इस कमरे में बन्द रहा करता था। ऐसा ही उसे पढ़ने का व्यसन था। कमरे में कई आलमारियाँ थीं। आलमारियों की अद्भुत किताबें राजकुमार की स्मृति में अपनी करुणा की कथाएँ कहती हुई सहानुभूति की प्रतीक्षा

में मौन ताक रही थीं। कारागार उन्हें असह्य हो रहा था। वे शीघ्र अपने प्रिय के पाणिग्रहण की आशा कर रही थीं।

"बहूजी, गुच्छा मुझे दे दो।"

राजकुमार ने एक आलमारी खोली। वह एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ किताबें निकालता हुआ फटाफट फर्श पर फेंक रहा था।

युवती यन्त्र की तरह एक टेबिल के सहारे खड़ी अपलक दृष्टि से उन किताबों को देख रही थी।

दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी, कुल आलमारियों की राजकुमार ने अच्छी तरह तलाशी ली। जमीन पर करीब-करीब डेढ़-दो सौ किताबों का ढेर लग गया।

फ्रांस, रूस, चीन, अमेरिका, भारत, इजिप्ट, इंगलैण्ड, सब देशों की, सजीव स्वर में बोलती हुई, स्वतन्त्रता के अभिषेक से दृप्त-मुख, मनुष्य को मनुष्यता की शिक्षा देनेवाली किताबें थीं। राजकुमार दो मिनट तक दोनों हाथ कमर से लगाये उन किताबों को देखता रहा। युवती राजकुमार को देख रही थी। टप-टप कई बूंद आँसू राजकुमार की आँखों से गिर गये। उसने एक ठण्डी साँस ली।

मुकुलित आँखों से युवती भविष्य की शंका की ओर देख रही थी।

"ये कुल किताबें अब चन्दन के राजनीतिक चरित्र के लिए आपत्तिकर हो सकती हैं।"

"जैसा जान पड़े, करो।"

"भैयाजी शायद इन्हें जला देते।"

"और तुम ?"

"मैं जला नहीं सकूंगा।"

"तब ?"

'भाई चन्दन, तुम जीते। मेरी सौन्दर्य की कल्पना एक दूसरी जगह छिन गयी, मेरी दृढ़ता पर तुम्हारी विजय हुई।' राजकुमार सोच रहा था। युवती राजकुमार की ओर एकटक देख रही थी।

"इन्हें मैं अपने यहाँ ले जाऊंगा।"

"अगर तुम भी पकड़ लिये गये ? न, रज्जू बाबू ! इन्हें फूंक दो।"

"क्या ?"

राजकुमार की आँखें देख युवती डर गयी।

राजकुमार ने किताबों को एकत्र कर बाँधा। फिर कहा, "और जहाँ-जहाँ आप जानती हों, जल्द देख लीजिए। अब तो दो बज रहे होंगे ?"

युवती कर्तव्य-रहित-सी, निर्वाक् खड़ी राजकुमार की कारंवाई देख रही थी। सचेत हो, ऊपर जाकर कोठरियों के कागज-पत्र देखने चली। कमरे के बाहर महरी खड़ी मिली। एकाएक इस परिवर्तन को देखकर भीतर आने की उसकी हिम्मत न हुई। दहशत खायी हुई बोली, "जलपान बड़ी देर से रक्खा है।"

युवती लौट आयी। राजकुमार से कहा, "रज्जू बाबू, पहले कुछ जलपान कर लो।"

"आप जल्द जाइए, मैं खा लूँगा। वहीं टेबिल पर रखवा दीजिए।"

युवती चली गयी। महरी ने वहीं, चन्दन की टेबिल पर, तश्तरी रख दी। जल-भरा ढक्कनदार लोटा और गिलास रख दिया।

राजकुमार शीघ्र ही दुबारा कुल आलमारियों की जाँच कर ऊपर चला गया। दो-एक घरेलू पत्र ही मिले।

"एक बात कहूँ ?"

"कहो।"

"भैयाजी कब तक लखनऊ रहेंगे ?"

"कुछ कह नहीं गये।"

"शायद जब तक चन्दन का फैसला न हो जाय, तब तक रहें।"

"सम्भव है।"

"आप एक काम करें।"

"क्या ?"

"चलिए, आपको आपके मायके छोड़ दूँ।"

युवती सोचती रही।

"सोचने का समय नहीं। जल्द हाँ-ना कीजिए।"

"चलो।"

"यहाँ पुलिस के लोग रहेंगे। आवश्यक चीजें—अपने गहने और नकद रुपये जो कुछ हों—ले लीजिए। शीघ्र ही सब ठीक कर लीजिए, ताकि चार बजे के पहले हम लोग यहाँ से निकल जायें।"

"मुझे बड़ा डर लग रहा है, रज्जू बाबू !"

"मैं हूँ ही अभी, कोई इन्सान आपका क्या बिगाड़ सकेगा ? मैं लौटकर आपको तैयार देखूं।"

राजकुमार गैरेज से मोटर निकाल लाया। किताबों का लम्बा-सा बँधा हुआ बण्डल उठाकर, सीट के बीच में रख बैठ गया। फिर कलकत्ते की तरफ उड़ चला।

अपने घर पहुँचा। जिस तरह फाटक का छोटा दरवाजा वह खोलकर छिपका गया था, वैसा ही था, धक्के से खुल गया। चौकीदार को फाटक बन्द करते समय छोटे दरवाजे का खयाल नहीं आया। राजकुमार किताबों का बण्डल लेकर अपने कमरे में गया। बक्स का सामान निकाल किताबें भर दीं। ताला लगा दिया। जल्दी में जो कुछ सूझा, बाँधकर बत्ती बुझा दी। दरवाजा बन्द कर दिया। फिर मोटर पर अपना सामान रख भवानीपुर चल दिया। जब भवानीपुर से लौटा, तो तीन बजकर पन्द्रह मिनट हुए थे।

"क्या-क्या लिया, देखूं !"

युवती अपना सामान दिखलाने लगी। एक बॉक्स में कुछ कपड़े, 8-10 हजार के गहने और 20 हजार नम्बरी नोट थे। यह सब उसका अपना सामान था। महरी को मकान की झाड़-पोंछ करने के लिए वहीं रहने दिया। रक्षा के लिए चार दरबान थे। युवती ने सबको ऊपर बुलाया। अच्छी तरह मकान की रक्षा करते हुए सुखपूर्वक समय पार करने के कुछ उपदेश दिये। दरबानों को विपत्ति की

सूचना हो चुकी थी, कुछ न बोले।

महरी बाहर से दुखी थी, पर भीतर एकान्त की चिन्ता से खुश भी। बहू का बॉक्स उठाकर एक दरबान ने गाड़ी पर रख दिया। वह राजकुमार के साथ-साथ नीचे उतरी। गेट की बगल में शिव-मन्दिर था। मन्दिर में जा, भगवान विश्वनाथ को भूमिष्ठ हो प्रणाम किया।

राजकुमार ने ड्राइवर को बुलाया। गाड़ी गेट के सामने लगाये हुए चारो तरफ देख रहा था। अपनी रिस्टवाच में देखा, साढ़े चार हो गया था। ड्राइवर आया, राजकुमार उतर पड़ा।

"जल्दी कीजिए।"

बहू प्रणाम कर लौट आयी।

महरी ने पीछे की सीट का दरवाजा खोल दिया। बहू बैठकर कालीजी को प्रणाम करने लगी। बगल में राजकुमार बैठ गया। सामने सीट पर एक दरबान।

"अगर कोई पुलिस की तरफ से यहाँ आये, तो कह देना, मकान में कोई नहीं है। अगर इस पर भी वे मकान की तलाशी लें, तो घबराना मत, और हरएक की पहले अच्छी तरह से तलाशी ले लेना। रोज मकान देख लिया करना। अपनी तरफ से कोई सख्ती न करना। डरने की कोई बात नहीं।"

"अच्छा हुजूर।"

"चलो," राजकुमार ने ड्राइवर से कहा, "सियालदह।"

गाड़ी चल दी। सीधे चौरंगी होकर जा रही थी। अब तक अँधेरा दूर हो गया था। उषा उगते हुए सूर्य के प्रकाश से अरुण हो चली थी, जैसे भविष्य की क्रान्ति का कोई पूर्व लक्षण हो। राजकुमार की चिन्ताग्रस्त, असुप्त आँखें भी इसी तरह लाल हो रही थीं। बगल में अनवगुण्ठित बैठी हुई सुन्दरी की आँखें भी विषाद तथा निद्रा के भार से छलछलायी हुई लाल हो रही थीं।

गाड़ी सेन्ट्रल एवेन्यू पार कर अब बहूबाजार-स्ट्रीट से गुजर रही थी। गर्मियों के दिन थे। सूर्य का कुछ-कुछ प्रकाश फैल चुका था। मोटर पूर्व की ओर जा रही थी। दोनो के मुख पर सुबह की किरणें पड़ रही थीं। दोनो के मुखों की क्लान्ति प्रकाश में प्रत्यक्ष हो रही थी। एकाएक राजकुमार की दृष्टि स्वतःप्रेरित-सी एक तिमंजिले, विशाल भवन की तरफ उठ गयी। युवती भी आकर्षक मकान देखकर उधर ताकने लगी—बरामदे पर कनक रेलिंग पकड़े हुए एक दृष्टि से मोटर की तरफ देख रही थी। उसकी अनिंद्य-सुन्दर आँखों में भी उषा की लालिमा थी। उसने राजकुमार को पहचान लिया था। दोनों की आँखें एक ही लक्ष्य में बिंध गयीं। कनक स्थिर खड़ी ताकती रही। राजकुमार ने आँखें झुका लीं। उसे कल के लोगों की बातें याद आयीं—घृणा से सर्वांग जर्जर हो गया।

"बहूजी देखा?"

"हाँ, उस खूबसूरत लड़की को न?"

"हाँ, यही ऐक्ट्रेस कनक है।"

मोटर मकान को पीछे छोड़ चुकी थी। राजकुमार बैठा रहा। युवती ने फिर-कर देखा। कनक वैसे ही खड़ी ताक रही थी।

"अभी भी देख रही है। तुमको पहचान लिया है शायद।"

राजकुमार कुछ न बोला।

जब तक मोटर अदृश्य न हो गयी, कनक खड़ी हुई ताकती रही।

ग्यारह

पीड़ित हृदय पर पुन: चोट लगी। कनक हृदय थामकर रह गयी, "वज्र की तरह ऐसे ही लोग कठोर हुआ करते हैं!"

पहले जीवन में एकान्त की कल्पना ने जिन शब्दों का हार गूँथा था, उसकी लड़ी में यति-भंग हो गया। तमाम रात प्रणय-देवता के चरणों में पड़ी रोकर भोर कर दिया। प्रात:काल ही उनके सत्य आसीस का कितना बड़ा प्रमाण! अब यह समय की सरिता सागर की ओर नहीं, सूखे की ओर बढ़ रही थी! जितना ही आँसुओं का प्रवाह बढ़ रहा था, हृदय उतना ही सूख रहा था।

बरामदे से आकर वह फिर पलँग पर पड़ रही। हृदय पर साँप लोट रहा था, "कितना अपमान! यह वही राजकुमार था, जिसने एक सच्चे वीर की तरह मेरी रक्षा की थी। छि:! उसी दृढ़-प्रतिज्ञ मनुष्य की जबान थी—तुम मेरे शरीर की आत्मा, मेरी कल्पना की तस्वीर, रूप की रेखा, डाल की कली, गले की माला, स्नेह की परी, जल की तरंग, रात की चाँदनी, दिन की छाँह हो!"

कनक ने उठकर पंखा खोल दिया। पसीना सूख गया, किन्तु हृदय का ताप और बढ़ गया। इच्छा हुई, राजकुमार को खूब खरी-खोटी सुनाये, "तुम आदमी हो! एक बात कहकर फिर भूल जानेवाले तुम इन्सान हो! तुम होटलों में खानेवाले मेरे हाथ का पकाया भोजन नहीं खा सकते!"

"वह कौन थी? होगी कोई!—मुझसे जरूरत! न, इधर ही गयी है। पता लगाना चाहिए, वह थी कौन। मयना?"

मयना आकर सामने खड़ी हो गयी।

"गाड़ी जल्द तैयार कराओ।"

उसी रात, राजकुमार के चले जाने के बाद, कनक ने अपने समस्त गहने उतार डाले थे। जिन वस्त्रों में थी, उन्हीं में जूते पहन खटाखट नीचे उतर गयी। इतना उत्साह था, मानो तबियत खराब हुई ही नहीं।

"खोजने जाऊँ? न।"

नीचे मोटर तैयार थी, बैठ गयी।

"किस तरफ चलूँ?" ड्राइवर ने पूछा।

राजकुमार की मोटर सियालदह की ओर गयी थी। उसी ओर देखते हुए कहा, "इस तरफ।" फिर दूसरी तरफ—वेलेस्ली-स्क्वायर की ओर—चलने के

लिए कहा ।

मोटर चल दी । मोटर धर्मतल्ला पहुँची, तो बायें हाथ चलने के लिए कहा । वह राह भी सियालदह के करीब समाप्त हुई है । नुक्कड़ पर पहुँची, तो स्टेशन की तरफ चलने के लिए कहा ।

कनक ने राजकुमार की मोटर का नम्बर देख लिया था । सियालदह-स्टेशन पर कई मोटरें खड़ी थीं । उतरकर देखा, उस मोटर का नम्बर न मिला । कलेजे में फिर नयी लपटें उठने लगीं । स्टेशन पर पूछा, "क्या अभी कोई गाड़ी गयी है ?"

"सिक्स अप एक्सप्रेस गया है ।"

"कितनी देर हुई ?"

"सात पाँच पर छूटता है ।"

स्तब्ध खड़ी रह गयी वह ।

"कैसी इन्सानियत है ! देखा, पर मिलना भी उचित न समझा । और मैं ! मैं पीछे-पीछे फिर रही हूँ । बस, अब पैरों भी पड़े, तो मैं उधर न देखूँ ।" कनक चिन्ता में डूब रही थी । भीतर-बाहर, पृथ्वी-अन्तरिक्ष, सब जगह जैसे आग लग गयी हो । संसार आँखों के सामने रेगिस्तान-सा तप रहा था । शक्ति का, सौन्दर्य का एक भी चित्र नहीं देख पड़ता था । पहले की जितनी सुकुमार मूर्तियाँ कल्पना के जाल में आप ही फँस जाया करती थीं, अब वे सब जैसे जकड़ ली गयी हों—मानो किसी ने उन्हें इस प्रलय के समय अन्यत्र कहीं विचरण करने के लिए छोड़ दिया हो ।

लौटकर कनक मोटर में बैठ गयी । "घर चलो ।" कहा उसने ।

ड्राइवर मोटर ले चला ।

कनक उतरी कि एक दरबान ने कहा, "मेम साहब बैठी हैं ।" वह सीधे अपने पढ़नेवाले कमरे में चली गयी ।

सर्वेश्वरी मिसेज कैथरिन के पास बैठी बातें कर रही थी । राजकुमार के जाने के बाद से सर्वेश्वरी के मन में एक आकस्मिक परिवर्तन हो गया था । वह अब कनक पर नियन्त्रण करना चाहती थी । उसे मानव-स्वभाव की बड़ी गहरी पहचान थी । कुछ दिन अभी कुछ न बोलना ही वह उचित समझती थी । कैथरिन की इस सम्बन्ध में उसने सलाह माँगी । बहुत कुछ वार्तालाप के बाद उसने कैथरिन को कनक के गार्जियन के तौर पर, कुछ दिनों के लिए, नियुक्त कर लेना उचित समझा, कैथरिन ने भी छः महीने तक के लिए आपत्ति न की । फिर उसे योरप जाना था । उसने कहा, "अच्छा हो, अगर उस समय आप कनक को पश्चिमी आर्ट, नृत्य, गीत और अभिनय की शिक्षा के लिए योरप भेज दें ।"

कनक में जैसा एकाएक परिवर्तन हो गया था, उसका खयाल कर सर्वेश्वरी इस शिक्षा पर उसके प्रवृत्त होने की शंका कर रही थी । अतएव कैथरिन को मोड़-फेर देने के लिए नियुक्त कर लिया । कनक के आने की खबर मिलते ही सर्वेश्वरी ने उसे बुलवाया ।

"माजी बुलाती हैं ।" मयना ने आकर कहा ।

कनक माता के पास गयी ।

"मेम साहब से अभी तुम्हारे ही विषय में बातें हो रही थीं ।"

कनक की भौंहों में बल पड़ गये। कैथरिन ताड़ गयी। बोली, "यही कि अगर कुछ दिन और पढ़ लेतीं, तो अच्छा होता।"

कनक खड़ी रही।

"तुम्हारी तबियत कैसी है?"

"अच्छी है।" कनक ने तीव्र दृष्टि से कैथरिन को देखा।

"योरप चलने का विचार है?"

"हाँ, सेप्टेम्बर में तय रहा।"

"अच्छी बात है।"

सर्वेश्वरी कनक की बेफाँस आवाज से प्रसन्न हो गयी। माता की बगल में ही बैठ गयी कनक।

"विजयपुर के राजकुमार का राजतिलक है।"

कनक काँप उठी, जैसे जल की तरंग। मन में बहती हुई सोचने लगी, 'राजकुमार का राजतिलक!'

"हमने बयाना भी ले लिया है—दो सौ रुपये रोज, खर्च अलग।"

"कब है?"

"हमें परसों पहुँच जाना चाहिए।"

"मैं चलूँगी।"

"तुम्हें बुलाया था, पर हमने इन्कार कर दिया।"

कनक माता की ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखने लगी।

"क्या करते! हमने सोचा, शायद तुम्हारा जाना न हो।"

"नहीं, मैं चलूँगी।"

"तुम्हारे लिए तो विशेष आग्रह था उनका। मेम साहब, क्या साथ चलने के लिए आपको फुर्सत होगी?"

"फुर्सत कर ली जायेगी।" कैथरिन की आँखें रुपयों की चर्चा से चमक उठी थीं।

"तुम्हें 501 रुपये रोज देंगे, अगर तुम महफिल में जाओ।"

कनक के हृदय में मानो एक साथ किसी ने हजार सुइयाँ चुभो दीं। दर्द को दबाकर बोली, "सोचूँगी।"

सर्वेश्वरी की मुर्झाई हुई लता पर आषाढ़ की शीतल वर्षा हो गयी। "यह बात है, अपने को सँभाल लो, तमाम उम्र बर्बाद करने से फायदा क्या?"

हृदय की खान में बारूद का धड़ाका हुआ।

करुण अधखुली चितवन से कनक राजकुमार का चित्र देख रही थी, जो किसी तरह भी हृदय-पट से नहीं मिट रहा था। मन में कह रही थी, 'सुनते हो पुरुष! यह सब मुझे किसकी गलती से सुनना पड़ रहा है—चुपचाप दर्द को थामकर?'

"तो तय रहा?"

"हाँ।"

"तार कर दिया जाय?"

"कर दीजिए।"

"तुम खुद लिखो अपने नाम से।"

कनक झपटकर उठी। अपने पढ़नेवाले कमरे से एक तार लिखकर ले आयी, "राजा साहब, तार मिला। अपनी माता के साथ महफिल करने आ रही हूँ।"

सर्वेश्वरी तार सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई।

"सुनो।" कैथरिन कनक को अलग बुला ले गयी। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। कनक के स्वभाव का ऐसा चित्र उसने आज ही देखा था। वह उसे ऊपर उसके कमरे में ले गयी। वहाँ अँगरेजी में कहा, "तुम्हारा जाना अच्छा नहीं।"

"बुरा क्या है ? मैं इसीलिए पैदा हुई हूँ!"

"राजा लोग, मैंने सुना है, बहुत बुरी तरह पेश आते हैं।"

"हम रुपये पाने पर सब तरह का अपमान सह लेती हैं।"

"तुम्हारा स्वभाव पहले ऐसा नहीं था।"

"पहले बयाना भी न आता था।"

"तुम योरप चलो। यहाँ के आदमी तुम्हारी क्या कद्र करेंगे ? मैं वहाँ तुम्हें किसी लार्ड से मिला दूंगी।"

कनक की नसों में मानो किसी ने तेज झटका दिया। वह कैथरिन को घूरकर रह गयी।

"तुम क्रिश्चियन हो जाओ। राजकुमार तुम्हारे लायक नहीं। वह क्या तुम्हारी कद्र करेगा! वह तुमसे दबता है, रद्दी आदमी।"

"मैडम!" कड़ी निगाह से कनक ने कैथरिन को देखा। आँखों की बिजली से कैथरिन काँप उठी। कुछ समझ न सकी।

"मैं तुम्हारे भले के लिए कहती हूँ, तुम्हें ठीक राह पर ले चलने का मुझे अधिकार है।"

कनक सँभल गयी, "मेरी तबियत अच्छी नहीं, माफ कीजियेगा, इस वक्त मुझे अकेली छोड़ दीजिए।"

कनक को एक तीव्र दृष्टि से देखती हुई कैथरिन खड़ी हो गयी। कनक पूर्ववत् बैठी रही। कैथरिन तेजी से पीछे उतर गयी। "इसका दिमाग इस वक्त कुछ खराब हो रहा है। आप डॉक्टर की सलाह लें।" सर्वेश्वरी से कहकर कैथरिन चली गयी।

बारह

कनक की आँखों के झरोखे से, प्रथम यौवन के प्रभातकाल में, तमाम स्वप्नों की सफलता के रूप में राजकुमार ने ही झाँका था, और सदा के लिए उसमें एक शून्य

रखकर तिरोहित हो गया। आज कनक के लिए संसार में ऐसा कोई नहीं; जितने हैं, टूटे हुए यन्त्र को बार-बार छेड़कर उसके बेसुरेपन का मजाक उड़ानेवाले! इसीलिए अपने आपमें चुपचाप पड़े रहने के सिवा उसके पास दूसरा उपाय न रह गया था।

जो प्रेम कभी थोड़े समय के लिए उसके अन्धकारमय हृदय को मणि की तरह प्रकाशित कर रहा था, वही अब दूसरों की परिचित आँखों के प्रकाश में जीवन के कलंक की तरह स्याह पड़ गया है। अन्धकार-पथ पर जिस एक ही प्रदीप को हृदय के अंचल में छिपा वह अपने जीवन के तमाम मार्ग को आलोकमय कर लेना चाहती थी, हवा के अकारण झोंके से ही गुल हो गया। उस हवा के आने की पहले ही उसने कल्पना क्यों नहीं की।···अब? अभी तो पूरा पथ ही पड़ा हुआ है। अब उसका कोई लक्ष्य नहीं। वह दिग्यन्त्र ही अचल हो गया है, अब वह केवल प्रवाह की अनुगामिनी है।

और राजकुमार? प्रतिश्रुत युवक के हृदय की आग रह-रहकर आँखों से निकल पड़ती है। उसने जाति, देश, साहित्य और आत्मा के कल्याण के लिए अपने समस्त सुखों का बलिदान कर देने की प्रतिज्ञा की थी, पर प्रथम पदक्षेप में ही इस तरह आँखों में आँखें बिंध गयीं कि पथ का ज्ञान ही जाता रहा। अब वह बारम्बार अपनी भूल के लिए पश्चात्ताप करता है, पर अभी उसकी दृष्टि पूर्ववत् साफ न हुई।

कनक की कल्पना-मूर्ति उसकी तमाम प्रगतियों को रोककर खड़ी हो जाती और प्रत्येक समर में राजकुमार की वास्तव-शक्ति उस छाया-शक्ति से परास्त हो जाती है। तमाम बाहरी कार्यों के भीतर राजकुमार का यह मानसिक द्वन्द्व चलता जा रहा है।

आज दो दिन से वह युवती के साथ उसके मायके में है। वहीं से उसने यह खबर तार द्वारा लखनऊ भेज दी। चन्दन के बड़े भाई नन्दनसिंह ने तार से सूचित किया कि कोई चिन्ता न करें। मुमकिन है, चन्दन को मुक्ति मिल जाय। इस खबर से घर के सभी लोग प्रसन्न हैं। राजकुमार भी कुछ निश्चिन्त हो गया। गर्मियों की छुट्टी थी। कलकत्ते के लिए विशेष चिन्ता न थी। युवती को उसके पिता-माता, बड़े भाई और भावजें तारा कहकर पुकारती थीं तभी राजकुमार को भी उसका नाम ज्ञात हुआ। राजकुमार को नाम मालूम हो गया है, जानकर युवती कुछ लज्जित हुई।

राजकुमार का अस्त-व्यस्त सामान युवती के सुपुर्द था। पहले दो-एक रोज तक सँभालकर रखने की उसे फुर्सत न मिली। अब एक दिन अवकाश पा, राजकुमार के कपड़े झाड़-झाड़, तह कर रखने लगी। कनक के मकानवाले कपड़े एक ओर लिपटे, अछूत की तरह, एक बाल्टी की डण्डी में बँधे हुए थे। युवती ने पहले वही गठरी खोली, भीतर एक जोड़ी जूते भी थे। सभी कपड़े कीमती थे। युवती उनकी दशा देख राजकुमार के गार्हस्थ्य-ज्ञान पर खूब हँसी। जूते, धोती, कमीज, कोट अलग कर लिये। कमीज और कोट से सेण्ट की महक आ रही थी। झाड़-झाड़कर कपड़ों की चमक देखने लगी वह। कोट की दाहनी बाँह पर एक लाल धब्बा

था। देखा, गौर से फिर देखा, सन्देह जाता रहा। वह सिन्दूर ही का धब्बा था। अब राजकुमार पर उसका सन्देह हुआ।

रज्जू बाबू को वह महावीर तथा भीष्म ही की तरह चरितवान् समझती थी। उसके पति भी रज्जू बाबू की इज्जत करते थे। उसकी सास उन्हें चन्दन से बढ़कर समझती थी, पर यह क्या? यह सिन्दूर, सूँघा, ठीक, सिन्दूर ही था।

युवती ने सन्देह को सप्रमाण सत्य कर लेने के निश्चय से राजकुमार को बुलाया। एकान्त था। युवती के हाथ में कोट देखते ही राजकुमार की दृष्टि में अपराध की छाप पड़ गयी। युवती हँसने लगी, "मैं समझ गयी!"

राजकुमार ने सिर झुका लिया।

"यह क्या है?" युवती ने पूछा।

"कोट।"

"अजी, यह देखो, यह।" धब्बा दिखाती हुई वह बोली।

"मैं नहीं जानता।"

"नहीं जानते?"

"नहीं।"

"यह किसी की माँग का सेंदुर है जनाब!"

सुनते ही राजकुमार चौंक पड़ा, "सेंदुर!"

"हाँ-हाँ, सेंदुर—सेंदुर! देखो।"

राजकुमार की नजरों से वास्तव जगत् गायब हो रहा था। क्या यह कनक की माँग का सेंदुर है? तो क्या कनक ब्याहता है? हृदय को बड़ी लज्जा हुई। कहा, "बहूजी, इसका इतिहास बहुत बड़ा है। अभी तक मैं चन्दन की चिन्ता में फँसा था, इसलिए नहीं बता सका।"

"अब बताओ।"

"हाँ, मुझे कुछ छिपाना थोड़े ही है! लेकिन बड़ी देर होगी।"

"अच्छा, ऊपर चलो।"

युवती राजकुमार को ऊपर एक कमरे में ले गयी।

युवती चित्त को एकाग्र कर कुल कहानी सुनती रही।

"कहीं-कहीं छूट रही है। जान पड़ता है, सब घटनाएँ तुम्हें नहीं मालूम। जैसे—उसे तुम्हारी पेशी की बात कैसे मालूम हुई, उसने कौन-कौन-सी तदबीर की?" युवती ने कहा।

"हाँ, मुमकिन है। जब मैं चलने लगा, तब उसने कहा भी था कि बस, आज के लिए रह जाओ तुमसे बहुत कुछ कहना है।"

"आह! सब तुम्हारा कुसूर है। तुम इतने पर भी उस पर कलंक की कल्पना करते हो?"

राजकुमार को एक हूक-सी लगी। घबराया हुआ युवती की ओर देखने लगा।

"जिसने तुम्हारी सबसे नजदीक की बनने के लिए इतना किया, तुम्हें उसे इसी तरह का पुरस्कार देना था! प्रतिज्ञा तो तुमने पहले की थी, कनक क्या तुम्हें पीछे नहीं मिली?"

राजकुमार की छाती धड़क रही थी।

"लोग पहले किसी सुन्दर वस्तु को उत्सुक आँखों से देखते हैं, पर जब किसी दूसरे स्वार्थ की याद आती है, आँखें फेरकर चल देते हैं। क्या तुमने उसके साथ ऐसा ही नहीं किया ?" युवती ने प्रश्न किया।

राजकुमार के हृदय ने कहा, 'हाँ, ऐसा ही किया।' जबान से उसने कहा, "नीचे कुछ लोगों को उसके चरित्र की अश्रव्य आलोचना करते हुए मैंने सुना है।"

"झूठ बात। मुझे विश्वास नहीं। तुम्हारे कानों ने धोखा दिया होगा। और, किसी के कहने ही पर तुम क्यों गये ? इसलिए कि तुम खुद उस तरह की कुछ बातें उसके सम्बन्ध में सुनना चाहते थे।"

राजकुमार का मन युवती की तरफ हो गया।

युवती मुस्किरायी, "तो यह चलते समय की धर-पकड़ का दाग है—क्यों ?"

राजकुमार ने गर्दन झुका ली।

"अब भी नहीं समझे, रज्जू बाबू ? यह आप ही के नाम का सेंदुर है।" राजकुमार को असंकुचित देखती हुई युवती हँस रही थी, "आपसे प्रेम की भी कुछ बातें हुई ?"

"मैंने कहा था, तुम मेरी कविता हो !"

युवती खिलखिलाकर हँसी, "कैसा चोर पकड़ा ! फिर आपकी कविता ने क्या जवाब दिया ?"

"कवि लोग अपनी ही लिखी पंक्तियाँ भूल जाते हैं।"

"कितना सही उत्तर दिया। क्या अब भी आपको सन्देह है ?"

राजकुमार के मस्तक पर एक भार-सा आ पड़ा।

"रज्जू बाबू, तुम गलत राह पर हो !"

राजकुमार की आँखें छलछला आयीं।

"मैं बहुत शीघ्र उससे मिलना चाहती हूँ। छिः, रज्जू बाबू, किसी की जिन्दगी बरबाद कर दोगे ? और उसकी जबान से जिसके हो चुके ?"

"हम भी जायँगे दीदी !" एक आठ साल का बालक दौड़ता हुआ ऊपर चढ़ गया, और दोनों हाथों में अपनी बैठी हुई बहन का गला भर लिया, "दीदी, आज राजा साहब के यहाँ गाना होगा। बड़े दादा जायँगे, मुन्नी जायँगी, हम भी जायँगे।" बालक उसी तरह अपनी बहन के गले में बाँहें डाले थिरक रहा था।

"किसका गाना है ?" युवती ने बच्चे से पूछा।

"कनक, कनक, कनक का।" बालक आनन्द से थिरक रहा था।

युवती और राजकुमार गम्भीर हो गये। बच्चे ने गला छोड़ दिया। बहन की मुद्रा देखी, फिर फुर्ती से जीने से उतर, दौड़ता हुआ ही, मकान से बाहर निकल गया।

युवराज का अभिषेक है, यह दोनों जानते थे। विजयपुर वहाँ से मील-भर है। युवती के पिता स्टेट के कर्मचारी थे। बालक की बात पर अविश्वास करने का कोई कारण न था।

"देखा, बहूजी !" राजकुजार ने अपने अनुभव-सत्य की दृढ़ता से कहा।

"अभी कुछ कहा नहीं जा सकता। रज्जू बाबू, किसके मन में कौन-सी भावना

है, इसका दूसरा अनुमान लगाये, तो गलती का होना ही अधिक सम्भव है।"

"अनुमान कभी-कभी सत्य भी होता है।"

"पर तुम्हारी तरह का अनुमान नहीं।"

अब तक कई लड़के आँगन में खड़े हुए, तालियाँ पीटते-थिरकते हुए, 'हम भी जायँगे, हम भी जायँगे' सम-स्वर में घोर संगीत छेड़े हुए थे।

युवती ने झरोखे से लड़कों को एक बार देखा। फिर राजकुमार की तरफ मुँह करके कहा, "अच्छा हो, अगर आज स्टेशन पर कनक से मिला जाय। पूरब से एक ही गाड़ी चार बजे आती है।"

"नहीं, यह उचित न होगा। आपको तो मैं मकान से बाहर निकलने की राय दे ही नहीं सकता, और इस तरह के मामले में !"

"किसी बहाने मिल लेंगे।" युवती उत्सुक हो रही थी।

"किसी बहाने भी नहीं, बहूजी ! स्टेट की बातें आपको नहीं मालूम।"

राजकुमार गम्भीर हो गया। युवती त्रस्त हो संकुचित हो गयी।

"पर मुझे एक दफा जरूर दिखा दो।" करुणाश्रित सहानुभूति की दृष्टि से देखती हुई युवती ने राजकुमार का हाथ पकड़कर कहा।

"अच्छा।"

तेरह

दो रोज और बीत गये। अंगों के ताप से कनक का स्वर्ण-रंग और चमक उठा। आँखों में भावना मूर्तिमती हो गयी। उसके जीवन के प्रखर स्रोत पर मध्याह्न का तपन तप रहा था, जिसके वाष्प के बाह्यावरण के भीतर प्रवाह पर भावनाओं के सूर्य के सहस्रों ज्योतिर्मय पुष्प खुले हुए थे, पर उसे इसका ज्ञान न था। वह केवल अपने बाहरी आवरण को देखकर दैन्य से मुरझा रही थी। जिस स्नेह की डोर से उसके प्रणय के हाथों ने राजकुमार को बाँधा था, केवल वही अब उसके रिक्त हाथों में रह गयी है।

अब उसकी दृष्टि में कर्तव्य का ज्ञान न रहा। स्वयं ही संचालित की तरह बाह्य वस्तुओं पर बैठती, और फिर वहाँ से उसी तरह हताश हो उठ आती है। उनसे उसकी आतमा का संयोग नहीं रहता, जैसे वह स्वयं अब अकेली रह गयी हो। इस आकांक्षा और अप्राप्ति के अपराजित समर में उन्हीं की तरह वह भी उच्छृंखल हो गयी। इसीलिए, माता के साथ अलक्ष्य गति पर चलती हुई, वह गाने के लिए राजी हो गयी। जिस जीवन का राजकुमार की दृष्टि में ही आदर न हुआ, उसका अब उसकी दृष्टि में भी कोई महत्त्व न रहा।

सर्वेश्वरी कनक को प्रसन्न रखने के हर तरह के उपाय करती, पर वह उसे

सदा ही वीतराग देखती, अतः भावी सुख के प्रति उसका सन्देह बढ़ रहा था। वह देखती, चिन्ता से उसके अचंचल कपोलों पर आत्म-सम्मान की एक दिव्य ज्योति खुल पड़ती थी, जिससे उसे कुछ त्रस्त हो जाना पड़ता और कनक की देह की हरियाली के ऊपर से जेठ की लू बह जाती थी। जल की मराल-बालिका को स्थल से फिर जल में ले जाने की सर्वेश्वरी कोशिश किया करती, पर उसका इच्छित तड़ाग दूर था। जिस सरोवर में वह उसे छोड़ना चाहती, वह उसे पंकिल देख पड़ता। स्वयं निर्मित रूप का जब अस्तित्व ही नहीं रहा, तब कला की निर्जीव मूर्तियों पर कब तक उसकी दृष्टि रम सकती थी ?

सर्वेश्वरी के चलने का समय आया। तैयारियाँ होने लगीं। वस्त्र, अलंकार, पेशवाज, साज-सामान आदि बँधने लगे। आकाश में उड़ती हुई परी, पर काटकर, कमरे में कैद की जाने लगी। सुख के सागर की बालिका जी बहलाने के लिए कृत्रिम सरोवर में छोड़ दी गयी। जीवन के दिन सुख से काटने के विचार से कनक को अपना पेशा अपनाने की पुनश्च सलाह दी जाने लगी। सर्वेश्वरी के साथ वाद्यकार भी जमा हो गये, और अनेक तरह की स्तुतियों से कनक को प्रसन्न करने लगे। कनक रात्रि के सौन्दर्य की तरह इन सबकी आँखों से ओझल हो गयी, रही केवल गायिका-नायिका कनक। अपनी तमाम चन्द्रिकाओं के साथ बादलों की आड़ से ज्योत्स्ना एक-दूसरे ही लोक में पहुँच गयी थी, यहाँ उसकी छाया-मात्र रह गयी थी।

कनक तार भिजवा चुकी थी। चलते समय इनकार न सकी। सर्वेश्वरी कुछ देर तक कैथरिन की प्रतीक्षा करती रही, पर जब गाड़ी के लिए सिर्फ आधा घण्टा समय रह गया, तब परमात्मा को मन-ही-मन स्मरण कर मोटर पर बैठ गयी। कनक भी बैठ गयी। कनक समझ गयी, कैथरिन के न आने का कारण उस रोज का जवाब होगा।

कनक और सर्वेश्वरी को फर्स्ट क्लास का किराया मिला था। कनक को नहीं मालूम था कि कभी कुँवर साहब को वह इतनी तेज निगाह से देख चुकी है कि देखते ही पहचान लेगी। सर्वेश्वरी भी न जानती थी कि कुँवर साहब के आदमी कभी उसके मकान पर आकर लौट गये थे वही कुँवर साहब बालिग होकर अब राजा साहब के आसन पर लाखों प्रजाओं पर शासन करेंगे।

रेल समय पर, ठीक चार बजे शाम को, विजयपुर-स्टेशन पहुँची। विजयपुर वहाँ से तीन कोस था, पर स्टेशन का नाम विजयपुर ही रक्खा गया था। राजा साहब—वर्तमान राजा साहब के पिता—ने स्टेशन का यही नाम रखवाने के लिए बड़ी लिखा-पढ़ी की थी। कुछ रुपये भी दिये थे। कम्पनी तो उन्हीं के नाम से स्टेशन कर देना चाहती थी, पर राजा साहब को कम्पनी की माँगी हुई रकम देना मंजूर न था। वह पुराने विचारों के मनुष्य थे। रुपये को नाम से अधिक महत्त्व देते थे। कहते हैं, एक बार स्वाद की बातचीत हो रही थी, तो उन्होंने कहा था कि बासी दाल में सरसों का तेल डालकर खाय, तो ऐसा स्वाद और किसी सालन में नहीं मिलता। वह नहीं रहे, पर गरीबों में उनकी यह कीर्ति-कथा रह गयी थी।

स्टेशन पर कनक के लिए कुँवर साहब ने अपनी मोटर भेज दी थी। सर्वेश्वरी के लिए विजिटर्स कार और उसके आदमियों के लिए एक लारी।

तार पाने के पश्चात् अपने कर्मचारियों में कुँवर साहब ने कनक की बड़ी तारीफ की थी, जिससे 6-7 कोस के इर्द-गिर्द एक ही दिन में खबर फैल गयी कि कलकत्ते की मशहूर तवायफ आ रही है, जिसका मुकाबला हिन्दोस्तान की कोई भी गानेवाली नहीं कर सकती। आज दो ही बजे से तमाम गाँवों के लोग एकत्र होने लगे थे। आज से ही महफिल शुरू होनेवाली थी।

कनक माता के साथ ही विजिटर्स कार पर बैठने लगी, तो एक सिपाही ने कहा, "कनक साहबा के लिए महाराज ने अपनी मोटर भेजी है।"

"तुम उस पर बैठ जाओ।" सर्वेश्वरी ने कहा।

"नहीं, इसी पर चलूँगी।"

"यह क्या। हम जैसा कहें, वैसा कीजिए।" सिपाही ने कहा।

कनक उठकर राजा साहब की मोटर पर चली गयी। ड्राइवर कनक को ले चला। सर्वेश्वरी की मोटर खड़ी रही। कहने पर भी ड्राइवर "चलते हैं, चलते हैं।" कहकर इधर-उधर करता रहा। कभी पानी पीता, कभी पान खाता, कभी सिगरेट सुलगाता। सर्वेश्वरी का कलेजा काँपने लगा। शंका की अनिमेष दृष्टि से कनक की मोटर की तरफ ताकती रही। मोटर अदृश्य हो गयी।

कनक भी पहले घबरायी, पर दूसरे ही क्षण सँभल गयी। एक अमोघ मन्त्र जो उसके पास था, वह अब भी है, उसने सोचा। रही शरीर की बात, इसका सदुपयोग, दुरुपयोग भी उसके हाथ में है। फिर शंका किस बात की ? जिसका कोई लक्ष्य ही न हो, उसे किसी भी प्रगति का विचार ही क्या ?

कनक निस्त्रस्त एक बगल पीछे की सीट पर बैठी थी। मोटर उड़ी जा रही थी। ड्राइवर को निश्चित समय पर कुँवर साहब के पास पहुँचना था। भावी के दृश्य कनक के मन को सजग कर रहे थे, पर उसका हृदय बैठ चुका था। अब उसमें उत्साह न रह गया था। रास्ते के पेड़ों, किनारे खड़े हुए आदमियों को देखती, सब-कुछ अपरिचित था। हृदय की शून्यता बाहर के अज्ञात शून्य से मिल जाती। मार्ग पार हो रहा था। आगे क्या होगा, उसकी मा उसके साथ क्यों नहीं आने पायी, आदि प्रश्न मन में उभरते, और फिर डूब जाते थे। जो एक निरन्तर मरोड़ उसके हृदय में थी, उससे अधिक प्रभाव ये न डाल पा रहे थे।

सहसा उसकी तमाम शून्यता एकबारगी भर गयी। हृदय से आँखों तक पिचकारी की तरह स्नेह का रंग भर गया -- उसने देखा, रास्ते के किनारे राजकुमार खड़ा है। हृदय उमड़कर फिर बैठ गया- -अब यह मेरे नहीं हैं।

दर्शन के बाद मोटर एक फर्लांग बढ़ गयी। दूसरे, प्रेम के दबाव से वह कुछ कह भी न सकी। राजकुमार खड़ा-खड़ा देखता रहा। कनक ने दो बार फिर-फिर-कर देखा। राजकुमार को बड़ी लज्जा लगी, मानो उसी के कलंक की मूर्ति सहस्रों इंगितों से कनक के द्वारा उसके अपयश की घोषणा कर रही थी।

राजकुमार बिलकुल सादी वेष-भूषा में था। गाना सुनने के लिए जा रहा था, दूसरों के मत से; अपने मत से कनक को तारा से मिलाने। तारा ने जब से कहा

कि गलती तुम्हारी है, तब से कनक को पाने के लिए उसके दिल में पुनः लालसा का अंकुर फूटने लगा था, पर फिर अपनी प्रतिज्ञा याद कर हताश हो जाता। कनक से मुलाकात तो हुई, दो बार उसने फिर-फिरकर देखा भी। क्या वह अब भी मुझे चाहती है? वह राजा साहब के यहाँ जा रही है। मुमकिन है, मुझे रोब दिखलाया हो। मैं क्या कहूँगा? न, लौट जाऊँ, कह दूँ, यह मुझसे न होगा। लौटकर कलकत्ते जायगी, तब जो बातचीत करना चाहें, कर लीजियेगा।

अनेक हर्ष और विषाद की तस्वीरों को देखता हुआ, आशा और नैराश्य के जाल में उलझा, राजकुमार विजयपुर की ही तरफ जा रहा था। घर लौटने की इच्छा प्रबल बाधा की तरह मार्ग रोककर खड़ी हो जाती, पर भीतर न-जाने एक और कौन थी, जिसकी दृष्टि से उसे हिम्मत बँधती। बाधा के रहने पर भी अज्ञात पदक्षेप उधर ही हो रहे थे। ज्यादा जोश में आने पर राजकुमार भूल जाता था, कुछ समझ नहीं सकता था कि कनक से आखिर वह क्या कहेगा। बेहोशी के वक्त, कल्पना के लोक में, तमाम सृष्टि उसके अनुकूल हो जाती—कनक उसकी, छाया-लोक उसके, बाग-इमारत, आकाश-पृथ्वी—सब उसके। उसके एक-एक इंगित पर कनक उठती-बैठती, जैसे कभी तकरार हुई ही नहीं, कभी हुई थी, इसकी भी याद नहीं। राजकुमार इसी द्विधा में धीरे-धीरे चला जा रहा था।

पीछे से एक मोटर और आ रही थी। यह सर्वेश्वरी की मोटर थी। कनक जब चली गयी, तब सर्वेश्वरी को ज्ञात हुआ कि उसने गलती की। वहाँ सहायक कोई न था। दूसरा उपाय भी न था। कनक की रक्षा के लिए वह उतावली हो रही थी। इसी समय उसकी दृष्टि राजकुमार पर पड़ी। उसने हाथ जोड़ लिये, फिर बुलाया। राजकुमार समझ गया, डेरे पर मिलने के लिए इशारा किया। हृदय में आशा की समीर बह चली। पैर कुछ तेजी से उठने लगे।

कनक की मोटर एकान्त बँगले के द्वार पर आ ठहर गयी। यहाँ कुँवर साहब अपने कुछ घनिष्ठ मित्रों के साथ कनक की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक अर्दली कनक को उतारकर कुँवर साहब के बँगले में ले गया।

कुँवर साहब का नाम प्रतापसिंह था, पर थे बिलकुल दुबले-पतले। इक्कीस वर्ष की उम्र में ही हाथ-पैर सुखी डाली की तरह, मुँह सीप की तरह पतला हो गया था। आँखों के लाल डोरे अत्यधिक अत्याचार का परिचय दे रहे थे। राजा साहब ने उठकर कनक से हाथ मिलाया, और एक कुरसी की तरफ बैठने के लिए इशारा किया। वह बैठ गयी। देखा, वहाँ जितने आदमी थे, सब आँखों-ही-आँखों में इशारे कर रहे थे। देखकर उसे बड़ा भय लगा। उधर अनर्गल शब्दों के अव्यर्थ बाण, एक ही लक्ष्य, सातों महारथियों ने निश्शंक होकर छोड़ना प्रारम्भ कर दिये, "उस रोज जब हम आपके यहाँ गये थे, पता नहीं, आपकी बाँहें किसके गले में थीं।" इसी तरह के और भी चुभते हुए व्यंग्य-वाक्य।

कनक को आज तक ऐसे व्यंग्य सुनने का मौका न पड़ा था। यहाँ सुनकर चुपचाप सह लेने के सिवा दूसरा उपाय भी न था, और इतनी सहनशीलता भी उसमें न थी। कुँवर साहब जिस तीखी कामुक दृष्टि से एकटक देखते हुए इस मधुर आलाप का आनन्द ले रहे थे, कनक के रोएँ-रोएँ से घृणा का जहर निकल रहा था।

"मेरी मा अभी तक नहीं आयी ?" कुँवर साहब की तरफ मुखातिब होकर कनक ने पूछा।

कुँवर साहब के कुछ कहने से पहले ही परिषद्-वर्ग बोल उठे, "अच्छा, अब मा की याद की जायगी ?"

सब अट्टहास हँसने लगे।

कनक सहम गयी। उसने निश्चय कर लिया कि अब यहाँ से निस्तार पाना कठिन है। याद आयी, एक बार राजकुमार ने उसे बचाया था; वह राजकुमार आज भी है, पर उसने उस उपकार का उसे जो पुरस्कार दिया, उससे उसे नफरत है, इसलिए आज वह उसकी विपत्ति का सहायक नहीं, केवल दर्शक होगा। वह पहुँच से दूर, अकेला है। यहाँ वह पहले की तरह होता भी, तो उसकी रक्षा न कर सकता। कनक इसी तरह सोच रही थी कि कुँवर साहब ने कहा, "आपकी मा के लिए दूसरी जगह ठीक की गयी है, यहाँ सिर्फ आप ही रहेंगी।"

कनक के होश उड़ गये। रास्ता भूली हुई दृष्टि से चारो तरफ देख रही थी। तभी कुँवर साहब ने कहा, "आपको महफिल लगने पर ले जाने के लिए यह मोटर है। आप किसी तरह घबराइए मत। यहाँ एकान्त है। आपको आराम रहेगा। इसी ख्याल से आपको यहाँ लाया गया है। चारो तरफ से जल से भीगी हवा आ रही है। छोटी-छोटी नावें भी हैं। आप जब चाहें, जल-विहार कर सकती हैं। भोजन भी आपके लिए यहीं आ जायगा।"

"आपको कोई तकलीफ न होगी—खुक—खुक—खुक—खुक—खो—ओ—ओ—खो—ओ—", मुसाहबों का अट्टहास गूँज उठा।

"मुझे महफिल में जाने से पहले अपनी मा के पास जाना होगा, क्योंकि पेशवाज बगैरा उन्हीं के पास हैं।"

'अच्छा, तो घण्टे-भर पहले चली जाइएगा।" कुँवर साहब ने मुसाहिबों की तरफ देखकर कहा।

"रास्ते की थकी हुई हूँ, माफ फर्माएँ, कुछ देर आराम करना चाहती हूँ। आपके दर्शनों से कृतार्थ हो गयी।"

"कमरे में पलँग बिछा है, आराम कीजिए।"

कुँवर साहब की इस श्रुति मधुर स्तुति में जो लालसा छिपी हुई थी, कनक उसे ताड़ न सकी। शायद अनभ्यास के कारण, पर उसका जी इतनी ही देर में हद से ज्यादा ऊब गया था। उसने स्वाभाविक ढंग से कहा, "यहाँ मैं आराम न कर सकूँगी। नयी जगह है। मुझे मेरी मा के पास भेज दीजिए। फिर जब आपकी आज्ञा होगी, चली आऊँगी।"

कुँवर साहब ने कनक को भेज दिया।

सर्वेश्वरी वहाँ ठहरायी गयी, जहाँ बनारस, लखनऊ, आगरे की और-और तवायफें भी ठहरी थीं। सर्वेश्वरी का स्थान सबसे ऊँचा, सजा हुआ तथा सुखद था। सभी तवायफों पर पहले ही से उसका रोब गालिब था। वहाँ कनक को न देख सर्वेश्वरी अपने को जाल में फँसी जानकर बड़ी व्याकुल हुई। और भी जितनी तवायफें थीं, सबसे यह समाचार कहा। सभी त्रस्त हो रही थीं। उसी समय उदास

कनक को लेकर मोटर पहुँची। सर्वेश्वरी की जान में जान आयी। अन्य तवायफें आँखें फाड़-फाड़कर उसके अपार रूप पर विस्मय प्रकट कर रही थीं, और इस तरह का खतरा साथ में रखकर भी खतरे से बची रहने के खयाल पर, "बिस्मिल्ला, तोबा, अल्लाह ताला ने आपको कैसी अक्ल दी···इतना जमाना देखकर भी आपको पहले नहीं सूझा।" आदि-आदि सहानुभूति के शब्दों से अभिनन्दित कर रही थीं।

सर्वेश्वरी आशा कर रही थी कि कनक अपनी दुःख-कथा कहेगी, पर वह उस प्रसंग पर कुछ बोली ही नहीं। चुपचाप आकर माता के बिस्तरे पर बैठ गयी। अन्य कई अपरिचित तवायफें परिचय के लिए पास आ, घेरकर बैठ गयीं। मामूली कुशल-प्रश्न होते रहे। सबने अनेक उपायों से कनक के एकान्तवास का हाल जानना चाहा, पर वह टाल गयी, "कुछ नहीं, सिर्फ मिलने के लिए कुँवर साहब ने बुलवाया था।"

वह भी एकान्त स्थान था। गढ़ के बाहर एक बड़ा-सा बँगला बाग के बीच में था। इनके रहने के लिए खाली कर दिया गया था। चारो तरफ हजारों किस्म के सुगन्धित फूल लगे हुए थे। बीच-बीच में पक्की, टेढ़ी, सर्प की गति की नकल पर, राहें कटी हुई थीं।

राजकुमार भटकता-फिरता-पूछता बाग के फाटक पर आया। एक बार तो जी में आया कि भीतर जाय, पर लज्जा से उधर ताकने की भी हिम्मत न होती थी। सूर्यास्त हो चुका था। गोधूलि का समय था। गढ़ के द्वार पर खड़ा रहना भी उसे अपमानजनक जान पड़ा। वह बाग में घुसकर एक बेंच पर बैठ गया, और जेब से एक सिगरेट निकालकर पीने लगा। वह जिस जगह बैठा था, वहीं से, कनक के सामने ही, एक झरोखा था, और उससे वहाँ तक नजर साफ चली जाती थी, पर अँधेरे के कारण बाहर का आदमी नहीं देख सकता था।

कनक वर्तमान समय की उलझी हुई ग्रन्थि खोलने के लिए मन-ही-मन सहस्रों बार राजकुमार को याद कर चुकी थी, और हर प्रत्युत्तर में उसे निराशा ही मिलती, "राजकुमार यहाँ क्यों आयेगा?"

कनक की माता भी उसकी फिक्र में थी। कारण, वह जानती थी कि किसी भी अनिश्चित कार्य के लिए दबाव पड़ने पर उसकी कन्या जान पर खेल जायेगी। वह कनक के लिए दीन-दुनिया सबकुछ छोड़ सकती थी।

राजकुमार के हृदय में लज्जा, अनिच्छा, घृणा, प्रेम, उत्सुकता, कई विरोधी गुण थे, जिनका कारण बहुत कुछ उसकी प्रकृति थी, और थोड़ा-सा उसका पूर्व संस्कार तथा भ्रम। सन्ध्या हो गयी, नौकर भोजन पकाने में लगे। कमरों की बत्तियाँ जल गयीं। बाहर के लाइट-पोस्ट भी जला दिये गये। राजकुमार की बेंच एक लाइट-पोस्ट के नीचे थी। बत्ती जलानेवाला राज्य का मशालची था। उसने राजकुमार को तबलची आदि समझकर कोई पूछताछ न की। कन्धे की सीढ़ी पोस्ट से लगाकर, बत्ती जलाकर, राजकुमार की तरफ से घृणा से मुँह फेर, उस तबलची से वह मशालची होने पर भी अपने धर्म में रहने के कारण कितना बड़ा है, सिर झुकाये हुए इसका निर्णय करता हुआ चला गया। राजकुमार को दुबारा देखने पर वह शायद ही पहचानता, घृणा के कारण उसकी नजर राजकुमार पर

इतनी कम ठहरी थी।

प्रकाश के कारण अब बाहर से राजकुमार भी भीतर देख रहा था। कनक को उसने एक बार, दो बार, कई बार देखा। राजकुमार के हृदय के भाव उसके आँसुओं में झलक रहे थे। मन उसके विशेष आचरणों की आलोचना कर रहा था।

उस समय कनक की अचानक उस पर निगाह पड़ी। सर्वांग काँप उठा। इतना सुख उसे कभी नहीं मिला था। राजकुमार से मिलने के समय भी नहीं। फिर देखा। आँखों की प्यास बढ़ती ही गयी। उत्कण्ठा की तरंग उठी। वह भी उठकर खड़ी हो गयी, और राजकुमार की तरफ चली। कनक को राजकुमार ने देखा। समझ गया, वह उसी से मिलने आ रही है।

राजकुमार को बड़ी लज्जा लगी—कनक के वर्तमान व्यवसाय पर और उससे अपनी घनिष्ठता के कारण। वह हिम्मत करके भी उस जगह, उजाले में, न रह सका। तारा से कनक को यदि न मिलाना होता, तो शायद कनक को इस परिस्थिति में देखकर वह एक क्षण भी वहाँ न ठहरता।

कनक ने देखा, राजकुमार एक अँधेरे कुंज की तरफ धीरे-धीरे बढ़ रहा है। कनक भी उधर ही चली। इतने समय की तमाम बातें एक ही साथ निकलकर हृदय और मस्तिष्क को मथ रही थीं। राजकुमार के पास पहुँचते ही कनक को चक्कर आ गया। उसे जान पड़ा कि वह गिर जायगी। बचाव के लिए स्वभावत: एक हाथ उठकर राजकुमार के कन्धे पर पड़ा। अज्ञात-चालित राजकुमार ने उसे आपृष्ठ कमर एक हाथ से लपेटकर थाम लिया। कनक अपनी देह का तमाम भार राजकुमार पर रखे आराम करने लगी, जैसे अब तक की की हुई तपस्या का फल भोग कर रही हो। राजकुमार थामे खड़ा रहा।

"तुमने मुझे भुला दिया, मैं अपना अपराध भी न समझ सकी।"

तकिए के तौर से राजकुमार के कन्धे पर कपोल रक्खे हुए अधखुली, सरल, सप्रेम दृष्टि से कनक उसे देख रही थी। इतनी मधुर आवाज कानों के इतने नजदीक से राजकुमार ने कभी नहीं सुनी थी। उसके तमाम विरोधी गुण उस ध्वनि के तत्त्व में डूब गये। उसे तारा की याद आयी। वह उसकी तमाम बातों को परस्पर जोड़ने लगा। यह वही कनक है, जिस पर उसे सन्देह था। कुंज में बाहर की बत्तियों का प्रकाश क्षीण होता हुआ भी पहुँच रहा था। उसने एक बिन्दी कनक के मस्तक पर लाल-लाल चमकती हुई देखी। सन्देह हुआ कि उसके साथ कनक का विवाह कब हुआ! द्विधा ने मन के विस्तार को संकुचित कर एक छोटी-सी सीमा में बाँध दिया। प्रतिज्ञा जाग उठी, मानो किसी ने कई कोड़े कस दिये हों। कलेजा काँप उठा। भीनी-भीनी हवा बह रही थी। कनक ने सुख से पलकें मूँद लीं। निर्वाक सचित्र राजकुमार को अपनी रक्षा का भार सौंपकर विश्राम करने लगी। राजकुमार ने कई बार पूछने का इरादा किया, पर हिम्मत न हुई—कितनी अशिष्ट, अप्रासंगिक बात!

राजकुमार कनक को प्यार करता था, पर उस प्यार का रंग बाहरी आवरणों से दबा हुआ था, वह समझकर भी नहीं समझ पाता था। इसका बहुत कुछ कारण कनक के इतिहास के सम्बन्ध में उसका अज्ञान था। बहुत कुछ उसके पूर्व-संचित

संस्कार थे। उसके भीतर एक इतनी बड़ी प्रतिज्ञा थी, जिससे बड़े-बड़े शब्द दूसरों के दिल में त्रास पैदा करनेवाले थे, जिसका उद्देश्य जीवन की महत्ता थी, प्रेम नहीं। प्रेम का छोटा-सा चित्र वहाँ टिक ही नहीं पाया था, इसलिए प्रेम की छाया में पैर रखते ही चौंक पड़ता था। अपने सुख की कल्पना कर दूसरों की निगाहों में अपने को बहुत छोटा देखने लगता था, इसलिए उसका प्यार कनक के प्यार के सामने हल्का पड़ जाया करता था---पानी के तेल की तरह उसमें रहकर भी उससे जुदा रहता था, ऊपर-ही-ऊपर तैरता फिरता था। अनेक प्रकार की शंकाएँ जाग उठतीं, दोनों की आत्मा की ग्रन्थि को एक से खुला कर दोनों को जुदा कर देती थीं।

इसी अवस्था में कुछ देर बीत गयी। थकी हुई कनक प्रिय की बाँहों में विश्राम कर रही थी, पर हृदय में जागती थी। अपने सुख को आप ही अकेली तौल रही थी। उसी समय राजकुमार ने कहा, "बहूजी ने तुम्हें बुलाया है, इसीलिए आया था।"

कनक की आत्मा में अव्यक्त प्रतिध्वनि हुई, "नहीं तो न आते !" फिर एक जलन पैदा हुई। शिराओं में तड़ित् का तेज प्रवाह बहने लगा। कितनी असहृदय बात ! कितनी नफरत ! कनक राजकुमार को छोड़, अपने ही पैरों सँभलकर खड़ी हो गयी। चमकीली निगाह से एक बार देखा। पूछा, "नहीं तो न आते ?"

इस उत्तर की राजकुमार को आशा न थी। विस्मयपूर्वक खड़ा कनक को एक विस्मय की ही प्रतिमा के रूप में देखता रहा। अपने वाक्य के प्रथम अंश पर ही उसका ध्यान था, पर कनक को राजकुमार की बहूजी की अपेक्षा राजकुमार की ही ज्यादा जरूरत थी, इसलिए उसने दूसरे वाक्य को ही प्रधान माना। राजकुमार के भीतर जितना दुराव कुछ विरोधी गुणों के कारण कभी-कभी आ जाया करता था, वह उसके दूसरे वाक्य में अच्छी तरह खुल रहा था; पर उसकी प्रकृति के अनुकूल होने के कारण उस-जैसा विद्वान् मनुष्य भी उस वाक्य की फाँस नहीं समझ सका। कनक उसकी दृष्टि में प्रिय अभिनेत्री, केवल संगिनी थी।

"तुम्हीं ने कहा था, याद तो होगा, तुम मेरी कविता हो। इसका जवाब भी, जो मैंने दिया था, याद होगा।"

लौटकर कनक डेरे की तरफ चली। उसके शब्द राजकुमार को पार कर गये। वह खड़ा देखता और सोचता रहा, 'कब, कहाँ गलती से एक बात निकल गयी, उसका इतना बड़ा ताना ! मैं साहित्य की बुद्धि के विचार से अभिनय किया करता हूँ। स्टेज की मित्रता मानकर इनका बाँकपन (अहह, कैसा बल खाती हुई जा रही है), नाजोअदा, नजाकत बरदास्त कर लेता हूँ। आयी हैं रुपये कमाने, ऊपर से मुझ पर गुस्सा झाड़ती हैं। न-जाने किसके कपड़ों का बोझ गधे की तरह तीन घण्टे तक लादे खड़ा रहा। काम की बात कही नहीं कि आँखें फेर लीं, मचलकर चल दीं। आखिर जात कौन है। अब मैं पैरों पड़ता फिरूँ ? न बाबा, इतनी कड़ी मिहनत मुझसे न होगी। बहूजी से कह दूंगा, यह काम मेरे मान का नहीं। उसे भेजो, जिसे मनाने का अभ्यास हो।'

राजकुमार धीरे-धीरे बगीचे के फाटक की तरफ चला। निश्चय कर लिया कि सीधे बहूजी के पास ही जायगा। सर्वेश्वरी भी बड़ी देर तक कनक को न देख खोज रही थी। बाहर आ रही थी कि उससे मुलाकात हुई।

"अम्मा ! वह आये हैं, और आये हैं, इसलिए कि उनकी बहूजी मुझसे मिलना चाहती हैं।" कनक ने सरोष कहा, "मैं चली आयी, उधर कुँवर साहब के रंग-ढंग भी मुझे बहुत बुरे मालूम दे रहे थे। अम्मा, मुझे तो देखकर डर लग रहा था। ऐसा देखता था, जैसे खा जायगा मुझे। छोड़ता ही न था। जब मैंने कहा, अभी अपनी मा से मिल लूँ, फिर जब आप याद करेंगे, मिल जाऊँगी, तब आने दिया।"

"तुमने कुछ कहा भी राजकुमार से ?" सर्वेश्वरी ने पूछा।

"नहीं। मुझ पर उन्हें विश्वास नहीं, अम्मा !" कनक की आँखें छलछला आयीं।

"अभी बाग में हैं ?" सर्वेश्वरी ने कुछ सोचते हुए पूछा।

"थे तो।"

"अच्छा, जरा मैं भी मिल लूँ।"

कनक खड़ी-खड़ी देखती रही। सर्वेश्वरी बाग की तरफ चली। राजकुमार फाटक पार कर चुका था।

"भैया, कहाँ जाते हो ?" घबरायी हुई सर्वेश्वरी ने पुकारा।

"घर।" वहीं से, बिना रुके हुए, रुखाई से राजकुमार ने कहा।

"तुम्हारा घर यहीं पर है ?" बढ़ती हुई सर्वेश्वरी ने आवाज दी।

"नहीं, मेरे दोस्त का घर है।" राजकुमार और तेज चलने लगा।

"भैया, जरा ठहर जाओ। सुन तो लो।"

"अब माफ कीजिए, इतना बहुत हुआ।"

सामने से एक आदमी आता हुआ देख पड़ा। सर्वेश्वरी रुक गयी। भय हुआ, बुला न सकी। राजकुमार पेड़ों के अँधेरे में अदृश्य हो गया।

"कुँवर साहब ने महफिल के लिए जल्द बुलाया है।" उस आदमी ने कहा।

"अच्छा।" सर्वेश्वरी की आवाज क्षीण थी।

"आप लोगों ने खाना न खाया हो, तो जल्दी कीजिए।"

सर्वेश्वरी डेरे की तरफ चली। आदमी दूसरी तवायफों को सूचना देने चला।

"क्या होगा, अम्मा ?" कनक ने त्रस्त निगाह से देखते हुए पूछा।

"जो भाग्य में होगा, हो लेगा। तुमसे भी नहीं बना।"

कनक सिर झुकाये खड़ी रही। और-और तवायफें भोजन-पान में लगी हुई थीं। सर्वेश्वरी थोड़ा-सा खाना लेकर आयी, और कनक से खा लेने के लिए कहा। स्वयं भी थोड़ा-सा जल-पान कर तैयार होने लगी।

चौदह

राजकुमार बाहर, एक रास्ते पर, कुछ देर खड़ा सोचता रहा। दिल को सख्त चोट लगी थी। बहू से नाराज था। सोच रहा था, चलकर खूब फटकारूँगा। रात एक

पहर बीत चुकी थी, भूख लग रही थी। बहू के मकान की ओर चला, पर दिल पीछे खींच रहा था, तरह-तरह से आरजू-मिन्नत कर समझा रहा था, 'बहुत दूर चलना है।' बहू का मकान वहाँ से मील ही भर के फासले पर था, 'अब वहाँ खाना-पीना हो गया होगा। सब लोग सो गये होंगे।'

राजकुमार को दिल की यह तजवीज पसन्द आयी।

रास्ते में एक पुल मिला। वह वहीं बैठकर फिर सोचने लगा। कनक उसके शरीर में प्राणों की ज्योति की तरह समा गयी थी, पर बाहर से वह बराबर उससे लड़ता रहा। 'कनक स्टेज पर नाचेगी, गायेगी, दूसरों को खुश करेगी, खुद भी प्रसन्न होगी, और मुझसे ऐसा जाहिर करती है, गोया दूध की धुली हुई है, इन सब कामों में दिल से उसकी बिलकुल दिलचस्पी नहीं और वह ऐसी कनक का महफिल में बैठकर गाना सुनना चाहता है!' राजकुमार के रोएँ-रोएँ से नफरत की आग निकल रही थी, जिससे तपकर कनक की कल्पना-मूर्ति उसे और भी चमकती हुई, स्नेहमयी बनकर घेर लेती। हृदय उमड़कर उसे स्टेज की तरफ चलने के लिए प्रेरित करता। उसके तमाम विरोधी प्रयत्न विफल हो रहे थे।

अन्ततः उसने यन्त्रवत् हृदय की इस सलाह को मान लिया, और इसके अनुकूल युक्तियाँ भी निकाल लीं। सोचा, 'अब बहुत देर हो गयी है, बहू सो गयी होंगी। अच्छा हो, यहीं चलकर कहीं जरा जलपान कर लूँ, और रात महफिल के एक कोने में बैठकर पार कर दूँ। कनक मेरी है कौन? फिर मुझे इतनी ग्लानि क्यों? जिस तरह मैं स्टेज पर जाया करता हूँ, उसी तरह यहाँ भी बैठकर बारीकियों की परीक्षा करूँगा। कनक के सिवा और भी कई तवायफें हैं। उनके सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं जानता। उनके संगीत से लेने लायक मुझे कुछ मिल सकता है।'

बस, निश्चय हो गया। फिर बहू का मील-भर दूर मकान मंजिलों दूर सूझने लगा। राजकुमार लौट पड़ा।

चौराहे पर कुछ दीपक जल रहे थे, उसी ओर चला। कई दूकानें थीं, पूड़ियों की भी एक दूकान थी। उसी तरफ बढ़ा। सामने कुरसियाँ पडी थीं, बैठ गया। आराम की एक ठण्डी साँस ली। पाव-भर पूड़ियाँ तोलने के लिए कहा।

भोजन के पश्चात् हाथ-मुँह धोकर दाम दे दिये। इसी समय गढ़ के भीतर कुँवर साहब की सवारी का डंका सुनायी पड़ा। दुकानदार लोग चलने के लिए व्यग्र हो उठे। उन्हीं से उसे मालूम हुआ कि अब कुँवर साहब महफिल में जा रहे हैं। दुकानदार अपनी-अपनी दूकानें बन्द करने लगे। राजकुमार भी भीतर से पुलकित हो उठा। एक पानवाले की दूकान से दो बीड़े लेकर खाता हुआ गढ़ की तरफ चला।

बाहर, खुली हुई जमीन पर, एक विशाल मण्डप बना था। एक तरफ स्टेज था, तीन तरफ से गेट। हर पर संगीन-बन्द सिपाही पहरे पर था। भीतर बड़ी सजावट थी। विद्युदाधार मँगवाकर कुँवर साहब ने भीतर और बाहर बिजली की बत्तियों से रात में दिन कर रक्खा था।

राजकुमार ने बाहर से देखा, स्टेज जगमगा रहा था। फुटलाइट का प्रकाश

कनक के मुख पर पड़ रहा था, जिससे रात में उसकी सहस्रोंगुणा शोभा बढ़ गयी थी। गाने की आवाज आ रही थी। लोग बातचीत कर रहे थे कि आगरेवाली गा रही है। राजकुमार ने बाहर ही से देखा, तवायफें दो कतारों में बैठी हुई हैं। दूसरी कतार की पहली तवायफ गा रही है। इस कतार में कनक ही सबके आगे थी, बगल में उसकी माता। लोग मन्त्र-मुग्ध होकर रूप और स्वर की सुधा पी रहे थे, अचंचल आँखों से कनक को देख रहे थे। कनक भी दीपक की शिखा की तरह स्थिर बैठी थी। यौवन की उस तरुण ज्योति की तरफ कितने ही पतिंगे बढ़ रहे थे। कुंवर साहब एकटक उसे ही देख रहे थे।

राजकुमार को बाहर-ही-बाहर घूमते हुए देखकर एक ने कहा, "बाबूजी, भीतर जाइए, आपके लिए कोई रोक थोड़े ही है। रोक तो हम लोगों के लिए है, जिनके पास मजबूत कपड़े नहीं। जब कुँवर साहब चले जायेंगे, तब पिछली रात को कहीं मौका लगेगा।"

राजकुमार को हिम्मत हुई। एक गेट से भीतर घुसा। सभ्य वेश देख सिपाही ने रास्ता छोड़ दिया। पीछे जगह बहुत खाली थी, एक जगह बैठ गया। उसे आते हुए कनक ने देख लिया। वह बड़ी देर से, जब से स्टेज पर आयी, उसे खोज रही थी। कोई भी नया आदमी आता, तो उसकी आँखें जाँच करने के लिए बढ़ जाती थीं।

कनक राजकुमार को देख रही थी। राजकुमार ने भी कनक को देखा, और समझ गया कि उसका आना कनक को ज्ञात हो गया है, फिर भी आँखें फेरकर एक ओर बैठ गया। कनक कुछ देर तक अचंचल दृष्टि से देखती ही रही। मुख पर किसी प्रकार का विकार न था। राजकुमार के विचार को जैसे वह समझ रही थी, पर चेष्टाओं में किसी प्रकार की भावना न थी।

क्रमशः दो-तीन गाने हो गये। दूसरी तरफवाली कतार खत्म होने पर थी। एक-एक संगीत की बारी थी। कारण, कुँवर साहब शीघ्र ही सबका गाना सुनकर चले जानेवाले थे। इधर की कतार में कनक का पहला नम्बर था, फिर उसकी माता का। कुँवर साहब उसके गाने के लिए उत्सुक हो रहे थे, और अपने पास के मुसाहिबों से पहले ही से उसके मँजे हुए गले की तारीफ कर रहे थे, और इस प्रतियोगिता में सबको वही परास्त करेगी, इसका निश्चय भी दे रहे थे। कुँवर साहब के जल्द उठ जाने का एक और कारण था, और इस कारण में उनके साथ कनक का भी बँगले पर जाना निश्चित था। इसकी कल्पना कनक ने पहले ही कर ली थी, परन्तु मुक्ति का कोई उपाय न सोच सकी थी। कोई युक्ति थी भी नहीं। एक राजकुमार था, अब उससे वह निराश हो चुकी थी। राजकुमार के प्रति कनक के मन में क्रोध कम न था।

फर्श बिछा था। ऊपर इन्द्र-धनुषी रंग के रेशमी थानों को और बीच में सोने की चित्रित चर्खी में उन्हीं कपड़ों को पिरोकर नये ढंग की चाँदनी बनायी गयी थी। चारो तरफ लोहे के लट्ठे गड़े थे, उन्हीं के सहारे मण्डप खड़ा था। लोहे की उन कड़ियों में वही कपड़े लिपटे थे। दो-दो कड़ियों के बीच एक तोरण उन्हीं कपड़ों से सजाया गया था। मण्डप 100 हाथ से भी लम्बा और 50 हाथ से भी चौड़ा था

लम्बाई की सीध में, सटा हुआ, पर मण्डप से अलग, स्टेज था—स्टेज ही की तरह सजा हुआ, फुट-लाइटें जल रही थीं, साजिंदे विंग्स् के भीतर बैठे साज बजा रहे थे।

कुँवर साहब की गद्दी के दो-दो हाथ के फासले से सोने की कामदार छोटी रेलिंग चारो तरफ लगी थी। दोनो बगल गुलाब-पाश, इत्रदान, फूलदान आदि सजे हुए थे। गद्दी पर रेशमी मोटी चादर बिछी थी, चारो तरफ एक-एक हाथ सुनहला काम था, और पन्ने तथा हीरे की कन्नियाँ जड़ी हुई थीं, दोनो बगल दो छोटे-छोटे कामदार मखमली तकिए, वैसा ही पीठ की तरफ वड़ा गिरदा। कुँवर साहब की दाहिनी तरफ उनके परिवार के लोग थे, और बायीं तरफ राज्य के अफसर। पीछे आनेवाले सभ्य दर्शक तथा राज्य के पढ़े-लिखे और रईस लोग। राजकुमार यहीं बैठा था।

कनक उठ गयी। राजकुमार ने देखा। भीतर ग्रीन-रूम में जाकर उसने कुँवर साहब के नाम एक चिट्ठी लिखी, और अपने जमादार को खूब समझाकर चिट्ठी दे दी। इस काम में उसे पाँच मिनट से अधिक समय न लगा। वह फिर अपनी जगह आकर बैठ गयी।

जमादार ने चिट्ठी कुँवर साहब के अर्दली को दी। अर्दली से कह भी दिया कि जरूरी चिट्ठी है। छोटी बाईजी ने जल्द पेश करने के लिए कहा है।

कुँवर साहब के रंग-ढंग वहाँ के तमाम नौकरों को मालूम हो गये थे। छोटी बाईजी के प्रति कुँवर साहब की कैसी कृपा-दृष्टि है, और परिणाम आगे चलकर क्या होगा, इसकी चर्चा नौकरों में छिड़ गयी थी। अतः उसने तत्काल चिट्ठी पेशकार को दे दी, और साथ ही जल्द पेश कर देने की सलाह भी दी।

पेशकार साहब मौका न होने के बहाने पत्र लेकर बैठे ही रहना चाहते थे, पर जब उसने बुलाकर एकान्त में समझा दिया कि छोटी बाई इस राज्य के नौकरों के लिए कोई मामूली बाईजी नहीं; यदि जल्द पत्र न गया, तो कल ही उससे तअल्लुक रखनेवालों पर बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ आ सकती हैं; उसने इशारे से सारा मतलब समझा दिया, तब पेशकार मन-ही-मन पुरस्कार की कल्पना करते हुए कुँवर साहब की गद्दी की तरफ बढ़े, और झुककर पत्र पेश कर दिया।

प्रकाश आवश्यकता से अधिक था। कुँवर साहब पढ़ने लगे। पढ़कर, विना तपस्या के वर-प्राप्ति का सुन्दर सुयोग देख खुले हुए कमल पर बैठे भौंरे की तरह प्रसन्न हो गये। पत्र में कनक ने शीघ्र ही कुँवर साहब को ग्रीन-रूम में बुलाया था।

एकाएक वहाँ से उठकर कुँवर साहब न जा सकते थे, शान के खिलाफ था। उधर गाने से तृप्ति करने की अपेक्षा ज ने की उत्सुकता प्रबल थी, अतः मुसाहबों को ही निर्णय के लिए छोड़ उठकर खड़े हो गये। पालकी लग गयी। कुँवर साहब प्रासाद चले गये।

इधर आम जनता के लिए द्वार खुल गया। सब तरह के आदमी भीतर धँस गये। महफिल ठसाठस भर गयी। अब तक दूसरी कतार का गाना खत्म हो चुका था। कनक की बारी थी। लोग सिर उठाये आग्रह से मुँह ताक रहे थे। सर्वेश्वरी ने धीरे से उसे कुछ समझाया। कनक के उस्तादों ने स्वर भरा। कनक ने एक अलाप ली, फिर गाने लगी—

"दिल का आना था कि काबू से था जाना दिल का;
ऐसे जाने से तो बेहतर था न आना दिल का।
हम तो कहते थे, मुहब्बत की बुरी हैं रस्में;
खेल समझे थे मेरी जान, लगाना दिल का।"

स्वर की तरंग से पूरी महफिल को डुबो दिया। लोगों के हृदय में एक नया स्वप्न, सौन्दर्य के आकाश के नीचे, शिशिर के स्पर्श से धीरे-धीरे पलक खोलती हुई चमेली की तरह विकसित हो गया। उसी स्वप्न के भीतर से लोग उस स्वर की परी को देख रहे थे। साधारण लोग अपने उमड़ते हुए उच्छ्वास को न रोक सके। एक तरफ से आवाज आयी, "उवाह् कनकौआ, जस सुनत रहील, तइसै हऊ राजा!"

सभ्य जन सिर झुका मुस्किराने लगे। कनक उसी धैर्य में अप्रतिभ बैठी गाती रही। एक बार राजकुमार को देखा, फिर आँखें झुका लीं।

राजकुमार कलाविद् था। संगीत का उस पर पूरा असर पड़ गया था। एक बार, जब कनक के कला-ज्ञान की याद आती, हृदय के सहस्र कण्ठों से उसकी प्रशंसा करने लगता, पर दूसरे ही क्षण उस सोने की मूर्ति में भरे हुए जहर की कल्पना उसके शरीर को जर्जर कर देती थी। चित्त की यह डावाँडोल स्थिति उसकी आत्मा को क्रमशः कमजोर करती जा रही थी, हृदय में स्थायी प्रभाव जहर का ही रह जाता। एक अज्ञात वेदना उसे क्षुब्ध कर देती थी। कनक के स्वर, सौन्दर्य, शिक्षा आदि की वह जितनी ही बातें सोचता, और ये बातें उसके मन के यन्त्र को आप ही चला-चलाकर, उसे कल्पना के अरण्य में भटकाकर निर्वासित कर देती थीं, उतनी ही उसकी व्याकुलता बढ़ जाती थी। तृष्णार्त को ईप्सित सुस्वादु जल नहीं मिल रहा था—सामने महासागर था, पर हाय, वह लवणाक्त था!

कुँवर साहब प्रासाद में पोशाक बदलकर सादे, सभ्य वेश में, कुछ विश्वासपात्र अनुचरों को साथ ले, प्रकाश-हीन मार्ग से स्टेज की तरफ चल दिये। उनके अनुचर उन्हें चारो ओर से घेरे हुए थे, जिससे दूसरों की दृष्टि उन पर न पड़े। स्टेज के बहिर्द्वार से कुँवर साहब भीतर ग्रीनरूम की ओर चले एक आदमी को साथ ले, और सबको वहीं, इधर-उधर प्रतीक्षा करने के लिए कह दिया। ग्रीनरूम से कुँवर साहब ने अपने आदमी को कनक को बुला लाने के लिए भेज दिया। खबर पा, उँगली मुँह के नजदीक तक उठा, दर्शकों को अदब दिखला सामने के विंग से भीतर चलने लगी। दर्शकों की तरफ मुँह किये विंग की ओर फिरते समय एक बार फिर राजकुमार की ओर देखा। दृष्टि नीची कर मुस्किरायी, क्योंकि राजकुमार की आँखों में वह आग थी, जिससे वह जल रही थी।

कनक ग्रीनरूम की तरफ चली। शंकित हृदय काँप उठा, पर कोई चारा न था। राजकुमार की तरफ असहाय आँखें प्रार्थना की अनिमेष दृष्टि से आप-ही-आप बढ़ गयीं, और हताश होकर लौट आयीं। कनक के अंग-अंग राजकुमार की तरफ से प्रकाश-हीन सन्ध्या में कमल के दलों की तरह संकुचित हो गये। हृदय को अपनी शक्ति की किरण देख पड़ी, दृष्टि ने स्वयं अपना पथ निश्चित कर लिया।

कनक एक विंग के भीतर सोचती हुई खड़ी हो गयी थी। चली। कुँवर साहब

ने बड़े आदर से उठकर उसका स्वागत किया।

"बैठिए।" कहकर कनक उनके बैठने की प्रतीक्षा किये बिना कुरसी पर बैठ गयी। कुँवर साहब नौकर को बाहर जाने के लिए इशारा कर बैठ गये।

कनक ने कुँवर साहब पर एक तेज दृष्टि डाली। देखा, उनके अपार ऐश्वर्य पर तृष्णा की विजय थी। उनकी आँखें उसकी दृष्टि से नहीं मिल सकीं। वे कुछ चाहती हैं, इसलिए झुकी हुई हैं। उन पर कनक का अधिकार जम गया।

"देखिए।" कनक ने कहा, "यहाँ एक आदमी बैठा है, उसको कैद कर लीजिए।"

आज्ञा-मात्र से प्रबल-पराक्रम कुँवर साहब उठकर खड़े हो गये, "कौन है?"

"आइए।" कनक आगे-आगे चली।

स्टेज के सामने के गेटों की दराज से राजकुमार को दिखाया। उसके शरीर, मुख, कपड़े, रंग आदि की पहचान कराती रही। कुँवर साहब ने अच्छी तरह देख लिया। कई बार दृष्टि पर जोर दे-देकर देखा। दूसरी कतार की तवायफें तअज्जुब की निगाह से उस मनुष्य तथा कनक को देख रही थीं। गाना हो रहा था।

कनक को उसकी इच्छा-पूर्ति से उपकृत करने के निश्चय से कुँवर साहब को उसे 'तुम' सम्बोधन करने का साहस तथा सुख मिला। कनक भी कुछ झुक गयी, जब उन्होंने कहा, "अच्छा तुम ग्रीनरूम में चलो, तब तक अपने आदमियों को बुलाकर इन्हें दिखा दूं।"

कनक चली गयी। कुंवर साहब ने दरवाजे के पास से बाहर देखा। कई आदमी आ गये। दो को साथ भीतर ले गये। उसी जगह से राजकुमार को परिचित करा दिया, और खूब समझा दिया, "महफिल उठ जाने पर एकान्त रास्ते में अलग बुलाकर वह जरूर गिरफ्तार कर लिया जाय। किसी को कानोकान खबर न हो। आपस के सब लोग उसे पहचान लें।"

कुँवर साहब के मनोभावों पर चढ़ा हुआ भेद का पर्दा कनक के प्रति किये गये उपकार की शक्ति से ऊपर उठ गया। सहस्रों दृश्य दिखायी पड़े। आसक्ति के उद्दाम प्रवाह में संसार अत्यन्त रमणीय, चिरन्तन सुखों से उमड़ता हुआ एकमात्र उद्देश्य स्वर्ग देख पड़ने लगा। ऐश्वर्य की पूर्ति में उस समय किसी प्रकार का दैन्य न था। जैसे उनकी आत्मा में संसार के सब सुख व्याप्त हो रहे हों। उद्दाम प्रसन्नता से कुँवर साहब कनक के पास आये।

जाल में फँसी हुई मृगी जिस तरह अपनी आँखों को विस्फारित कर मुक्त शून्य के प्रति मुक्ति के प्रयत्न में निकलती रहती है, उसी दृष्टि से कनक ने कुंवर साहब को देखा। इतनी सुन्दर दृष्टि कुंवर साहब ने कभी नहीं देखी थी। किन्हीं आँखों में उन्हें वश करने का जादू न था। आँखों के जलते हुए दो स्फुलिंग उनकी प्रणय-वाटिका में खिले हुए दो गुलाब थे। प्रतिहिंसा की गर्म सांस, वसन्त की शीतल समीर, और उस रूप की आग में तत्काल जल जाने के लिए वह एक अधीर पतंग। स्टेज पर लखनऊ की नव्वाबजान गा रही थीं—

"तू अगर शमा बने, मैं तेरा परवाना बनूं।"

कुँवर साहब ने असंकुचित, अकुण्ठित भाव से कनक की उन्हीं आँखों में अपनी

दृष्टि गड़ाते हुए निर्लज्ज स्वर से दोहराया, "तू अगर शमा बने, मैं तेरा परवाना बनूँ।"

कनक ने उसी तरह असंकुचित स्वर से जवाब दिया—"मैं तो शमा बनकर ही दुनिया में आयी हूँ, जनाब !"

"फिर मुझे परवाना बना लो।" परवाने ने परवाने के सर्वस्व दानवाले स्वर से नहीं, तटस्थ रहकर कहा।

कनक ने एक बार आँख उठाकर देखा।

"किस्मत !" कहकर अपनी ही आँखों की बिजली में दूर तक रास्ता देखने लगी।

"क्या सोचती हो तुम भी; दुनिया में हँसने-खेलने के सिवा और है क्या ?"

कुँवर साहब का हितोपदेश सुनकर एक बार कनक मुस्किरायी। जलती आग में आहुति डालती हुई बोली, "आप ठीक कहते हैं। आप-जैसा जहाँ परवाना हो, वहाँ तो शमा को अपनी तमाम खूबसूरती से जलते रहना चाहिए। लेकिन, मैं सोचती हूँ, मेरी मा जब तक यहाँ हैं, मैं शीशे के अन्दर हूँ। शमा से मिलने से पहले आप उसके शीशे को निकाल दीजिए।"

"जैसा कहो, वैसा किया जाय।" उत्सुकता-प्रसन्नता से कुँवर साहब ने कहा।

"ऐसा कीजिए की वह आज ही सुबह यहाँ से चली जायँ, और-और तवायफें हैं, मैं भी हूँ, जलसा फीका न होगा। आप मुझे इस वक्त बँगले ले चलना चाहेंगे ?"

कृतज्ञ प्रार्थना से कुँवर साहब ने कनक की ओर देखा। कनक समझ गयी। बोली, "अच्छा, ठहरिए, मैं जरा मा से मिल लूँ।"

कुँवर साहब खडे रहे। माता को विंग्स की आड़ से बुलाकर, थोड़े शब्दों में कुछ कहकर कनक चली गयी।

गाना खत्म होने का समय आ रहा था। कुँवर साहब एक पालकी पर कनक को चढ़ा, दूसरी के बन्द पर्दे में खुद बैठकर बँगले चले गये।

पन्द्रह

राजकुमार को नये कण्ठों के संगीत से कुछ देर तक आनन्द मिलता रहा, पर कुँवर साहब के चले जाने के बाद महफिल कुछ बेसुरी-सी लगने लगी, मानो सबके प्राणों से आनन्द की तरंग लुप्त हो गयी हो, जैसे मनोरंजन की जगह तमाम महफिल कार्य-क्षेत्र हो रही हो।

गायिका कनक के संगीत का उस पर कुछ प्रभाव पड़ा था, विदुषी कुमारी कनक उसकी नजरों में गिर चुकी थी। अज्ञात भाव से इसके लिए उसे अन्दर-ही-अन्दर बड़ी पीड़ा मालूम हो रही थी। वह कुछ देर तक तो बैठा रहा, पर जब

कनक भीतर चली गयी, और थोड़ी ही देर में कुँवर साहब भी उठ गये, और कनक बड़ी देर तक न आयी, फिर जब आयी, तो बाहर ही से मा को बुलाकर लौट गयी, यह सब देखकर वह स्टेज, गाना, कनक और अपने प्रयत्न की तरफ से वीतराग हो चला। फिर उसके लिए वहाँ एक-एक क्षण पहाड़ की तरह बोझीला हो उठा।

राजकुमार उठकर खड़ा हो गया, और बाहर निकलकर धीरे-धीरे डेरे की तरफ चला। बहूजी के मायके की याद से शरीर से जैसे एक भूत उतर गया हो। नशे के उतार की शिथिलता थी। धीरे-धीरे चला जा रहा था। कनक की तरफ से जो दिल को चोट लगी थी, रह-रहकर नफरत से उसे और बढ़ाता, तरह-तरह की बातें सोचता हुआ चला जा रहा था। ज्यादा झुकाव कलकत्ते की तरफ था—सोच रहा था, इसी गाड़ी से कलकत्ते चला जायगा।

जब गढ़ के बाहर निकलकर रास्ता चलने लगा, तो उसे मालूम हुआ, कुछ आदमी और उसके साथ आ रहे हैं। सोचा, ये लोग भी अपने-अपने घर जा रहे होंगे। धीरे-धीरे चलने लगा। वे लोग निकट आ गये। चार आदमी थे। राजकुमार ने अच्छी तरह नजर गड़ाकर देखा, सब साधारण सिपाही दर्जे के आदमी थे। कुछ न बोला, चलता रहा।

हटिया से निकलकर बाहर सड़क पर आया। वे लोग भी आये। सामने दूर तक रास्ता-ही-रास्ता था, दोनों बगल खेत। राजकुमार ने उन लोगों की तरफ फिरकर पूछा, "तुम लोग कहाँ जाओगे ?"

"कहीं नहीं, जहाँ-जहाँ आप जायँगे।"

"मेरे साथ चलने के क्या माने ?"

"तारा बहन ने हमें आपकी खबरदारी के लिए भेजा था। साथ चन्दन बाबू भी थे।"

"चन्दन ?"

"हाँ, वह आज सुबह की गाड़ी से आ गये हैं।"

राजकुमार की आँखों पर दूसरा पर्दा उठा। संसार अस्तित्वयुक्त, सुखद और सुन्दर मालूम देने लगा। आनन्द के उच्छ्वसित कण्ठ से पूछा, "कहाँ हैं वह ?"

"अब आपको घर चलकर मालूम ही हो जायगा।"

ये चारो उसी गाँव के आत्माभिमानी अशिक्षित वीर आजकल की भाषा में गुण्डे थे—प्राचीन रूढ़ियों के अनुसार चलनेवाले। किसी ने रूढ़ि के खिलाफ किसी तरफ कदम बढ़ाया कि उसका सिर काट लेनेवाले। गाँव की बहुओं और बेटियों की इज्जत तथा सम्मान की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व स्वाहा कर देनेवाले। अँगरेजों और मुसलमानों पर विजातीय घृणा की आग भड़कानेवाले मलखान और ऊदल के अनुयायी। महावीरजी के अनन्य भक्त। लुप्त-गौरव क्षत्रिय, जमींदार घराने के सुबह के नक्षत्र, जो अपने स्वल्प प्रकाश में टिमटिमा रहे थे। रिश्ते में ये तारा के भाई लगते थे।

राजकुमार के चले जाने पर तारा को इनकी याद आयी, तो जाकर नम्र शब्दों में कहा, "भैया ! आप लोग चन्दन के साथ जाओ, और राजकुमार को देखे रहना, कहीं टण्टा न हो जाय।" तदनुसार ये लोग चन्दन के साथ चले गये थे।

चन्दन ने जैसा बताया, वैसा ही करते रहे। खानदान की लड़की तारा अच्छे घराने में गयी है, वहाँ वाले सब ऊँचे दर्जे के पढ़े-लिखे आदमी हैं, इसका इन लोगों को गर्व था।

धीरे-धीरे गाँव नजदीक आ गया। राजकुमार ने तारा का मतलब दूर तक समझकर फिर ज्यादा बातचीत इस प्रसंग में न की। चन्दन के लिए दिल में तरह-तरह की जिज्ञासा उठ रही थी, 'वह क्यों नहीं आया, तारा ने सब बातें उससे जरूर कह दी होंगी, वह उसी चक्कर मे तो नहीं घूम रहा ? पर ये लोग क्यों नहीं बतलाते ?'

राजकुमार इसी अधैर्य में जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा रहा था। मकान आ गया। गाँव के आदमियों ने दरवाजे पर "बिट्टो-बिट्टो !" की असंकुचित, निर्भय आवाज लगायी। तारा ने दरवाजा खोला। राजकुमार को खड़ा देख स्नेह-स्वर से कहा, "आ गये तुम ?"

"सुनो।" एक ने गम्भीर कण्ठ से तारा को एक तरफ अलग बुलाया।

तारा निःसंकोच बढ़ गयी। उसने धीरे-धीरे कुछ कहा। बात समाप्त कर चारो ने तारा के पैर छुए।

चारो एक तरफ चले गये। चिन्ता-युक्त तारा राजकुमार को साथ लेकर चली गयी, और दरवाजा बन्द कर लिया।

तारा के कमरे में जाते ही राजकुमार ने पूछा, "चन्दन कहाँ है बहूजी ? इतनी जल्दी आ गया ?"

"पुलिस के पास कोई मजबूत कागजात उनके बागीपन के सुबूत में न थे, सिर्फ सन्देह पर गिरफ्तार किये गये थे। पुलिस के साथ खास तौर से पैरवी करने पर जमानत पर छोड़ दिये गये हैं। इस पैरवी के लिए वह बड़े भाई से नाराज भी हैं। मुझे कलकत्ते ले जाने के लिए आये थे। पर यहाँ तुम्हारा हाल मुझसे सुना, तो बड़े खुश हुए, और तुमसे मिलने चले गये पर रज्जू बाबू···!" कहते-कहते युवती की आँखें भर आयीं।

राजकुमार चौंक उठा। उसे विपत्ति की शंका हुई। चकित हो, युवती के दोनों हाथ पकड़कर आग्रह और उत्सुकता से पूछा, "पर क्या ? बताओ, मुझे यह शंका हो रही है।"

"तुम्हारा भी तो वही खून है।"

राजकुमार जिज्ञासा-भरी दृष्टि से उसका आशय पूछ रहा था। युवती ने अधिक बातचीत करना अनावश्यक समझा। राजकुमार उठकर बाहर चलने लगा, पर युवती ने पकड़कर डाँट दिया, "थोड़ी देर में सब मालूम हो जायगा, घर के आदमियों के आने पर। खबरदार, अगर बाहर कदम बढ़ाया।"

वीर युवक तारा के पलँग पर तकिये में सिर गड़ाये पड़ा रहा। तारा उसके हाथ-मुंह धोने और जल-पान करने का इन्तजाम करने लगी। धैर्य का बाँध तोड़कर कभी-कभी दृष्टि से अपार चिन्ता झलक पड़ती थी।

सोलह

कनक ने बँगले में पहुँचकर जो दृश्य देखा, उससे उसकी रही-सही आशा निर्मूल हो गयी। बँगले में कुँवर साहब के मेहमान टिके हुए थे, जिनमें एक को कनक पहले से जानती थी। वह थे मिस्टर हैमिल्टन। अधिकांश मेहमान कुँवर साहब के कलकत्ते के मित्र थे— बड़े-बड़े तअल्लुकेदार और गोरे साहब। ये लोग उसी रोज गाड़ी से उतरे थे। बँगले में इनके ठहरने का खास इन्तजाम था। ये सभी कुँवर साहब के अन्तरंग मित्र थे, अन्तरंग आनन्द के हकदार। अपने स्थानों से इसी आशा से प्रयाण किया था।

कुँवर साहब ने पहले ही से वादा कर रक्खा था कि अभिषेक हो जाने के समय से अन्त तक वह अपने मित्रों को दर्शाते रहेंगे कि मित्रों की खातिरदारी किस तरह से की जाती है। मित्र-मण्डली कभी-कभी इसका तकाजा भी करती रही है। कनक के आने का तार मिलते ही इन्होंने अपने मित्रों को आने के लिए तार कर दिया था। करीब-करीब वे लोग भी कनक का नाम सुन चुके थे।

कुँवर साहब की थोडी-सी जमींदारी 24 परगने में थी, जिससे कभी-कभी हैमिल्टन साहब से मिलने-जुलने का अवसर आ जाता था। धीरे-धीरे यह मित्रता और भी दृढ़ हो गयी। कारण, दोनों एक ही घाट पानी पीनेवाले थे, कई बार पी भी चुके थे, इससे हृदय भेद-भाव-रहित हो गया था। हैमिल्टन साहब तार पाकर बड़े प्रसन्न हुए। हिन्दोस्तानी युवती को साहबी उद्दण्डता, क्रूरता तथा कटुता का ज्ञान करा देने के लिए वह तैयार हो रहे थे, उसी समय उन्हें तार मिला। एक बार कुँवर साहब के मानवीय मित्र की हैसियत से क्षुद्र नर्तकी देखने की लालसा प्रबल हो गयी। वह कुछ दिन की छुट्टी लेकर चले आये।

कनक ने सोचा था, कुँवर साहब को वह अपने इंगित पर नचायेगी। राजकुमार को गिरफ्तार करा, जब इच्छा हो, उसे मुक्त कर उसकी सहायता से स्वयं भी मुक्त हो जायगी, पर यहाँ और ही रंग देखा। उसने सोचा था, कुँवर साहब अकेले रहेंगे। वह भय से पीली पड़ गयी। हैमिल्टन उसे देखकर मुस्किराया। दृष्टि में व्यंग्य फूट रहा था। अंकुश कनक के हृदय को पार कर गया। चारो तरफ से कटाक्ष हो रहे थे। सब उसकी लज्जा को भेदकर उसे देखना चाहते थे। कनक व्याकुल हो उठी। आवाज में कहीं भी अपनापन न था।

कुँवर साहब पालकी से उतरे। सब लोगों ने शैतान की सूरत का स्वागत किया कनक खड़ी सबको देख रही थी।

"अजी, आप बड़ी मुश्किलों में मिली हैं। और, सौदा भी बड़ा महँगा रहा।" कुँवर साहब ने अपने मित्रों से कनक की तरफ इशारा कर कहा।

कनक कमल-कलिका-सी संकुचित खड़ी रही। हृदय में आग धधक रही थी। कभी-कभी आँखों से ज्वाला फूट पड़ती थी। याद आया, वह भी महाराजकुमारी है, पर हृदय उमड़कर आप ही बैठ गया, "मुझमें और इनमें कितना फर्क है। ये मालिक हैं, और मैं इनके इशारे पर नाचनेवाली! और, यह फर्क केवल इसी सीमा

तक है। चरित्र में ये किसी भी तवायफ से श्रेष्ठ नहीं। पर फिर भी समाज इनका है, इसलिए ये अपराधी नहीं। नीचता से ओत-प्रोत ऐसी वृत्तियाँ लिये हुए भी ये समाज के प्रतिष्ठित, सम्मान्य, विद्वान् और बुद्धिमान मनुष्य हैं। और मैं ?"

कनक को चक्कर आने लगा। एक खाली कुरसी पकड़कर उसने अपने को सँभाला। इस तरह तप-तपकर वह और सुन्दर हो रही थी, और चारों तरफ से उसके प्रति आक्रमण भी वैसे ही और चुभीले।

कुंवर साहब मित्रों से खूब खुलकर मिले। हैमिल्टन की उन्होंने बड़ी आव-भगत की। कुंवर साहब हैमिल्टन की जितनी ही कद्र कर रहे थे, वह उतना ही कनक को अकड़-अकड़कर देख रहा था।

मुस्किराते हुए कुंवर साहब ने कनक से कहा, "बैठो, इस बगलवाली कुरसी पर अपने ही आदमियों की एक बैठक होगी, दोमंजिले पर। यहाँ भी हारमोनियम पर सुनाना होगा। सुरेश बाबू, दिलीपसिंह भी गायेंगे। तुम्हें आराम के लिए फुर्सत मिल जाया करेगी।" कहकर चालाक पुतलियाँ फेर लीं।

एक नौकर ने आकर कुंवर साहब को खबर दी, "सर्वेश्वरी बाई यहाँ से स्टेशन के लिए रवाना हो गयी हैं। उनका हिसाब भी कर दिया गया है।" कहकर नौकर चला गया।

एक दूसरा नौकर आया। सलाम कर उस आदमी के गिरफ्तार होने की खबर दी। कुंवर साहब ने कनक की तरफ देखा। कनक ने हैमिल्टन को देखकर राज-कुमार को बुलवाना उचित न समझा। दूसरे, जिस अभिप्राय से उसने राजकुमार को कैद कराया था, यहाँ उसकी सफलता की कोई सम्भावना भी न थी।

कनक को मौन देख कुंवर साहब ने कहा, "यहाँ ले आओ उसे।"

कनक चौंक पड़ी। जल्दी में कहा, "नहीं-नहीं, अब उसकी कोई जरूरत नहीं। उसे छोड़ दीजिए।" कनक का स्वर काँप रहा था।

"जरा देख तो लें उस इशारेबाज को।" कुंवर साहब ने नौकर को संकेत किया।

चार सिपाही अपराधी को लेकर बँगले के भीतर आये। भीतर आते ही, किसी तरफ नजर उठाये बिना, अपराधी ने झुककर तीन बार सलाम किया।

उसका शरीर और रंग-ढंग राजकुमार से मिलता-जुलता था, पर कनक ने देखा, वह राजकुमार न था। उसका चेहरा रूखा, कपड़े मोटे, बाल छोटे-छोटे, बराबर। उम्र राजकुमार से कुछ कम जान पड़ती थी।

कुंवर साहब ने कहा, "क्योंजी, यह इशारेबाजी तुमने कहाँ सीखी ?"

अपराधी ने सिर झुकाकर तीन बार पुनः सलाम किया, और कनक को एक तेज निगाह से देखा।

"यह वह नहीं है।" कनक ने जल्दी में कहा।

कुंवर साहब देखने लगे। पहचान न सके। स्टेज पर ध्यान आदमी की तरफ से ज्यादा कनक की तरफ था। पहले के आदमी से इसमें कुछ फर्क अवश्य देखते थे।

अपराधी ने किसी तरफ देखे बिना फिर सलाम किया, और जैसे दीवार से

कह रहा हो, "हुजूर, ग्वालियर में पखावज सीखकर कुछ दिनों तक रामपुर, जयपुर, अलवर, इन्दौर, उदयपुर, बीकानेर, टीकमगढ़, रीवाँ, दरभंगा, बर्दवान—इन सभी रियासतों में मैं गया हूँ, और सभी राजा-महाराजों को पखावज सुनायी है। हुजूर के यहाँ जलसा सुनकर आया था।" कहकर उसने फिर सलाम किया।

"अच्छा तुम पखावजिए हो ?"

"हुजूर !" उसने पुनः सलाम किया।

हैमिल्टन की तरफ मुड़कर कुँवर साहब ने अँगरेजी में कहा, "अब बन गया काम।"

कनक आगन्तुक और कुँवर साहब को देख रही थी। रह-रहकर एक अज्ञात भय से कलेजा काँप उठता था।

"एक पखावज ले आओ।" सिपाही से कुँवर साहब ने कहा। बँगले की दूसरी मंजिल पर फर्श बिछा हुआ था, मित्रों को साथ लेकर चले। आगन्तुक से कनक को ले आने के लिए कहा। सिपाही पखावज लेने चला गया। और लोग बाहर फाटक पर थे।

कुँवर साहब और उनके मित्र ऊपर चले गये। पीछे से दो खिदमतदार भी चले। कमरा सूना देख, युवक ने कनक के कन्धे पर हाथ रखकर फिसफिसाते हुए कहा, "मैं राजकुमार का मित्र हूँ।"

कनक की आँखों से प्रसन्नता का स्रोत फूट पड़ा। अपलक देखने लगी।

युवक ने कहा, "यही समय है। तीन मिनट में हम खाई पार कर जायँगे। तब तक वे लोग हमारी प्रतीक्षा करेंगे। देर हुई, तो इन राक्षसों से मैं अकेले तुम्हें बचा न सकूँगा।"

कनक आवेग में भरकर युवक से लिपट गयी, और हृदय से रेलकर उतावली से कहा, "चलो।"

"तैरना जानती हो ?" शीघ्रता से खाई की तरफ बढ़ते हुए कहा।

"न।" शंका से देखती हुई।

"पेशवाज भीग जायगी। अच्छा, हाँ," कमर-भर पानी में खड़े होकर युवक ने कहा, "धीरे से उतर पड़ो, घबराओ मत।"

कनक उतर पड़ी।

युवक ने अपनी चादर भिगोकर, पानी में हवा भरकर, गुब्बारे-सा बना कनक को पकड़ा दिया। ऊपर से आवाज आयी, "अभी ये लोग आये नहीं। जरा नीचे आकर देखो तो।"

युवक कनक की बाँह पकड़कर चुपचाप तैरकर खाई पार करने लगा।

लोग नीचे आये। फाटक की तरफ दौड़े। युवक खाई पार कर चुका था।

उस पार घोर जंगल था। युवक कनक को साथ ले पेड़ों के बीच अदृश्य हो गया।

बँगले के चारो तरफ खाई थी। केवल फाटक से जाने की राह थी। फाटक के पास से बड़ी सड़क कुँवर साहब की कोठी तक चली गयी थी।

शोर-गुल उठ रहा था। इस पार से ये लोग सुन रहे थे।

"हम लोग पकड़ लिये गये, तो बड़ी बुरी गति होगी।" कनक ने धीरे-से युवक से कहा।

"अब हज़ार आदमी भी हमें नहीं पकड़ सकते। यह छः कोस का जंगल है। रात है। तब तक हम घर पहुँच जायँगे।" कपड़े निचोड़ते हुए युवक ने कहा।

"क्या आपका घर भी यहीं है ?" चलते हुए स्नेह-सिक्त स्वर से कनक ने पूछा।

"मेरा नहीं, मेरे भाई की ससुराल है। राजकुमार भी वहीं होंगे।"

"वे लोग जंगल चारो तरफ से घेर लें, तो ?"

"ऐसा नहीं हो सकता; और जंगल की बगल में ही वह गाँव है, इस तरफ तीन मील।"

"आपको मेरे बारे में कैसे मालूम हुआ ?"

"भाभी ने मुझे राजकुमार की मदद के लिए भेजा था। उसे उन्होंने तुम्हें ले आने के लिए भेजा था न।"

कनक के क्षुद्र हृदय में रस का सागर उमड़ रहा था।

"आपकी भाभी को राजकुमार क्या कहते हैं ?"

"बहूजी।"

"आपकी भाभी मायके कब आयीं ?"

"तीन-चार रोज हुए।"

कनक अपनी एक स्मृति पर जोर देने लगी।

"साथ राजकुमार थे ?"

"हाँ।"

"आप, तब कहाँ थे ?"

"लखनऊ। किसानों का संगठन कर रहा था, पर बचकर, क्योंकि मुझे काम ज्यादा प्यारा है।"

"फिर ?"

"लखनऊ में सरकारी खजाने पर डाका पड़ा। शक पर मैं भी गिरफ्तार कर लिया गया, पर मेरी गैरहाजिरी ही साबित रही। पुलिस के पास कोई बड़ा सुबूत न था, सिर्फ नाम दर्ज था। खुफियावाले मुझे भला आदमी जानते थे। कोई सुबूत न रहने से जमानत पर छोड़ दिया गया।"

"आप कब गिरफ्तार किये गये ?"

"छह-सात रोज हुए होंगे। अखबारों में भी छपा था।"

"राजकुमार को कब मालूम हुआ ?"

"जिस रोज भाभी को यहाँ ले आये, उसी रात को तुम्हारे यहाँ···"

कनक एक बार प्रणय से पुलकित हो गयी।

"देखिए, कैसी चालाकी, मुझे कुछ नहीं बतलाया। मुझसे नाराज होकर आये थे।" कहा कनक ने।

"हाँ, सुना है, तुमसे नाराज हो गये थे। भाभी से बतलाया भी नहीं था, पर एक दिन उनकी चोरी भाभी ने पकड़ ली। तुम्हारे यहाँ से जो कोट पहनकर गये

थे, उसमें सिन्दूर लगा था।"

कनक शरमा गयी, "अच्छा, यह सब भी हो चुका है ?" हँसती हुई चल रही थी वह।

"हाँ, राजकुमार की मदद के लिए यहाँ आने पर मुझे मालूम हुआ कि कुंवर साहब ने उन्हें गिरफ्तार करने का हुक्म दिया है। यहाँ मेरी भाभी के पिता नौकर हैं। गिरफ्तार करनेवालों में उनके गाँव का भी एक आदमी था। उसने उन्हें खबर दी। तभी मैंने उसे समझाया कि अपने आदमियों को बहकाकर मुझे ही गिरफ्तार होनेवाला आदमी बतलाये, और गिरफ्तार करा दे। राजकुमार की रक्षा के लिए दूसरे कई आदमियों को छोड़कर मैं गिरफ्तार हो गया। मैं जानता था, तुम मुझे नहीं पहचानतीं, इसलिए छूट जाऊँगा। राजकुमार की गिरफ्तारी की वजह भी समझ में नहीं आ रही थी।"

कनक ने बतलाया, "हमी ने, अपनी सहायता के लिए, राजकुमार को गिरफ्तार कराने का कुँवर साहब से आग्रह किया था।"

धीरे-धीरे गाँव नजदीक आ गया। कनक ने थककर कहा, "अभी कितनी दूर है ?"

"बस, आ गये।"

"आपने अभी अपना नाम नहीं बतलाया ?"

"मुझे चन्दन कहते हैं। हम लोग अब नजदीक आ गये। इन कपड़ों से गाँव के भीतर जाना ठीक नहीं। मैं पहले जाता हूँ, भाभी की एक साड़ी ले आऊँ, फिर तुम्हें पहनाकर ले जाऊँगा। एक दूसरे कपड़े में तुम्हारे ये सब कपड़े बाँध लूंगा। घबराना मत। इस जंगल में कोई बड़े जानवर नहीं रहते।"

कनक को ढाढ़स बँधाकर चन्दन भाभी के पास चला। वहाँ से गाँव चार फलाँग के करीब था। रात थोड़ी रह गयी थी।

दरवाजे पर धक्का सुनकर तारा पलँग से उठी। नीचे उतरकर दरवाजा खोला। चन्दन को देखकर चाँद की तरह खिल गयी, "आ गये तुम ?"

स्नेहार्थी शिशु की दृष्टि से भाभी को देखकर चन्दन ने कहा—"भाभी, मैं रावण से सीता को भी जीत लाया।"

तारा तरंगित हो उठी, "कहाँ है वह ?"

"पीछेवाले जंगल में। बँगले से खाई तैराकर लाया। वहाँ बड़ी खराब स्थिति हो रही थी। अपनी एक साड़ी दो, बहुत जल्द, और एक चादर ओढ़ने के लिए, और एक उसके कपड़े बाँधने के लिए भी।"

तुरन्त एक अच्छी साड़ी और दो चद्दरें निकालकर चन्दन को देते हुए तारा ने कहा, "हाँ, एक बात याद आयी, जरा ठहर जाओ, मैं भी चलती हूँ। मेरे साथ आयेगी, तुम अलग हो जाना। जरा कड़े और छड़े निकाल लूँ।"

तारा का दिया हुआ कुल सामान चन्दन ने लपेटकर ले लिया। फिर आगे-आगे तारा को लेकर जंगल की तरफ चला।

कनक प्रतीक्षा कर रही थी। शीघ्र ही दोनो उसके पास पहुँच गये। कनक को देखकर तारा से न रहा गया। "बहन, ईश्वर की इच्छा से तुम राक्षसों के हाथ से

बच गयीं !" कहकर तारा ने कनक को गले से लगा लिया।

हृदय से जैसी सहानुभूति का सुख कनक को मिल रहा था, ऐसा उसे आज जीवन में नया ही मिला था। स्त्री के लिए स्त्री की सहानुभूति कितनी प्रखर और कितनी सुखद होती है, इसका आज ही उसे अनुभव हुआ।

तारा ने साड़ी देकर कहा, "यह सब उतारकर इसे पहन लो।"

कनक ने गीले वस्त्र उतार दिये। तारा ने चन्दन से कहा, "छोटे साहब, ये कड़े पहना दो। देखें, कलाई में कितनी ताकत है !"

चन्दन ने कनक के पैरों में कड़े डालकर, दोनों हाथ घुटनों के बीच रखकर, जोर लगाकर पहना दिये फिर छडे भी। युवती ने चन्दन की इस ताकत के लिए तारीफ की, फिर कनक से चद्दर ओढ़कर साथ चलने के लिए कहा। कनक चद्दर ओढ़ने लगी, तो युवती ने कहा, "नहीं, इस तरह नहीं, इस तरह।" कनक को चद्दर ओढ़ा दी।

आगे-आगे तारा, पीछे-पीछे कनक चली। चन्दन ने कनक के कपड़े बाँध लिये, और दूसरी राह के मिलने तक साथ-साथ चला।

तारा चुटकियाँ लेती हुई बोली, "छोटे साहब, इस वक्त आप क्या हो रहे हैं ?"

कनक हँसी। चन्दन ने कहा, "एक दर्जा महावीर से बढ़ गया। केवल खबर लेने ही नहीं गया, बल्कि सीता को जीत भी लाया।"

थोड़ी ही दूर पर एक दूसरी राह मिली। चन्दन उससे होकर चला। युवती कनक को लेकर दूसरे रास्ते से चली।

प्रथम उषा का प्रकाश कुछ-कुछ फैलने लगा था। उसी समय तारा कनक को लेकर पिता के मकान पहुँची, और अपने कमरे में, जहाँ राजकुमार सो रहा था, ले जाकर दरवाजा बन्द कर लिया।

कुछ देर में चन्दन भी आ गया। कनक थक गयी थी। युवती ने पहले राजकुमार के पलँग पर सोने के लिए इंगित किया। कनक को लज्जित खड़ी देख, बगल के दूसरे पलँग पर सस्नेह बाँह पकड़कर बैठा दिया, और कहा, "आराम करो, बड़ी तकलीफ मिली।"

कनक के मुरझाये अधर खिल गये।

चन्दन ने पेशवाज सुखाने के लिए युवती को दिया। उसने लेकर कहा, "देखो, वहाँ चलकर इसका अग्नि-संस्कार करना है।"

चन्दन थक रहा था, राजकुमार की बगल में लेट गया।

युवती सबकी देख-रेख में रही। धीरे-धीरे चन्दन भी सो गया। कनक कुछ देर तक पड़ी सोचती रही। मा की याद आयी। कहीं ऐसा न हो कि उसकी खोज में उसी वक्त स्टेशन मोटर दौड़ायी गयी हो, और तब तक गाड़ी न आयी हो, वह पकड़ ली गयी हो। समय का अन्दाजा लगाया। गाड़ी साढ़े तीन बजे रात को आती है, चढ़ जाना सम्भव है।

फिर राजकुमार की बातें सोचती कि न-जाने यह सब इनके मन में क्या भाव पैदा करे। कभी चन्दन की और कभी तारा की बातें सोचती, ये लोग कैसे सहृदय

हैं ! चन्दन और राजकुमार में कितना स्नेह ! तारा उसे कितना चाहती है ! इस प्रकार, न-मालूम, उसकी सुख-कल्पना के बीच कब उसके पलकों के दल मुँद गये ।

सत्रह

कुछ दिन चढ़ आने पर राजकुमार की आँखों ने एक बार चिन्ता के जाल से बाहर प्रकाश के प्रति देखा । चन्दन की याद आयी । उठकर बैठ गयी । बहूजी झरोखे के पास, एक बाजू पकड़े बाहर सड़क की तरफ देख रही थीं । कोलाहल, कौतूहलपूर्ण हास्य तथा वार्तालाप के अशिष्ट शब्द सुन पड़ते थे ।

राजकुमार ने उठकर देखा, बगल में चन्दन सो रहा था । एक पलँग और बिछा था । कोई सिर से पैर तक चादर ओढ़े सो रहा था । चन्दन को देखकर चिन्ता की तमाम गाँठें आनन्द के मरोर से खुल गयीं । जगाकर उससे अनेक बातें पूछने के लिए इच्छाओं के रंगीन उत्स रोएँ-रोएँ से फूट पड़े ।

उठकर बहू के पास जाकर पूछा, "यह कब आये ? जगा दूँ ?"

"बात इस तरह करो कि बाहर किसी के कान में आवाज न पड़े । और, जरूरत पड़ने पर तुम्हें साड़ी पहनकर रहना होगा ।"

राजकुमार जल गया, "क्यों ?"

"बड़ी नाजुक स्थिति है, तुम्हें सब मालूम हो जायेगा ।"

"पर मैं साड़ी नहीं पहन सकता । अभी से कहे देता हूँ ।"

"अर्जुन तो साल-भर विराट के यहाँ साड़ी पहनकर नाचते रहे, तुम्हें क्या हो गया ?"

"वह उस वक्त नपुंसक थे ।"

"और इस वक्त तुम ! उससे पीछा छुड़ाकर नहीं भागे ?"

राजकुमार लज्जित प्रसन्नता से टल गया । पूछा, "यह है कौन जो पलँग पर पड़े हैं ?"

"मुँह खोलकर देखो ।"

"नाम से ही पता चल जायगा ।"

"हमें नाम से ज्यादा काम पसन्द है ।"

"अगर कोई अनजान आदमी हो ?"

"तो जान-पहचान हो जायगी ।"

"सो रहे हैं, नाराज होंगे ।"

"कुछ बक-झक लेंगे, पर जहाँ तक मेरा अनुमान है, जीत नहीं सकते ।"

"कोई रिश्तेदार हैं शायद ?"

"तभी तो इतनी दूर आ पहुँचे हैं।"

राजकुमार पलँग के पास गया। चादर रेशमी और मोटी थी, मुँह देख नहीं पड़ता था। धीरे-से उठाने लगा। तारा खड़ी हँस रही थी। खोलकर देखा, विस्मय से फिर चादर उढ़ाने लगा। कनक की आँखें खुल गयी थीं। चादर उढ़ाते हुए राजकुमार को देखा, उठकर बैठ गयी। देखा, सामने खड़ी तारा हँस रही है। लज्जा से उठकर खड़ी हो गयी। फिर तारा के पास चली गयी। सिर उसी तरह खुला रक्खा।

वार्तालाप तथा हँसी-मजाक की ध्वनि से चन्दन की नींद उखड़ गयी। उठकर देखा, तो सब लोग उठे हुए थे। राजकुमार ने बड़े उत्साह से बाँहों में भरकर, उसे उठाकर खड़ा कर दिया।

तारा और कनक दोनों को देख रही थीं। दोनों एक ही-से थे। राजकुमार कुछ बड़ा था। शरीर भी कुछ भरा हुआ। लोटे में जल रक्खा था। राजकुमार ने चन्दन को मुँह धोने के लिए दिया। खुद भी उसी से ढालकर मुँह धोते हुए पूछा, "कल जब मैं आया, लोगों से मालूम हुआ, तुम आये हो। पर कहाँ हो, क्या बात है, बहूजी से बहुत पूछा, वह टाल गयीं।"

"फिर बताऊँगा। अभी समय नहीं। बहुत-सी बातें हैं। अन्दाजा लगा लो। मैं न जाता, तो इनकी बड़ी संकटमय स्थिति थी। उन लोगों से इनकी रक्षा न होती।"

"हाँ, कुछ-कुछ समझ में आ रहा है।"

"देखो, हम लोगों को आज ही चलने के लिए तैयार हो जाना चाहिए, ऐसी सावधानी से कि पकड़ में न आयें।"

"मतलब ?"

"तुम्हें गिरफ्तार करने का पहले ही हुक्म था, और आज्ञा तुम्हारी इन्होंने निकलवायी थी। उसी पर मैं गिरफ्तार हुआ, तुम्हें बचाने के लिए, क्योंकि तुम सब जगहों से परिचित न थे। फिर जब पेश हुआ, तब इनके दुबारा गाने का प्रकरण चल रहा था। बँगले में ख़ास महफिल थी।" चन्दन ने हाथ पोंछते हुए कहा।

"हैमिल्टन साहब भी आये थे।" कनक ने कहा।

"फिर ?" राजकुमार ने चन्दन से पूछा।

संक्षेप में कुल हाल चन्दन बतला गया। युवती कनक को लेकर बगलवाले कमरे में चली गयी।

"आज ही चलना चाहिए।" चन्दन ने कहा।

"चलो।"

"चलो नहीं, चारो तरफ लोग फैल गये होंगे। इस व्यूह से बचकर निकल जाना बहुत मामूली बात नहीं। और, कोई तअज्जुब नहीं, लोगों को दो-एक रोज में बात मालूम हो जाय।"

"गाड़ी सजा लें, और उसी पर चले चलेंगे।"

"कहाँ ?"

"स्टेशन।"

"खूब ! तो फिर पकड़ जाने में कितनी देर है ?"

"फिर ?"

"औरत बन सकते हो ?"

"न।"

चन्दन हँसने लगा। कहा, "हाँ भई, तुम औरतवाले कैसे औरत बनोगे, पर मैं तो बन सकता हूँ।"

"यह तो पहले ही से बने हुए हैं।" कहती हुई मुस्किराती कनक के साथ युवती कमरे में आ रही थी।

युवती कनक को वहीं छोड़कर भोजन-पान के इन्तजाम के लिए चली गयी। चन्दन को कमरा बन्द कर लेने के लिए कहती गयी। चन्दन ने कमरा बन्द कर लिया।

कनक निष्कृति के मार्ग पर आकर देख रही थी, उसके मानसिक भावों में युवनी के संग-मात्र से तीव्र परिवर्तन हो रहा था। इस परिवर्तन-चक्र पर जो सान उसके शरीर और मन को लग रही थी, उससे उसके चित्त की तमाम वृत्तियाँ एक दूसरे ही प्रवाह में तेजी से बह रही थीं, और इस धारा में पहले की तमाम प्रखरता मिटती जा रही थी। केवल एक शान्त, शीतल अनुभूति चित्त की स्थिति को दृढ़तर कर रही थी। अंगों की चपलता उस प्रवाह से, तट पर तपस्या करती हुई-सी, निश्चल हो रही थी।

राजकुमार चन्दन से उसका पूर्वापर कुछ प्रसंग एक-एक कर पूछ रहा था। चन्दन बतला रहा था। दोनों के वियोग के समय से अब तक की सम्पूर्ण घटनाएँ एवं उनके पारस्परिक सम्बन्ध वार्तालाप से जुड़ते जा रहे थे।

"तुम विवाह से घबराते क्यों हो ?" चन्दन ने पूछा।

"प्रतिज्ञा तुम्हें याद होगी !" राजकुमार ने शान्त स्वर से कहा।

"वह मानवीय थी, यह सम्बन्ध दैवी है। इसमें शक्ति ज्यादा है।" चन्दन ने तर्क रक्खा।

"जीवन का अर्थ समर है।"

"पर जब तक वह कायदे से, सतर्क, सरस और अविराम होता रहे। विक्षिप्त का जीवन जीवन नहीं, और न उसका समर समर।"

"मैं अभी विक्षिप्त नहीं हुआ।"

चोट खाकर वर्तमान स्थिति को कनक भूल गयी। अत्रस्त दृष्टि, अकुण्ठित कण्ठ से कह उठी, "मैंने विवाह के लिए कब, किससे प्रार्थना की ?"

चन्दन देखने लगा। ऐसी आँखें उसने कभी नहीं देखी थीं। कितना तेज था उनमें !

कनक ने फिर कहा, "राजकुमारजी, आपने स्वयं जो प्रतिज्ञा की है, शायद ईश्वर के सामने की है, और मेरे लिए जो शब्द आपके हैं—आप इडेन-गार्डेन की बातें भूले नहीं होगे—वे शायद वीरांगना के प्रति हैं !"

चन्दन एक बार कनक की आँखें और एक बार नत राजकुमार को देख रहा था। दोनों के चित्र सत्य का फैसला कर रहे थे।

अट्ठारह

तारा ने दो नौकरों को बारी-बारी से दरवाजे पर बैठे रहने के लिए तैनात कर दिया कि बाहरी लोग उससे पूछकर भीतर आयें।

शोर-गुल सुनकर वह ऊपर चली गयी। देखा, कनक जैसे एकान्त में बैठी हुई हो। उसके चेहरे की उदास, चिन्तित चेष्टा से तारा के हृदय में उसके स्नेह का स्रवण खुल गया। उसने युवकों की तरफ देखा। राजकुमार मुँह मोड़कर पड़ा हुआ परिस्थिति का पूर्ण परिचय दे रहा था। भाभी को गम्भीर मुद्रा से देखते हुए देखकर चन्दन ने अकुण्ठित स्वर से कह डाला, "महाराज दुष्यन्त को इस समय दिमाग की गर्मी से विस्मरण हो रहा है। असगरअली के यहाँ का गुलाब-जल चाहिए।"

कनक मुस्किरा दी। तारा हँसने लगी।

"तुम यहाँ आकर आराम करो।" कनक से कहकर तारा ने चन्दन से कहा, "छोटे साहब, जरा तकलीफ कीजिए। इस पलँग को उठाकर उस कमरे में डाल दीजिए। दूसरे किसी को अब इस वक्त न बुलाना ही ठीक है।"

कनक को लेकर तारा दूसरे कमरे में चली गयी।

"उठो जी, पलँग बिछाओ।" चन्दन ने राजकुमार को खोदकर कहा।

राजकुमार पड़ा रहा। चन्दन ने हँसते हुए पलँग उठाकर बगलवाले कमरे में डाल दिया। बिस्तर बिछाने लगा। तारा ने बिस्तर छीन लिया। खुद बिछाने लगी। कनक की इच्छा हुई कि तारा से बिस्तर लेकर बिछा दे, पर इच्छा को कार्य का रूप न दे सकी, खड़ी ही रह गयी—तारा के प्रति एक श्रद्धा का भाव लिये। और, इसी गुरुता से उसे लगा कि जैसे उसका मेरुदण्ड झुककर टूट जायगा।

तारा ने चन्दन से कहा—"जरा यहीं दो घड़े पानी भी ले आइए।"

चलते-चलते चन्दन ने कहा—"एक स्टेशन आगे चलकर ही गाड़ी पर चढ़ना है।"

चन्दन चला गया। तारा कनक को बैठाकर बैठ गयी, और राजकुमार की बातें साद्यन्त पूछने लगी।

चन्दन पानी ले आया, तो तारा ने कहा—"एक काम और है। आप लोग भी पानी भरकर जल्द नहा लीजिए, और जरा नीचे मुन्नी से कह दीजिए कि वह हरपालसिंह को बुला लाये। अम्मा शायद अब रोटियाँ सेंकती होंगी। आज खुद ही पकाने लगीं। कहा, अब चलते वक्त रोटियों से हैरान क्यों करें!"

चन्दन चला गया। तारा फिर कनक से बातचीत करने लगी। तारा के प्रति पहले ही व्यवहार से कनक आकर्षित हो चुकी थी। धीरे-धीरे वह देखने लगी, संसार में उसके साथ पूरी सहानुभूति रखनेवाली केवल तारा है। कनक ने पहले-पहल तारा को जब दीदी कहा, उस समय उसके हृदय पर रक्खा हुआ जैसे तमाम बोझ उतर गया। दीदी की एक स्नेह-सिक्त दृष्टि से उसकी कुल थकावट, अशान्ति मिट गयी। पारिवारिक सुख से अपरिचित कनक ने स्नेह का यथार्थ मूल्य उसी

समय समझा ! उसकी बाधाएँ आप-ही-आप दूर हो गयीं । अब जैसे भूली हुई वह एकाएक राजपथ पर आ गयी हो । राजकुमार के प्रथम दर्शन से लेकर अब तक का पूरा इतिहास, अपने चित्त के विपक्ष की सारी कथा, राजकुमार से कुछ कह न सकने की लज्जा, सरल, सलज्ज, मन्द स्वर से कहती रही ।

राजकुमार बगलवाले कमरे में जाग रहा था । अपनी पूरी शक्ति से, आयी हुई अड़चन को पार कर जाने के लिए, चिन्ताओं की छलाँग मार रहा था । कभी-कभी उठती हुई हास्य-ध्वनि से चौंककर, अपने वैराग्य की मात्रा बढ़ाकर वह चुप हो जाता ।

चन्दन अपना काम पूरा कर आ गया । पलँग पर बैठकर कहा, "उठो, तुम्हें एक मजेदार बात सुनाऊँ ।"

राजकुमार जागता ही था, उठकर बैठ गया ।

"सुनो, कान में कहूँगा ।" चन्दन ने धीरे से कहा ।

राजकुमार ने चन्दन की तरफ सिर बढ़ाया ।

चन्दन ने पहले इधर-उधर देखा, फिर राजकुमार के कान के पास मुँह ले गया । राजकुमार जब सुनने के लिए खूब एकाग्र हो गया, तो चुपके से कहा, "नहाओगे नहीं ?"

विरक्त-भाव से राजकुमार पुनः लेटने लगा । चन्दन ने हाथ पकड़ लिया, "बस, अब उधर देखो । मुकद्दमा दायर है । अभी पुकार होती ही है ।"

"रहने भी दो । मैं नहीं नहाऊँगा ।" राजकुमार लेट रहा ।

एक बगल चन्दन भी लेट गया, "मैं तो प्रातः ही स्नान कर चुका हूँ ।"

नीचे हरपालसिंह खड़ा था । मुन्नी 'दीदी-दीदी' पुकारती हुई ऊपर चढ़ आयी । कमरे से निकलकर तारा ने हरपालसिंह को ऊपर बुलाया ।

चन्दन और राजकुमार उठकर बैठ गये । उसी पलँग पर तारा ने हरपालसिंह को भी बैठाया ।

हरपालसिंह चन्दन और राजकुमार को पहचानता था ।

"कहिए बाबू, कल आप बच गये !" राजकुमार से कहता और इशारे करता हुआ बैठ गया । फिर राजकुमार की दाहिनी बाँह पकड़कर, मुस्किराते हुए कहा, "बड़े कस हैं !"

राजकुमार बैठा रहा । तारा स्नेह की दृष्टि से राजकुमार को देख रही थी, मानो उस दृष्टि से कह रही हो, आपकी सब बातें मालूम हो गयी हैं । दृष्टि का कौतुक बतला रहा था, अपराध तुम्हारा ही है ।

तारा का मौन फैसला समझकर चन्दन चुपचाप मुस्किरा रहा था ।

रात की घटना अब तक तीन कोस से ज्यादा फासले तक फैल चुकी थी । हरपालसिंह को भी खबर मिली थी । चन्दन के भाग आने का उसने निश्चय कर लिया था, पर बाईजी के भगाने का कारण नहीं समझ सका था । कमरे में इधर-उधर नजर दौड़ायी । बाईजी को न देखकर कुछ व्यग्र-सा हो रहा था—जैसी व्यग्रता किसी सत्य की श्रृंखला न मिलने पर होती है ।

इसी समय तारा ने धीमे स्वर से कहा, "भैया, तुम तो सब हाल जानते ही हो ।

बल्कि सारी कामयाबी तुम्हीं से हुई। अब थोड़ा-सा सहारा और कर दो, तो खेवा पार हो जाय।"

हरपालसिंह ने फटाफट तम्बाकू झाड़कर, अन्तरदृष्टि होते हुए, फाँककर जीभ से नीचे के होंठ में दबाते हुए, सीना तानकर, सिर के साथ पलकें एक तरफ मरोड़ते हुए कहा, "हूँ···"

तम्बाकू की झाड़ से चन्दन को छींक आ गयी। किसी को छींक से शुभ वार्तालाप के समय शंका न हो, इस विचार से सचेत हरपालसिंह ने एक बार सबको देखा, फिर कहा, "असगुन नहीं है, तम्बाकू की झार से छींक आयी है।"

तारा ने कहा, "भैया, आज शाम को अपनी गाड़ी ले आओ। चार आदमी और साथ ले लेना। अगले स्टेशन पर हमें छोड़ आओ। छोटे साहब बाईजी को भी बचाकर साथ ले आये हैं न, वरना वहाँ उन बदमाशों से छुटकारा न होता। बाईजी ने बचाने के लिए कहा, फिर संकट में भैया, आदमी ही आदमी का साथ देता है। भला, कैसे छोड़कर आते ?"

हरपालसिंह ने डण्डा सँभाल, मुट्ठी से जमीन में दबाते हुए, एक पीक वहीं थूककर कहा, "यह तो छत्री का धरम है। गोसाईंजी ने कहा है—

"रघुकुल-रीति सदा चलि आयी;
प्रान जायँ, पै वचन न जायी।"

फिर राजकुमार का कल्ला दबाते हुए कहा, "आप तो अँगरेजी पढ़े हो, हम तो बस थोड़ी-बाड़ी हिन्दी पढ़े ठहरे, है न ठीक बात ?"

राजकुमार ने जहाँ तक गम्भीर होते बना, वहाँ तक गम्भीर होकर कहा, "ठीक कहते हैं आप।"

तारा ने कहा, "तो भैया, शाम को आ जाओ, कुछ रात बीते चलना है।"

"बस, बैल चरकर आये कि हम जोतकर चले। कुछ और काम तो नहीं है ?"

"नहीं भैया ! और कुछ नहीं।"

हरपालसिंह ने उठकर तारा के पैर छुए, और खटाखट जीने से उतरकर, बाहर आ आल्हा अलापना शुरू कर दिया, "दूध लजावे ना माता को, चाहे तन धजी-धजी उड़ जाये; जीते बैरी हम ना राखे, हमरो क्षत्री धरम नसाय।" गाते हुए चला गया वह।

"रज्जू बाबू, गलती आपकी है।" तारा ने सहज स्वर में कहा।

"लो, मैं कहता न था, मुकद्दमा दायर है। फैसला छोटी अदालत का ही रहा।" चन्दन ने हँसते हुए कहा।

राजकुमार कुछ न बोला। उनका गाम्भीर्य तारा को अच्छा न लगा। बोली, "यह सब वाहियात है। क्यों रज्जू बाबू, मेरी बात नहीं मानोगे ? देखो, मैं तुम्हें यह सम्बन्ध करने के लिए कहती हूँ।"

"अगर यह प्रस्ताव है, तो मैं इसका अनुमोदन और समर्थन करता हूँ।" चन्दन ने हँसते हुए कहा।

चन्दन की हँसी राजकुमार के अंगों में तीर की तरह चुभ रही थी।

"और अब आज से वह मेरी छोटी बहन है।" तारा ने जोर देते हुए कहा।

"तो मेरी कौन हुई ?" चन्दन ने शब्दों को दबाते हुए पूछा।

तारा अप्रतिभ हो गयी, पर सँभलकर कहा, "यह दिल्लगी का वक्त नहीं।"

चन्दन चुपचाप लेट गया। दूसरी तरफ राजकुमार को खोदकर फिसफिसाते हुए कहा, "आप कर क्या रही हैं ?"

"यार, तुम्हारा लड़कपन नहीं छूटा अभी।" राजकुमार ने डाँट दिया।

चन्दन भीतर-ही-भीतर हँसते-हँसते फूल गया। तारा नीचे उतर गयी। एक बार तारा को झाँककर उसने राजकुमार से कहा, "तुम्हारा जवानपन बलबलाता रहा है, यह तो देख ही रहा हूँ।"

तारा नीचे से लोटा और एक साड़ी लेकर आ रही थी। राजकुमार के कमरे में आकर कहा, "नहा डालो रज्जू बाबू ! देर हो रही है। भोजन तैयार हो गया होगा।"

"आज नहाने की इच्छा नहीं है।"

"व्यर्थ तबियत खराब करने से क्या फायदा ?" हँसती हुई तारा ने कहा, "न नहाने से यह बला टल थोड़े ही सकती है।"

"उठो भी, अघोर-पन्थ से घिनवाकर लोगों को भगाओगे क्या ? साबुन और सेण्ट-पन्थियों से पाला पड़ा है। तुम्हारे अघोर-पन्थ के भूत उतार दिये जायँगे।" चन्दन ने पड़े हुए कहा।

"और आप···आप भी जल्दी कीजिए।" हँसती हुई तारा ने चन्दन से कहा।

"अब बार-बार क्या नहाऊँ ? पिछली रात नहा तो चुका, और ऐसा-वैसा स्नान नहीं, स्त्री-रूपी नदी को छूकर पहला स्नान, सरोवर में दूसरा, फिर डेढ़ घण्टे तक ओस में तीसरा, और जो गीले कपड़ों में रहा, वह सब बट्टे खाते।" चन्दन ने हँसते हुए कहा।

तारा हँसती रही। राजकुमार से एक बार और नहाने के लिए कहकर कनक के कमरे में चली गयी।

मकान में ही कुआँ था। महरी पानी भर रही थी। राजकुमार नहाने चला गया।

मुन्नी भोजन के लिए राजकुमार और चन्दन को बुलाने आयी थी। कुएँ पर राजकुमार को नहाते देखकर बाहर चली गयी।

अभी तक घर की स्त्रियों को कनक की खबर न थी। अकारण घृणा की शंका कर तारा ने किसी से कहा भी नहीं था। अधिक भय उसे रहस्य के खुल जाने का था। कनक को नहलाकर, वह माता के पास जाकर एक थाली में भोजन परोसवा लायी। माता ने पूछा भी, "यह किसका भोजन है ?"

"एक मेहमान आये हैं। आपसे फिर मिला दूँगी।" संक्षेप में समाप्त कर तारा थाली लेकर चली गयी।

कनक बैठी हुई तारा की सेवा, स्नेह, सहृदयता पर विचार कर रही थी। बातचीत से कनक को मालूम हो गया कि तारा पढ़ी-लिखी है, और मामूली अँगरेजी भी अच्छी जानती है। उसके इतिहास के प्रसंग पर जो अँगरेजी के नाम आये थे, तारा ने उनका बड़ा सुन्दर उच्चारण किया था, और अपनी तरफ से भी

एकाध अँगरेजी के शब्द कहे थे। 'तारा का जीवन कितना सुखमय है !' कनक सोच रही थी। और, जितनी ही उसकी आलोचना कर रही थी, अपने सारे स्त्री-स्वभाव से उसके उतने ही निकट आ रही थी, जैसे लोहे को चुम्बक देख पड़ा हो। तारा ने जमीन पर आसन डालकर थाली रख दी, और भोजन के लिए सस्नेह कनक का हाथ पकड़, उठाकर बैठा दिया। कनक के पास इस व्यवहार का, वश्यता स्वीकार के सिवा और कोई प्रतिदान न था। वह चुपचाप आसन पर बैठ गयी, और भोजन करने लगी। वहीं तारा भी बैठ गयी।

"दीदी, मैं अब आप ही के साथ रहूँगी।"

तारा का हृदय भर आया। कहा, "मैंने पहले ही यह निश्चय कर लिया है। हम लोगों में पुराने खयालात के जो लोग हैं, उन्हें तुमसे कुछ दुराव रह सकता है, क्योंकि ये लोग उन्हीं खयालात के भीतर पले हैं। उनसे तुम्हें कुछ दुःख होगा, पर बहन, मनुष्य के अज्ञान की मार मनुष्य ही तो सहते हैं। फिर स्त्री तो अपनी क्षमा और सहिष्णुता के कारण ही पुरुष से बड़ी है। उसके ये ही गुण तो पुरुष की जलन को शीतल करते हैं !"

कनक सोच रही थी, उसकी दीदी इसीलिए मोम की प्रतिमा बन गयी है।

तारा ने पुनः कहा, "मेरी अम्मा, छोटे साहब की मा, शायद वहाँ तुमसे कुछ नफरत करें। अगर उनसे तुम्हारी मुलाकात होगी, तो मैं उनसे कुछ छिपाकर न कह सकूँगी। तुम्हारा वृत्तान्त सुनकर वह जिस स्वभाव की हैं, तुम्हें छूने में तथा अच्छी तरह बातचीत करने में जरूर कुछ संकोच करेंगी। वह शीघ्र ही काशी चली जानेवाली हैं। अब वहीं रहेंगी। मैं अब की जाते ही उनके काशीवास का प्रबन्ध करवाऊँगी।"

कनक को हिन्दू-समाज से बड़ी घृणा हुई, यह सोचकर कि क्या वह मनुष्य नहीं है। अब तक मनुष्य कहलानेवाले समाज के बडे-बड़े अनेक लोगो के जैसे आचरण उसने देखे हैं, क्या वह उनसे किसी प्रकार भी पतित है ? कनक ने भोजन बन्द कर दिया। पूछा, "दीदी, क्या किसी जात का आदमी तरक्की करके दूसरी जात में नहीं जा सकता ?"

"बहन, हिन्दुओं में अब यह रिवाज नहीं रहा। यों, पौराणिक काल में, ऋषि विश्वामित्र का उदाहरण हमारे सामने अवश्य है। तुम्हें छोटे साहब विस्तार में बता सकेंगे। वह यह सब नहीं मानते। काफी पढ़ा भी है। वह कहते हैं, आदमी आदमी है, और ऊँचे शास्त्रों के अनुसार सब लोग एक ही परमात्मा से हुए हैं। यहाँ जिस तरह शिक्षा-क्रम से बड़े-छोटे का अन्दाज लगाया जाता है, पहले इसी तरह शिक्षा, सभ्यता और व्यवसाय का क्रम रखकर ही जातियों का वर्गीकरण हुआ था। वह और भी बहुत-सी बातें कहते हैं।"

कनक ने इस प्रसंग के पहले गुस्से से भोजन बन्द कर दिया था; अब खुश होकर फिर खाने लगी। दिल-ही-दिल चन्दन से मिलकर तमाम बातें पूछने की तैयारी कर रही थी।

तारा निविष्ट चित्त से कनक का भोजन करना देख रही थी। जब से कनक मिली, तारा तभी से उसकी सब प्रकार से परीक्षा कर रही थी। कनक में बहुत

बड़े-बड़े लक्षण उसने देखे। उसने किसी भी बड़े खानदान में इतने बड़े लक्षण नहीं देखे। उसका चाल-चलन, उठना-बैठना, बोलना-चालना, सब उसके बड़े खानदान में पैदा होने की सूचना दे रहे थे। उसके एक-एक इंगित में आकर्षण था। सत्रह साल की युवती की इतनी पवित्र चितवन उसने कभी नहीं देखी। सिर्फ एक दोष तारा को मिल रहा था, वह थी कनक की तीव्रता।

मुन्नी बाहर से घूमकर आ गयी। राजकुमार नहाकर ऊपर चला गया। उसने उँगली पकड़कर कहा, "चलिए, खाना तैयार है।" फिर उसी तरह चन्दन की उँगली पकड़कर खींचा, "उठिए।"

राजकुमार और चन्दन भोजन करने चले गये।

तारा डब्बा उठाकर पान लगाने लगी। कनक भोजन समाप्त कर उठी। तारा ने पानी दिया। पलँग पर आराम करने के लिए कहा, और कह दिया कि तीसरे पहर उसके घर की स्त्रियाँ और उसकी माता मिलेंगी। अभी तक उनको कनक के आने के सम्बन्ध में विशेष कुछ मालूम नहीं है। साथ ही यह भी बतला दिया कि एक झूठा परिचय दे देने से नुकसान कुछ नहीं, बल्कि फायदा ज्यादा है; यों उन लोगों को पीछे से तमाम इतिहास मालूम हो ही जायगा।

कनक यह परिचय छिपाने का मतलब कुछ-कुछ समझ रही थी। उसे अच्छा नहीं लगा, पर तारा की बात उसने मान ली। चुपचाप सिर हिलाकर सम्मति दी।

तारा भी भोजन करने चली गयी। कनक को इस व्यक्तिगत घृणा से एक जलन हो रही थी। वह समझने की कोशिश करके भी समझ न पाती थी। एक सान्त्वना उसके तत्कालीन जीवन के लक्ष्य में तारा थी। तारा के मौन प्रभाव की कल्पना करते-करते उसकी आँख लग गयी।

राजकुमार और चन्दन भोजन करके आ गये। चन्दन को नींद लग रही थी। राजकुमार स्वभावतः गम्भीर हो चला था। कोई बातचीत न हुई। दोनों लेट रहे।

उन्नीस

कुछ दिन के रहते अपना असबाब बँधवाकर तारा कनक को देखने गयी। चन्दन सो रहा था। राजकुमार एक किताब बड़े गौर से पढ़ रहा था। कनक को देखा, सो रही थी। जगा दिया। घड़े से पानी ढालकर मुँह धोने के लिए दिया। फिर पान लगाने लगी।

कनक मुँह धो चुकी। तारा ने पान दिया। एक बार फिर समझा दिया कि अब घर की स्त्रियों से मिलना होगा, खूब सँभलकर बातचीत करेगी। फिर वह चन्दन के पास गयी। चन्दन को जगाया, कहा कि अब सब लोग आ रही हैं, और

वह छींटों के लिए तैयार होकर, हाथ-मुँह धोकर बैठे।

तारा नीचे चली गयी। चन्दन भी हाथ-मुँह धोने के लिए नीचे उतर गया। राजकुमार किताब में तल्लीन था।

देखते-देखते कई औरतें बराबर के दूसरे मकान से निकलकर तारा के कमरे की ओर बढ़ने लगीं। आगे-आगे तारा थी।

तारा के घर के लोग, उसके पिता और भाई जो स्टेट में नौकर थ, चन्दन की गिरफ्तारी का हाल जानते थे। इससे भागने पर निश्चय कर लिया था कि छोटी बाईजी को वही लेकर भागा है। इस समय इन्तजाम से उन्हें फ़ुर्सत न थी। अत: घर सिर्फ दोपहर को भोजन के लिए आये थे, और चुपचाप तारा से पूछकर भोजन करने चले गये थे। घर की स्त्रियों से इसकी कोई चर्चा नहीं की। डर रहे थे कि इस तरह भेद खुल जायगा। तारा उसी दिन चली जायगी, इससे उन्हें कुछ प्रसन्नता हुई, और कुछ चिन्ता भी। तारा के पिता ने उसे बताया कि बड़े जोर-शोर से खोज हो रही है. और शायद कलकत्ते के लिए आदमी रवाना किये जायँ। उन्होंने यह भी बतलाया है कि कई साहब आये थे। एक घबराये हुए हैं, शायद आज ही चले जायँ।

तारा दो-एक रोज और रहती, पर भेद खुल जाने के डर से उसी रोज तैयार हो गयी थी। उसने सोच लिया था कि वह किसी तरह विपत्ति से बच भी सकती है, पर एक बार भी अगर गढ़ में यह खबर पहुँच गयी, तो उसके पिता का किसी प्रकार भी बचाव नहीं हो सकेगा।

स्त्रियों को लेकर तारा कनक के कमरे में गयी। दोनों पलँग के बिस्तर के नीचे से दरी निकालकर फर्श पर बिछाने लगीं। तारा की भावज ने उसकी सहायता की।

कनक को देखकर तारा की भावजें और बहनें एक दूसरी को खोदने लगीं। तारा की मा को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। कनक की ऐसी दृष्टि थी, जिसे देखकर किसी भी गृहस्थ स्त्री को क्रोध होता। उसकी दृष्टि में श्रद्धा न थी, थी स्पर्धा। बिलकुल सीधी चितवन, उम्र में उससे बड़ी-बड़ी स्त्रियाँ थीं, कम-से-कम तारा की मा तो थी ही, पर उसने किसी प्रकार भी अपना अदब जाहिर नहीं किया। लगता था, जैसे जंगल की हिरनी अभी-अभी कैद की गयी हो।

तारा कुल मतलब समझती थी, पर कुछ कह न सकती थी। कनक ने स्त्रियों से मिलने की सभ्यता का एक अक्षर भी नहीं पढ़ा था, उसे जरूरत भी नहीं थी। वह प्रणाम करना तो जानती ही न थी। खड़ी कभी तारा को देखती, कभी आगन्तुक स्त्रियों को।

तारा की माता प्रणाम करवाने और ब्राह्मण-कन्या या ब्राह्मण-बहू होने पर उसके प्रणाम करने की लालसा लिये खड़ी रह गयी। तारा से पूछा, "कौन है?"

तारा ने कहा, "अपनी ही जात।"

कनक को हार्दिक कष्ट था। जाहिर करने का कोई उपाय न था, इससे और कष्ट।

कनक का सिन्दूर धुल गया था, पर उम्र से तारा की मा तथा औरों को

विवाह हो जाने का ही निश्चय हो रहा था। फिर सोचा, शायद विधवा हो, परन्तु पहनावे से फिर शंका होती। इन सब मानसिक प्रहारों से कनक का कलेजा जैसे चारों ओर दबा जा रहा हो, कहीं साँस लेने की भी जगह न रह गयी हो।

कुछ देर तक यह दृश्य देखकर तारा ने माता से कहा, "अम्मा, बैठ जाओ!"

तारा की मा बैठ गयी। अन्य स्त्रियाँ भी बैठ गयीं। तारा ने कनक को भी बैठा दिया।

कनक किसी तरह उनमें नहीं मिल पा रही थी। तारा की मा उसके प्रणाम न करने के अपराध को किसी तरह भी क्षमा नहीं करना चाहती थी। और, उतनी बड़ी लड़की का विवाह होना उनके पास 99 फीसदी निश्चय में दाखिल था। प्रखर स्वर से कनक से पूछा, "कहाँ रहती हो बच्ची ?"

कनक के दिमाग के तार एकसाथ झनझना उठे। उत्तर देना चाहती थी, पर गुस्से से बोल न सकी। तारा ने सँभाल लिया, "कलकत्ते में।"

"यह गूँगी है क्या ?" तारा की मा ने दूसरा वार किया। अन्य स्त्रियाँ एक-दूसरी को खोदकर हँस रही थीं। उन्हें ज्यादा खुशी कनक के तंग किये जाने पर इसलिए थी कि वह इन सबसे सुन्दरी थी, और एक-एक बार जिसकी तरफ भी देखा था, सबने पहले आँखें झुका ली थीं, और दुबारा आँखों के प्यालों में ऊपर तक जहर भरकर उसकी तरफ उँडेला था। उसके जैस सौन्दर्य के अभाव से, उतने समय के लिए, वीतराग होकर उसके सौन्दर्य को मन-ही-मन कस्बियों की सम्पत्ति करार दे रही थीं।

"जी नहीं, गूँगी तो नहीं हूँ।" कनक ने अपनी समझ में बहुत मुलायम स्वर में कहा, पर तारा की मा के लिए इससे तेज दूसरा उत्तर था ही नहीं। फिर घर आयी से, पराजय होने पर भी, हमेशा विजय की गुंजायश बनी रहती है। इस प्राकृतिक अनुभूति से स्वतःप्रेरित स्वर को मध्यम से धैवत-निषाद तक चढ़ाकर, भौंएँ तीन जगह से सिकोड़कर, जैसे बहुत दूर की कोई वस्तु देख रही हों, मनुष्य नहीं, फिर आक्रमण किया, "अकेले यहाँ कैसे आयी ?"

तारा को इस हद तक आशा न थी। उसे बहुत ही बुरा लगा। उसने उसी वक्त बात बना ली, "स्टेशन आ रही थी—अपने मामा के यहाँ। छोटे साहब से मुलाकात हो गयी, तो साथ ले लिया। कहा, एक साथ चलेंगे। उन्हीं ने मुझे बताया कि यह भी साथ चलेंगी।"

"अरे, वही कहा न कि अकेले घूमना···विवाह हो गया है कि नहीं ?" तारा की माता के मुख पर शंका, सन्देह, नफरत आदि भाव बादलों-से, पहाड़ी दृश्य की तरह, बदल रहे थे।

"अभी नहीं।" कनक को अच्छी तरह देखते हुए तारा ने कहा।

मुद्रा से माता ने आश्चर्य प्रकट किया। और-और स्त्रियाँ असंकुचित हँसने लगीं। कनक की मानसिक स्थिति बयान से बाहर हो गयी।

चन्दन वहीं, दूसरे कमरे में, पड़ा यह सब आलम-परिचय सुन रहा था। उसे बड़ा बुरा लगा। स्त्रियों ही की तरह निर्लज्ज हँसी हँसता हुआ कहने लगा, "अम्मा, बस, इसी तरह समझिए, जैसे बिट्टन मामा के यहाँ गयी हैं, और रास्ते में

में मिल गया होऊँ, और मेरे खानदान की कोई स्त्री हो, वहाँ टिका लूँ, फिर यहाँ ले आऊँ। हाँ, बिट्टन में और इनमें यह फर्क अवश्य है कि बिट्टन को चाहे, तो कोई भगा ले जा सकता है, पर इन्हें नहीं, क्योंकि यह काफी पढ़ी-लिखी हैं।"

तारा की माता पस्त हो गयी। बिट्टन उन्हीं की लड़की है। उम्र 15 साल की, पर अभी विवाह नहीं हुआ था। चन्दन से विवाह करने के इरादे से रोक रक्खा है। बिट्टन अपने मामा के यहाँ गयी हुई थी।

तारा को चन्दन का जवाब नितान्त युक्ति-संगत लगा, और कनक के गाल तो मारे प्रसन्नता के लाल पड़ गये। राजकुमार उसी तरह निर्विकार चित्त से किताब पढ़ने का ठाट दिखा रहा था। भीतर से सोच रहा था, किसी तरह कलकत्ता पहुँचूं, तो बताऊँ।

महिला-मण्डली का रंग फीका पड़ गया।

"अभी पिसनहर के यहाँ पिसना देने जाना है।" कहकर, काँखकर, वैसे ही त्रिभागी दृष्टि से कनक को देखती हुई, मुँह बनाकर तारा की माता उठी, और धीरे-धीरे नीचे उतर गयी। जीने से एक बार चन्दन की ओर घूरकर देखा। उसके बाद घर की और-और स्त्रियों ने भी 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' का अनुसरण किया।

कनक बैठे-बैठे सबको देखती रही। सब चली गयीं, तो तारा से पूछा, "दीदी ! ये लोग कोई पढ़ी-लिखी नहीं थीं शायद ?"

"न, यहाँ तो बड़ा पाप समझा जाता है।"

"आप तो पढ़ी-लिखी जान पड़ती हैं ?"

"मेरा लिखना-पढ़ना वहीं हुआ है। घर में कोई काम था ही नहीं। छोटे साहब के भाई साहब की इच्छा थी कि कुछ पढ़ लूँ। उन्हीं से तीन-चार साल में हिन्दी और कुछ अँगरेजी पढ़ ली।"

कनक बैठी सोच रही थी, और उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे सब स्त्रियाँ, जो अपने घर में भी इतनी असभ्यता से पेश आयीं, किस अंश में उससे बड़ी थीं। दीदी की सहृदयता और चन्दन का स्नेह स्मरण कर रोमांचित हो उठती, पर राजकुमार की याद से उसे वैसी ही निराशा हो रही थी। उसके अविचल मौन से वह समझ गयी कि अब वह उसे पत्नी-रूप में ग्रहण नहीं करेगा। इस चिन्ता से उसका चित्त न जाने कैसा हो जाता, मानो पक्षी के उड़ने की सब दिशाएँ अन्धकार से ढक गयी हों, और ऊपर आकाश हो और नीचे समुद्र। अपने पेशे का जैसा अनुभव तथा उदाहरण वह लेकर आयी थी, उसकी याद आते ही घृणा और प्रतिहिंसा की एक लपट बनकर जल उठती, जो जलाने से दूसरों को दूर देखकर अपने ही तृण और काष्ठ जला रही थी।

सन्ध्या हो चुकी थी। सूर्य की अन्तिम किरणें पृथ्वी से बिदा हो रही थीं। नीचे हरपालसिंह ने आवाज दी।

तारा ने उसे ऊपर बुला लिया। हरपालसिंह बिलकुल तैयार होकर आज्ञा लेने आया था कि तारा कहे, तो वह गाड़ी लेकर आ जाय। हरपालसिंह को चन्दन के पास पलँग पर बैठाकर तारा नीचे चली गयी, और थोड़ी देर में चार सौ रुपये के नोट लेकर लौट आयी। हरपालसिंह को रुपये देकर कहा कि वह सौ-सौ रुपये

के तीन थान सोने के गहने और दस-दस रुपये तक के दस थान चाँदी के, जो भी मिल जायँ, बाजार से जल्द ले आवे।

हरपालसिंह चला गया। तारा कमरों में दिये जलाने लगी। फिर पान लगा-कर दो-दो बीड़े सबको देकर नीचे माता के पास चली गयी। उसकी माता पूड़ियाँ निकाल रही थी। उसे देखकर पुनः प्रश्न कर बैठी, "इससे तुम्हारी कैसे पहचान हुई ?"

तभी एक भावज ने कहा, "देखो न, मारे ठसक के किसी से बोली ही नहीं ! 'प्रभु से गरब कियो, सो हारा, गरब कियो वे बन को घुँघची, मुख कारा कर डारा।' हमें तो बड़ी गुस्सा लगी पर हमने कहा, कौन बोले इस बेहूदी से !"

दूसरी बोल उठी, "इसी तरह तो औरत बिगड़ जाती है। जुअण्टा है, ब्याह नहीं हुआ, और अकेली घूमती है !"

"छोटे बाबू से जान-पहचान अच्छी है।" पूड़ियाँ बेलती हुई अपनी जिठानी की तरफ देखकर, आँखों में बड़ी मार्मिक हँसी हँसकर तीसरी ने कहा।

जिठानी ने साथ दिया, "हाँ, देखो न, बेचारे उतनी दूर से विना बोले नहीं रह सके। कैसा बनाया, जैसे और कोई सत्तू में छेद करना जानता ही नहीं।"

उत्साह से तीसरी ने कहा, "इसीलिए तो ब्याह नहीं करते।"

तारा को इस आलोचना-प्रत्यालोचना के बीच बच रहने की काफी जगह मिली। काम हो रहा है, देख वह लौट गयी। इनके व्यवहार से मन-ही-मन उसे बड़ी ग्लानि हुई।

तारा कनक के पास चली आयी। उसके प्रति जो व्यावहारिक अन्याय उसके घर की स्त्रियों ने किया था, उसके लिए बार-बार क्षमा माँगने लगी। पहले उसे लज्जा होती थी, पर अब उसे काफी बल मिल रहा था।

"दीदी, आप मुझे मिलें, तो सबकुछ छोड़ सकती हूँ।" कनक ने स्नेह-सिक्त स्वर से कहा।

तारा के हृदय में कनक के लिए पहले ही से बड़ी जगह थी, इस शब्द से वहाँ उसकी इतनी कीमत हो गयी, जितनी आज तक किसी की भी न हुई थी।

चन्दन पड़ा हुआ सुन रहा था, उससे न रहा गया। कहा, "बस, जैसी तजवीज आपने निकाली है, कुल रोगों की एक ही दवा है। मजबूती से इन्हें पकड़े रहिये। गुरु समर्थ है, तो चेला कभी तो सिद्ध हो ही जायगा।"

हरपालसिंह ने आवाज लगायी, तारा उठ गयी। दिखाकर हरपालसिंह ने दरवाजे पर ही कुल सामान दे दिया, और पूछकर अपनी गाड़ी लेने चला गया। रात एक घण्टे से ज्यादा पार हो चुकी थी।

यह सब सामान तारा ने अपनी भावजों तथा अपने नियुक्त किये हुए लोगों और कुछ परजों को देने के लिए मँगवाया था।

मकान में जाकर अपनी मा से तैयारी करने के लिए कहा। पूड़ियाँ बाँध दी गयीं। असबाब पहले ही से बाँधकर तैयार कर रक्खा था।

घर में स्त्रियाँ एकत्र होने लगीं। पड़ोस की भी कुछ स्त्रियाँ आ-आकर जमने लगीं। तारा उठकर बार-बार देवता को स्मरण कर रही थी। ऊपर जा कनक को

ओढ़ने के लिए अपनी चादर दी। भूल गयी थी, छत से उसकी पेशवाज ले आयी, और बाँधकर एक बॉक्स में, जिसमें पुराने कपड़े आदि मामूली सामान थे, डाल दी।

हरपालसिंह गाड़ी ले आया। कोई पूछता, तो कह देता, गाँव के स्टेशन गाड़ी ले जानी है।

तारा ने भावजों को भेंट दी। माता तथा गाँव की स्त्रियों से मिली। नौकरों को इनाम दिया। फिर कनक को ऊपर से लिवा लायी। थोड़े ही शब्दों में सबको उसका परिचय देकर, गाड़ी पर बैठाल, सामान रखवा, स्वयं भी भगवान् विश्वनाथ का स्मरण कर बैठ गयी। गाड़ी चल दी। राजकुमार और चन्दन पैदल चलने लगे।

बीस

दूसरा स्टेशन वहाँ से 5-6 कोस पड़ता था। रात डेढ़-दो बजे के करीब गाड़ी पहुँची। तारा ने रास्ते से ही कनक को घूंघट से अच्छी तरह छिपा रक्खा था। स्टेशन के पास एक बगल गाड़ी खड़ी कर दी गयी। चन्दन टिकट खरीदने और आवश्यक बातें जानने के लिए स्टेशन चला गया। राजकुमार से वहीं रहने के लिए कह गया। ट्रेन रात चार बजे के करीब आती थी।

चन्दन ने स्टेशन-मास्टर से पूछा, तो मालूम हुआ कि सेकेण्ड क्लास का डब्बा मिल सकता है। चन्दन भाभी के पास लौटकर समझाने लगा कि फर्स्टक्लास का टिकट खरीदने की अपेक्षा, उसके विचार से, एक सेकेण्ड क्लास छोटा डब्बा रिजर्व करा लेने से सुविधा ज्यादा होगी। दूसरे, खर्च में भी कमी रहेगी। तारा सहमत हो गयी। चन्दन ने सौ रुपये तारा से और ले लिये।

रास्ते-भर कनक के सम्बन्ध में कोई बातचीत नहीं हुई। चन्दन ने सबको समझा दिया था कि कोई इस विषय पर किसी प्रकार का जिक्र न छेड़े। हरपालसिंह के आदमी, स्टेशन से दूर उसके लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे। चन्दन सोच रहा था, स्त्रियों को वेटिंग-रूम में ले जाया जाय या गाड़ी आने तक यहीं ठहरे। हरपालसिंह फुरसत पा टहलता हुआ स्टेशन की तरफ चला गया। चन्दन डब्बा रिजर्व कराने चला। राजकुमार को तारा ने अपने पास बैठा लिया।

कुछ देर बाद, शंका से अगल-बगल देख-दाख, सीना तानता हुआ हरपालसिंह लौटा। तारा से कहा, "यहाँ तो बड़ा खतरा है बहन! सँभलकर जाना। लोग लगे हैं। सबकी बातचीत सुनते हैं, और बड़ी जाँच हो रही है। राज्य के कई सिपाही भी हैं।

सुनकर राजकुमार की आँखों से ज्वाला निकलने लगी, पर सँभलकर रह

गया। तारा घबराकर राजकुमार की तरफ देखने लगी। कनक भी तेज निगाह से राजकुमार को देख रही थी। स्टेशन की बत्तियों के प्रकाश से घूंघट के भीतर उसकी चमकती हुई आँखें झलक रही थीं। कुल मुखाकृति जाहिर हो रही थी। तारा ने एक साँस लेकर हरपालसिंह से कहा, "भैया, छोटे बाबू को बुला तो लाओ।"

स्टेशन बड़ा था। बगल में डब्बे लगे। कई कर्मचारी थे। चन्दन का काम हो गया था। वह हरपालसिंह को रास्ते में ही मिल गया। उनके पास आने पर तारा शंकित, दबे हुए स्वर से स्टेशन के वायुमण्डल का हाल, अवश्यम्भावी विपत्ति से घबरायी हुई, कहने लगी।

चन्दन थोड़ी देर सोचता रहा, फिर उसने हरपालसिंह से कहा, "भैया, तुम चले जाओ, भेद अगर खुल गया, और तुम साथ रहे, तो तुम्हारे लिए बहुत बुरा होगा।"

हरपालसिंह की भौंहें तन गयीं, निगाह बदल गयी। बोला, "भैया हे ! जान का खेयाल करते, तो आपका साथ न देते ! आपकी इच्छा होय, तो हियँ लाठी···"

चन्दन ने उतावली से रोक लिया। इधर-उधर देखकर धीरे से कहा, "यह सब हमें मालूम है भैया, तुम्हारे कहने से पहले ही, पर अब ज्यादा बहस इस पर ठीक नहीं। तुम चले जाओ, हम आराम-कमरे में जाते हैं। गाड़ी आती ही होगी। हमारे साथ तुम स्टेशन पर रहोगे, तो देखकर लोग शक कर सकते हैं।"

"हाँ, यह तो ठीक है।" बात हरपालसिंह को जँच गयी।

उसे बिदा करने के लिए तारा उठकर खड़ी हो गयी। सामान पहले ही गाड़ी से उतारकर नीचे रख दिया गया था। हरपालसिंह ने बैल नह दिये, और तारा के चरण छुए। तारा खड़ी रही। कनक के दिल में भी हरपालसिंह के प्रति इज्जत पैदा हो गयी थी। तारा के साथ ही वह भी उठकर खड़ी हो गयी। उसका खड़ा होना हरपालसिंह को बहुत अच्छा लगा। इस सभ्यता से उसके वीर हृदय को एक प्रकार की शान्ति मिली। तारा उसके पुरस्कार की बात सोचकर भी कुछ ठीक न कर सकी। एकाएक सरस्वती के दिये शब्दों की तरह उसे एक पुरस्कार सूझा, "भैया, ज़रा रुक जाओ। जिसके लिए यह हो रहा है, उसे अच्छी तरह देख लो।" यह कह उसने कनक का घूंघट उलट दिया।

वीर हरपालसिंह की दृष्टि में ज़रा देर के लिए विस्मय देख पड़ा। फिर न-जाने क्या सोचकर उसने गर्दन झुका ली, और अपनी गाड़ी पर बैठ गया। फिर उस तरफ उसने नहीं देखा। धीरे-धीरे सड़क से गाड़ी ले चला। राजकुमार और चन्दन पचास कदम तक बढ़कर उसे छोड़ने गये।

लौटकर राजकुमार को वे ही कीमती कपड़े, जो कनक के यहाँ उसे मिले थे, पहनाकर, खुद भी इच्छानुसार दूसरी पोशाक बदलकर चन्दन कुली बुलाने स्टेशन गया। तारा से कह गया, जरूरत पड़ने पर वह कनक को अपनी देवरानी बतायेगी, बाकी परिचय वह दे लेगा।

आगे-आगे सामान लिये हुए तीन कुली, उनके पीछे चन्दन, बीच में दोनों स्त्रियाँ, सबसे पीछे राजकुमार अपना सुरक्षित व्यूह बनाकर स्टेशन चले। कनक

अवगुण्ठित, तारा तारा की तरह खुली हुई पर बारीक विचार रखनेवाले देखकर ही समझ सकते थे, कि उन दोनों में कौन अवगुण्ठित, और कौन खुली हुई थी। कनक सब अंगों से ढकी हुई होने पर भी कहीं से भी झुकी हुई न थी। बिलकुल सीधी, जैसे अपनी रेखा और पदक्षेप से ही अपना खुला हुआ जीवन सूचित कर रही हो। उधर तारा की तमाम झुकी मानसिक वृत्तियाँ, उसके अनवगुण्ठित रहने पर भी, आत्मावरोध का हाल बयान कर रही थीं।

नौकर ने जनाने वेटिंग-रूम का द्वार खोल दिया। तारा कनक को लेकर भीतर चली गयी। बाहर दो कुर्सियाँ डलवा, बुक-स्टाल से दो अँगरेजी उपन्यास खरीदकर, दोनों मित्र बैठकर पढ़ने लगे। लोग चक्कर लगाते हुए आते, देखकर चले जाते। कुँवर साहब के आदमी भी कई बार आये। देर तक देखकर चले गये। जिस पखावजिये ने कनक को भगाया था, चन्दन अपनी स्थिति द्वारा उससे बहुत दूर, बहुत ऊँचे, सन्देह से परे था। किसी को शक होने पर वह अपने शक पर ही शक करता।

राजकुमार किताब कम पढ़ रहा था, अपने को ज्यादा। वह जितना ही कनक से भागता, चन्दन और तारा उतना ही उसका पीछा करते। कनक अपनी जगह पर खड़ी रह जाती। उसकी दृष्टि में उसके लिए कोई प्रार्थना न थी, कोई शाप भी न था, जैसे वह केवल राजकुमार के इस अभिनय को खुले हृदय की आँखों से देखनेवाली हो। यह राजकुमार की ओर चोट करता था। स्वीकार करते हुए उसका जैसे तमाम बल ही नष्ट हो जाता।

राजकुमार की समस्त दुर्बलताओं का अपने उस समय के स्वभाव के तीखेपन और तेजी से आकर्षित कर चन्दन लोगों को अपनी तरफ मोड़ लेता था। वह भी कुछ पढ़ नहीं रहा था, पर राजकुमार जितनी हद तक मनोराज्य में था, उतनी ही हद तक चन्दन बाहरी दुनिया में, अपनी तमाम वृत्तियों को सतर्क किये हुए—जैसे आकस्मिक आक्रमण को तत्काल रोकने के लिए तैयार हो। पन्ने केवल दिखावे के लिए उलटता था, और इतनी जल्दबाजी थी कि लोग उसी की तरफ आकृष्ट होते थे। चन्दन का सोलहो आने बाहरी आडम्बर था। राजकुमार का बाह्य-ज्ञान-साहित्य उस पर आक्रमण करने, पूछताछ करने का मौका देता था, पर चन्दन से लोगों में भय और सम्भ्रम पैदा हो जाता। वे त्रस्त हो जाते थे, और खिंचते भी थे उसी की तरफ पहले। वहाँ जिसकी खोज में स्टेट के आदमी से उसकी पूछताछ बेअदबी तथा मूर्खता थी, और स्टेट की भी इससे बेइज्जती होती थी—कहीं बात फैल गयी; शका थी, कहीं यह कोई बड़ा आदमी हो; पाप था—हिम्मत था नहीं, लोग आते और लौट जाते। चन्दन समझता था, इसलिए वह और गम्भीर बना रहा।

गाड़ी का वक्त हो गया। लोग प्लेटफार्म पर जमने लगे। चन्दन का डब्बा दूसरी लाइन पर लाकर लगा दिया गया। सिगनल गिरा। देखते-देखते गाड़ी भी आ गयी। स्टेशन-मास्टर ने गाड़ी कटवाकर चन्दन के सामने ही वह डब्बा लगवा दिया, और फिर बड़े अदब से आकर चन्दन को सूचना दी। दस रुपये का एक नोट निकालकर चन्दन ने स्टेशन-मास्टर को पुरस्कृत किया। स्टेशन-मास्टर प्रसन्न हो गये। पास खड़े पुलिस के दो सिपाही देख रहे थे। सामने आकर उन्होंने भी सलामी

दी। दो-दो रुपये चन्दन ने उन्हें भी दिये।

चन्दन ने तारा को बाहर ही से आवाज दी, "भाभी, चलिए !"

सिपाहियों ने आदमियों को हटाकर रास्ता बना दिया। हटाते वक्त दो-एक धक्के स्टेट के आदमियों को भी मिले। कुली सामान उठा-उठाकर डब्बे में रखने लगे। चन्दन ने खिड़कियाँ बन्द करा दीं। दरवाजा चपरासी ने खोल दिया। तारा कनक को साथ लेकर धीरे-धीरे डब्बे के भीतर चली गयी। चन्दन ने कुलियों और चपरासियों को भी पुरस्कार दिया। राजकुमार भीतर चला गया। चन्दन के चढ़ते समय पुलिस के सिपाहियों ने फिर सलामी दी। चन्दन ने दो-दो रुपये फिर दिये, और गाड़ी में चढ़ गया।

पुलिस के सिपाहियों ने फिर अपनी मुस्तैदी दिखाकर—चलते-चलते प्रसन्न कर जाने के विचार से—"क्या देखते हो, हटो यहाँ से" कह-कहकर सामने खड़ी भीड़ को दो-चार धक्के और लगा दिये। प्राय: सभी लोग स्टेट के ही खुफिया-विभाग के थे।

गाड़ी चल दी। कनक ने आप-ही-आप घूंघट उठा दिया। विगत प्रसंग पर बातें होती रहीं। चारो ने खुलकर एक-दूसरे की बातें कीं। जो कुछ भी राजकुमार को अविदित था, मालूम हो गया। कनक के अन्दर अब किसी प्रकार का उत्साह नहीं रह गया था। वह जो कुछ कहती थी, सिर्फ कहना था, इसलिए। उसके स्वर में किसी प्रकार का अभियोग न था, कोई आकांक्षा न थी। राजकुमार के पिछले भावों से उसके मर्मस्थल पर गहरी चोट लग चुकी थी।

जितनी ही बातें होतीं, राजकुमार उतना ही बदलता जा रहा था। तारा ने फिर विवाह आदि के लिए आग्रह नहीं किया। चन्दन भी दो-एक बार उसे दोष देकर चुप रह गया।

हाँ, उसने जिस मनोवैज्ञानिक ढंग से बात की थी, उसे सुनकर राजकुमार को अपनी त्रुटि मालूम हो रही थी, पर कनक ने इधर जिस तेजी से, सम्बन्ध-रहित की तरह, बिलकुल खुली हुई बातचीत की, इससे चन्दन के प्रसंग पर अत्यन्त संकोच और हेठी के कारण राजकुमार हारकर भी विवाह की बात स्वीकृत नहीं कर रहा था।

उस समय कनक को जो कुछ आनन्द मिला था, वह केवल चन्दन की बातचीत से। नाराज थी कि उसके इस प्रसंग का इतना बढ़ाव किया जा रहा है। सत्य-प्राप्ति के बाद जैसे सत्य की बहस केवल तकरार होती रही है, हृदय-शून्य ये तमाम बातें कनक को वैसी ही लग रही थीं। राजकुमार के प्रति तारा के हृदय में क्रोध था और कनक के हृदय में दुराव।

चारो एक-एक बर्थ पर बैठे थे। तारा थक रही थी। लेट रही। चन्दन ने स्टेशन पर जितनी शक्ति खर्च की थी, उसके लिए विश्राम करना आवश्यक हो रहा था। वह भी लेट रहा। हवा नहीं लग रही थी, इसलिए उठकर, खिड़की खोलकर फिर लेट रहा।

राजकुमार बैठा कुछ सोच रहा था। कनक बैठी अपने भविष्य की कल्पना कर रही थी, जहाँ केवल भावना-ही-भावना थी, सार्थक शब्द-जाल कोई नहीं। बड़ी देर

हो गयी। गाड़ी पूरी रफ्तार से चली जा रही थी। कनक चन्दन की किताब उठाकर पढ़ने लगी। तारा और चन्दन सो गये थे।

राजकुमार अपने गत जीवन के चित्रों को देख रहा था। कुछ संस्मरण लिखने के लिए पॉकेट से नोटबुक निकाली। लिखने लगा। एक विचित्र अनुभव हुआ, जैसे उसकी तमाम देह बँधी हुई खिंची जा रही हो कनक की तरफ, हर अंग उसके उसी अंग से बँधा हुआ। जोर लगाना चाहा, पर जैसे शक्ति ही न हो। इच्छा का वाष्प जैसे शरीर के शत छिद्रों से निकल गया हो। केवल उसका निष्क्रिय अहं-ज्ञान और निष्क्रिय शरीर रह जाता था, मानो केवल प्रतिघात करते रहने के लिए, कुछ सृष्टि करने के लिए नहीं। इसके बाद ही उसका शरीर काँपने लगा। ऐसी दशा उसकी कभी नहीं हुई थी। उसने अपने को सँभालने की बड़ी चेष्टा की, पर संस्कारगत शरीर पर उसके नये प्रयत्न चल नहीं रहे थे, जैसे उसका श्रेय जो कुछ था, कनक ने ले लिया हो, जो उसी का हो गया था; वह जिसे अपना समझता था, जिसके दान में उसे संकोच था, जैसे उसी के पास रह गया हो, और उसकी वश्यता से अलग। अपनी तमाम रचनाओं की ऐसी विश्रृंखल अवस्था देख वह हताश हो गया। आँखों में आँसू भर आये। चेष्टा विकृत हो गयी।

तारा और चन्दन सो रहे थे। कनक राजकुमार को देख रही थी। अब तक वह मन से उससे पूर्णतया अलग थी। राजकुमार के साथ जिन-जिन भावनाओं के साथ वह लिपटी थी, उन सबको बैठी हुई अपनी तरफ खींच रही थी। कभी-कभी राजकुमार की मुख-चेष्टा से हृदय की करुणाश्रित सहानुभूति उसके स्त्रीत्व की पुष्टि करती हुई राजकुमार की तरफ उमड़ पड़ती थी, तब राजकुमार की क्षुब्ध चित्त-वृत्तियों पर एक प्रकार का सुख झलक जाया करता, कुछ सान्त्वना मिलती थी। नवीन बल प्राप्त कर वह अपने समर के लिए फिर तैयार होता था। कनक रह-रहकर, खुद चलकर, अपनी निर्दोषिता जाहिर कर एक बार फिर अन्तिम बार प्रार्थना करने का निश्चय कर रही थी। लज्जा और मर्यादा का बाँध तोड़कर उसके स्त्रीत्व का प्रवाह एक बार फिर उसके पास पहुँचने के लिए व्याकुल हो उठा, पर दूसरे ही क्षण राजकुमार के रुक्ष बर्ताव याद आते ही वह संकुचित हो बैठी रही।

जब कनक के भीतर सहृदय कल्पनाएँ उठती थीं, तब राजकुमार देखता था, कनक उसके भीतर, उसकी भावनाओं में रँगकर, अत्यन्त सुन्दर हो गयी है। हृदय में उसका उदय होते ही एक ज्योति-प्रवाह फूट पड़ता था। स्नेह, सहानुभूति और अनेक कल्पनाओं के साथ उसकी कविता सुन्दर तरंगों से उसे बहलाकर बह जाती थी।

गाड़ी आसनसोल-स्टेशन पर खड़ी थी। राजकुमार बिलकुल सामने की सीट पर था। डब्बे के झरोखे खुले हुए थे। गाड़ी को स्टेशन पहुँचे दस मिनट के करीब हो चुका था। कनक का मुँह प्लेटफार्म की तरफ था। बाहर के लोग उसे अच्छी तरह देख सकते थे, और देख रहे थे। प्लेटफार्म की तरफ राजकुमार की पीठ थी।

राजकुमार चौंक पड़ा, जब एकाएक गाड़ी का दरवाजा खुल गया। कनक

सिकुड़कर शंकित दृष्टि से एक आदमी को देख रही थी। घूँघट काढ़ना, अनभ्यास के कारण, उसके शंकित स्वभाव के प्रतिकूल हो गया।

दरवाजे के शब्द से राजकुमार की चेतना ने आँखें खोल दीं। झटपट उठा। एक अपरिचित आदमी देख पड़ा। कनक ने तारा और चन्दन को जगा दिया। दोनों ने उठकर देखा, एक साहब और राजकुमार, दोनों एक-दूसरे को तीव्र स्पर्धा की दृष्टि से देख रहे थे।

"तुम शायद मुझे भूले नहीं हैमिल्टन !" राजकुमार ने अँगरेजी में डपटकर कहा।

साहब देखते रहे। साहब के साथ एक पुलिस का सिपाही, स्टेशन-मास्टर, स्टेशन के कर्मचारी और कुछ परिदर्शक एकत्र थे। साहब को बुरी तरह डाँटे जाते देखकर स्टेशन-मास्टर ने मदद की, "इस डब्बे में भगाई हुई औरत है—वह कौन है ?"

"है नहीं, हैं कहिए, उत्तर तब मिलेगा। पर आप कौन हैं, जिन्हें उत्तर देना है ?" राजकुमार ने तेज स्वर से पूछा।

"मेरी टोपी बतला रही है।" स्टेशन-मास्टर ने भी आँखें निकालकर कहा।

"मैं आपको आदमी तब समझूँगा, जब जरूरत के वक्त आप कहें कि एक रिजर्व सेकेण्ड क्लास के यात्री को आपने 'कौन है' कहा था।"

स्टेशन-मास्टर का चेहरा उतर गया। तब कांस्टेबिल ने हिम्मत की, "आपके साथ वह कौन बैठी हुई है ?"

"मेरी स्त्री, भावज और भाई।"

स्टेशन-मास्टर ने साहब को भी अँगरेजी में समझा दिया। साहब ने दो बार आँखें झुकाये हुए सिर हिलाया, फिर अपने कम्पार्टमेण्ट की तरफ चल दिये। और लोग भी पीछे-पीछे चले।

दरवाजा बन्द करते हुए राजकुमार ने सुनाकर कहा, "कावर्ड्स !"

गाड़ी चल दी।

इक्कीस

राजकुमार के होंठों का शब्द-बिन्दु पीकर कनक सीपी की तरह आनन्द के सागर पर तैरने लगी। भविष्य की मुक्ता की ज्योति उसकी वर्तमान दृष्टि में चमक उठी। अभी तक उसे राजकुमार से लज्जा नहीं थी, पर अब दीदी के सामने आप-ही-आप लाज के भार से पलकें झुकी पड़ती थीं। राजकुमार के हृदय का भार भी उसी क्षण दूर हो गया। एक प्रकार की गरिमा से चेहरा वसन्त के खुले हुए फूल पर पड़ती हुई सूर्यरश्मि से जैसे चमक उठा।

तारा के तारक नेत्र पूरे उत्साह से उसका स्वागत कर रहे थे, और चन्दन तो अपनी मुक्त प्रसन्नता से जैसे सबको छाप रहा हो।

चन्दन राजकुमार को भाभी और कनक के पास पकड़ ले गया, "ओह ! देखा भाभी, कितने गहरे हैं जनाब !"

कनक अब राजकुमार से आँखें नहीं मिला पा रही थी। राजकुमार को देखती, तो जैसे कोई उसे गुदगुदा देता। और, उससे सहानुभूति रखनेवाली उसकी दीदी और चन्दन भी इस समय उसकी लज्जा की तरफ न होंगे, उसने समझ लिया था। राजकुमार के पकड़ आते ही वह उठकर तारा की दूसरी बगल सटकर बैठ गयी। राजकुमार और चन्दन भी उसी बर्थ पर बैठ गये।

राजकुमार की तरफ देखकर तारा सस्नेह हँस रही थी, "तो यह कहिए, आप दोनों सधे हुए थे, यह अभिनय अब तक केवल दिखलाने के लिए ही कर रहे थे ? आपने अभिनय की सफलता में कमाल कर दिया।"

"आप लोगों को प्रसन्न करना भी तो धर्म है।" राजकुमार मुस्किराता जाता था।

कनक दीदी की आड़ में छिपकर हँस रही थी।

चन्दन मानव-प्रकृति का ज्ञाता था। उसने सोचा, आनन्द के समय जितना ही चुप रहा जाये, आनन्द उतना ही स्थायी होता है, और तभी उसकी अनुभूति का सच्चा सुख भी प्राप्त होता है। इस विचार से उसने प्रसंग बदलकर कहा, "भाभी, ताश तो होंगे ?"

"हाँ, बक्से में पड़े तो थे।"

"निकाल दो। अच्छा, मुझे गुच्छा दो, और किस बाक्स में हैं, बतला दो, मैं निकाल लूँगा।" चन्दन ने हाथ बढ़ाया।

तारा स्वयं उठकर चली। "रज्जू बाबू, जरा यह बॉक्स तो उतार दो।"

राजकुमार ने उठकर ऊपरवाला तारा का कैश-बॉक्स नीचे रख उस बड़े बॉक्स को उतार लिया।

खोलकर तारा ने ताश निकाल लिये। कौन किस तरफ हो, इसका निर्णय होने लगा। राजकुमार बॉक्स को उठाकर रखने लगा। फैसला नहीं हो रहा था। चन्दन कहता था, तुम दोनों एक तरफ हो जाओ, मैं और राजकुमार एक तरफ, पर तारा चन्दन को लेना चाहती थी। क्योंकि मजाक के लिए मौका राजकुमार और कनक को एक तरफ करने में था। दूसरे चन्दन खेलता भी अच्छा था।

कनक सोचती थी, दीदी हार जायेगी, वह जरूर अच्छा नहीं खेलती होगी। अपनी ही तरह दिल से तारा भी कनक को कमजोर समझ रही थी। राजकुमार ज़रा-सी बात के लिए इस लम्बे विवाद पर चुपचाप हँस रहा था। कनक ने खुल-कर कह दिया, मैं छोटे साहब को लूँगी। यही फैसला रहा।

अब बात उठी, क्या खेला जाय। चन्दन ने कहा, ब्रिज। तारा इनकार कर गयी। वह ब्रिज अच्छा नहीं जानती थी। उसने कहा, बादशाह पकड़। कनक हँसने लगी।

चन्दन बोला, "अच्छा, ट्वएण्टीनाइन खेलो।"

राजकुमार ने कहा, "भई, अपनी डफली, अपना राग, स्क्रू खेलो। बहूजी टुएण्टीनाइन-खेल अच्छा नहीं जानतीं, मैं हार जाऊँगा।"

"मैं सड़ियल खेल नहीं खेलता, क्यों भाभीजी ? उनतीस के लिए पत्ते छाँटता हूँ।" चन्दन ने सबसे छोटे होने के छोटे स्वर में बड़ी दृढ़ता रखकर कहा।

अन्ततः यही निश्चय रहा।

"आप तो जानती हैं न टुएण्टीनाइन ?" कनक से चन्दन ने पूछा।

"खेलिए।" कनक मन्द मुस्किरा दी।

कनक और चन्दन एक तरफ, तारा और राजकुमार दूसरी तरफ हुए। चन्दन ने पत्ते अलग कर लिये। कह दिया, बोली चार-ही-चार पत्तों पर होगी, और रंग छिपाकर रक्खा जायगा, जिसे जरूरत पड़े, साबित करा ले। रंग खुलने के बाद रॉयल पेयर की कीमत होगी।

चार-चार पत्ते बाँटकर चन्दन ने कहा, "कुछ बाजी भी ?"

"हाँ, घुसावल। हर सेट पर पाँच घूँसे।" राजकुमार ने कहा।

"यार, तुम गँवार के गँवार ही रहे। एम. ए. तो पास किया, पर सिंहजी का शिकारी स्वभाव वैसा ही बना हुआ है। मैं तो कहता हूँ, बाजी यह रही कि हावड़ा-स्टेशन पर हैमिल्टन की कारस्तानी का मोरचा वह ले, जो जीते।"

राजकुमार चन्दन की सूझ पर खुश हो गया। खेल शुरू किया। कहा, "सेवन्टीन।"

कनक ने कहा—"नाइनटीन।"

राजकुमार—"पास।"

चन्दन—"बस ! तुम तो एक ही धौल में फिस्स हो गये।"

तारा और चन्दन ने भी पास किया। कनक के उन्नीस रहे। उसने रंग रख दिया। खेल होता रहा। कनक ने उन्नीस कर लिये।

खेल में राजकुमार कभी घायल नहीं हुआ, पर आज एक ही बार हारकर उसे बड़ी लज्जा मालूम दी।

अब राजकुमार ने पत्ते बाँटे।

कनक—"सेवन्टीन।"

तारा—"नाइनटीन।"

कनक—"नाइनटीन।"

चन्दन ने कहा, "गोइयाँ पर क्या बोलें ! पास।"

राजकुमार के पास रंग न था, पर कनक फिर बढ़ रही थी। उसका पुरुषोचित अकारण बड़प्पन फड़क उठा, कहा, "टुएन्टी।"

कनक—"ऐक्सेप्टेड।"

राजकुमार—"टुएन्टीवन।"

कनक, अच्छी तरह अपने पत्ते देखती हुई, मुस्किराकर बोली, "ऐक्सेप्टेड।"

राजकुमार—"टूएण्टी टू।"

कनक—"ऐक्सेप्टेड।"

राजकुमार (विना पत्ते देखे, खुलकर)—"टुएण्टी थ्री।"

कनक ने हँसकर कहा, "पास।"

राजकुमार ने बड़ी शिथिलता से रंग रक्खा। खेल होने लगा। पहला हाथ चन्दन ने लिया। कनक ने एक पेअर दिखलाया। चन्दन ने कहा, टुएण्टी फाइव। राजकुमार के पास पत्ते थे नहीं। शान पर चढ़ गया था। हारता रहा। खेल हो जाने पर देखा गया, राजकुमार के आधे भी न बने थे। दो काली बिन्दियाँ खुलीं। राजकुमार बहुत झेंपा।

गाड़ी बर्दवान पार कर चुकी थी। खेल होता रहा। अब तक राजकुमार पर तीन काले और चार लाल खुल चुके थे।

तारा ने स्टेशन करीब देख, तैयार हो रहने के विचार से, खेल बन्द कर दिया। पहले उसे राजकुमार की बातों से जितना आनन्द मिला था, अब हावड़ा ज्यों-ज्यों नजदीक आने लगा, उतना ही हृदय से डरने लगी। मन-ही-मन सकुशल सबके घर पहुँच जाने की कालीजी से प्रार्थना करने लगी। कनक को अच्छी तरह ओढ़कर, मुँह पर घूंघट डालकर चलने की शिक्षा दी।

चन्दन ने कहा, "करार हो चुका है—अब मैं जैसा-जैसा कहूँ, करो। कहीं मारपीट की नौबत आयेगी, तो तुम्हें सामने कर दूंगा।"

इस मित्र-परिवार की तमाम आशाओं और शंकाओं को लिये पूरी रफ्तार से बढ़ती हुई गाड़ी लिलुआ-स्टेशन पर आकर खड़ी हो गयी। हर डब्बे पर एक-एक टिकट-कलक्टर चढ़कर यात्रियों से टिकट लेने लगा।

कनक से हारकर अब राजकुमार उससे नजर नहीं मिलाता था। कनक स्पर्धा की दृष्टि से, अलि-युवती की तरह, जो अपने फूल के चारो ओर मँडराया करती है, सीधे, तिरछे, एक बगल, जिस तरह भी आँखों को जगह मिलती है, दीदी और चन्दन से बचकर पूरी बेहयाई से उससे चुभ जाती है। उसे गिरफ्तार कर खींचती, झुका हुआ देख सस्नेह छोड़ देती है। एक स्त्री के सामने राजकुमार की यह पहली हार थी—हर तरह।

गाड़ी ने लिलुआ-स्टेशन छोड़ दिया। चन्दन ने नेतृत्व सँभाला। तारा का हृदय रह-रहकर काँप उठता था। राजकुमार महापुरुष की तरह स्थिर हो रहा था, अपनी तमाम शक्तियों से संकुचित, चन्दन की जरूरत के वक्त तत्काल मदद करने के लिए। कनक पारिजात की तरह अर्द्ध-प्रस्फुट निष्कलंक दृष्टि से हावड़ा-स्टेशन की प्रतीक्षा कर रही थी। केवल सिर चादर से ढका हुआ, श्वेत बादलों में अधखुले सूर्य की तरह।

देखते-देखते हावड़ा आ गया। गाड़ी पहले प्लेटफॉर्म पर लगी। चन्दन तुरन्त उतर पड़ा। दो टैक्सियाँ कीं। कुली सामान उठाकर रखने लगे। चन्दन ने एक ही टैक्सी पर कुल सामान रखवाया। सिर्फ बहू का कैश-बॉक्स लिये रहा। राजकुमार को धीरे-से समझा दिया कि सामान वह अपने डेरे पर उतारकर रक्खेगा, वह बहू को छोड़कर घर से गाड़ी लेकर आता है। कुलियों को दाम दे दिये।

एक टैक्सी पर राजकुमार अकेला बैठा, एक पर बहू, कनक और चन्दन। टैक्सियाँ चल दीं। चन्दन रह-रहकर पीछे देखता जाता था। पुल पार कर उसने देखा, एक टैक्सी आ रही है। उसे कुछ सन्देह हुआ। उस पर जो आदमी था, वह

यात्री नहीं जान पड़ता था। चन्दन ने सोचा, यह जरूर खुफिया का कोई है, और हैमिल्टन ने इसे पीछे लगाया है। अपने ड्राइवर से कहा, इस गाड़ी को दूसरी गाड़ी की बगल करो। ड्राइवर ने वैसे ही किया। चन्दन ने सर बाहर निकालकर राजकुमार से कहा, 'टी' पीछे लगा है। टैक्सी एक है, देखें, किसके पीछे लगती है। चन्दन और कलकत्ते के विद्यार्थी गुप्त विभागवालों को 'टी' कहते थे।

राजकुमार ने एक बार फिर लापरवाह निगाह से पीछे देखा। सेन्ट्रल एवेन्यू के पास दोनों गाड़ियाँ दो तरफ हो गयीं। राजकुमार की टैक्सी दक्षिण चली, और चन्दन की उत्तर। कुछ दूर चलकर चन्दन ने देखा, टैक्सी विना रुके राजकुमार की टैक्सी के पीछे चली गयी। चन्दन को चिन्ता हुई। सोचने लगा।

बहू ने कहा, "छोटे साहब, वह गाड़ी शायद उधर ही गयी है?"

"हाँ।" चन्दन का स्वर गम्भीर हो रहा था।

"तुम्हारा मकान तो आ गया, इस तरफ है न?" तारा ने कनक से पूछा।

"हाँ। चलो दीदी, आज हमारे यहाँ ही रहो।" ड्राइवर से कनक ने कहा, "बायीं तरफ।"

टैक्सी कनक के मकान के सामने खड़ी हो गयी। कोठी देखकर चन्दन के हृदय में कनक के प्रति सम्भ्रम पैदा हुआ। कनक उतर पड़ी। सब लोग बड़े प्रसन्न हुए। दौड़कर सर्वेश्वरी को खबर दी। कनक ने अपने नौकर से टैक्सी का किराया चुका देने के लिए कहा। चन्दन ने कहा, "अब घर चलकर किराया चुका दिया जायगा।" कनक ने न सुना। तारा का हाथ पकड़कर कहा, "दीदी चलो।"

तारा ने कहा, "अभी नहीं बहन, इसका अर्थ तुम्हें फिर मालूम हो जायगा। फिर कभी रज्जू बाबू को साथ लेकर आया जायगा। तुम्हारा विवाह तो हमें यहीं करना है।"

कनक कुछ खिन्न हो गयी। अपने ड्राइवर से गाड़ी ले आने के लिए कहा। तारा और चन्दन उतरकर अहाते में खड़े हो गये। सर्वेश्वरी ऊपर से उतर आयी। कनक को गले लगाकर चूमा। एक साँस में कनक बहुत कुछ कह गयी। सर्वेश्वरी ने तारा को देखा, तारा ने सर्वेश्वरी को। तारा ने मुँह फेरकर चन्दन से कहा, "छोटे साहब, जल्द चलो।"

तारा को बड़ी घुटन मालूम दे रही थी। सर्वेश्वरी अत्यन्त सुन्दर होने पर भी तारा को बड़ी कुत्सित देख पड़ी। उसके मुख की रेखाओं के स्मरण-मात्र से तारा को भय होता था। अपने चरित्र-बल से सर्वेश्वरी के विकृत परमाणुओं को रोकती हुई जैसे मुहूर्त-मात्र में थककर ऊब गयी हो। तब तक कनक-ड्राइवर मोटर ले आया।

पहले सर्वेश्वरी तारा को स्नेह करना चाहती थी, क्योंकि दीदी का परिचय कनक ने सबसे पहले दिया था, पर हिम्मत करके भी तारा की तरफ स्नेह-भाव से नहीं बढ़ सकी, मानो तारा की प्रकृति उससे किसी प्रकार का भी दान स्वीकृत करने के लिए तैयार नहीं, उसे उससे परमार्थ के रूप में जो कुछ लेना हो, ले।

कनक ने दीदी की ऐसी मूर्ति कभी न देखी थी—यह वह दीदी न थी! कनक के हृदय में यह पहलेपहल विशद भावना का प्रकाश हुआ। सर्वेश्वरी इतना सब नहीं

समझ सकी । समझी सिर्फ अपनी क्षुद्रता और तारा की महत्ता—अविचल स्त्रीत्व, पतिनिष्ठा । आप-ही-आप सर्वेश्वरी का मस्तक झुक गया । उसका विष पीकर तारा एक बार तपकर फिर धीर हो गयी । सर्वेश्वरी के हृदय में शान्ति का उद्रेक हुआ । ऐसी परीक्षा कभी नहीं दी थी । सिद्धान्त वह बहुत जानती थी, पर इतना प्रत्यक्ष प्रमाण अब तक न मिला था । वह जानती थी, हिन्दू-घराने में, और खासकर बंगाल छोड़कर भारत के अपर उत्तरी भागों में, कन्या को देवी मानकर, घरवाले उसके पैर छूते हैं । कनक की दीदी को उसने देवी और कन्या के रूप में मानकर, पास आ पैर छुए । तारा शान्त खड़ी रही । चन्दन स्थिर, झुका हुआ ।

ड्राइवर गाड़ी लगाये हुए था । तारा बिना कुछ कहे गाड़ी की तरफ बढ़ी, मन से भगवान् विश्वनाथ और कालीजी को स्मरण करती हुई । पीछे-पीछे चन्दन चला ।

सर्वेश्वरी ने बढ़कर दरवाजा खोल दिया । तारा बैठ गयी । नौकर ने कैश-बॉक्स रख दिया । चन्दन भी बैठ गया ।

कनक देखती रही । पहले उसकी इच्छा थी कि वह भी दीदी के साथ उसके मकान जायेगी, पर इस भाव-परिवर्तन को देख वह कुछ घबरा-सी गयी थी । जड़वत् उसी जगह खड़ी रही । गाड़ी चल दी, चन्दन के कहने पर ।

बाईस

राजकुमार ने अपने कमरे में पहुँचकर देखा, उसके संवाद-पत्र पड़े थे । कुलियों से सामान रखवाया, उन्हें पारिश्रमिक दिया, और फिर उन्हीं संवाद-पत्रों के ढेर में खोजने लगा, उसके पत्र भी आये हैं या नहीं । उसकी सलाह के अनुसार उसके पत्र भी पोस्टमैन झरोखे से डाल जाते थे । कई पत्र थे । अधिकांश मित्रों के । एक उसके घर का था । खोलकर पढ़ने लगा । उसकी माता ने लिखा था, गर्मियों की छुट्टी में तुम घर आनेवाले थे, पर नहीं आये । चित्त लगा है—आदि-आदि । अभी कॉलेज खुलने में बहुत दिन थे । राजकुमार बैठा सोच रहा था कि एक बार घर जाकर माता के दर्शन कर आवे ।

राजकुमार ने 'टी' को पीछा करते हुए देखा था, और देखा था कि उसकी टैक्सी के रुकने के साथ ही 'टी' की टैक्सी भी कुछ दूर पीछे रुक गयी थी । वह स्वभाव का इतना लापरवाह था कि इसके बाद उस पर क्या विपत्ति बीतेगी, इसकी उसने कल्पना भी न की । जब एकाएक माता का ध्यान आया, तो स्मरण आया कि चन्दन की किताबें यहाँ हैं । और, यदि तलाशी हुई, तो चन्दन पर भी विपत्ति आ सकती है । वह विचारों को छोड़कर किताबें उलट-उलटकर देखने लगा ।

दराज से रबड़ और ब्लेड निकालकर जहाँ कहीं भी उसने चन्दन का नाम लिखा हुआ देखा, घिसकर, काटकर उड़ा दिया। इस पर भी किसी प्रकार की शंका हो, इस विचार से, बीच-बीच ऊपर के सफों पर, अपना नाम लिखता जाता। अधिकांश पुस्तकें चन्दन के नाम की छाप से रिक्त थीं। कारण, उसे नाम लिखने की लत न थी। जहाँ कहीं भी था, वह बहुत अस्पष्ट। और, इतनी मैली वे किताबें थीं, जिनमें यह छाप होती कि देखकर यह अनुमान लगा लेना सहज होता था कि यह "परहस्तेषु गता:" की दशा है, और दूसरे लोग आक्रमण से स्वयं बचे रहने के लिए किताबों पर मालिक का नाम लिख देते थे, इस तरह अपने यहाँ छिपाकर पढ़ते थे।

राजकुमार जब इस कृत्य में लीन था, तब चन्दन कनक के मकान में था। राजकुमार के यहाँ सामान ले आने और 'टी' के सम्बन्ध में जानने के लिए वह उत्सुक हो रहा था। वह सीधे राजकुमार के पास ही जाता, पर कनक को बहू के भाव न समझ सकने के कारण कष्ट हो रहा होगा, इस शंका से पहले कनक के ही यहाँ गया।

कनक चन्दन को अपने यहाँ देखकर बड़ी ही प्रसन्न हुई। वाक्पटु चन्दन ने तारा की बातों का गूढ़ अर्थ, जिससे वह उसके मकान में नहीं रुकी, कुछ सच और कुछ रँगकर खूब समझाया। चन्दन के सत्य का तो कुछ असर कनक पर पड़ा, पर उसकी रंगामेजी से कनक के दिल में दीदी का रंग फीका नहीं पड़ा। कारण, उसने स्वयं अपनी आँखों दीदी की उस समय की अनुपम छबि देखी थी, जिसका पुरअसर खयाल वह किसी तरह भी न छोड़ सकी थी। दीदी पुरानी आदतों से मजबूर है, यह सिर्फ उसने सुन लिया, और सभ्यता की खातिर इसके बाद एक 'हाँ' कर दिया। चन्दन ने समझा, मैंने खूब समझाया। कनक ने दिल में कहा, तुम कुछ नहीं समझे।

चन्दन की इच्छा न रहने पर भी कनक ने उसे जलपान कराया, और फिर यह जानकर कि वह राजकुमार के यहाँ जा रहा है, उससे आग्रह किया कि वह और राजकुमार आज शाम चार बजे उसके यहाँ आ जायँ, और वहीं भोजन करें।

चन्दन ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। उतरकर अपनी मोटर पर राजकुमार के यहाँ चला।

राजकुमार ने नया मकान बदला था, इसका ज्ञान तो चन्दन को था, पर कहाँ है, नहीं जानता था, अतः दो-एक जगह पूछकर, रुक-रुककर जाना पड़ा। राजकुमार अपने किताबी कार्य से निवृत्त हो, चाय मँगवाकर आराम से पी रहा था।

चन्दन पहले सीधे मकान के मैनेजर के पास गया, पूछा, "10 नं. कमरे का कितना किराया बाकी है?"

मैनेजर ने आगन्तुक को देखे विना अपना खाता खोलकर बतलाया, "चालीस रुपये। दो महीने का है। आपको तो मालूम होगा।"

चन्दन ने बिलकुल सज्ञान की तरह कहा, "हाँ मालूम था, पर मैंने कहा, एक

दफा जाँच कर लूं। अच्छा, यह लीजिए।"

चन्दन ने दस-दस रुपये के चार नोट दे दिये।

"अच्छा आप बता सकते हैं, आज मेरे बारे में किसी ने यहाँ कोई पूछताछ की थी ?" चन्दन ने गौर से मैनेजर को देखते हुए पूछा।

"हाँ, एक आदमी आया था। उसने पूछताछ की थी, पर इस तरह अक्सर लोग आया करते हैं, पूछ-पछोरकर चले जाते हैं।" मैनेजर ने कुछ विरक्ति से कहा।

"हाँ, कोई गैर-जिम्मेदार आदमी होंगे। कुछ काम नहीं, तो दूसरों की जाँच-पड़ताल करते फिरे।" व्यंग्य के स्वर में कहकर चन्दन वहाँ से चल दिया।

मैनेजर को चन्दन का कहना अच्छा न लगा। जब उसने निगाह उठायी, तब तक चन्दन मुँह फेर चुका था।

राजकुमार के कमरे में जाकर चन्दन ने देखा, वह अखबार उलट रहा था। पास बैठ गया।

"तुम्हारा न्यौता है। रक्खो अखबार।"

"कहाँ ?"

"तुम्हारी बीबी के यहाँ।"

"मैं घर जाना चाहता हूँ। अम्मा ने बुलाया है। कालेज खुलने तक लौटूंगा।"

"तो कल चले जाना, न्यौता तो आज है।"

"गाड़ी तो लाये होगे ?"

"हाँ।"

"अरे रमजान !" राजकुमार ने नौकर को बुलाया। नाम उसका रामजियावन था, पर राजकुमार ने छोटा कर लिया था।

रामजियावन सामान उठाकर मोटर पर रखने लगा।

"कमरे की कुंजी मुझे दे दो।" चन्दन ने कहा।

राजकुमार ने कारण न पूछा, कुंजी दे दी, कहा, "मैं कल चला जाऊँगा। लौटकर दूसरी कुंजी बनवा लूंगा। न्यौते में तुम तो होगे ही ?"

"जहाँ भी मुफ्त माल मिलता हो, वहाँ मेरी बेरहमी तुम जानते हो।"

"तुमने मुफ्त माल के लिए काफी गुंजायश कर ली। आसामी मालदार है।"

"दादा, किस्मत तो तुम्हारी है, जिसे रास्ता चलते जान व माल दोनों मिलते हैं। यहाँ तो ईश्वर ने दिखलावे के लिए बड़े घर में पैदा किया है, लेकिन रहने के लिए दूसरा ही बड़ा घर चुना है। रामबान कूटते-कूटते ही जान जायगी अब ! कपाल क्या, मशाल जल रही है !" चन्दन ने राजकुमार को देखते हुए कहा।

नौकर ने आकर कहा, "जल्दी जाइये, सामान रख दिया है बाबूजी !"

राजकुमार और चन्दन भवानीपुर चले। राह में चन्दन ने उसे कनक के यहाँ छोड़ जाने के लिए पूछा, पर उसने पहले घर चलकर अम्मा और बड़े भैया को प्रणाम करने की इच्छा प्रकट की। चन्दन गाड़ी ड्राइव कर रहा था। सीधे भवानीपुर चला।

राजकुमार को देखकर चन्दन की माता और बड़े भाई नन्दन बड़े खुश हुए।

वहू ने घर पहुँचते ही पति से राजकुमार के नये ढंग के विवाह की कथा कही, अपनी सरलता से रंग चढ़ा-चढ़ाकर खूब चमका दिया था। नन्दन की वैसी स्थिति में राजकुमार से पूरी सहानुभूति थी। तारा ने अपनी सास से इसकी चर्चा नहीं की। नन्दन ने भी मना कर दिया था। तारा को कुछ अधिक स्वतन्त्रता देने के विचार से नन्दन ने उसके आते ही खोदकर माता के काशी-वास की कथा उठा दी थी। अब तक इसी पर बहस हो रही थी—उन्हें कौन काशी छोड़ने जायेगा, वहाँ कितना मासिक खर्च सम्भव है, एक नौकर और एक ब्राह्मण से काम चल जायगा या नहीं, आदि-आदि। इसी समय राजकुमार और चन्दन वहाँ पहुँचे।

राजकुमार ने मित्र की माता की चरण-धूलि सिर से लगा ली, बड़े भाई को हाथ जोड़कर प्रणाम किया। नन्दन ने अँगरेजी में कहा, "तुम्हारी भाभी से तुम्हारे विचित्र विवाह की बात सुनकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई।"

राजकुमार ने नजर झुका ली। अँगरेजी का मर्म शायद काशी-वास की कथा हो, जो अभी चल रही थी, यह समझकर चन्दन की मा ने कहा, "देखो न भैया, न-जाने कब जीव निकल जाय, करारे का रूख, कौन ठिकाना, चाहे जब भहरायके बैठ जाय, यही से अब जितनी जल्दी बाबा बिस्वनाथजी की पैरपोसी मा हाजिर ह्वै सकी, वतनै अच्छा है।"

"हाँ अम्मा, विचार तो बड़ा अच्छा है।" राजकुमार ने ज़रा स्वर ऊँचा करके कहा।

"लै जाय की फुर्सत नाहीं ना कोहू का! यह छिबुलका पैदा होय के साथै आफत बरपा करै लगा।" चन्दन की तरफ देखकर माता ने कहा, "यहिके साथ को जाय!"

"अम्मा, मैं कल घर जाऊँगा, अम्मा ने बुलाया है। आप चलें, तो आपको काशी छोड़ दूं।" राजकुमार ने कहा।

वृद्धा गद्‌गद हो गयी। राजकुमार को आशीर्वाद दिया। नन्दन से कल ही सब इन्तजाम कर देने के लिए कहा।

"तो तुम लौटोगे कब?" तारा ने राजकुमार की ओर व्यग्रता से देखते हुए पूछा।

"चार-पाँच रोज में लौट आऊँगा।"

भोजन तैयार था। तारा ने राजकुमार और चन्दन से नहाने के लिए कहा। महरी दोनों की धोतियाँ गुसलखाने में रख आयी। राजकुमार और चन्दन नहाने चले गये।

भोजन कर दोनों मित्र आराम कर रहे थे। तारा आयी। राजकुमार से कहा, "रज्जू बाबू! अम्मा को मिलने के लिए पड़ोसियों के यहाँ भेज दूंगी, अगर कल तुम उन्हें लिये जाते हो। आज शाम को उसे यहाँ ले आओ।"

"अच्छी बात है।" राजकुमार ने शान्ति से कहा। चन्दन ने उसके पेट में उँगली कोंची। राजकुमार हँस पड़ा।

"बनते क्यों हो?" चन्दन ने कहा, "मुझे बड़ा गुस्सा लगता है, जब मियाँ बन-कर लोग गाल फुलाने लगते हैं। वाहियात! दूसरों को जताते हैं कि मेरे बीवी है। बीवी कहीं पढ़ी-लिखी हुई, तब तो उन्हें बीवी के बोलते हुए विज्ञापन समझो; मियाँ

लोग दुनिया के सबसे बड़े जोकर हैं।"

तारा खड़ी हँस रही थी, "आपके भाई साहब ?"

"वह सब साहब पर एक ही ट्रेडमार्क है।"

"अच्छा-अच्छा, अब आपकी भी जल्द खबर ली जायगी।" तारा ने हँसते हुए कहा।

"मुझको कोई पूछता है, तुम ब्याहे हो, या गैर-ब्याहे, तो मैं अपने को ब्याहा हुआ बतलाता हूँ।" चन्दन ने राजकुमार को फाँसकर अकड़ते हुए कहा, "बदन बहुत टूट रहा है।"

"सोओगे, तो ठीक हो जायेगा। ब्याह हुआ किस तरह बतलाते हो ?" राजकुमार ने पूछा।

"किसी ने कहा है, मेरी शादी कानून से हुई है; किसी ने कहा है, मैं कविता-कुमारी का भर्तार हूँ; किसी ने कहा है, मेरी प्यारी बीवी चिकित्सा है; मैं कहता हूँ, मेरी हृदयेश्वरी, इस जीवन की एकमात्र संगिनी, इस चन्दनसिंह की सिंहिनी सरकार है।"

तारा मुस्किराकर रह गयी। राजकुमार चुपचाप सोचने लगा।

महरी पान दे गयी। तारा ने सबको पान दिया। पाँच बजे ले आने के लिए एक बार फिर याद दिला भीतर चली गयी। दोनों पड़े रहे।

तेईस

चार का समय हुआ। चन्दन उठ बैठा। राजकुमार को उठाया। दोनों ने हाथ-मुंह धोकर कुछ जलपान किया। चन्दन ने चलने के लिए कहा। राजकुमार तैयार हो गया।

तारा ने सास को कल जाने की बात वाक्-छल से याद दिला दी। पड़ोस की वृद्धाओं का जिक्र करते हुए पूछा, वह कैसी हैं, उनका लड़का विलायत से लौटनेवाला था, लौटा या नहीं; उनके पोते की शादी होनेवाली थी, किसी कारण से रुक गयी थी, वह शादी होगी या नहीं, आदि-आदि। वृद्धा को स्वभावतः सबसे मिलने की इच्छा हुई। जल्द जाने के विचार से तारा के प्रश्नों के बहुत संक्षिप्त उत्तर दिये। चलने लगी, तो तारा को अपनी जरूरत की चीजें बतलाकर कह दिया कि सब सँभालकर इकट्ठी कर रक्खे। तारा ने बड़ी तत्परता से उत्तर दिया कि वह निश्चिन्त रहें। तारा जानती थी, यह सब दस मिनट का काम है, चलते समय भी कर दिया जा सकता है।

तारा की सास मोटर पर गयी। राजकुमार और चन्दन ट्राम पर चले। राजकुमार भीतर-ही-भीतर अपने जीवन के उस स्वप्न को देख रहा था, जो किरणों में

कनक को खोलकर उसके हृदय की काव्य-जन्य रूप-तृष्णा तृप्त कर रहा था। बाहर तथा भीतर वह सब सिद्धियों के द्वार पर चक्कर लगा चुका था। बाहर अनेक प्रकार से सुन्दरी स्त्रियों के चित्र देखे थे, पर भीतर ध्यान-नेत्रों से न देख सकने के कारण जब कभी उसने काव्य-रचना की, उसके दिल में एक असम्पूर्णता हमेशा खटकती रही। उसके सतत प्रयत्न इस त्रुटि को दूर नहीं कर सके।

अब, वह देखता है, आप-ही-आप, अशब्द ऋतु-वर्तन की तरह, जीवन का एक चक्र उसे प्रवर्तित कर परिपूर्ण चित्रकारिता के रहस्य-द्वार पर ला खड़ा कर गया है। दिल में आप-ही-आप निश्चय हुआ, सुन्दरी स्त्री को अब तक मैं दूर से प्यार करता था, केवल इन्द्रियाँ देकर, आत्मा अलग रहती थी, इसलिए सिर्फ उसके एक-एक अंग-प्रत्यंग लिखने के समय आते थे, परिपूर्ण मूर्ति नहीं, पूर्ण प्राप्ति पूर्ण दाब चाहती है, मैंने परिपूर्ण पुरुष-देह देकर सम्पूर्ण स्त्री-मूर्ति प्राप्त की, आत्मा और प्राणों से संयुक्त, साँस लेती हुई, पलकें मारती हुई, रस से ओत-प्रोत, चंचल, स्नेहमयी। तत्त्व के मिलने पर जिस तरह सन्तोष होता है, राजकुमार को वैसी ही तृप्ति हुई।

राजकुमार जितनी भीतर की उधेड़-बुन में था, चन्दन उतनी ही बाहर की छानबीन में। चौरंगी की रंगीन परकटी परियों को देख जिस नेम से उसके विचार के रथ-चक्र बराबर चक्कर लगाया करते थे, उसी से देश की दुर्दशा, भारतीयों का अर्थ-संकट, सम्पत्ति-वृद्धि के उपाय, अनेकता में एकता का मूल सूत्र आदि-आदि सद्‌विप्रों की अनेक उक्तियों की एक राह से वह गुजर रहा था। इसी से उसे अनेक चित्र, अनेक भाव, अपार सौन्दर्य मिल रहा था। संसार की तमाम जातियाँ उसके एक तागे से बँधी हुई थीं, जिन्हें इंगित पर नाचते रहनेवाला वही सूत्रधार था।

"उतरो जी।" राजकुमार की बाँह पकड़कर चन्दन ने उसे झकझोर दिया।

तब तक राजकुमार कल्पना के मार्ग से बहुत दूर गुजर चुका था, जहाँ वह और कनक आकाश और पृथ्वी की तरह मिल रहे थे; जैसे दूर आकाश पृथ्वी को हृदय से लगा, हृदय-बल से उठाता हुआ, हमेशा उसे अपनी ही तरह सीमा-शून्य, अशून्य कर देने के लिए प्रयत्न-तत्पर हो, और यही जैसे सृष्टि की सर्वोत्तम कविता हो रही हो।

राजकुमार सजग हो धीरे-धीरे उतरने लगा। तब तक श्याम-बाजारवाली ट्राम आ गयी। खींचते हुए चन्दन ने कहा, "गृहस्थी की फिर चिन्ता करना, चोट खाकर कहीं गिर जाओगे।"

दोनों श्याम-बाजारवाली ट्राम पर बैठ गये। बहू-बाजार के चौराहे के पास ट्राम पहुँची, तो उतरकर कनक के मकान की तरफ चले। चन्दन ने देखा, कनक तिमंजिले पर खड़ी दूसरी तरफ—चितरंजन एवेन्यू की तरफ देख रही है।

राजकुमार को बड़ी खुशी हुई। वह मर्म समझ गया। चन्दन से कहा, "बतला सकते हो, आप उस तरफ क्यों देख रही हैं?"

"अजी, ये सब इन्तजारी के नजारे, प्रेम के मजे हैं। तुम मुझे क्या समझाओगे?"

"मजे तो हैं, पर ठीक वजह यह नहीं। बहू को मैं इसी तरफ से लेकर गया था।"

"अच्छा ! लड़ाई के बाद ?"

राजकुमार ने हँसकर कहा, "हाँ।"

"अच्छा, तो इन्होंने सोचा, मियाँ इसी राह मसजिद दौड़ते हैं।"

दोनों कनक के मकान पर आ गये। नौकर से पहले ही कनक ने कह रक्खा था कि दीदी के यहाँ के लोग आवें, तो वह विना खबर दिये ही उसके पास ले आयेगा।

नौकर दोनों को कनक के पास ले गया। कनक राजकुमार को ज़रा-सा सिर झुका, हँसकर चन्दन से मिली। हाथ पकड़कर गद्दी पर बैठाया।

चन्दन बैठते हुए कहता गया, "पहले अपने···अपने उनको उठाओ-बैठाओ; मैं तो यहाँ उन्हीं के सिलसिले से हूँ।"

"उनका तमाम मकान है, जहाँ चाहें, उठें-बैठें।" कनक होंठ काटकर मुस्किराती जाती थी।

तत्काल चन्दन ने कहा, "उनका तमाम मकान है, और मेरा ?"

"तुम्हारा ? तुम्हारी मैं और यह।"

राजकुमार भी चन्दन के पास बैठ गया।

चन्दन झेंप गया था। कनक भी उसी गद्दी पर बैठ गयी। चन्दन ने कहा, "तुम मुझसे बड़ी हो, पर मुझे आप-आप कहते बड़ा बुरा लगता है। मैं तुम्हारे इन्हीं को आप नहीं कहता ! तुम्हीं चुन दो तुम्हें क्या कहूँ ?"

"तुम्हारी जो इच्छा !" कनक स्नेह से हँस रही थी।

"मैं तुम्हें जी कहूँगा।"

"तुमने जीजी का एक बटे दो कर दिया। एक हिस्सा मुझे मिला, एक किसके लिए रक्खा ?"

"वह इनके लिए है। क्यों जी, इस तरह 'जीजी' यन्नव्येति तदव्ययम् कही जायगी, या कहा जायगा ?"

राजकुमार कुछ न बोला। कनक ने बगल से उठाकर घण्टी बजायी। नौकर के आने पर पखावज और वीणा बढ़ा देने के लिए कहा।

खुश होकर चन्दन ने कहा, "हाँ जी—तुम्हारा गाना तो अवश्य सुनूँगा।"

"पखावज लीजिए।"

"गाना लौटकर हो, तो अच्छा होगा। अभी बहू के पास जाना है।" राजकुमार ने साधारण गम्भीरता से कहा।

"हाँ-हाँ, भूल गया था। भाभी ने तुम्हें बुलाया है।" चन्दन ने कनक से कहा।

कनक ने वीणा रख दी। गाड़ी तैयार करने के लिए कहा। इनकी प्रतीक्षा में कपड़े पहले ही बदल चुकी थी। उठकर खड़ी हो गयी। जूते पहने। आगे-आगे उतरने लगी। पति का अदब-कायदा सब भूल गया। बीच में राजकुमार था, पीछे चन्दन। चन्दन मुस्किरा रहा था। मन-ही-मन कह उठा, इस आकाश के

पक्षी को पिंजड़े में 'राम-राम' रटाना समाज की वेवकूफी है। इसका तो इसी रूप में सौन्दर्य है।

गाड़ी तैयार थी। आगे ड्राइवर और अर्दली बैठे थे, पीछे दाहनी ओर राजकुमार, बायीं ओर चन्दन, बीच में कनक बैठ गयी।

गाड़ी भवानीपुर चली।

कुछ सोचते हुए चन्दन ने कहा, "जी, मुझे एक हजार रुपये दो। मैंने हरदोई-जिले में, देहात में, एक राष्ट्रीय विद्यालय खोला है, उसकी मदद के लिए।"

"आज तुम्हें अम्मा से चेक दिला दूँगी।" कनक ने विना कुछ सोचे, सहज स्वर में कहा।

"नहीं, मुझे चेक देने की जरूरत नहीं। मैं तुम्हें बता दूंगा, उसी पते पर अपने नाम से भेज देना।" कुछ सोचते हुए चन्दन कह उठा।

"तुम भीख माँगने में बड़े निपुण देख पड़ते हो।" राजकुमार कह उठा।

"तुम जी को उपहार नहीं दोगे?" चन्दन ने पूछा।

"क्यों, ववतृता के प्रभाव से बेचवाने का इरादा है।"

"नहीं, पहले जब उपन्यासों की चाट थी, कॉलेज-जीवन में देखता था, प्यार के उबाल में उपहार ही ईंधन का काम करते थे।"

"पर यह तो दैवी संयोग है।" राजकुमार ने मुस्किराकर कहा।

बातों-ही-बातों में रास्ता पार हो गया। गेट के सामने गाड़ी पहुँची। तारा प्रतीक्षा कर रही थी। नीचे उतर आयी। बड़े स्नेह से कनक को ऊपर ले गयी। राजकुमार और चन्दन पीछे-पीछे चले।

तारा ने पहले ही से कनक की पेशवाज निकाल रक्खी थी। दियासलाई और पेशवाज लेकर सीधे छत पर चढ़ने लगी। ये लोग भी पीछे-पीछे जा रहे थे।

पेशवाज छत पर रखकर, दियासलाई जला, आग लगा दी।

कनक गम्भीर हो रही थी। निष्पन्द पलकें, अन्तर्दृष्टि।

तारा ने कहा, "प्रतिज्ञा करो, आज से यह काम कभी नहीं करूँगी।"

"कभी नहीं करूँगी।" कनक ने कहा।

"कहो, सुवह नहाकर रोज शिव-पूजन करूँगी।"

"सुबह नहाकर रोज शिव-पूजन करूँगी।"

उस समय की कनक को देखकर चन्दन तथा राजकुमार के हृदय में मर्यादा के भाव जाग रहे थे।

तारा ने कनक को गले लगा लिया। कहा, "अपनी मा से दूसरी जगह रहने के लिए कहो। मकान में यज्ञ कराओ। एक दिन गरीबों को भोजन दो। मकान में एक छोटा-सा शिव-मन्दिर बनवा लो। जब तक मन्दिर नहीं बनता, तब तक किसी कमरे में, अलग, जहाँ लोगों की आमद-रफ्त ज्यादा न हो, पूजा-स्थान कर लो। आज आदमी भेजकर एक शिव-मूर्ति मैंने मँगा ली है। चलो, लेती जाओ।"

"भाभी!" चन्दन ने रोककर कहा, "यह सब सोना, जो मिट्टी में पड़ा है, कहो तो मैं ले लूं।"

राजकुमार हँसा।

"ले लीजिए।" कहकर, तारा, कनक को साथ ले, नीचे उतरने लगी। वह चन्दन को पहचानती थी। राजकुमार खड़ा देखता रहा। चन्दन राख फूंककर सोने के दाने इकट्ठे कर रहा था। एकत्र कर तअज्जुब की निगाह से देखता रहा। सोना दो सेर से ज्यादा था।

"…ईश्वर करे, एक पेशवाज रोज ऐसी जले, और सोना गरीबों को दिया जाय।" कहकर, अपनी धोती के छोर में बाँधकर चन्दन अपने कमरे की तरफ उतर गया। राजकुमार बहू के पास रह गया।

चन्दन के बड़े भाई भी आ गये थे, कहीं बाहर गये हुए थे। तारा से उन्होंने बहू देखने की इच्छा जाहिर की थी। तारा ने कह दिया था कि कुछ नजर करनी होगी। शायद इसी विचार से बाजार की तरफ गये थे। नीचे बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे, कब बुलावा आये। बहू ने दरबान से रोक रखने के लिए कह दिया था।

तारा ने अपनी खरीदी हुई एक लाल रेशमी साड़ी कनक को पहना दी। सुबह की पूजा का पुष्प चढ़ाया हुआ रक्खा था, सिर से छुला, चलते समय अपने हाथों गंगा में छोड़ने का उपदेश दे, सामने के आँचल में बाँध दिया, जिसकी भद्दी गाँठ चाँद के कलंक की तरह कनक को और सुन्दर कर रही थी। इसके बाद नया सिन्दूर निकाल, मन-ही-मन गौरी को अर्पित कर, कनक की माँग अच्छी तरह भर दी। राजकुमार से कहा, "जाओ, अपने भाई को बुला लाओ, वह देखेंगे।" कनक का घूँघट काढ़ दिया। फर्श पर बैठा, दरवाजा बन्द कर, दरवाजे के पास खड़ी रही।

नन्दन ने भेंट करने की बड़ी-बड़ी कल्पनाएँ कीं, पर कुछ सूझा नहीं। तारा से उन्हें मालूम हो चुका था, कनक ऐश्वर्यवती है। इसलिए हजार-पाँच सौ की भेंट से उन्हें सन्तोष नहीं हो रहा था। कोई नयी चीज सूझ नहीं रही थी। तभी उनके सामने से एक आदमी चर्खा लेकर गुजरा। कलकत्ते में कहीं-कहीं जनेऊ के शुद्ध सूत निकालने के अभिप्राय से बनते और बिकते थे। स्वदेशी-आन्दोलन के समय कुछ प्रचार स्वदेशी वस्त्रों का भी हुआ था, तब से और भी बनने लगे थे। छाँटकर एक अच्छा चर्खा उन्होंने खरीद लिया। इसके साथ उन्हें शान्तिपुर और बंगाल-कैमिकल की याद आयी। एक शान्तिपुरी कीमती साड़ी और कुछ बंगाल-कैमिकल के तेल फुलेल, सेण्ट-पाउण्डर आदि खरीद लिये, पर ये सब बहुत साधारण कीमत पर मिल गये थे। उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। वह जवाहरात की दुकान पर गये। बड़ी देख-भाल के बाद एक अँगूठी उन्हें बहुत पसन्द आयी—हीरे-जड़ी। कीमत हजार रुपये। खरीद ली। उसमें खूबी यह थी कि 'सती' शब्द पर, नग की जगह, हीरक-चूर्ण जड़े थे, जिनमें अक्षर जगमगा रहे थे।

राजकुमार से खबर पा, भेंट की चीजें लेकर नन्दनसिंह बहू को देखने ऊपर चले। तारा कमरे के दरवाजे पर खड़ी थी। एक बार कनक को देखकर दरवाजा खोल दिया। नन्दन ने भेंट का सामान तारा के सामने टेबल पर रख दिया। फिर अँगूठी पहना देने के लिए दी। अँगूठी के अक्षर पढ़कर प्रसन्न हो, तारा ने कनक को पहना दी, और कहा, "बहू, तुम्हारे जेठ तुम्हारा मुँह देखेंगे।"

राजकुमार नीचे चन्दन के पास उतर गया। तारा ने कनक का मुँह खोल

दिया। जिस रूप में उसने बहू को सजा रक्खा था, उसे देखकर नन्दन की तबीयत भर गयी। प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया, "अखण्ड सौभाग्यवती रहो!"

कनक अचंचल पलकें झुकाये बैठी रही।

"हमारी एक साध बहू और तुम्हें पूरी करनी है। एक भजन गाकर सुना दो। याद हो, तो गुसाईंजी का।" नन्दन ने कहा।

तारा ने कनक की ओर निहारा। उसने सिर हिलाकर सम्मति दी। तारा ने कहा, "उस कमरे में बैठकर सुनियेगा, और जरा छोटे साहब को बुला दीजिए।"

राजकुमार और चन्दन तब तक स्वयं ऊपर आ गये। तारा चन्दन से तबला बजाने का प्रस्ताव कर मुस्किरायी। चन्दन राजी हो गया। कमरे में एक बॉक्स-हारमोनियम था। चन्दन तबलों की जोड़ी ले आया। राजकुमार बाहर कर दिया गया। भीतर तारा, कनक और चन्दन रहे।

स्वर मिलाकर कनक गाने लगी—

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भव-भय दारुनम्;
नव-कंज लोचन, कंज मुख, कर कंज, पद कंजारुनम्।
कन्दर्प-अगनित-अमित छवि नव-नील-नीरज सुन्दरम्;
पट पीत मानहु तड़ित रुचि सुचि नौमि जनकसुतावरम्।

एक-एक शब्द से कनक अपने शुद्ध हुए हृदय से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को अर्घ्य दे रही थी। चन्दन गम्भीर हो रहा था, तारा और नन्दन रो रहे थे।

नन्दन ने राजकुमार को अप्सरा-विवाह के लिए हार्दिक धन्यवाद दिया। कनक के रुपहले तार-से चमचमाते हुए भावनसुदर बेफाँस स्वर की बड़ी तारीफ की।

तारा ने चन्दन की ठेकेबाजी पर चुटकियाँ कसीं। कनक का श्रमित, शान्त मुख चूमकर, उसे परी-बहू श्रुति-सुखद शब्द सुना कुछ उभाड़ दिया।

नन्दन ने छोटे भाई से कहा, "अब तुम्हारे लखनऊ जाने की जरूरत न होगी। वकील की चिट्ठी आयी है, पुलिस ने लिखा-पढ़ी करके तुम्हारा नाम निकाल दिया।"

चन्दन ने भौं सिकोड़कर सुन लिया।

चन्दन और राजकुमार बातचीत करते हुए नीचे उतर गये। नन्दन राजकुमार को कुछ उपदेश दे रहे थे।

तारा ने चन्दन से बहू के पुष्प-विसर्जनोत्सव पर गंगाजी चलने के लिए कहा। कार्य अन्त तक अपने ही सामने करा देना उसे पसन्द आया। कनक के मोजे उतरवा दिये, और देव-कार्य के समय सदा नंगे पैर रहने का उपदेश भी दिया।

गंगा में कनक के आँचल का फूल छुड़वा, कालीजी के दर्शन करवा जब वह लौटी, तब आठ बज रहे थे। कनक ने चलने की आज्ञा माँगी। बिदा हो, प्रणाम कर चन्दन और राजकुमार के साथ घर लौटी।

चौबीस

सर्वेश्वरी बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी। उसने निश्चय कर लिया था, अब इस मकान में उसका रहना ठीक नहीं। जिन्दगी में उपार्जन उसने बहुत किया था। अब उसकी चित्तवृत्ति बदल रही थी। क़लकत्ता रहना सिर्फ उपार्जन के लिए था। अब वह भी अपने हिन्दू-विचारों के अनुसार जीवन के अन्तिम दिवस काशी ही रहकर बाबा विश्वनाथ के चरणों में पार करना चाहती थी। बैंकों में चार लाख से कुछ अधिक रुपये उसने जमा कर रक्खे हैं। यह सब कनक की सम्पत्ति है। राजकुमार को दहेज के रूप में देने के लिए कुछ रुपये उसने आज निकाले हैं। बैठी हुई इसी सम्बन्ध में सोच रही थी कि कनक की गाड़ी पहुँची।

कनक राजकुमार और चन्दन को लेकर पहले माता के कमरे में गयी, और दोनों को वहीं छोड़कर ऊपर अपने कमरे में चली गयी। कनक को माता के विचार मालूम थे।

सर्वेश्वरी ने बड़े आदर से उठकर राजकुमार और चन्दन को एक-एक सोफे पर बैठाया। गद्दी छोड़कर खुद फर्श पर बैठी, अपने भविष्य के विचार दोनों के सामने प्रकट करने के लिए।

कनक भोजन पका रही थी। जो कार्य उसका अधूरा रह गया था, आज चन्दन के आने के कारण दूने उत्साह से पूरा कर रही थी। इन्तजाम इनके आने से पहले ही कर रक्खा था। मदद करनेवाले नौकर थे ही। घण्टे-भर से ज्यादा देर नहीं लगी। एक साथ कई चूल्हे जलवा दिये थे।

सर्वेश्वरी ने कहा, "पहले मेरा विचार था, कुँवर साहब पर मुकद्दमा चलाऊँ, कुछ रोज कनक को गायब करके, पर कनक की राय नहीं पड़ी, इसलिए वह विचार त्याग देना पड़ा। वह कहती है, (राजकुमार की तरफ इंगित कर) आपकी बदनामी होगी।"

"इस समय सहन करने की शक्ति बढ़ाना ज्यादा ही अच्छा है।" चन्दन ने कहा, अन्य अनेक बातें लुप्त रखकर, जिससे उसके शब्दों का प्रभाव बढ़ रहा था।

"मैं अब काशी रहना चाहती हूँ, यह मकान भैया के लिए रहेगा।"

"यह तो अच्छा विचार है।" चन्दन ने कहा, "भैया तो कल ही बनारस जा रहे हैं, लेकिन शायद आपको न ले जा सकें, मेरी मा साथ जा रही हैं। अन्त-समय काशी रहना धर्म और स्वास्थ्य, दोनों के लिए हितकर है।"

चन्दन की चुटकियों से सर्वेश्वरी खुश हो रही थी, उसके दिल को ताड़कर। कुछ देर तक कनक की नादानी, उसके अपराधों की क्षमा, अब राजकुमार के सिवा उसके लिए दूसरा अवलम्ब नहीं, मनोरंजन के लिए और विषय नहीं रहा, उसका सर्वस्व राजकुमार का है, आदि-आदि बातें सर्वेश्वरी अपने को पतित सास समझ, उतनी ही दूर रहकर, उतनी ही अधिक सहानुभूति और स्नेह से कहती रही।

चन्दन भी पूरे उदात्त स्वरों से राजकुमार की विद्या-बुद्धि, सच्चरित्रता और सबसे बढ़कर उसकी कनक-निष्ठा की तारीफ करता रहा, और समझाता रहा कि

कनक-जैसी सोने की जंजीर को राजकुमार के देवता भी कभी नहीं तोड़ सकते। और, चन्दन के घरवाले, उसके भाई और भाभी, इस सम्बन्ध को पूरी सहानुभूति से स्वीकार करते हैं।

चन्दन ने कुल मकान नहीं देखा था, देखने की इच्छा प्रकट की। सर्वेश्वरी खुद चलकर दिखाने लगी। मकान की सुन्दरता चन्दन को बहुत पसन्द आयी। तिमंजिले पर कनक को भोजन पकाते हुए देखा। तब तक भोजन तैयार हो चुका था। राजकुमार उसके पढ़नेवाले कमरे में रह गया था। मकान देखकर चन्दन भी वहीं लौट आया। सर्वेश्वरी अपने कमरे में चली गयी।

कनक अपने कमरे में थालियाँ लगाकर दोनों को बुलाने के लिए नीचे उतरी। देखा, दोनों बैठे एक-एक किताब पढ़ रहे हैं।

कनक ने पुकारा। किताब से आँख उठा बड़ी इज्जत की दृष्टि से चन्दन ने उसे देखा। उठकर खड़ा हो गया। राजकुमार भी उसके पीछे चला।

हाथ-मुँह धोकर दोनों बैठ गये। कनक ने कहा, "छोटे साहब, उस रोज यहीं से तकरार शुरू हुई थी।"

"तुम दोनों की बेवकूफी थी।" चन्दन ने ग्रास निगलकर कहा, "और यज्ञ, यह नरमेध—यक्ष, बिना मेरे पूरा किस तरह होता?"

कनक ने सर्वेश्वरी को बुला भेजा था। सर्वेश्वरी और उसके नौकर तोड़ा लिये कमरे में आये। दोनों के पास पाँच-पाँच तोड़े रखवाकर सर्वेश्वरी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। चन्दन गौर से तोड़ों को देखता रहा। समझ गया, इसलिए कुछ कहा नहीं।

कनक ने कहा, "अम्मा, छोटे साहब को एक हजार रुपये और चाहिए। मुझे चेक दे दीजिएगा।"

सर्वेश्वरी सुनकर चली गयी। सोचा, शायद छोटे साहब इज्जत में बड़े साहब हैं।

राजकुमार ने कहा, "पेट तो अभी क्यों भरा होगा?"

"पॉकेट कहो। साहित्यिक हो, बैल!" उठते हुए चन्दन ने कहा। राजकुमार झेंपकर उठा। कनक ने दोनों के हाथ धुलाये, तौलिया दिया, हाथ पोंछ चुकने पर पान।

अब तक दस का समय था। चन्दन ने कहा, "ये रुपये, जो मेरे हक आये हैं, रखवा दो, जरूरत पड़ने पर ले लूँगा।"

राजकुमार ने कहा, "मैंने अपने रुपये भी तुम्हें दिये।"

"तो इन्हें भी रक्खो जी। कितने हैं सब?"

कनक ने धीमे स्वर से कहा, "दस हजार।"

"अच्छा, हजार-हजार के तोड़े हैं। सुनो, अब मैं जाता हूँ।" फिर राजकुमार की ओर एक शरारत-भरी दृष्टि डालकर कहा, "आज तो तुम अपनी तरफ से यहाँ रहना चाहते होगे?"

कनक लजाकर कमरे से निकल गयी। राजकुमार ने कहा, "नहीं, तुम्हारे साथ चलता हूँ।"

"अब आज मेरी प्रार्थना मंजूर करके रह जाओ, क्योंकि कल तुमसे बहुत बातें सुनने को मिलेंगी।"

"तो कल स्टेशन पर या भवानीपुर में मिलना। मैं सुबह चला जाऊँगा।"

"अच्छी बात है, जी। सलाम।" चन्दन उतरने लगा। कनक ने पकड़ लिया, "तुम भी यहीं रह जाओ न।"

"कई काम हैं। तुम्हारे पैर पड़ूँ, छोड़ दो।"

"अच्छा, चलो, मैं तुम्हें छोड़ आऊँ।"

गाड़ी मँगवायी। चन्दन के साथ ही कनक भी बैठ गयी। चोरबागान चलने के लिए चन्दन ने कहा।

इस समय चन्दन भविष्य के किसी सत्य चित्र को स्पष्ट कर रहा था। एक तूफान-सा उलटनेवाला था।

गाड़ी चोरबागान पहुँची। राजकुमार के मकान के सामने रुकवा चन्दन उतर पड़ा। कहा, "अपने पतिदेव का कमरा देखना चाहती हो, तो आओ, तुम्हें दिखला दूं।"

कनक उतर पड़ी। भीतर जा, राजकुमार का कमरा खोलकर चन्दन ने बटन दबाया, बत्ती जल गयी।

कनक ने देखा, सारा सामान विशृंखल था।

चन्दन ने कहा, "यह देखो, जली सिगरेटों के ढेर। यह देखो, कैसी साफ किताबें हैं, जिल्दों का पता नहीं। वे उधरवाली मेरी हैं।"

राजकुमार के स्वभाव के अनुरूप ही उसका कमरा भी बन रहा था।

"इधर बहुत रोज से रहे नहीं न। लगता है, इसीलिए गन्दा पड़ा है।" कनक ने कहा।

"अब मुझे विश्वास हो गया, तुम्हारी-उनकी अच्छी निभेगी, क्योंकि उनके स्याह दाग तुम बड़ी खूबसूरती से धो दिया करोगी।"

"अच्छा, छोटे साहब, अब चलिए।"

"हाँ, चलो, वह प्रतीक्षा करते होंगे। बेचारे की आँखें कड़ुवा रही होंगी, आँखों को रोशनी मिले!"

हँसकर कनक ने चन्दन की एक किताब उठा ली।

चन्दन ने कनक को मोटर पर बैठाल दिया, और हरदोई का पता लिखकर दिया।

लौटकर लेटा, तब ग्यारह बजने पर थे। सोचता हुआ सो गया। आँख खुली बिलकुल तडके, दरवाजे की भड़भड़ाहट से। दरवाजा खोला, तो मकान के मैनेजर और कई कांस्टेबिल खड़े थे।

चन्दन ने देखा, एक दारोगा भी है, सबसे पीछे। फ्रेंच-कट दाढ़ी मुलायम होने की सूचना दे रही थी।

"यही है?" दारोगाजी ने मैनेजर से पूछा।

मैनेजर चकराया हुआ था।

चन्दन ने तुरन्त कहा, "कल जो चालीस रुपये मैंने दिये थे, अभी तक आपने

रसीद नहीं दी।"

"यही हैं।" मैनेजर ने तुरन्त कहा।

दारोगा आज्ञा-पत्र दिखलाकर तलाशी लेने लगे। किताबें सामने ही रक्खी थीं। देखकर उछल पड़े। उलटते हुए नाम भी उन्हें मिल गया, "राजकुमार।" दूसरा मजबूत मुकद्दमा सूझा। सब किताबें निकाल लीं।

चन्दन शान्त खड़ा रहा। दारोगाजी ने इशारा किया। कांस्टेबिलों ने हथकड़ी डाल दी। अपराधी को प्रमाण के साथ मोटर पर लेकर कॉलेज-स्ट्रीट से होकर दारोगाजी लालडिग्गी की तरफ चले।

प्रात:काल था। मोटर कनक के मकानवाली सड़क से जा रही थी। तिमंजिले से टेबिल-हारमोनियम की आवाज आ रही थी। दूर से चन्दन को कनक का परिचित स्वर सुन पड़ा। नजदीक आने पर सुना, कनक गा रही थी—

"आज रजनि बड़भागिनि लेख्यउँ पेख्येउँ पिय-मुख-चन्दा।"

पच्चीस

चार रोज बाद राजकुमार लौटा, तब कनक पूजा समाप्त कर निकल रही थी। दोनों एक साथ कमरे में गये, तो नीचे अखबार-बालक आवाज लगा रहे थे, "राजकुमार वर्मा को एक साल की सख्त कैद।"

दोनों हँसकर एक साथ नीचे झाँकने लगे। नौकर ने कनक को अखबार लाकर दिया।

०००

अलका

हार

जिस 'अलका' पर सावित्री की पूरी-पूरी छाया पड़ी है,
आर्य-सभ्यता से उत्कर्षोज्ज्वल मित्रवर श्री नन्ददुलारे
वाजपेयी एम्. ए. उसे उसी दृष्टि से देखें ।

वेदना

मेरे जिन प्रिय पाठकों ने 'अप्सरा' को पढ़कर साहित्य के सिर बराबर वैसी ही बिजली गिराते रहने की मुझे अनुपम सलाह दी, या जिन्होंने 'अप्सरा' को चुपचाप हृदय में रखकर मेरी तरफ़ से आँखें फेर लीं, अथवा जिन्हें 'अप्सरा' द्वारा पहले-पहल इस साहित्य के मुख पर मन्द-मन्द प्रणय-हास मिला, मुझे विश्वास है, वे 'अलका' को पाकर विरही यक्ष की तरह प्रसन्न होंगे, और अण्डे तोड़कर निकलने से पहले खड़खड़ाते हुए जिन्होंने मुझ पर आवाजें कसीं, वे एक बार देखें, उनके सम्राटों द्वारा अनधिकृत साहित्य की स्वर्ग-भूमि में मैंने कितने हीरे-मोती उन्हें दान में दिये।

मुझे आशा है, हिन्दी के पाठक, साहित्यिक और आलोचक 'अलका' को अलकों के अन्धकार में न छिपाकर उसकी आँखों का प्रकाश देखेंगे कि हिन्दी के नवीन पथ से वह कितनी दूर तक परिचय कर सकी है।

घटनाओं में सत्य होने के कारण स्थानों के नाम कहीं-कहीं नहीं दिये गये। मुझे इससे उपन्यास-तत्त्व की हानि नहीं दिखायी पड़ी।

लखनऊ
1.6.33

—'निराला'

एक

महासमर का अन्त हो गया है, भारत में महाव्याधि फैली हुई है। एकाएक महासमर की जहरीली गैस ने भारत को घर के धुएँ की तरह घेर लिया है, चारो ओर त्राहि-त्राहि, हाय-हाय। विदेशों से, भिन्न प्रान्तों से, जितने यात्री रेल से रवाना हो रहे हैं, सब अपने घरवालों की अचानक बीमारी का हाल पाकर। युक्त-प्रान्त में इसका और भी प्रकोप; गंगा, यमुना, सरयू, बेतवा, बड़ी-बड़ी नदियों में लाशों के मारे जल का प्रवाह रुक गया है। गंगा का जल, जो कभी खराब नहीं हुआ, जिसके माहात्म्य में कहा जाता था, दूसरा जल रख देने पर कीड़े पड़ जाते हैं, पर गंगा के जल में यह कलमष नहीं मिलता, वह भी पीने के बिलकुल अयोग्य बतलाया गया। परीक्षा कर डॉक्टरों ने कहा, एक सेर जल में आठवाँ हिस्सा सड़ा मांस और मेद है। गंगा के दोनो ओर दो-दो और तीन-तीन कोस पर जो घाट हैं, उनमें एक-एक दिन में, दो-दो हजार तक लाशें पहुँचती हैं। जलमय दोनों किनारे शवों से ठसे हुए, बीच में प्रवाह की बहुत ही क्षीण रेखा, घोर दुर्गन्ध, दोनो ओर एक-एक मील तक रहा नहीं जाता। जल-जन्तु, कुत्ते, गीध, स्यार लाश छूते तक नहीं। नदियों से दूरवाले देशों में लोगों ने कुओं में लाशें डाल-डाल दीं। मकान-के-मकान खाली हो गये। एक परिवार के दस आदमियों में दसों के प्राण निकल गये। कहीं-कहीं घरों में ही लाशें सड़ती रहीं। वैद्य और डॉक्टरों को रोग की पहचान भी न हुई। यह सब नृशंस महामृत्यु-ताण्डव पन्द्रह दिनों के अन्दर हो गया। भारत के साठ लाख आदमी काम आये।

इसी समय सरकारी कर्मचारियों ने घोषणा की, सरकार ने जंग फतह की है, आनन्द मनाओ; सब लोग अपने-अपने दरवाजों पर दिये जलाकर रक्खें। पति के शोक में सद्यः विधवा, पुत्र के शोक में दीर्ण माता, भाई के दुःख में मुरझायी बहन और पिता के प्रयाण से दुखी असहाय बाल-विधवाओं ने दूसरी विपत्ति की शंका कर काँपते हुए शीर्ण हाथों से दिये जला-जलाकर द्वार पर रक्खे, और घरों के भीतर दुःख से उभड़-उभड़कर रोने लगीं। पुलिस घूम-घूमकर देखने लगी कि किस घर में शान्ति का चिह्न, रोशनी नहीं।

जब घर में थी, शोभा के पिता का देहान्त हुआ, तो गाँव का कोई नहीं गया। सब अपनी खे रहे थे। उस समय जिलेदार महादेवप्रसाद ने मदद की। उसके पिता की लाश गाड़ी पर गंगा ले गये। मन-ही-मन शोभा कृतज्ञ हो गयी—कितने अच्छे आदमी हैं यह—दूसरे का दुःख कितना देखते हैं!

इसके बाद उसकी माता बीमार पड़ीं। तब उन्हें युवती कन्या की रक्षा के लिए चिन्ता हुई। यदि उनके भी प्राण निकल जायँ, तो शोभा का क्या होगा, यह विचार कर उन्होंने विजय तथा ससुराल को पत्र लिखने के लिए शोभा से कहा। विजय शोभा का पति है। अभी तक उसने पति को पत्र नहीं लिखा। कभी चार आँखों की एक पहचान होने का अवसर नहीं मिला। वह कैसे हैं, वह नहीं जानती। फिर क्या लिखे ? बैठी सोचती रही कि दुःख-भरे स्नेह के कुछ कठोर स्वर से कर्तव्य का ज्ञान दे बिस्तरे से माता ने फिर कहा। स्वर पर बजने के लिए उँगली की तरह उठकर शोभा कागज, कलम और दावात लेने चली। दुःख में भी अज्ञात कोई हृदय के निर्मल, शुभ्र आकाश में अपरिमित सुख, सौरभ भरने लगा, अज्ञात मुँदी हुई जैसे कोई कली इस आदेश-मात्र से खुल गयी, और अपना लेश-मात्र सौरभ अब नहीं रखना चाहती। दावात, कलम और कागज ले आ सरल चितवन निष्कलंक पंकजा ने माता से पूछा, क्या लिखूं अम्मा ? घर का सब हाल और ऐसी दशा में तुम्हें ले जाना अत्यन्त आवश्यक है, लिख दो माता ने कहा। ससुराल को मेरे नाम लिख देना, आपकी समधिन कहती हैं, इस तरह।

किसे किस तरह पत्र लिखना चाहिए, इतना शोभा को मालूम था। चिट्ठी लिखने की किताब पढ़ने से जैसे संस्कार बन गये थे, वैसे ही दाब के दबाव में लिख गयी—"प्रिय", परन्तु फिर उस शब्द को मन-ही-मन हँसकर, न-जाने क्या सोच-कर, लजाकर काट दिया। फिर लिखा—"महाशय", पर शब्द जैसे एक सुई हो, कोमल हृदय को चुभने लगा। फिर बड़ी देर तक सोचती रही। कुछ निश्चय नहीं हो रहा था। एकाएक भीतर की संचित सम्पूर्ण श्रद्धा पत्र लिखने की पीड़ा के भीतर से निकल पड़ी, और उसने लिखा—"देव", फिर नहीं काटा। मन को विशेष आपत्ति नहीं हुई। देवताओं ने जैसे भय, बाधा, विघ्न, सब दूर कर दिये। दूसरा भी लिखा। पत्र पूरे कर माता को सुनाने के लिए पूछा। माता ने कहा, क्या आवश्यक है, मतलब सब लिख ही गया होगा, अपने हाथ डाकखाने में छोड़ आओ। पत्र लिफाफे में भरकर, पता लिखकर डाकखाने छोड़ने चली। आँचल में दुनिया की दृष्टि से दूर अपने मनोभावों का प्रमाण छिपा लिया। पत्र में वह अपने अलख सखा को, हृदय के सर्वस्व को कुछ भी नहीं दे सकी, एक भी बात ऐसी नहीं, जो वह अपनी माता के सामने न पढ़ सकती, सिवा इसके कि मुझे जल्द आकर ले जाइए, अम्मा को मेरी तरफ से घबराहट है। पर फिर भी उसका हृदय कह रहा था कि उसने अपना सबकुछ दे दिया है। लाज की पुलकित पुतलियों से इधर-उधर देख, अपने प्रिय संशय को प्रमाण में परिणत होते हुए न पा, पत्रों को आँचल से बाहर कर चिट्ठीवाले बॉक्स में डाल दिया, और अचपल मन्द-मृदु-चरण-क्षेप मूर्ति-मती महिमा-सी, अनावृत्त मुख बढ़ती हुई माता के पास लौट आयी। दूसरे दिन चलते हुए तूफान का एक झोंका और लगा, माता का कण्ठ कफ से फेफड़े जकड़ जाने पर रुँध गया, देखते-देखते पुतलियाँ पलट गयीं। उनका देहान्त हो गया, वह छाँह की एकमात्र शाखा भी टूटकर भू-लुण्ठित हो गयी। अब संसार में कुछ भी उसकी दृष्टि में परिचित नहीं। इस एकाएक प्रहार से स्तब्ध हो गयी। संसार में कोई है, संसार में उसकी रक्षा कौन करेगा, कुछ खयाल नहीं, जैसे केवल एक

तस्वीर निस्फलक खड़ी हो, समय आप आता, आप चला जाता है, समय का कोई ज्ञान नहीं। जै न किसी निष्ठुर पति ने विना पाप ही अभिशाप दे प्राणों की कोमल, रूपवती तरुणी को प्रस्तर की अहल्या बना दिया है। महादेव कब से आया हुआ खड़ा है, उसे इसका ज्ञान नहीं। उसे उस हालत में खड़ी हुई देख महादेव के हृदय में एक बार सहानुभू ति पैदा हो गयी। पर उसे तरक्की करनी है, दुनिया इसी तरह उत्थान के चरम सोपान पर पहुँची है, वह गरीब है, इसीलिए अमीरों के तलवे चाटता है, उसके भी बच्चे हैं—उन्हें भी आदमी करना है, लड़कियों की शादी में तीन-तीन चार-चार और पाँच-पाँच हजार का सवाल हल करना है, इतना धर्म का रास्ता देखने पर यह संसार की मंजिल वह कैसे तय करेगा?

"शोभा!" महादेव ने आवाज दी। शोभा होश में आयी। "अब चलो, प्यारेलाल के यहाँ तुम्हें रख आवें। कोठरियों में ताले लगा दें, दो कुंजियों का गुच्छा ले आओ, ताले कहाँ हैं, क्या किया जाय बेटी, इस वक्त दुनिया पर यही आफत है, फिर तुम्हारी मा को गंगाजी पहुँचाने का बन्दोबस्त करें।"

माता का नाम सुनकर, स्वप्न देखकर जगी-सी होश में आ मृत माता पर उसी की एक छोटी, क्षीण लता-सी लिपट गयी। अब तक सहानुभूति दिखलानेवाला कोई नहीं था, इसलिए तमाम प्रवाह आँसुओं के वाष्पाकार हृदय में टुकड़े-टुकड़े फैले हुए एकत्र हो रहे थे। स्नेह के शीतल समीर से एकाएक गलकर सहस्र-सहस्र उच्छ्वासों से अजस्र वर्षा करने लगे। महादेव स्वयं जाकर प्यारेलाल तथा उसकी स्त्री को बुला लाया। जमींदार के डेरे का नौकर गाड़ी साजकर ले चला। कुछ और लोग भी इस महा विपत्ति में सहानुभूति दिखलाना धर्म है, ऐसा धार्मिक विचार कर आये। शोभा को माता से हटा, कोठरियों में सबके सामने ताले लगाकर प्यारेलाल ने कुंजी महादेव को दे दी। प्यारेलाल की स्त्री शोभा को अपने साथ ले गयी। उसके घर का कुल सामान एक पुर्जे में लिखकर, डेरे भिजवा महादेव उसकी मा की लाश गंगाजी ले गया। तमाम रास्ता यही निर्णय रहा कि शोभा को किसी तरह मुरलीधर के हवाले कर पाँच-छ हजार की रकम अपने हाथ लगाये। लौटकर शोभा की खुशखबरी मालिक को सुनाने के लिए सदर गया। शोभा से कह गया, उसकी ससुराल खबर देने जा रहा है। वहाँ की खबर जानकर उसे लौटकर ससुराल ले जायगा। शोभा सोचती थी, कई दिन हो गये, वह क्यों नहीं आये? उस घर में अच्छा न लगता था, जैसे वे आदमी बहुत दूर के हों, इतने नजदीक रहकर भी उसके साथ नजदीक का कोई बर्ताव नहीं करते। रह-रहकर दुःख से गला भर आता है, पर रोती नहीं, दुःख और बढ़ता है।

शाम हो चुकी। घर-घर सरकार की विजय के दीपक जलने लगे। डेरे पर और प्यारेलाल के मकान में सब जगह से ज्यादा प्रकाश है। प्यारेलाल की स्त्री, लड़के, लड़कियाँ द्वार पर बैठी प्रसन्न आँखों से दीपों का प्रकाश देख रही हैं। इसी समय शोभा की हम-उम्र गाँव की एक लड़की कहारों के भीतर गयी। शोभा चिन्ता में डूबी हुई थी। लड़की ने धीरे से छू दिया। इसका नाम राधा है। इसकी मा शोभा के यहाँ टहल करती थी, इसी इन्फ्लूएंजा में गुजर गयी है। राधा पड़ोस के एक कहार के यहाँ रहती थी। उसके शौहर को खबर कर दी गयी थी। अब वह

अपनी स्त्री को ले जाने के लिए आया है। सुबह वह चली जायगी। शोभा से मिलने आयी है।

फिर शोभा ने देखा, राधा है। राधा सटकर बैठ गयी, और उसके एक हाथ की मुट्ठी अपने दोनो हाथों में भर ली, और धीरे से, सतर्क होकर पूछा—"कोई है तो नहीं?"

"ना" शोभा सूखे आँसुओं की मुरझायी दृष्टि से देखकर बोली, "कल मैं जाती हूँ। आये हैं। एक बात मालूम हुई। वह वहीं नौकर हैं, जिससे यह गाँव है। उन्हें मालूम हुआ है, महादेव की कुल कारगुजारी झूठ, तुम्हें फँसाने के लिए है। वह आज वहाँ से मोटर लेकर आया है। ससुराल के बहाने रात को सबकी आँख बचा तुम्हें वहीं ले जायगा। वहाँ किसी की इज्जत नहीं बचती। वह पूछते थे कि इस गाँव में कोई शोभा है। मैंने कहा, हाँ। तब सारा हाल बतलाया। मैंने उन्हें समझाया कि हम लोग मेहनती आदमी हैं, जहाँ मेहनत करेंगे, वहीं कमायेंगे, खायेंगे। वहाँ की नौकरी आज ही से छोड़ दो। वह मान गये। कानपुर में मेरा देवर रहता है। कल तड़केवाली गाड़ी से हम लोग कानपुर जायँगे। आदमियों का कुछ चलना-फिरना बन्द होने पर महादेव तुम्हें ले जाने के लिए आवेगा। मोटर गाँव से कुछ दूर पर खड़ी है।"

एकाएक शोभा में सम्पूर्ण चेतना आ गयी। मनहारिन की बात, उसका आशय क्या हो सकता है, राधा की बात से पूरा-पूरा प्रमाण मिल गया। घबराकर बोली, "तो मुझे यहीं छोड़ जायगी?"

"नहीं, तुम्हें निकालने का रास्ता बतलाऊँगी। मैं साथ नहीं जा सकती। चाची ने मुझे देख लिया है। शक करेंगी, अगर तुम मेरे साथ न लौटीं। फिर लोग मुझे कहेंगे, कुछ कर दिया। वह यहीं हैं। पकड़ जायँगे। इससे किशोरी को साथ लेकर देवी के दर्शन करने जाओ। लौटकर, उसे रास्ते पर खड़ी कर, वासुदेव बाबा के दर्शन का बहाना कर बगीचे जाना। फिर जल्द-जल्द बगीचे-बगीचे दूर निकल जाना। एक मील ठीक उत्तर जाने पर एक कच्ची सड़क मिलेगी। उसी सड़क-सड़क पाँच मील चलने के बाद दाहने हाथ स्टेशन है, जो हमारे स्टेशन के बाद पड़ता है। कल पाँच बजे सबेरेवाली गाड़ी से हम लोग भी जायँगे। दूसरे स्टेशन पर मिलना। उनसे कहकर मैं एक टिकट कटवा लूंगी, फिर तुम्हें कानपुर से तुम्हारी ससुराल भेजवा दूंगी। अच्छा, मैं जाती हूँ, किशोरी को भेज दूँ।"

मुस्किराती हुई राधा बाहर निकली। "क्या है राधा?" प्यारेलाल की स्त्री ने पूछा।

"कल जा रही हूँ चाची, शोभा दीदी से मिलने आयी थी।"

"पाहुने लिवाने आये हैं?"

मधुर, लजीली निगाह नीची कर राधा ने कहा, "चाची, शोभा दीदी किशोरी को बुला रही हैं।"

"हुकुम के मारे नाक में दम हो गया। देखो तो किशोरी, क्या काम है।"

राधा धीरे-धीरे, चाची को अपने रास्ते की पहचान कराती हुई, सामनेवाली

राह से हलवाइयों की दूकान के उजाले होकर, ठण्डे भाड़ के किनारे भुजइन भौजी की बगल में बैठकर अपने जाने की बातचीत करने लगी, जैसे बिदा होने से पहले मिलने गयी हो। घण्टे-भर बाद, शोर-गुल उठने पर, भुजइन, हलवाइन तथा पड़ोस के दूसरी स्त्रियों और लोगों के साथ मौके पर पहुँचकर शोभा के गायब होने पर सबके बराबर ताज्जुब दिखला, अपने निर्लिप्त रहने का मौन प्रमाण देती, उखड़ती हुई जनता के साथ, सबके स्वर में स्वर मिलाकर कहती हुई कि पहले से कोई साधक-सिद्धवाला मामला रहा होगा, घर गयी, और पति की चुभती चितवन से मन के समाचार दे, रस भरकर अपनी दोनो तरह की विजय समझा दी।

दो

बाबू मुरलीधर अवध के आकाश के एक सबसे चमकीले तारे हैं, जहाँ तक ऐश्वर्य की रोशनी से ताल्लुक है, यानी सबसे नामी ताल्लुकेदार। कहते हैं, कभी उनके दीपक में इतना तेल न था कि रात को उजाले में भोजन करते, बात उनके पूर्वजों पर है। उनके यहाँ शाम से पहले भोजन-पान समाप्त हो जाता था। यह विशाल सम्पत्ति उनके पितामह ने अँगरेज सरकार की तरफदारी कर प्राप्त की। गदर के समय बकरियों के बच्चे ढकनेवाले बड़े-बड़े झाबों के अन्दर बन्द कर कई मेम और साहबों को बागियों से उन्होंने बचाया था। फिर जब राय विजयबहादुर की फाँसी के समय, उनके महान् भक्त होने के कारण, तीन बार फाँसी की रस्सी कट-कट गयी, और गोरे बहुत घबराये, तब उनके गले में फाँसी लगने का उपाय इन्होंने बतलाया कि यह विष्णु भगवान् के बड़े भक्त हैं, जब तक इनका धर्म नष्ट न होगा, इन्हें फाँसी नहीं लग सकती, इसलिए मुर्गी के अण्डे का छिलका इनकी देह से छुला दिया जाय। साहबों ने ऐसा ही किया, तब फाँसी लगी। मुरलीधर के पितामह भगवानदास को अँगरेज सरकार ने इन कार्यों का पुरस्कार हजार गाँव साधारण लगान और दूसरे ताल्लुकेदारों से अनुकूल खास-खास शर्तों पर दिये, तब से इनका रात का दिया जला।

जब से मुरलीधर पैत्रिक सिंहासन पर अपने नाम की मुरली धारण कर बैठे, बराबर सनातन-प्रथा के अनुसार सरकारी अफसरों की सोहावनी सोहनी छेड़ते जा रहे हैं। पर अभी तक सरकारी अफसरों की सिफारिश से किसी प्रकार का पदवी-प्रसाद नहीं प्राप्त हुआ। पेट जितना भी भरा रहे, आशा कभी नहीं भरती। वह जीवों को कोई-न-कोई अप्राप्य, कुछ नहीं या केवल रंगों की माया का इन्द्र-धनुष प्राप्त करने के मायावी दलदल में फँसा ही देती है। लक्ष्मी के वाहन प्रभूत प्रभुता की डाल पर बैठे हुए इन महाशय उलूक को इसी प्रकार रात में प्रभात देख पड़ा। उपाधि बिना उपाधि के नहीं मिलती। इन्होंने भी उपाधि-प्राप्ति के लिए उपाधि

वितरण शुरू किया। थोड़े ही दिनों के अध्यवसाय से इन्हें यथेष्ट परिज्ञान भी प्राप्त हुआ कि सरकारी अफसरों में शासक और शासन का भाव प्रबल होने के कारण मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन आदि विशेष प्रचलित हैं। अतः शक्ति के लोग उपासक हैं, और बाकायदा पंचमकार-साधन करते हैं। तब मुरलीधर ने भी केवल तान छेड़नेवाली मुरली छोड़ दी। मन और वाणी के बाद कर्म से सदुद्देश की सिद्धि के लिए लगे। विशाल सम्पत्ति के अधिकारी होने पर भी, सरकारी अफसरों के सिवा, मुरलीधर के पितामह से ऊँचे वंश के स्वजाति और विजाति-वालों का खान-पान बन्द था। बराबरवाले भी बराबर नहीं बैठे। मुरलीधर के पिता का विवाह बड़ी नीच शाखा की लड़की से हुआ था, जिसके पिता ने लड़की देकर दारिद्र्य के हाथ निस्तार पाने का उपाय भी साथ-साथ सोचा था। मुरलीधर के पितामह के कृत्यों की इलाके में घर-घर चर्चा थी। बाहर भी यथेष्ट प्रभाव पड़ा था। इस वैमनस्य को दूर करने में मुरलीधर के पिता गिरधारीलाल ने ताल ठोंककर सफलता प्राप्त की। बात यह हुई कि उनके समय में आर्य-समाज का जोरों से आन्दोलन शुरू हुआ। हिन्दू-समाज की इमारत इस भूकम्प से बार-बार हिलने लगी। मूर्तियों के मृदुल पूजा-भावों पर बार-बार मामूद की-सी प्रखर तलवार के वार होने लगे। हिन्दू-जनता के मूर्ति-पूजन के भय को प्रश्रय देकर सनातन-समाज की निष्ठा पर प्रतिष्ठित होने के विचार से उन्होंने यह मौका हाथ से न जाने दिया। देश-देशान्तरों से प्रकाण्ड पण्डित बुलवाकर एक विराट् सभा करायी। आर्यसमाज के पण्डितों और प्रचारकों को भी निमन्त्रण भेजा। अपने इलाके से "सत्य सनातन-धर्म की जय" बोलने के लिए हजारों स्वयंसेवक भक्तों को एकत्र किया। विवाद के दिन आर्य-समाजी पण्डितों के भाषण के समय पुनः-पुनः "सनातन धर्म की जय" के नारे उठने लगे। भाषण नक्कारखाने में तूती की आवाज हो गये। सनातनी पण्डितों के समय "धन्य है, धन्य है" होने लगा। इसके लिए उन्होंने अपनी तरफ से एक डिक्टेटर नियुक्त कर रखा था। पश्चात् "आर्य-समाज की क्षय हो" के अभिवादन से सभा समाप्त करायी। सत्यनारायणजी की कथा का प्रसाद बंटा। सनातनी पण्डितों को मोटी-मोटी बिदाइयाँ मिलीं। जनता खु। दिल गिरधारीलाल के धर्म की तारीफ करने लगी। इस तरह प्राचीन कलंक नवीन धार्मिक उज्जवलता से धुलकर जनता के हृदय के तत्त्व से ही मिल गया। गिरधारीलाल ने अपनी महत्ता स अब समाज का गोवर्धन धारण कर लिया। उनकी इस उच्चता का उन्हें वांछित वर भी मिला। जमींदारी के लोगों के प्रत्येक प्रकार के ताप का भाप द्रवित हो-हो वहीं बरसने लगा, और गिरधारीलाल गिरवर की ही तरह ऐश्वर्य के जल से भरते रहे। बढ़ा हुआ जल सनातन-प्रथा के नदी-पथ से बराबर सरकार के समुद्र की ओर बहता रहा। जमींदारी के लोग प्यास बुझाने के लिए बराबर पत्थर फोड़-फोड़कर कुएँ बनाते रहे।

पितामह ने सम्पत्ति प्राप्त की, पिता ने प्रतिष्ठा। अब मुरलीधर के लिए दुरूह दुर्ग कोई विजय के लिए रह गया, तो प्रतिष्ठा के अनुकूल खिताब। इनसे हैसियत के बहुत छोटे-छोटे ताल्लुकेदार अपने खिताब की शान में इनकी तरफ देखते भी नहीं। बातें करते हैं, जैसे दो मंजिलेवाला सड़कवाले से बोलता हो।

यह सब उनके लिए, जिनके पास अधिक सम्पत्ति हो, सहन कर जाने की बात नहीं।

अफसरों को खुश कर पदवी प्राप्त करने का अचूक मन्त्र मुरलीधर को उनके सेक्रेटरी बाबू मोहनलाल ने दिया। मोहनलाल पहले कालवन स्कूल के शिक्षक थे। मुरलीधर जब पढ़ते थे, तभी शिक्षक की हैसियत से मन्त्र और मन्त्रणा देते हुए यह शिष्य के बहुत नजदीक आ गये थे। इनका मतलब लक्ष्मी से ही सामीप्य और सायुज्य प्राप्त करना था, मुरलीधर को यह क्लास के पहले ही दिन से काठ का उल्लू समझते आ रहे हैं। माता के आन्तरिक स्नेह के कारण मुरलीधर को ज्ञान के सोपान तय करने का परिश्रम न करना पड़ता था, क्योंकि बालक के पिता को माता साधारण सूत्र-मात्र से समझा देती थी कि लाल को पेट के लाले नहीं पड़ने, जो फूल की कुल खुशबू स्कूल के आकाश में उड़ जाय, और वह किताबों की कड़ी धूप से मुरझाकर घर लौटे। बाबू मोहनलाल इस श्रुति के आधार पर फूल के बराबर खिले रहने की कोशिश करते रहे। मुरलीधर को प्रवेशिका तक तो हर साल विना परिश्रम के फल-प्राप्ति होती रही, पर द्वार पर पहुँचकर अटक गये। मास्टर मोहनलाल के बढ़ावे से मेढ़े की तरह दो-तीन साल तक प्रवेशिका के द्वार ठोकरें मारीं, पर हताश होकर लौट आये। घर में मोहनलाल ने आकर कहा, लड़के की अक्ल तो बड़ी तेज है, पर परीक्षक लोग शराब पीकर परचे देखते हैं, जिससे अच्छे के लिए बुरा और बुरे के लिए अच्छा नतीजा हासिल हो जाता है। और लड़के को नौकरी तो करनी नहीं, विना डिगरी के डग नहीं उठेंगे; यों इल्म के लिहाज से लड़का किसी ग्रेजुएट से कम नहीं। माता-पिता को तो खुशी होती ही थी, मुरलीधर ने भी दृढ़ निश्चय किया कि उसकी प्रतिभा को अगर अब तक संसार में किसी ने समझा, तो एक मास्टर साहब ने। इसी निश्चय के आधार पर, पिता के स्वर्गवास के पश्चात् अंगरेज अफसरों को तथा दूसरे मामलों में अँगरेजी में पत्र लिखने, बातचीत करने में दिक्कत पड़ने के कारण और खास तौर से अपनी प्रभुता जताते रहने के उद्देश से मुरलीधर ने मास्टर साहब को याद किया, और यथेष्ट तनख्वाह देकर अपने ही यहाँ रख लिया। "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवतितादृशी" का इतने दिनों बाद मास्टर साहब को प्रमाण मिला। अब शिष्य की उन्नति के लिए विशेष रूप से दत्तचित्त हुए। कुछ दिनों तक शिष्य के मनोभावों को पढ़ते रहे। पढ़कर प्रौढ़ युवक को प्रौढ़ता की तरफ फेरने लगे। पहले छुरी, चम्मच, काँटा पकड़ाकर साहबी ठाठ से भोजन करना सिखलाया। फिर धीरे-धीरे स्वास्थ्य के नाम पर शराब का नुस्खा रखा। फिर छिप-छिपाकर सरकारी अफसरों के साथ भोजन करने को प्रोत्साहन। फिर बगीचे की कोठी में बाकायदा पंचमकार-साधन और देशी-विलायती सरकारी अफसरों को कम-से-कम निमन्त्रण। एक साल के अन्दर लखनऊ, इलाहाबाद और कानपुर आदि की खूबसूरत-से-खूबसूरत वेश्याएँ आकर, नाचकर, गाकर सरकारी अधिकारियों को खुश कर-कर चली गयीं। दूसरे साल सम्राट् के जन्म-दिन के उपलक्ष्य में स्टेट्समैन, पायनीयर, लीडर आदि में देखा, तो उन्हें पदवी नहीं मिली। पड़ोस के मामूली रियासतदार राजा हो गये हैं। अनुभवी मोहनलाल ने कहा, इस वर्ष तो अभी सिफारिश गयी ही होगी, साल-दो

साल जब और मेहनत की जायगी, तब नतीजा हासिल होगा, ये (विशेष निकट, सम्बन्ध से सूचित कर) सरकारी अफसर एक दिन में नहीं पिघलते; जानते हैं, माल भरा है, सोचते हैं, चार दिन की दावत से राजा बनाकर बेवकूफ बनाना चाहता है; इसलिए घबराने की कोई बात नहीं; अपने पास माल है, तो नाम जरूर होगा।

मुरलीधर को धैर्य हुआ। इससे पहले की दावतों में सुन्दरी-से-सुन्दरी वेश्याओं के कदम-शरीफ फिर चुके थे। फिर उनकी ओर सेकेण्ड हैण्ड किताबें खरीदने की तरह अपना ही मन नहीं मुड़ता, फिर निमन्त्रित व्यक्ति कैसे खुश होंगे। यह शंका भी मोहनलाल ने की, और समाधान भी उन्होंने किया। कहा, अब दावतों का रुख बदल देना है। अब गाने के लिए तो मशहूर विद्याधरी, राजेश्वरी-जैसी रण्डियाँ बुलायी जायँ और (इशारे से समझाकर) गृहस्थों के घर की; बहुत मिलेंगी, एक-से-एक खूबसूरत पड़ी हैं, रुपया चाहिए, अपने पास इसकी कमी नहीं।

कल्पना के हवाई जहाज पर चढ़े हुए मुरलीधर की तेज हवा के भीतर की स्थिति पार हो गयी, और अपना स्थान सुखमय निकट देख पड़ने लगा। मास्टर साहब को भी कुछ दिन और हिसाब में अपने लिए काफी निकासी कर लेने का मौका मिला। उन्होंने इसके लिए पहले से अपने खास आदमी रक्खे थे, जिन पर उन्हें पूरा विश्वास था। दारिद्र्य का भार न सह सकनेवाली या कुलटा या लोभ से बिगड़ी हुई अथवा कूटनियों से बिगाड़ी हुई गृहस्थों के घर की सुन्दरी-से-सुन्दरी स्त्रियाँ मिलने लगीं। वात्स्यायन के समय से पहले भी, शायद सृष्टि के प्रारम्भ से ही, मिलती थीं। मुरलीधर के रस की रास-लीला ऐश्वर्य की शुभ्र शारद ज्योत्स्ना में सारंगी में सप्त स्वरों, नूपुर-निक्वणों और नेत्रवीक्षणों से मधुमय क्षण-क्षण मर्त्य को लोगों की चिर-कामना के स्वर्ग में बदलने लगी।

इलाके के, विशेष रूप मुरलीधर के, नजदीक रहनेवाले प्रिय पात्र, मोहनलाल के लाड़ले, शागिर्द, कर्मचारी, जिलेदार जमाने का रंग खूब पहचानते थे। इनके द्वारा भी दूसरों की दाराएँ कभी-कभी जमींदारों का द्वार देख जाती थीं। पहले शहर के गृहस्थों से, जहाँ शौकीन शाह वाजिदअली का आदर्श है, रुपये के बदले रूप लिया जाता रहा, पर यह प्रथा गाँवों तक फैली हुई है। प्रमाण मिलने पर देहाती खूबसूरती पर ध्यान ज्यादा गया। देहाती रूपसियों की निर्दोषिता साहबों को पसन्द आयी, इसलिए धीरे-धीरे गाँवों पर धावे होने लगे। देहात की सुन्दरी विधवाएँ, भ्रष्ट की हुई अविवाहिता युवतियाँ एकमात्र माता जिनकी अभिभाविका थीं, और अपना खर्च नहीं चला सकती थीं, और इस तरह के लब्ध अर्थ से लड़की का धोके से ब्याह कर देना चाहती थीं, लगान की छूट, माफी आदि पाने की गरज से, कुटनियों के बहकावे में आकर, चली जातीं या भेज दी जाती थीं। लौट आने पर किसी रिश्तेदारी की जगह जानेवाले कारण गढ़ लिये जाते थे। जमींदार के लोग स्वयं सहायक रहते थे, कोई डरवाली बात न होने पाती थी। विश्वासी जिलेदार इस तरह के मामलों में सूराख लगानेवाले, सौदा तय करनेवाले थे।

एक दिन महादेवप्रसाद नामक एक जिलेदार ने खबर दी कि उसके गाँव में शोभा नाम की एक पन्द्रह-सोलह साल की लड़की है। वह धूप से भी गोरी और

फूल से भी खूबसूरत है। आँखें बड़ी-बड़ी, आम की फाँक-जैसी, पढ़ी-लिखी, जैसे सुबह की किरण आसमान से उतरी हो। शादी हो चुकी है, पर अभी ससुराल का मुँह नही देखा। उसे तोलने के लिए एक दिन एक कुटनी भेजी गयी थी। वह मनहारिन है। कुछ फासले पर एक दूसरे गाँव में रहती है। उसने एकान्त पा एक रोज बड़े-बड़े लोभ दिये कि एक तुम्हारे चाहनेवाले हैं, वह राजा से भी बढ़कर धनी और कृष्णजी से भी खूबसूरत-गोरे हैं, और तुम्हारे लिए वेचैन हैं।

"नाम तो नहीं बतलाया ?" मोहनलाल ने छूटते ही पूछा।

"नहीं साहब, मैं ऐसा वेवकूफ हूँ, जो नाम भी कहने के लिए कह देता।"

"हाँ, फिर ?"

"फिर उसके पर किसी तरह काँपे में न फँसे। गालियाँ देकर मनहारिन को निकाल बाहर कर दिया, लेकिन ईश्वर की मार भी एक होती है। मैं उस रोज से रोज महादेवजी को जल चढ़ाकर मनाने लगा कि हे बाबा, यह किसी तरह मिल जाय, तो आपके लिए एक चबूतरा पक्का बनवा दूँ। आप देवों के देव हैं, आपने देवीजी का मनोरथ पूरा किया था, मेरा भी पूरा करें। फिर सरकार चलने लगा महादेवजी का त्रिशूल, यही जो बीमारी फैल रही है---"

"इन्फ्लुएंजा ?"

"हुजूर, इसी इन्फ्लुएंजा में उसका बाप मरा, फिर मा मरी, गाँव के सैकड़ों आदमी---बसन्तलाल, रामलोचन, लछमनसिंह, अम्बालाल, बनवारीपरसाद, रामगोपाल, कृष्णकान्त वगैरा मशहूर जितने मालदार थे, करीब-करीब सब साफ हो गये। कोई किसी के पास खड़ा नहीं होता। चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ है। यह हुजूर यहाँ भी देख रहे हैं। जब उस लड़की के मा-बाप कूच कर गये, तब मैंने सोचा, अब इसे इन्तजाम के साथ अपने कब्जे में करना चाहिए। वहीं प्यारेलाल के मकान में रखवा दिया है, और कह दिया है कि उसकी ससुराल खबर भेजी जाती है। उसने ससुराल का पता भी बता दिया है। उसका खाविन्द परदेस में, बम्बई में, कहीं पढ़ता है। प्यारेलाल अपना ही आदमी है, ब्राह्मण है औरत-बच्चेवाला। लोगों को शक नहीं हो सकता। अब जब हुजूर की राय हो, ले आयी जाय। सरकार जब तक उसे देखते नहीं, तभी तक दिल को तसल्ली दें, वरना मैं तो कहूँगा, हुजूर की नेक नजर में ऐसी खूबसूरत औरत पड़ी न होगी। ईश्वर की मर्जी, उसे मामूली ब्राह्मण के यहाँ पैदा किया, नहीं तो है वह महलों-लायक सरकार !"

प्रसन्न होकर मुरलीधर ने पूछा, "क्या नाम बताया ?"

"शोभा, हुजूर !"

मुरलीधर सोचते रहे—एक साधारण स्त्री है। मर्जी के खिलाफ भी वह लायी जा सकती है। सब सरकारी कर्मचारी उन्हीं की तरफ हैं। विपक्ष से शिकायत करनेवाला कोई नहीं। वह न हो, यहीं रख ली जायगी।

मोहनलाल बोल उठे, परसों सरकार के जंग फतह करने की खुशी में जलसा है। एक खास अफसर के निमन्त्रण की बात कही। कहा, "बनारस की सुहागभरी और नियामतउल्लाखाँ, मुंशीजी, अलीमुहम्मद और भैरवप्रसाद वगैरा उस्ताद भी

आवेंगे; अगर यह भी आ जाय, तो कोई बाजू कमजोर न रहेगा।"

"लेकिन उसका दिल अभी दुखा हुआ है।" महादेव ने कहा।

"तो यहाँ जहर न दिया जायगा।" लापरवाही से मुरलीधर ने कहा।

तीन

देवी-दर्शन के पश्चात् रास्ते पर किशोरी को खड़ी कर वासुदेव बाबा को प्रणाम करने को बगीचे में पैठने से पहले शोभा ने समझा दिया कि क्वाँरी लडकियों को देवी समझकर वासुदेव बाबा उनसे प्रणाम नहीं लेते, वह कुछ देर प्रतीक्षा करे, शोभा जल्द आ जायगी। किशोरी ने कुछ देर तक तो प्रतीक्षा की, पर डरकर फिर पुकारने लगी। उत्तर न मिला, तो रोती हुई घर गयी। सुनकर उसकी मा के होश उड़ गये। वह डेरे की तरफ दौड़ी। प्यारेलाल वहीं था। महादेव धीरे-धीरे मोटर बढ़ाकर डेरे आने के लिए गाँव के बाहर गया था। प्यारेलाल के देवता कूच कर गये, जब सुना, शोभा वासुदेव बाबा के दर्शन करने गयी थी, तब से गायब है। दौड़ता हुआ बगीचे की तरफ कुछ दूर तक गया, पर कहीं कुछ न देखकर लौट आया। शंका हुई, पीपल के पासवाले कुएँ में न गिर गयी हो। कुछ देर तक कुएँ की तलाशी होती रही। गाँव के बहुत-से लोग इकट्ठे हो गये। कई रस्से बाँधकर कुएँ में पैठे। पर वहाँ भी शोभा न थी। फिर कुछ दूर तक बगीचे में गये, पर अँधेरे के सिवा कुछ न देख पड़ा। कोई भी शोभा को देखनेवाला गवाह न था। सब-के-सब सिर हिलाने लगे। लोगों ने निश्चय किया, किसी के साथ वह निकल गयी।

जब तक गाँव के भीतर शोभा की तलाश और उसके बुरे चरित्र की चर्चा हो रही थी, तब तक गाँव छोड़कर वह बहुत दूर निकल गयी। पहले ही जितना फासला कर ले, इस विचार से, खबर होने तक, बगीचों की श्रेणी पार कर गयी। पहले डरे हुए पैर तेज उठने लगे। शंका, भय, उद्वेग और दुःखों को उसकी एक अलक्ष्य शक्ति लड़कर पार कर जाना चाहती थी। मुक्ति की प्रबल इच्छा सामने के विघ्नों को पीछे के पतन के भय से झेल रही है। कभी रास्ता नहीं चली। आज एक ही साथ जीवन का सबसे जटिल दुर्गम, मार्ग तय करना पड़ा। कटी घास की पैनी नोकों से तलवे छलनी हो रहे हैं, खून के फव्वारे छूट रहे हैं, पर रास्ता पार करना है, याद आते ही कितना बल मिल रहा है! अंकुरों के चूमने की पीड़ा एक निःशब्द आह से भर जाती है। केवल एक लगन—रास्ता पूरा करना है, पकड़ न ले। वह रास्ता कितना लम्बा है, वह स्टेशन कितनी दूर है, जानकर भी नहीं जानती, सब भूल गयी, केवल इतना ही होश कि रास्ता पार करना है। उसे किस-किस तरफ से होकर कहाँ जाना होगा, कितनी दूर एक घण्टे में चली आयी, वह

कच्ची सड़क कहाँ है, कुछ ज्ञान नहीं। ज़रा रुकने पर पैर की खील निकालने के क्षण-मात्र में काँप उठती कि पकड़ ली गयी. पीछे कोई आ रहा है! हृदय धड़क उठता, वेदना भूलकर लम्बे पग सामने बढ़ती जाती है। एक घण्टा हो गया, जहाँ तक अँधेरा मिलता है, पेड़ देख पड़ते हैं, उसी तरफ जाती है। एक, दो, तीन, कई घण्टे पार हो गये। साथ-साथ श्रान्ति बढ़ गयी। गला सूख गया। दर्द भीगा, पैर दुखने लगे, बेताब हो वहीं बैठ गयी। वह स्टेशन कहाँ है। वह कहाँ आयी? कल क्या होगा? सोचती-सोचती पीड़ा की गोद में मूर्च्छित हो गयी। जब आँखें खुलीं, तब न वह स्थान है, न वह दृश्य! फेन-शुभ्र मसृण शय्या पर लेटी; एक अपरिचित स्त्री पंखा झलती हुई, सिर पर सुगन्ध से वासित पट्टी, तलवों में रुई के फाहे बँधे हुए।

जब महादेव लौटकर आया, और उसे मालूम हुआ कि शोभा गायब हो गयी है, तो बहुत घबराया। लोगों को एकत्र कर शोभा को बचाने का धार्मिक उद्देश समझाकर मदद माँगी, और लोगों के तैयार होने पर रात ही को तीन-तीन, चार-चार कोस के फासले तक के गाँवों में, मा-बाप की मृत्यु से घबराकर या किसी बहकानेवाले के साथ भगने की उसकी खबर फैला देने और वहाँ के लोगों से प्रार्थना करने के लिए कहा कि अपनी शक्ति-भर सब लोग उसकी सतीत्व-रक्षा का प्रबन्ध करें। लोगों को महादेव की सलाह बहुत पसन्द आयी। मदद के लिए गाँव के लोग तैयार हो गये। उधर उसने कहा कि मालिकों के यहाँ भी यह खबर हो जानी चाहिए। मुमकिन है, वहाँ से भी कोई मदद मिल जाय, और प्यारेलाल को एक रपोट लिखकर रात ही को चौकी के मुंशी को दे देने और सुबह कानपुरवाली गाड़ी से कानपुर तक स्टेशन देखते जाने के लिए कहा। एक दूसरे सिपाही को बादवाली गाड़ी से होकर प्रयाग तक देख आने के लिए कहा, यदि शोभा किसी के साथ रेल पर सवार हो। खुद सदर मुरलीधर के पास खबर देने को गया, क्योंकि वह इन्तजार करते रहेंगे। मुमकिन कोई दूसरा बन्दोबस्त आये हुए साहब के लिए करना पड़े।

पड़ोस के और फासले तक ज्यादातर गाँव मुरलीधर के ही थे। रातोरात तीन-तीन, चार-चार कोस तक गाँवों में खबर देने के लिए लोग दौड़े। चारो ओर सन्नाटा छा गया। राधा का पति डरा। दूसरे दिन उसका कानपुर जाना न हुआ। लोगों में तरह-तरह की टिप्पणियाँ चलने लगीं। प्रायः सभी शोभा के खिलाफ— अबला प्रबल रूप धारण करने पर क्या नहीं कर सकती!

पण्डित स्नेहशंकरजी सात-आठ गाँव के मामूली जमींदार हैं। ऊँचे दरजे के शिक्षित। विदेशों का भ्रमण कर चुके हैं। ऊँची शिक्षा प्राप्त करने पर भी ऊँचे पदों की प्राप्ति स्वेच्छा से नहीं की। सरस्वती की सेवा में दत्तचित्त रहते हैं। उम्र पचास के उधर होगी, साठ के इधर। लम्बे, पुष्ट, गोरे, ऋषियों के अनुयायी, इसलिए ईश्वरप्रदत्त रोओं पर नाई का उस्तरा नहीं फिरता। सर के बाल, मूछें, दाढ़ी, यथासंस्कार प्रतिभा और प्रौढ़ता के अनुरूप। सदा प्रसन्न आँखों से गंगा के जल की-सी निर्मल ज्योति निकलती हुई। ज्ञान की उस उभय धारा में देश के आदर्श युवक स्नान कर

धन्य होने के लिए आते हैं, जमींदारी में रियाया के साथ रियायत का पूरा सम्बन्ध अर्थ की ईंटों और शिक्षा के चूने से उठी ग्राम-संगठन की सुदृढ़ सुन्दर इमारत प्रान्त के उन्नतमना मनुष्य कभी-कभी देखने के लिए आते हैं। कभी-कभी सरकार से भी कुछ सहायता मिल जाती है। मुरलीधर के गाँव की अपार क्षार-जल-राशि के भीतर एक छोटे-से द्वीप की तरह सुजला-सुफला, शस्य-श्यामला, ज्ञान-दात्री, धात्री इतनी-सी भूमि। चारो ओर विना सहारे की नाव के अपने पैर पार करने की गुंजाइश नहीं। जल-जन्तुओं, डुबा देनेवाली उत्तुंग तरंगों तथा तूफान का सदा भय। स्नेहशंकरजी गाँवों के जमींदार की तरह नहीं, रियाया की तरह रहते हैं। जमींदारी का प्रबन्ध वहीं के किसानों की एक कमेटी करती है। अपनी पुस्तकों की आमदनी से भी वह कभी-कभी किसानों के शिक्षा-विभाग की मदद करते हैं।

नियमानुसार वह ब्राह्ममुहूर्त में उठकर टहलने चले। कुछ दूर जाने पर तारों के प्रकाश में देखा, एक स्त्री बाग की खाई से कुछ फासले पर पड़ी सो रही है, नजदीक जाकर देखा, हरसिंगार के दो-चार फूल खुल-खुलकर उस पर गिरे हुए हैं, अच्छी तरह देखा, साँस चल रही है, नाड़ी बहुत क्षीण। मुख पर दिव्य सौन्दर्य की स्वर्गीय छटा जैसे साक्षात् गायत्री युग-शाप को सहन न कर विश्व-ब्रह्म की गोद पर मूर्च्छित पड़ी हुई हो। स्नेहशंकर अनेक प्रकार की कल्पनाएँ उस किशोरी पर करते-करते शीघ्र घर लौटे। अपने पुत्र अम्बिकादत्त और पुत्र-वधू सावित्री को शयन-गृह के द्वार पर पुकारा। दोनो सो रहे थे। जगकर ससंकोच दोनों बाहर आये। संक्षेप में समाचार सुना, स्नेहशंकरजी ने उठा लाने को दोनो से कहा। दोनो पिता के पश्चाद्वर्ती हुए। शोभा की प्रांजल, करुण, मूर्च्छित शोभा देखकर सावित्री रोने लगी। सँभालकर दोनो घर उठा लाये। अपने बिस्तरे पर लिटा, फाहे से तलवों का खून धोकर आयडिन लगा, ढीले बाँध दिया, सिर पर गुलाब की पट्टी रखकर सावित्री पंखा झलने लगी।

प्रभात हुआ। गाँव के लोग जागे। उषा की लालिमा के साथ शोभा के भी सरोज-दृग अँधेरी क्लान्ति के भीतर से बाहर के जाग्रत् संसार में खुल गये। निश्चल चितवन से अपरिचिता सुन्दरी सेविका को देखा, पर नेत्र अव्यक्त शंका से निहार के कमल-जैसे व्याकुल हो गये, जैसे संसार में विश्वासपात्र अब कोई नहीं रहा, जैसे इस सेवा में भी स्वार्थ छिपा हो।

सावित्री प्रश्न न कर चुपचाप अपने पति के पास गयी, और पिताजी को बाहर से बुला लाने को कहा। कहा, अब होश हुआ है।

स्नेहशंकरजी शीघ्र आये, और स्नेह से अभय दिया। कुल शंका-संकोच दूर कर कहने लायक हालत हो, तो हाल बयान करने के लिए कहा।

गल-गलकर पलकों के करारों से युगपद् आँसुओं की धारा बहने लगी। स्नेह-शंकर के हृदय के स्नेह की पहचान पा शोभा करुण चितवन से देखकर रह गयी, कुछ कह न सकी। इस अव्यक्त कथा से, इतने व्यक्त प्रकाश से स्नेहशंकर बीज-रूप अर्थ समझ गये। उनकी वेदना के आँसू शोभा को सहानुभूति-प्रदर्शन के लिए गुप्त पथ पार कर बाहर आ गये। फिर सँभलकर उन्होंने कहा, "अच्छा, कुछ स्वस्थ हो लो, कुछ खा-पी लो, तब कहना।"

चार

दुःख-भरी पुकार से करुण शोभा का पत्र विजय की दृष्टि-किरणों में ठीक उषा-काल की ओस के आँसुओं का तरु-पल्लव हुआ, शिशिर का शतपत्र। पर दूरतम पथ पार करने को पाथेय कुछ नहीं। पिंजड़े में आशुबन्दी पक्षी के सदृश हृदय देह के भीतर तड़फड़ाने लगा, पर पतत्रि को पुनः-पुनः क्षतों के सिवा उड़ने का पथ नहीं मिला। सेठजी, जिनके प्रसाद से वह किसी तरह बम्बई में रहकर रही एक साल की पढ़ाई पूरी कर लेना चाहता है, नाराज हैं। अब सहायता देने से उन्होंने इन-कार कर दिया है। पुलिस के गुप्त विभाग के किसी अफसर से उनके पास उसके नाम शिकायत पहुँची है। इन्हीं सेठजी के यहाँ उसके पिता ईमानदारी से तीस वर्ष तक कार्य करके, वृद्ध हो घर गये, इन्हीं सेठजी को तीन बार मवालियों के आक्रमण से मैदान में टहलते समय साथ रहकर उसने बचाया था, इन्हीं सेठजी के घर से, पुलिस की सलाह के अनुसार, राजनीतिक कवल से जूठी पत्तल की तरह, वह बाहर निकाल दिया गया, पर उसका मानसिक स्वातन्त्र्य सामयिक बादलों में सूर्य की तरह ढका है। सेठजी से प्रार्थना करने के लिए फिर गया, पर ड्योढ़ी से भीतर पैठ नहीं हुई। दरबान ने कहा, ड्योढ़ी बन्द है। दो लड़कों को पढ़ाने लगा था, अभी महीना पूरा नहीं हुआ। उनके अभिभावकों के पास गया। दोनो जगह एक ही-से उत्तर—"बगैर महीना पूरा हुए आपको कैसे रुपये दे दिये जायँ—ऐसी उतावली हो, तो आप अगले महीने से मत पढ़ाइए, हम दूसरा इन्तजाम कर लेंगे।"

विजय—"तो अब तक का जो होना हो, कृपा कर वही दे दीजिए, फिर मैं न आऊँगा, मेरे घर में बीमारी है, घर जाना चाहता हूँ।"

"अच्छा, यह बात है, अब आप नहीं आना चाहते, कोई दूसरा काम मिला होगा। खैर। रुपये नहीं हैं। हमारे यहाँ पन्द्रह-पन्द्रह, सोलह-सोलह दिन में तनख्वाह नहीं दी जाती।"

विजय फिर कुछ कहने चला, तो दरबान की पुकार हुई, और तृतीय पुरुष के परुष सम्बोधन से कहा गया, इसे निकाल दो।

पहली जगह तो अपमान को पीकर किसी तरह दिल को उसने समझा लिया, पर दूसरी जगह धैर्य न रहा। दरबान के आने के साथ तौलकर ऐसा एक हाथ रक्खा कि वह मुँह के बल आया। फिर विद्यार्थी के पिता की तरफ़ चला, तो वह जेब में हाथ डालकर जो कुछ बचाव के लिए निकला, सभय देने लगे। नोट थे। विजय की आँख चढ़ी थी। नोट लेकर सदर्प, सक्रोध गद्दी से बाहर निकल गया। दूर सड़क पर जाकर देखा, छ दस रुपये के और एक सौ रुपये का नोट। क्रोध के बाद धनी-स्वभाव की परीक्षा कर हँसी आ गयी। यह क्रोध और बल है, जिसे तीन महीने की पढ़ाई से अधिक अर्थ मिलता है, वह सौजन्य और शिष्टता है, जिसकी गर्दन पर हाथ जाता है। ऐसा है आज भारत—सोचता हुआ अपने डेरे की तरफ चला। भाड़ा आदि चुका, बिस्तरा बाँधकर सीधे स्टेशन पहुँचा। फिर टिकट लेकर डाकगाड़ी से ससुराल के लिए रवाना हो गया।

पाँच

बातों से शोभा को पहचानकर स्नेहशंकर, उनके पुत्र और पुत्र-वधू ने गृह की कली में उसे सौरभ की तरह छिपा रक्खा। शत-पथ-वाहिनी शतद्रु जैसे पर्वत-पिता के वक्षःस्थल में मूलवास अन्तर्हित कर रही। जो जन-रव फैला था, इस परिवार को परिचय के दूसरे ही दिन मालूम हुआ, और तत्त्वज्ञ, दार्शनिक, पुरातत्त्ववेत्ता स्नेहशंकर को शोभा के सत्य के साथ जनता के सत्य का एक दृष्ट प्रमाण मिला।

अच्छा हो, स्नान समाप्त कर, बाल खोले दिन में शिशिर की स्नात ज्योत्स्ना-रात-सी स्निग्ध, शुभ्र-वसना, सुकेशा शोभा उदार, अपलक दृष्टि से न-जाने क्या मन-ही-मन देख रही थी, किसी दूरतर लक्ष्य की ओर क्षिप्त दृष्टि; ऐसे समय एक बार फिर इस गायत्री को, विद्या ही-सी चमकती, जल-जड़ से उमड़कर आयी चिन्मयी मूर्ति को स्नेहशंकर ने देखा —मुख की प्रभा तथा सघन केशों के अन्धकार में दिन और रात का दिव्यार्थ रूपक। याद कर सहास्य कहा, "अलका है यह।"

सावित्री खड़ी थी। पिता की कविता सुन मुस्किराकर पूछा, "अलका क्या पिता ?"

"इसका नाम है, यही नाम लोगों से बतलाना, और जैसा अब तक कहा है, मेरी बहन है। खूब याद रखना, भूलना मत।"

"हाँ, ठीक है।"

नारियल के जल की तरह प्रसन्न, विश्वामित्र के वर से मनुष्य रूप, विद्या और बुद्धि के कठोर आवरण के भीतर, छिपा दिया गया। स्नेह का ऐसा प्रगाढ़ लेप होता है कि जीव की तृप्ति मिलने के कारण जीवन दुःखप्रद, भार-सा नहीं मालूम होता, बल्कि इस मायिक बन्धन में कायिक आनुकूल्य पा प्रतिमा प्रसन्न चमकती है। अलका पितृपक्ष के दृश्य अपनी ही आँखों अनादि काल में अवसित होते देख चुकी थी। उसके चिर-स्नेह के अभ्यस्त आश्रय पिता-माता को एक अलक्ष्य शक्ति ने मूर्तियों से पुनश्च अणु-परमाणुओं में चूर्ण कर दिया था। अब दूसरे शक्ति-चक्र से घूर्णित, विशेष कष्टों के बाद, एक दूसरा स्नेहमय, मधुर माया-संसार संगठित हो गया है। उसे पूर्वार्जित नष्ट स्नेह-प्रतिमाओं का दुःख तो है, पर सन्तप्त हृदय को अनेक प्रकार से स्नेह-समीर भी स्पर्श कर ताप हर जाती है, इसका भी सुख उसे मिलता है। सावित्री एक ऐसी बहन उसे मिली, जैसी पिता के गृह में दूसरी न थी। बम्बई से तार का जवाब आया है, उसका पति अब वहाँ नहीं, बहुत सम्भव, वह घर गया हो। उसके दूसरे धर्म-पिता स्नेहशंकर अपनी पूरी शक्ति से उसके हितों को देखते हैं। बम्बई में उनके मित्र और विशेषता से उसके पति का पता लगा रहे हैं। अलका इन्हीं भावनाओं की मूर्ति बनी खड़ी थी।

"इनकी ससुराल का पता कुछ मिला पिता ?" सावित्री ने साग्रह पूछा।

"हाँ, जो हाल पिता के गृह का, वही श्वसुर-गृह का भी।" स्नेहशंकरजी स्तब्ध बैठे रहे।

"तो क्या…"

"हाँ, कोई नहीं; विजय के पिता, माता, भाई, सभी स्वर्ग सिधार गये। विजय है, पर पता नहीं चल रहा। अलका को मानसिक बहुत ही दुःख है, पर निरुपाय दुःखों को सहना ही पड़ता है।

"हम लोग परसों लखनऊ चलेंगे। वहाँ इसका जी कुछ बहल सकता है। हमने ससुराल का हाल छिपा रखना अनुचित समझा। अभी इसे कष्ट है। पर जब हमें भी अपने परिवार तथा स्नेह में सम्मिलित समझेगी, तब ऐसा मनोभाव न रहेगा।

"इसी भारत में आश्रयहीन बालिका और तरुणि विधवाएँ भी हैं। उन्हें खाने को नहीं मिलता, भूख के कारण विधर्म को भी उन्हें ग्रहण करना पड़ता है, चिर-संचित सतीत्व-धन से भी हाथ धोती हैं। इस घोर सामाजिक अन्धकार में पथ-परिचय का बहुत कुछ प्रकाश पा अलका को कदापि खिन्न नहीं होना चाहिए।

"हम कहते हैं, आगे यह खेद न रहेगा। ज्ञान की शान्ति में दुःख की सब ज्वाला बुझ जायगी। वह अपनी बहनों के लिए प्रदर्शिका होकर बहुत कुछ कर सकती है। क्यों अलका ?"

"जैसी आपकी आज्ञा।" नत-करुण नयना अलका ने धीमे स्वर में कहा।

"भय क्या बेटी, दुःख मनुष्य ही झेलते हैं, तू महाशक्ति। जितना परिचय शक्ति का तूने दिया, उससे अधिक की मृत्यु के सामने भी जरूरत नहीं। भरोसा रख। सदा समझ, भारत की दुखी विधवाएँ, महिलाएँ तुझे चाहती हैं। अब तेरी उचित शिक्षा का प्रबन्ध करना है। तू देखेगी, किस तरह की भी आशा से, उसकी पूर्ति से भी हृदय को ज्ञान-प्राप्ति के बिना इतना आनन्द नहीं मिलता।"

अलका पितृ-चरणों पर कोमल-नत-दृष्टि खड़ी रही। सावित्री ने लौंग लाकर दी।

"यह कौन है, जानती है ?"

अलका ने प्रश्न की पद्म-दृष्टि से देखा।

"मुझे क्या, अपने चिरंजीव पुत्र-रत्न को कहिए। बहारने की जरूरत पर मैं खुद झाड़ू लगा लेती हूँ, उन्हें नहीं पकड़ती गनीमत कहिए।" चपल-चितवन पिता को देखती हुई प्रखर सावित्री कह गयी।

अलका नहीं समझी, ऐसी निगाह से पिता को देखा।

"समय आने पर सावित्री खुद तुझे समझा देगी, अभी नहीं।" इतना कह न-जाने कितनी दूर, चिर-कांक्षित चिराभ्यस्त यत्न कल्पित ज्योतिर्मय लोक में स्नेह-शंकरजी दृष्टि बाँधकर रह गये। सावित्री पिता के मनोभावों से परिचित थी। एक अर्थ आप ही सोचकर मुस्किराती रही।

"देश तैयार नहीं," स्नेहशंकरजी ने संचित शान्तिपूर्वक कहा।

"जी।" सावित्री ने आँखें झुका लीं।

"कार्यकर्त्ता जो कुछ भी प्रभात के विरल तारों-से देख पड़ते हैं, योरप के मरु-स्थल की ओर बढ़ रहे हैं, और उद्देश जल का लिये हुए, पर नहीं समझते, यह एक दूसरे की प्राकृत ज्वाला से जला हुआ प्रकृति की नकल है ! यहाँ के नखलिस्तान के केलों के जल से तमाम देश की प्यास न बुझेगी।"

"जी।"

"इसीलिए लोगों को समृद्ध करने के उपाय छोड़कर स्वयं प्रसिद्ध होने को तत्पर होते हैं। इस तरह जिस समूह को वे स्वतन्त्र करना चाहते हैं, उसे ही अपनी आज्ञाओं का अनुवर्ती, गुलाम करने के फेर में पड़ जाते हैं। इससे बड़ा मनुष्य-मस्तिष्क का दूसरा अपकार नहीं।"

"आपके क्या विचार हैं ?"

"जो कुछ मैंने तुम्हारे साथ, तुम्हारे पति के साथ किया, जनाभाव के कारण अपनी भावनाओं का अनुरूप विस्तार नहीं कर सका। पर इच्छा है। साहित्य में इसीलिए इन विचारों की पुष्टि करता हूँ। यदि किसी प्रबल शिला के कारण प्रवाह का पथ-रोध हो रहा हो, तो शिला के हटाने का ही प्रयत्न करना चाहिए। प्रवाह स्वयं स्वतन्त्र है। यह अपनी गति निश्चित, निर्धारित करता हुआ ठीक अतल-अपार समुद्र से मिलेगा। रास्ते में नदी-नदों का सहयोग भी उसे आप प्राप्त होगा, पर जो प्रवाह शोण के साथ सहयोग कर बंगोपसागर में मिलना चाहता है, उसे अरब-समुद्र में गिराने का प्रयत्न केवल कारीगरी की प्रशस्ति-प्राप्ति के लिए है, यह उसकी सुविधा न की गयी।"

"आपका मतलब मैं नहीं समझी।" एकाग्र हो सावित्री पिता की ओर देखने लगी।

"बात यह कि देश की स्वतन्त्रता एक मिश्र विषय है। वह केवल राजनीतिक प्रगति नहीं। मान लो, एक मशीन बनाने की जरूरत हुई, तो कानून का जानकार क्या कर सकता है ? मनुष्य के जीवन को एक साधारण-से-साधारण गृहस्थ को जैसे निर्वाह के लिए आवश्यक छोटी-मोटी सभी बातों का ज्ञान रखना पड़ता है, वह खेती का हाल भी जानता है, बागवानी भी जानता है, कुछ कल-पुर्जों का ज्ञान भी रखता है, पशु-पालन से भी परिचित है, और सीना-पिरोना, पाक-शास्त्र, वैद्यक, शिशु-रक्षा, पत्रलेखन, पुस्तक-पाठ, साहित्य, दर्शन, समाज और राजनीति के भी यथावश्यक कानून जानता है, और इस प्रकार एक मिश्र ज्ञान उसकी व्यावहारिक गृह-स्वतन्त्रता का अवलम्बन है, वैसे ही देश की व्यापक स्वतन्त्रता को सब तरफ की पुष्टि चाहिए। जब तक सब अंगों से समान पूर्णता नहीं होती, तब तक स्वतन्त्र शरीर संगठित नहीं हो सकता। हमारे यहाँ ऐसा नहीं हो रहा है। हमारे यहाँ तो कानून के बल पर राजनीतिक स्वतन्त्रता हासिल की जा रही है, संवाद-पत्रों में कानून के जानकारों का विज्ञापन होता है—वे ही देश के सर्वोत्तम मनुष्य हैं। उन्हीं की आज्ञा शिरोधार्य है।"

"पिता, पर कैसे-कैसे त्यागी नर-रत्न हैं।"

"मैं अस्वीकार तो करता नहीं, पर क्या दूसरी तरफ भी ऐसे ही त्यागी और संयत मनुष्य नहीं ? क्या देश उनकी भी वैसे ही इज्जत करता है ? सावित्री, नहीं करता, इसका वही कारण है। यह मेरी अपनी बुद्धि, अपने विचार हैं। स्वतन्त्रता के नाम से देश घोर परतन्त्र है। संवाद-पत्र एक दल-विशेष, व्यक्ति-विशेष की नीति के प्रचारक हैं। वे इस तरह अपने पत्र का भी प्रचार करते हैं। जिसे अभ्युदयशील, जनता में आकर्षक, लोक-प्रिय समझते हैं, बराबर उसी का प्रचार करते रहते हैं। जनता बड़ी असमर्थ होती है सावित्री ! वह मनुष्य को विना स्याह दाग

का ईश्वर भी समझ लेती है। जो कमजोर को और भी कमजोर, परावलम्बी कर देता है। संवाद-पत्रों में स्वतन्त्रता का व्यवसाय होता है। सम्पादक ऐसी स्वाधीनता के ढोल हैं, जो केवल बजते हैं, बोल के अर्थ, ताल, गति नही जानते, अर्थात् उनके भीतर वैसे ही पोल भी है। वे दूसरे की हाथों की थपकियों से मधुर बोलते हैं—जनता वाह-वाह करती है, और बजानेवाले देवता को पुष्प-माला लेकर यथाभ्यास, जैसा सुझाया गया, पूजने को दौड़ती है। यह स्वतन्त्रता का परिणाम नहीं।"

"पर नेता को सभी सम्मान देते हैं।"

"नेता ? नेता कौन है ? मनुष्य ? एक मनुष्य सब विषयों की पूर्णता पा सकता है ?"

"न।"

"इसीलिए नेता मनुष्य नहीं, सभी विषयों की संकलित ज्ञान-राशि का भाव नेता है। इसीलिए किसी भी तरफ का भरापूरा मनुष्य दूसरे किसी भी तरफ के बड़े मनुष्य की बराबरी कर सकता है। पर देश में यह बात नहीं हो रही।

"यही मैं कह रहा था। एक को पैत्रिक सम्पत्ति मिली। पिता जज थे। पूर्ण शिक्षा भी मिली, क्योंकि अब रुपये से शिक्षा का तअल्लुक है। वह इटली, जर्मनी, फ्रांस, इंगलैण्ड और अमेरिका आदि देशों से शिक्षोत्कीर्ण पदवियों के हीरा का हार पहनकर स्वदेश लौटे। बैरिस्टर हुए। दो करोड़ रुपया अर्जित किया। अन्त में दस लाख देश को दान कर दिया। कोने-कोने तक नाम फैल गया। पत्र यशोगान करने लगे। वह देश के नेता हो गये। एक दूसरे को केवल बैल, हल और मूसल पैत्रिक चल सम्पत्ति मिली, और शिकमी जोत सिर्फ दस बीघे जमीन। वह हल और माची कन्धे पर लादकर, एक पहर रात रहते, खेतों में जाता, शाम तक जोतता, दोपहर वहीं नहाकर भोजन करता, घण्टे-भर छाँह में बैल चारा खाते, तब तक अपनी प्रिया से खेती की बातचीत करता है। शाम को काम कर घर लौटता है।

"एड़ी-चोटी का पसीना एक करके, मुश्किल से भर-पेट खाने को पाता है। लगान चुकाता है। भिक्षुक को भीख देता और फसल न होने पर जमींदार के कोड़े सहता है। कभी-कभी उन्हीं की कृपा से कचेहरी जा बैरिस्टर साहब को भी कुछ दे आता है। जमींदार, पुलिस, कचेहरी, समाज, सभी जगह वह नीच, अधम, मनुष्य की पदवी से रहित, ठोकरें खानेवाला है। कोई देख न ले, और रोने का मतलब और-और न सोचे, इसीलिए खुलकर नहीं रोता। एकान्त में ईश्वर को पुकार, शून्य देख, दुख के आँसू पीकर रह जाता है। तमाम उम्र इसने ऐसे ही पार की। छोटी-सी सीमा के बाहर कोई इसे नहीं पहचानता। सदा इसके सिर पर समाज, राजनीति, धर्म और मनुष्य-रूप राक्षसों से मिले दुःखों का पहाड़ रक्खा हुआ है। यह इसे अपने ही कर्मों का फल समझ, किसी को भी इसके लिए न कोसकर चुपचाप ढोता चला जा रहा है। इन दोनों में कौन बड़ा है सावित्री ?"

"यही किसान।"

"यह क्या चाहता है सावित्री ?"

"यह क्या चाहता है पिता ?"

झर-झर आँसुओं का अनर्गल प्रवाह सानुभाव विद्वान् पण्डित प्रवर की आँखों

से बहने लगा। ओस से आकाश के रोने के साथ-साथ, उसके स्नेहाछन्द की पत्रिका, अलका भी रोने लगी। सावित्री ने रात की ही तरह पलकें मूँद लीं, यह दृश्य न देखा।

सँभलकर स्नेहशंकरजी ने कहा—"चाहते और क्या हैं, न्याय, इस दुःख से मुक्ति। इसलिए, जो लोग वास्तव में क्षेत्र से उतरकर देश के लिए कार्य करते हैं, वे यदि इन किसानों की शिक्षा के लिए सोचें, हर जिले के आदमी, अपने ही जिले में जितने हों, उतने केन्द्र कर अर्थात् उतने गाँवों में, इन किसानों को केवल प्रारम्भिक शिक्षा भी दे दें, तो उनके जेलवास से ज्यादा उपकार हो, और यह शिक्षा की सचाई सहृदयों की यथेष्ट संख्या-वृद्धि कर दे।

"फिर वे भी इस कार्य में कार्यकताओं की मदद करें। किसी प्रकार का सुधार पहले मस्तिष्क में होता है। जहाँ मस्तिष्क ही न हो, वहाँ नेता की आवाज का क्या असर हो सकता है? समझदार कभी भी समझ नहीं छोड़ता। ठीक-ठीक काम तभी होता है। मनुष्य-रूपों में जिनकी पशुओं की संज्ञा अज्ञान के कारण हो रही है, वे किसी विषय को अच्छी तरह जाने विना ग्रहण नहीं कर सकते। कठिन समय आने पर उसे छोड़ देंगे।"

"लोग इस मनोभाव को न छोड़ें, इसीलिए तो नेता अनेक दुःख-कष्ट झेलते, तपस्या करते हैं।"

"मैं विरोध नहीं करता। पर, जैसा पहले उस किसान के लिए कहा है, वैसा ही फिर कहता हूँ, शक्ति की दृश्य क्रिया से अदृश्य क्रिया में और भी कष्ट मिलते हैं। तुम यह न सोचो कि जो मनुष्य दस-बीस वर्षों तक एकनिष्ठ हो किसानों की दी रोटियाँ खाकर उनके बच्चों को पढ़ायेगा, उसे किसी जेलवासी से कम दुःख उठाने पड़ेंगे। शक्ति के संयम में जितना दुःख, जितनी साधना है, उतना दुःख, उतनी साधना बेमेल शक्तियों की प्रतिक्रिया में नहीं। गीता में यही उपदेश है। ब्राह्मण इसीलिए क्षत्रिय से बड़ा है।

"जेल क्या बाहर नहीं? सरकारी जेलों की दृश्य दीवारों के बाहर ईश्वरीय जेलों के कैदी कम तकलीफ उठाते हैं? ऊँचे विचारों से वायु और आकाश की दीवारें और मजबूत, और दुःखप्रद हैं। फिर एक ही पारतन्त्र्य की दीवार जेल के भीतर भी है और बाहर भी। अर्जुन सशस्त्र हैं, प्रतिघात करते, मार का जवाब मार से देते हैं; कृष्ण निरस्त्र हैं, हाथ में घोड़ों की लगाम, लक्ष्य सदा मार्ग पर, शरीर का बिलकुल ज्ञान नहीं। पर दुःख कौन ज्यादा उठाता है? संयम किसमें अधिक है? उत्तरदायित्व किसका बड़ा है? उद्धार के लिए वही रुख अच्छा होता है, जहाँ रुकावट न हो।

"रस्साकशी (Tug of war) में अन्ततः एक पक्ष दूसरे को खींच लेता है, पर जब तक एक पक्ष की शक्ति समाप्त नहीं हो जाती, खींचनेवाले कितना हैरान होते हैं? देश की राजनीति की अभी ऐसी दशा नहीं कि बराबर का जोड़ हो; इसलिए सुधार की ही तरह सुधार करना चाहिए; नहीं तो हार अवश्य होगी। नेताओं के साथ अधिक संख्या में जनता सहयोग न करेगी। अपने अंगों में जो कम-जोरियाँ हैं, उन्हें दूर कर किला मजबूत करने के काम में लगने पर, किले पर गोला-

बारी होने की कोई शंका नहीं, परन्तु साधना, कष्ट और महत्त्व भी जेलसेवा से कम नहीं। जेल में व्यर्थ जीवन व्यतीत होता है। जनता मुँह फैलाये संवाद-पत्रों में स्वतन्त्रता की राह देखती है!"

अम्बिकादत्त किसान-लड़कों को पढ़ाने, अपनी ही तैयार करायी पास की पाठशाला, गये थे। घर लौटे। गाँव का तमाम काम शिक्षा, गोपालन, कृषि, वस्त्र-निर्माण आदि इन्हीं के सिपुर्द है। कुछ और सिखाये हुए कार्यकर्ता हैं, जो वहीं रहते हैं। कभी-कभी पं. स्नेहशंकरजी भी देखते हैं। पर इनका अधिक समय पुस्तक-प्रणयन में पार होता है।

पीछे-पीछे भोला चमार कुछ मूलियाँ व्यवहार में देने के लिए लेकर आया। टोकनी में रखकर सावित्री ने निकट ही बैठाला। भोला चमड़े का बाजार गिरने का हाल बतलाने लगा।

मन्ना पासी चौगड़े 3.4 शिकार कर लाया था। अम्बिकादत्त मांस खाते थे। सावित्री को भी अरुचि न थी। सिर्फ स्नेहशंकरजी उत्तेजक समझकर न खाते थे। इन दोनों के लिए उन्होंने स्वय राय दी थी।

मन्ना लगभग सेर-भर मांस महुए के पत्ते के दोने में ले आया, और द्वार पर सदर्प "भौजी, भौजी" की निर्भीक आवाज लगायी।

सावित्री ने उसे बुलाया। मन्ना ने भीतर आकर भौजी के हाथ पर हँसते हुए मांस का दोना रख दिया।

मांस की ओर देखकर शोभा ने ऐसी मुद्रा बनायी कि स्नेहशंकर समझ गये, इसने मांस कभी खाया नहीं, इसलिए घृणा करती है।

हँसकर, पास बुला कहने लगे, "आज हमारा-तुम्हारा अलग चूल्हा दग जाय, हम तुम्हारे दल में हैं।"

"क्या दीदी खाती हैं?" भयभीत दृष्टि से सावित्री की ओर देखते हुए अलका ने पूछा।

"हाँ, रोज बाजार-से बकरा आता था। तुम्हारे आने से बन्द था। अब यदि कहो, आज से श्रीगणेश हो। क्यों, दीदी से अब विशेष सहानुभूति नहीं रही?"

अलका कुछ पग पिता की ओर बढ़ गयी, "मुझे डर लगता है।"

स्नेहशंकर हँसने लगे।

छह

कानपुर की एक संकीर्ण गली के मकान में बैठा हुआ युवक आवाज पा बाहर आया, और मित्र को देखकर प्रसन्नता से लिपट गया, "तुम आ गये विजय? आने का पत्र नहीं लिखा तुमने।" विजय को ले जाकर अपने कमरे में बैठाला, कुली ने

उसका सामान रख दिया। विजय ने कुली की मजदूरी चुका दी। फिर एक साँस छोड़कर कहा, "बड़ी विपत्ति में हूँ अजित !"

"विपत्ति !" शंका की दृष्टि से अजित ने देखा।

विजय —"हाँ; मेरे मा-बाप, सास-ससुर, सबका इसी बीमारी में शरीरान्त हो गया ! मेरे पास ससुराल से एक पत्र आया था। लो, पढ़ो।"

विजय ने शोभा का पत्र पढ़ने को दिया। अजित पढ़ने लगा। पढ़कर साश्चर्य विजय को देखा।

विजय फिर कहने लगा, "उसके गाँव में पता लगा है, वह किसी के साथ भग गयी।"

अजित—"झूठ है। जिसके हाथ का ऐसा पत्र है, उसके मनोभाव वैसे नहीं हो सकते।"

विजय—"लेकिन पता नहीं लग रहा, क्यों गाँव से गयी ? उस गाँव के ज़िलेदार, कहते हैं, उसके बड़े हितकारी थे। उनकी सूरत लेकिन एक खासे मक्कार की है।"

अजित—"बस-बस, यहीं कुछ रहस्य है।"

विजय—"लेकिन रहस्य का पता लगने-लगाने तक शोभा का सतीत्व तो नहीं रह सकता, जैसा समय है।"

अजित—"यह ठीक है। पर यह भी सम्भव है, कुछ दाल में काला देखकर उसने आत्महत्या कर ली हो, और पकड़ जाने के डर से गाँववाले छिपा रहे हों।"

कुछ देर तक दोनो सन्ध्या समय के प्रान्तर की तरह शून्य-जन मौन बैठे रहे। विजय ने कहा, "क्या करता, लाचार घर चला। रास्ते में संवाद मिला, पिताजी और माताजी का भी देहान्त हो गया है। छोटा भाई था, उसे भी सरदी लग चुकी थी, दुःख, शोक और रोग से उसने भी प्राण छोड़ दिये। घर की रक़म जमींदार के हाथ लगी। अचल सम्पत्ति कुछ थी नहीं। फिर जाना न जाना बराबर सोचकर यहाँ चला आया।"

अजित—"तो क्या विचार है अब ?"

विजय—"जो एक मनुष्य का होना चाहिए, लेकिन न-जाने क्यों कुछ दिनों से पुलिस पीछे लगी है। यहाँ रहूँगा, तो मुमकिन, तुम पर भी शक हो।"

अजित—"अरे, यहाँ तो छ महीने से ससुरजी की बेटी जवान है, रोज़ देखने आते हैं।"

विजय—"तब यही बात होगी, जो मुझ पर सन्देह है। तुम्हारे पत्र के कारण है।"

अजित—"लेकिन तुम्हें मैंने कोई ऐसी बात तो नहीं लिखी।"

विजय—"पत्र लिखा। सम्बन्ध है। शिकारी हो—राह-चलता, व्याघ्र को बू मिली।"

अजित—"बड़े भाग्य हैं जी, एक शरीर-रक्षक हमारे साथ रहेगा।"

विजय हँसने लगा—"ये गुप्त विभागवाले बकरे चुन-चुनकर, पौदों के सिर काटकर खाते हैं—पत्ते नहीं, नये कोंपलवाले डण्ठल। एक बार चर जाने पर फिर

पौदा नहीं पनपता, धीरे-धीरे मुरझाता हुआ सूख ही जाता है।"

अजित ने विजय को बीड़ी दी। विजय ने इनकार किया। तब अपनी में आग लगा लापरवाही से कमरे को धूमायमान कर पुकारा—"रामलोचन, ज़रा दो कप चाय तो बना लाओ।" फिर विजय से पूछा—"तो तुम अब क्या करना चाहते हो ?"

विजय—"सोचा था, एम्. ए. कर लूँगा, पर भाग्य में ऐसा नहीं लिखा, और डिगरी करूँगा भी क्या लेकर ?—नौकरी करनी नहीं, किताब पढ़कर समझने लायक लियाकत हो ही गयी है। ईश्वर ने रास्ता भी साफ कर दिया। अब तो तमाम भारतवर्ष अपना मकान है। उसी के लिए जो कुछ होगा, करूँगा।—'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'।" कहकर कुछ देर विजय चुपचाप बैठा रहा, फिर अजित से पूछा, "तुम क्या करोगे ?"

अजित—"तुम ईश्वर पर विश्वास रखते हो, ऐसा जान पड़ता है। मुझे तो ईश्वर के नाम पर अँधेरे के सिवा और कुछ नहीं नजर आता। हालाँकि मैं डी.ए.बी. स्कूल का पढ़ा हुआ हूँ। खैर, मैंने खराबी यह की कि पहले के परिचय के कारण ज्योतिःस्वरूप को अपने कमरे में टिका लिया। मैं नहीं जानता था कि ज्योतिःस्वरूप इस समय राजनीतिक अन्धकारपथ के यात्री हैं, इससे खुफियावाले हमेशा उन्हें राह बताने के लिए उनके साथ रहते हैं। नतीजा यह हुआ कि उनके जाने पर सरकार की राजभक्त रियाया की लिस्ट से, धर्म-भ्रष्ट हिन्दू की तरह, मैं भी जाति-च्युत किया गया, अर्थात् सरकार के परिवार से मेरी लुटिया-थाली अलग कर दी गयी। साथ-साथ पूरे सेर-भर मिर्च की झार से पिताजी के सामने मेरे नाम पर छोंक-फटकार की गयी है। मैं बुलाया गया। पिताजी ने पूछा, 'तुम्हारे पास ऐसे लोग क्यों आते हैं, जो सरकार के खिलाफ है ?' मैंने कहा, 'मुझे सरकार की खिलाफत का कुछ इल्म नहीं।' 'अबे गँवार, खिलाफत क्या कहता है, बी. ए. में पढ़ता है,' पिताजी गरज उठे। मैंने कहा, 'आप अपने खिलाफ का नाउन (विशेष्य) समझ लीजिए, मैंने उर्दू की वर्दी नहीं पहनी।' तो 'उनसे क्यों मिलता-जुलता है, जो सरकार के खिलाफ हैं ?' बड़े क्रोध से कहा। मैंने फिर गलती की, लेकिन भाव की नहीं। कहा, 'तो क्या वे सरकार की खिलाफत का तमगा लटकाये फिरते हैं ?' इसका कुछ जवाब न देकर मुझे घर से निकाल दिया। बड़े शिव-भक्त हैं, पर अक्ल ऐसी ! बताओ, वह शिवजी के बैल या शीतलादेवी के शिष्ट वाहन से भी बढ़कर विशेषता रखते हैं या नहीं। इसीलिए 'पितरि प्रीति-मापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवतः' तो यहीं तक समझो। माताजी फल्गु की तरह पिताजी के अज्ञात भाव से भीतर-ही-भीतर अर्थ-जल भेजवा देती हैं, किसी तरह बी. ए. पास कर लिया है, अब उन्हें भी तकलीफ नहीं देना चाहता। सोचता हूँ, जिनमें बदनाम हूँ, उन्हीं में मिल जाऊँ, जो होगा, होगा। लेकिन मुझे तो इसका कुछ पता भी नहीं मालूम। ज्योतिःस्वरूप को छोड़कर किसी दूसरे को जानता भी नहीं। उसे भी अब जाना कि ऐसा है। इस वक्त पंजाब में है। अगर पता चला, तो पहुँच तक के लिए गुनहगार हूँगा। तुम क्या कहते हो ?"

विजय—"चलो, कांग्रेस का काम करें।"

अजित—"कांग्रेस का हाल पूछो मत। यहाँ जो महाशय त्रिवेणीप्रसाद हैं, वह दोनों तरफ रेंगते हैं, ऐसे जीव हैं। मैं गया था। दूसरे दिन हजरते दाग फिर ऐसा बैठे कि उठे ही नहीं। समझे ? एक बात है। देहात में सिक्का जम सकता है। रायबरेली जिले में कुछ काम भी हो रहा है, और अभी महीने-भर पहले मैंने एक व्याख्यान भी दिया था। किसानों की सभा थी, मैं मामा के यहाँ से देखने गया था। लोगों ने कद्र की थी। वहाँ काम चल सकता है, और यह जो तुम्हारा प्रकरण है, इसका भी बहुत कुछ रहस्य वहाँ से मालूम हो सकता है। वहाँ के किसान मुझे पहचानते हैं। दो केन्द्र कर लेंगे, और कांग्रेस से न होगा, तो स्वतन्त्र रहकर काम करेंगे।"

विजय—"ठीक है, चलो, कुछ अनुभव ही प्राप्त होगा।"

चाय पीकर विजय आराम करने लगा। अजित कुछ काम से, विजय से, कहकर बाहर चला गया।

सात

"सुराज क्या है रे ?" बुधुआ ने महँगू से पूछा।

"किसानों का राज।" गम्भीर होकर महँगू ने कहा।

महँगू व्यापारी है। लकडी का कारोबार करता है। देहात में खड़े बबूल, ऊसरों और काश्तकारों के खेतोंवाले, मोल लेता है। काश्तकारोंवाले किफायत से मिलते हैं. जमींदार अपने सिपाहियों से कटवाने में मदद करता है। महँगू को काफी मुनाफा हो जाता है। आठ महीने तक, लकड़ी कटवाना, लदवाना और कानपुर में बेचना, यही महँगू का काम रहता है। चार महीने बरसात-भर जुआर, अरहर, तिल्ली, सन, मूंग, उड़द आदि की खेती कर घर रहता, फिर क्वार में चने और जव-चनी असींचे बो-बुआकर कार्तिक से अपना काम शुरू करता है। गाँव में शहर की खबरों का एक मुख्य रिपोर्टर, किसानों का जमींदार से भी मिला हुआ नेता ! गाँव के रिश्ते मे बुधुआ चचा लगता है, महँगू भतीजा।

"तो क्यों रे महँगू !" बुधुआ ने पूछा, "फिर ये जमींदार और पटवारी क्या करेंगे ?"

"झख मारेंगे और क्या करेंगे ?"

बुधुआ कुछ समझ न सका कि देश में, गाँव में रहते हुए कैसे झख मार सकते हैं। महँगू भी गहराई तक नहीं समझता था। सुनता था जो कुछ, पचीसों उलट-फेर के बाद खुद भी न मानता था कि यह पुलिसवाली सरकार और जमींदार लोग लगानवाला हक छोडकर ख्वाब की तरह कैसे गायब हो जायँगे। पर दूसरों को नेताओं की तरह समझाना उसकी आदत पड़ गयी थी।

बुधुआ ने डरते-डरते, पलकें तिलमिलाते हुए धीरे से पूछा, "ये कहाँ जायँगे रे महँगू ?"

"तू तो बात पूछता है, और बात की जड़ पूछता है। गन्धी महरानी का प्रताप ऐसा है कि इनके साथ बँध जायँगे, और बोल बन्द हो जायगा, तब ये किसानों के तलवे चाटेंगे।" महँगू अपनी दाद खुजलाने लगा।

"तो लगान फिर किसको दिया जायगा ?"

"किसी को नहीं, लगान दिया गया, तो सुराज कैसा ? विद्यारथीजी समझा रहे थे, अब के जब मैं कम्पू गया था।"

"तब तो बड़ा अच्छा है।"

मैकू भी खड़ा सुन रहा था। अपनी समझ पर जोर देते हुए कहा, "यह बूढ़ा हो गया, पर समझ रत्ती-भर नहीं। मैं लछमनपुर गया था। वहाँ बाबू साहब के घर के लड़के कह रहे थे कि तिलक महराज कहते हैं कि जमीन रियाया की है, जमींदार को लगान न दिया जाय।"

सुक्खू ने सानी करना बन्द कर, आवेश में आकर कहा, "जिसकी लाठी, उसकी भैंस, अभी गाँव-भर के आदमी मिल जाओ, दूसरा गाँव लूट लो।"

"बड़ी बातें न बघार" सुक्खू के भाई लक्खू ने कहा, "सरकार ने तोप के बल हिन्दुस्तान फते किया है, जवानी कैंफियत से न छोड़ देगा, साले, कर देगा रपोट चौकीदार, तो चूतड़ की खाल निकाल ली जायगी; बकने दो इनको आयँ-बायँ, अभी शेर हैं, जिमीदार के सामने चूहे बन जायँगे, नहीं तो चलेगा हण्टर डिल्ली-वाला।"

महँगू ने सोचा, कहीं इसने मुझे भी लपेटा, तो बड़े पेंच में पड़ूँगा; फिर एक सूत न सुलझेगा। बदलकर बोला, "देखो न लक्खू भैया, तुम्हें रुई से काम, कपास का हाल क्या पूछते हो ? दुनिया है, कोई किसी रंग में, कोई किसी रंग में। शहर का हाल पूछते हो, बतला दिया; नहीं, बात की जड़ पूछेंगे।"

नजदीक ही, निकास पर, बीरन पासी घर की बनायी शराब पिये, अपनी चौपाल में बैठा, नशे में बातचीत का मजा ले रहा था। ये छ भाई हैं। हरएक के दो-दो, चार-चार, छ-छ लड़के। इनमें भी आधे से अधिक जवान। छहों भाई अलग-अलग घर बनवाकर रहते हैं। रात को सबकी निगरानी होती है। मशहूर बदमाश। गाँव में हाथी मारकर ले आयें, हज्म हो जाय। पुलिस पता लगाती रह जाय। गाँव-भर लोभ तथा भय से इनसे सहयोग करता है। इनकी बदौलत लोधों के यहाँ भी चाँदी के गहने हो गये। चोरी का माल चवन्नी कीमत पर बिकता है। ज्यादा सामान—सोना-चाँदी—गाँव तथा पड़ोस के महाजनों के यहाँ दूसरे-दूसरे रूप में मिलेगा। रामदीन सोनार सोना और चाँदी गलाकर दूसरे ढाँचे में गढ़ देता है। थानेदार और पुलिस के सिपाही ठेके से शराब नहीं खरीदते, बराबर बीरन वगैरह के यहाँ से चालान चौकीदार के हाथ जाता है। शक्ति, संगठन, कार्य-कलाप, सभी तरफ से गाँववाले बीरन के खानदान से डरते हैं। गाँव का नेतृत्व बहुत कुछ इन्हीं के हाथ है। जमींदार भी इन्हें मानता है। बेगार, हल, बेड़ी, भूसा, रस आदि रकम सिवा इन्हें नहीं देनी पड़ती। इनकी रातवाली आमदनी काफी

रहने पर भी ये तंगदस्त रहते हैं। इधर थानेदार की निगाह बदल गयी है, क्योंकि कुछ रुपये—सब लोगों से केवल 600) उन्होंने माँगे थे—पर ये नहीं दे सके। पुलिस से तंग आ इन्हीं लोगों ने गाँव को सलाह देकर सभा करायी। पर बाहरी तौर पर सभा से बाहर थे। महँगू की चालबाजी से वीरन को बड़ा क्रोध आया कि पलट रहा है, बेचारे बुधुआ को पिटवायेगा। पहले से सलाह हो चुकी थी कि अब के महाजन से कर्ज लेकर लगान न चुकाया जाय। जिसके खेत की जैसी पैदावार हो, वह वैसा ही लगान दे। देखा जाय, जमींदार क्या करता है। बुधुआ बड़ा ही गरीब किसान है, फिर अब के उसके खेत की खरीफ डेढ़ हाथ से ज्यादा नहीं बढ़ी; वह भी जगह-जगह जली हुई। इसीलिए उसे सुराज की सबसे ज्यादा खोज है कि दो-चार रोज में मिल जाय, तो जमींदार के कोड़ों से पीठ का निकट सम्बन्ध जाता रहे। बीरन यह सब समझता था। चुपचाप उठकर झूमता हुआ महँगू के पास पहुँचा, और हाथ पकड़कर, अकड़ से पूछा, "क्यों रे साले, तू बबूलों का ठेकेदार है या सुराज का भी? गाँव के गरीबों के बबूल काट लिये। जिनके खेतों में वे थे, उनके अनाज की पैदावार घटी या नहीं? कुछ जगह बबूल छाँह मारते रहे? फिर खेतों का पूरा लगान सबने चुकाया? तो बोल साले, वे बबूल किसानों के थे या जमींदार के?"

महँगू के होश फाख्ता हो गये। लगा गिड़गिड़ाने, "भैया, मैं कानून क्या जानूँ, मैं तो यही जानता था कि जो पेड़ जिमीदार बेचते हैं, वे उन्हीं के हैं, तुम कहो, तो मैं कान पकड़ता हूँ। (एक हाथ से कान पकड़कर) अब कभी जो ऐसा काम करूँ।"

बीरन ने छोड़ दिया। सोचा था—'इस साले के पीछे साल-भर और ससुराल हो आऊँ। सुराज समझाता है, ढफाली कहीं का! हम लोग कलकत्ता, बम्बई, लखनऊ, इलाहाबाद तक पैज भरते हैं, पर किसी से नहीं कहते। दद्दा कमिश्नर साहब की कनात काटकर, ऊपर से डण्डे-डण्डे उतर गये। उनकी बाकस उठा लाये, ऐन मेले में, और सिपाही पहरा देते रह गये। कह-बदकर उठा लाये। तीसरे दिन बाकस दी। कमिश्नर साहब ने पीठ ठोंकी, और बहादुरी में नाम लिख दिया। वे जीते-जी मर गये, पर कभी अपनी जुबान से बहबूदी न बघारी। और, यह बित्ते-भर की मेख—जी में आता है, गाड़ दूँ साले को—जहाँ देखो, वहीं खटक रहा है। तू ही कम्पू जाता है? विद्यारथी ने तो यह भी कहा है, क्यों बुद्धू काका? (हाँ बच्चा कहा है, बिना बात सुने बुद्धू ने गवाही दी, और मुँह बाये खड़ा रहा) कि बाजार से मुसलमानों का काटा बकरा न मोल लो, खाओ तो काटकर खाओ। ठेके से शराब न खरीदो, पियो तो बनाकर पियो— सूबेदार बाबा के लड़के हरनाथ काका कहते थे कि नहीं, गनेशपुरवाले?'

बीरन से सहयोग करने के लिए, विशेष उत्साह के साथ झूठ पर सच्चाई का जोर देकर सुक्खू ने कहा, "अभी परसों तो मेरे सामने कहा, चारा लेने आये थे।"

"खबरदार, जो बात हो चुकी है, उससे कोई टला, तो खैर न समझे, फिर वह है यह बीरन।" सबको सूचना देकर बीरन अपने घर की तरफ बढ़ा ही था कि

जमींदार का सिपाही दूसरी गली से आया, और बुधुआ को पकड़कर डेरे की तरफ घसीटा, "चल, मालिक बुलाते हैं।" करुण स्वर से बुधुआ ने बीरन को पुकारा, पर बीरन ने सुनकर भी न सुना, दरवाजा खोलकर भीतर चला गया, और लोग भी लम्बे पड़े।

"वहाँ चल, उसको क्या पुकारता है ? वहाँ कुमेटी का हाल पूछ, और देख आटा-दाल का भाव।" बुधुआ को घसीटता हुआ सिपाही डेरे ले चला।

जमींदार पं. कृपानाथ डेरे पर तप रहे थे। यह एक ही गाँव उनकी जमींदारी है। उनके पिता पहले होटल में रोटकरे थे। फिर लखनऊ में सण्डीले के लड्डू बेचते रहे। फिर कपड़े की फेरी की। बाद में सिंगर की दो मशीनें खरीदकर रूमालों का कारखाना खोला। धीरे-धीरे बड़े आदमी बन गये। इधर जब प्राचीन राज-वंशावतंश नवीन सभ्यता की आग में ऋण के रुपये तृण की तरह फूंकने लगे, और सभ्यता की ज्वाला राजा के बाद राज्य को भी दग्ध करने चली, तब सरकार ने यथाधर्म उपाय का जल सींचा, अर्थात् सम्पत्ति को बचाने का विचार कर कुछ गाँव नीलाम करना निश्चित किया। यह गाँव भी नीलामवाली नामावली में जुड़ा। इसके कई खरीदार खड़े हुए। पर कृपानाथ के पिता इस गाँव के ज्यादा नजदीक थे। अर्जी में इस निकटतम सम्बन्ध का उन्होंने उल्लेख भी किया कि चूंकि दूसरे खरीदारों से वह इस गाँव के ज्यादा नजदीक रहनेवाले हैं, इसलिए उनका हक भी ज्यादा पहुँचता है। बड़ी सिफारिशें करवायीं, हुक्कामों की मुट्ठी भी गर्म की। अन्त में सत्तर हजार का मौजा तीस हजार में उन्हें ही मिला। अब वह नहीं हैं, उनके पुत्र कृपानाथ जमींदार हैं।

बुधुआ को देखते ही कृपानाथ आग हो गये, "क्यों रे, अभी पारसाल के लगान-वाले दो रुपये बाकी हैं, नजर की बात नहीं, इस साल भी अधकरी का वक्त आ गया, तू देने का नाम नहीं लेता ! देता है आज रुपये या मुर्गा बनाया जाय ?"

बुधुआ इतना घबराया कि उसकी जबान बन्द हो गयी। खड़ा सिर्फ काँपने लगा, जो रुपये न रहने का रोएँ-रोएँ से दिया हुआ उत्तर था। बुधुवा की हालत प्राय: अच्छी नहीं रहती। कारण जमींदार साहब स्वयं हैं। दूसरे खेतों से कम निर्ख पर जो खेत उसे देने की उन्होंने कृपा की, वे उपज में ऊसर से बराबर होड़ करनेवाले, प्राय: महाजन को डेढ़ी का नाज भी नहीं दे सकते। इसलिए बुधुआ का पेशा काश्तकारी केवल लिखाने के लिए है, करता है वह मजदूरी। इसी से पेट काटकर किसी तरह उसने यहाँ तक लगान चुकाया।

जवाब न पा जमींदार साहब ताव में आ गये। तब तक लक्खू भी पहले की बातचीत से घबराया हुआ, सफाई देकर बचने के विशद उद्देश से, जमींदार के पास आया, और बड़े भक्ति-भाव से प्रणाम कर, हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। "क्या है लक्खू !" चालाक चितवन, पर सस्नेह स्वर से कृपानाथ ने पूछा।

"यही कि मालिक, गाँव बिगड़ रहा है।" हाथ मलते हुए लक्खू ने कहा। पाले की पलित अरहर-जैसे तमाम अंगों से मुरझाया हुआ, झुलसी कलियों-सी आँखों में ओस के अश्रु-कण, बुधुआ ने लक्खू को प्रखर-मुख किरणों में, अनिमेष-क्षण, कृपा-कांक्षित देखा।

बुधुआ से लक्खू और लक्खू से जमींदार की ओर निर्झरी-सी वक्र फिरती हुई कृपा-प्रार्थना स्वाभाविक चाल से चलती रही। जमींदार को सक्रोध, सप्रश्न, साग्रह अपनी तरफ देखते हुए लक्ष्य कर बर्फ हुए लक्खू से हर्फ-हर्फ झूठ समाचार निकलने लगे। कहा, "यह सुराज की खोज में नेता की तरह तत्पर है, सरकार और जमींदार के दो पाटों में रहकर पिसने से नहीं डरता, लोगों को अपनी लीक पर ले चलने को बछवे-जैसे फेरता फिरता है, कहाँ से भगवान् जाने इसके पास खबर आती है। अब रियाया को लगान न देना होगा, दिन-भर इसी काम में तत्पर रहना है।" बुधुआ कमजोर था, और उससे लक्खू का कोई स्वार्थ न था, इसलिए उसने गुनाह बेलज्जत नहीं किया। पासियों के खिलाफ एक आवाज उसने नहीं उठायी। ऐसे प्रोपागेंडा के पेच से सच्चा मतलब निकालते हुए बुधुआ को देर न लगी। अपने दरिद्र भाल पर मन-ही-मन कराघात कर ईश्वर-स्मरण करने लगा। लक्खू कृपा के पुरस्कार के लिए स्वामी के निश्छल सेवक की तरह हाथ जोड़े अचल, अनिमेष दृष्टि से खड़ा रहा।

एक तुच्छ गँवार किसान भी इतना कर सकता है, जमींदार न समझे। उनकी समझ में निस्तरंग जल-तल की तरह उनकी जमींदारी के लोग बराबर वैपक्षिक शक्ति धारण करते हैं, फिर कल-कल स्वर से विरोध-प्रचार करने में सभी जल-मुख मुखर हो सकते हैं, इस बीज-मन्त्र के प्रायः सभी जमींदार प्रत्यक्ष भाष्य, जमीन की स्वल्पाधिक उर्वरा-शक्ति मानते हुए भी खाद के गुण-परिणाम से शक्ति-परिमाण को भी साथ-साथ बराबर कर देते हैं। इसलिए बुधुआ के कार्य-कलाप पर सन्देह की छाँह को पेड़ भी मिला। अपने अहाते में, अपने मातहत आदमियों के बीच, अपनी महत्ता के आप ही प्रमाण, हाथ में डण्डा लेकर जमींदार कृपानाथ पशुवत् बुधुआ की बुद्धि को प्रहार से पथ पर लाने लगे। क्षीण, दुर्बल, मनुष्याकार, वह चर्मास्थि-शेष प्रत्यक्ष दारिद्र्य कृपा-प्रार्थना की करुण दृष्टि उन्मीलित कर रह गया। प्रहार से पीठ फट गयी, मुख से फेन बह चला, वहीं पृथ्वी की गोद में वह बेहोश हो लुढ़क गया।

आठ

अजित के इंगित पर जीवन का पूर्व-निश्चित मार्ग स्थित कर उसी रोज शाम की गाड़ी से विजय अजित के साथ उस गाँव पहुँचा। अजित को गाँववालों से विजय का परिचय करा देना था। गाँव के बाहर एक मन्दिर और उसी से लगी हुई अतिथिशाला है। सामने चारो ओर से बँधा हुआ पक्का तालाब, बगल में कुआँ, फुलवाड़ी। कोई रहता नहीं। सुबह-शाम स्त्री-पुरुषों की भीड़ स्नान, पूजन और कसरत के लिए होती है। यहीं दोनो आकर कुछ देर के लिए विश्राम करने लगे।

बुधुआ के मार खाने के बाद लोग आपस में मिलते हुए रास्तों, खेतों और घरों में वही चर्चा करते रहे। इस साल भी जुवार की अच्छी उम्मीद नहीं। गत दो वर्ष रवी अच्छी नहीं हुई। अधिकांश किसान महाजनों के कर्जदार हो चुके हैं। इस साल भी कर्ज से लगान चुकाया था। अभी तक उनका पूरा व्याज नहीं वसूल हुआ। अब कर्ज मिलने की कोई आशा नहीं, न लगान चुकाने की गुंजाइश है। महाजन दावा करने की धमकियाँ दे रहे हैं। इधर जमींदार का जूता भी चलने लगा। छिप-छिपकर लोग पासियों की सलाह लेने लगे, और उनके वीर-रस के व्याख्यान से पूरे प्रभावित हो, किसी का जरा-सा इशारा मिलने पर, विद्रोह के लिए—यानी विना दाम के, लगान न मानने के लिए-–तैयार हो गये। जमींदार के चले जाने पर पासियों के पश्चात् सब लोग बुधुआ के घर गये। जमींदार ने उसे उठवाकर भेज दिया था। उसकी फटी पीठ और हाथों के स्याह दागों पर, जो डण्डे पड़ने से पड़े थे, गर्म हल्दी बँधवायी, और आपस में मिल जाने के सलाह-मशविरे करने लगे।

इसी समय विजय को लेकर अजित गाँव में पैठा। निकास के पास ही बुधुआ का मकान था। बाहर आदमियों को देखकर अजित सीधे, दूसरी राह छोड़कर, गया। द्वार पर लोगों के रहने के कारण अण्डी के तेल का दिया रक्खा था। छप्पर के नीचे कई मस्तक एक दूसरे के इतने निकट थे कि पुलिस को तत्काल जुआ खेलने का शक होता। अजित ने अपना मुख-बन्द मन-ही-मन तैयार कर, बढ़कर खुलती आवाज से पूछा, "क्यों, सब लोग अच्छी तरह तो हो ! सभा के बाद फिर कोई खास बात तो नहीं हुई ? हमें पहचानते हो न ? सभा में हम आये थे।"

इतने परिष्कृत परिचय से कई पहचानवाले निकले। ऐसी असम्भाव्य घटना हुई कि लोगों को दुःख की रात ही में सुखकर प्रभात हुआ, हृदय के कमल खुल गये। 'नेताजी आ गये' हर्ष के उच्च स्वर से सबने संवेदना की। 'नेताजी आ गये' यह खबर बीरन खुद गाँव-भर को सुनाने के लिए उठा, और 'जब तक वह गाँव-भर को वहीं बुला लाता है, तब तक वह कृपाकर बैठें', यह प्रार्थना कर, दौड़ता हुआ अपने घर से कम्बल उठा लाया, और छप्पर के नीचे बिछा दिया। विजय और अजित बैठ गये। प्रदीप का प्रकाश हो रहा था।

हर्ष में कर्तव्य का ज्ञान नहीं होता। लोग अब तक अपना धर्म, जो सुराज दिलानेवाले नेता के प्रति है, भूले हुए थे—जैसे वे अपना धर्म, अपने ही व्यक्तित्व पर निर्भर स्वराज्य के एक ही उद्देश से बहु-फल-प्रसू महान् कर्म भूले हुए सुख की प्रतीक्षा में पर-मुखापेक्षी हो रहे हैं, विजय और अजित अपने स्वाभाविक परिच्छद में न थे। स्वेच्छा से नहीं, लोगों पर प्रभाव डालकर पक्ष-समर्थन के लिए भी नहीं, केवल कर्म के प्रसार द्वारा सहानुभूति और सत्य के विस्तार के लिए उन्होंने गेरुए वस्त्र धारण किये थे। उन दिनों कानपुर में लाल-इमली-ऊलेन-मिल्स काटन-मिल्स-जैसे कारखानों में देशी वस्त्रों का वयन विदेशी मूल-सूत्रों के चयन से होता था, जिसका विस्तार देहात तक कोरियों और जुलाहों की गजी और गाढ़े में भी हो चुका था, शान्तिपुर, ढाका, बंगलक्षी, अहमदाबाद, सब जगह विदेशी सूत की ही आबादी थी। अतः इनके वसन के रंग तक में स्वदेशीपन न था। मिल के कपड़े

गेरुए की मिसाल नारंगी रंग से रँगे थे। पर इनके भीतर जो रंग था, वह आज 1933 ई. में भी मुश्किल से मिलता है। नेताओं को प्रणाम करने के उद्देश से गाँव के लोग उठे, और भूमिष्ठ-मस्तक, चरणोपान्त प्रणाम कर-कर श्रद्धा का भार इन दो दिव्याधारों पर रखने लगे। बीरन भी गाँव के आदमियों को, जिनमें अधिकांश किसान थे, लेकर आया। प्रणाम कर बीरन बुधुआ का हाल बयान करने लगा। कवि न होने पर भी प्रहार के वर्णन में उसने पूरा कवित्व प्रदर्शित किया —रूपक से रूप बाँधकर अत्युक्ति में समाप्त किया। आवेश में उसे यह न सूझा कि इतनी मार का केवल जिह्वाग्र द्वारा वर्णन होता है या कोई मनुष्य इतनी मार सहन भी कर सकता है।

गाँव में शूद्रों की ही संख्या है। प्रायः सभी किसान कुछ ब्राह्मण हैं, जो अत्यन्त दरिद्र, बकरियों का कारोबार करते हैं, अर्थात् बकरियाँ पालकर बच्चे बकर-कसाइयों को बेचते हैं। दो-तीन घर ऐसे भी हैं, जो काश्तकारी करते हैं। ब्राह्मण होने के कारण गाँव के लोगों में उनकी पूजा है, पर तभी तक, जब तक वे गो-ब्राह्मण हैं। यह मनोभाव वे लोग समझते थे, इसलिए अपनी पूजा प्रचलित रखने के विचार से बराबर गाँव के अधिकांश लोगों के साथ रहते थे। इधर पासियों का प्राधान्य होने पर उन्हीं की प्रभुता मानकर रहते रहे। बुलाने पर सोलहो आने गाँव आया। बचाव की सबकी इच्छा थी, और एकाएक वैसी व्याख्यावाले सुराज के प्राप्त होने पर भी महामूर्ख ही फल-भोग से विमुख होगा। सब लोगों ने समस्वर से बीरन की वक्तृता का समर्थन किया।

बात बहुत अंशों में ठीक भी थी। विजय ने उस किसान को देखने की इच्छा प्रकट की। गाँववाले सावधानी से उसे भीतर ले गये। बुधुआ को देखकर बीरन की अत्युक्ति विजय और अजित को छोटी जान पड़ी। मार के बाद घाव भीग चुके थे। हाथ-पैर फूलकर स्वाभाविक आकारों को अत्यन्त अस्वाभाविक कर रहे थे। बाकी दो रुपये लगान के लिए उसकी यह दुर्दशा हुई है—जानकर इन लोगों की दशा के सुधार के लिए विजय ने जान तक देने का निश्चय कर लिया।

सब लोग बाहर आये। जमींदार के उपद्रवों से बचने के लिए गाँव के लोगों को किस प्रकार संगठित होना चाहिए। एक अलग कोष सर्व-साधारण की भलाई के लिए एकत्र कर रखने पर मौके पर काम देता है, नहीं तो उपाय-शून्य गरीब रियाया जमींदार का मुकाबला नहीं कर सकती, फूटकर एक-एक आदमी जमींदार से कमजोर होने के कारण लड़ नहीं सकते, इसलिए उनका संगठन जरूरी है; जो भीख भगवान् के नाम पर भिक्षुकों को दी जाती है, प्रतिदिन यदि उतना अन्न निकालकर एक हण्डी में रख लिया जाय, और महीने के अन्त में गाँव-भर का अन्न एकत्र कर बेचा जाय, तो उसी अर्थ से एक शिक्षक रखकर वे अपने बालकों को प्रारम्भिक शिक्षा दे सकते हैं, जो तमाम दिन व्यर्थ के खेल-कूद और लड़ाई-झगड़ों में पार करते रहते हैं; जब तक रियाया अपने अर्थ को पूरी मात्रा में नहीं समझती, तब तक दूसरे समझदार का जुआ उसके कन्धे पर रक्खा रहेगा; अज्ञान के अँधेरे गढ़े से बाहर उजाले में खिले हुए फूलों से दूसरे देशों के किसानों की दशा और सुधार का ज्ञान प्राप्त करना यहाँ के किसानों के लिए बहुत जरूरी है। यहाँ लोग

यह भी नहीं जानते कि किस तरह दस मन की जगह पन्द्रह मन अनाज पैदा किया जा सकता है; क्यों यहाँ के लोग इतने दुखी और सदा सताये हुए रहते हैं आदि-आदि। किसानों की सुविधा, सुयोग और उन्नति के मर्म से भरी अनेक प्रकार की बातें विजय ने सुनायीं।

जो-जो चित्र वह खींच रहा था, सदियों के अन्धकार से मूँदे सबके हृदय का प्रफुल्ल पंकज प्रकाश पा जैसे एक-एक दल खोलता जा रहा हो, ऐसा आनन्द लोगों को मिला। अपने भविष्य की इस सुहावनी कल्पना में बीरन और उसके भाइयों को शराब के नशे से ज्यादा रंगीन, एक न-जाने हुए न-जाने कैसा स्वर्ग सुखकर छवियों में भुला रखनेवाला मालूम हुआ। हृदय के सागर ने पूर्णेन्दु को प्राप्त करने को लालसा के सौ-सौ हाथ फैला दिये। अब तक एक दूसरे के प्रति द्वेष का विष भर रखनेवाले जो सर्प थे, सुखकर स्वर सुनकर, काटना भूल, मन्त्र-मुग्ध रह गये।

अजित ने याद दिलाकर उस भाषण के मुख्य कार्य पर कहा, "कल से कुछ चन्दा एकत्र करो, और यह नेताजी लड़कों के पढ़ाने का भार लेंगे। सिर्फ इनके भोजन का सब लोगों को प्रबन्ध करना होगा।"

"इससे अच्छी ऐसे विद्वान् नेता के रहते गाँव की रक्षा की और कौन-सी बात होगी," लोगों ने प्रतिध्वनि की, "नेताजी के रहने पर जमींदार न सतायेगा, रकम सिवा जो लगान की दूनी चाल बढ़ रही है, रुक जायगी, लड़के पढ़-लिख जायँगे, गाँववालों को जैसे विधाता ने इच्छित वर दिया।"

पर बीरन को इतने ही से विश्वास न हुआ कि गाँववाले सच्चाई से ठीक राह पर चले जायँगे, जमींदार के बहकावे में न आयँगे। कई मर्तबे गाँववालों ने धोका दिया है। मुमकिन है, अब के भी दें, इसलिए उसने कहा, "भई, दूध का जला मट्ठा फूंककर पीता है। अब के सब लोग महादेव बाबा के थान पर चलकर कसम करो कि कोई एका छोड़कर जमींदार की तरफ न जायगा।" जो लोग गाँव की फूट से कई बार मार खा चुके थे, और पीछे अपने घर-द्वार, रुपये-पैसे, बाल-बच्चों की रक्षा के लिए, मनुष्यता से हाथ धो, महीनों तक जमींदार के पीछे-पीछे फिरते रहे, वे बीरन की इस बात से सहमत हो गये। पासी सब बीरन के साथ थे, इसलिए तमाम गाँव साथ हो गया। महादेवजी के मन्दिर में सब लोगों ने कसम खायी, "जो गाँव से फूटकर अलग हो, वह दोगला है।"

एक ब्राह्मण के यहाँ विजय और अजित के भोजन का प्रबन्ध हुआ। कच्ची बन रही थी। गृहिणी ने पति से पूछा, "ये नेता कौन जात के होते हैं?"

"कोई जात है इनके? रँगे स्यार हैं, पेट का धन्धा एक कर रक्खा है।" गम्भीर उत्तर मिला।

नौ

तीन-चार दिन तक अजित बुधुआ की सेवा तथा अपने केन्द्र के निश्चय के लिए विजय के सा' ही रहा। शोभा के सम्बन्ध में भी उसने बातचीत की, और समझा कि उसके लिए विजय के हृदय में स्थान है, यदि वास्तव में उड़ी हुई खबर झूठ है, पर ज्यादा झुकाव देश-सेवा की ही तरफ उसका है। शोभा को प्राप्त कर गार्हस्थ्य सुख की लालसा उसे नहीं, केवल शोभा को सम्मान की दृष्टि देखने से वह विरत न होगा। और विजय की शिक्षा, अध्ययन और चरित्र नवीन यौवन में ही जीवन की जितनी गहराई तक पहुँच चुके थे, अपने संस्कारों से जिस रूप में उसे बदल चुके थे, वहाँ से उसका प्रवर्तन जीवन का ही नष्ट होना था, किसी के इच्छित एक दूसरे रूप में बदलना नहीं। अजित भी, स्वभाव के दूसरे परमाणुओं से गठित होने पर भी, सहानुभूति में विजय की ही तरह मनुष्य था। इसलिए मित्र से बातचीत कर एक बार और केवल समझ लिया और अपने मुख्य उद्देश के साथ गौण का स्वरूप बतला, विजय से विदा होकर उसकी ससुराल की तरफ गया। वह, और कोई भी समझदार किसानों की वैसी हालत में काम कर किसी भी जगह जड़ जमा सकता है, जिसे किसी प्रकार के भी दु:ख को वीर्य के पुष्ट, सुदृढ़ भुजों में निर्भय बाँधने का हार्दिक उत्साह हो, सुबोध अजित यह खूब जानता था।

वर्षा के जल के दबाव से तट और तराइयों को भी छापकर बहनेवाली क्षुद्र नदियों की तरह सुराज की प्राप्ति से लगान न देने का कल्पित सुख जनता के दुख-हृदय के दोनों कूल प्लावित कर बहने लगा। पड़ोस के प्राय: सभी किसान इस प्लावन के सुख-प्रवाह में बह चले। बुधुआ के दु:ख में सेवा करनेवाले किसानों के बालकों को केवल भोजन प्राप्त कर पढ़ानेवाले विद्वान् स्वामीजी शीघ्रातिशीघ्र पड़ोस के गाँव में प्रसिद्ध हो गये। उनके पहुँचने के दूसरे दिन प्रभात से उनके वस्त्रों का रंग और ज्योतिर्मय नेत्र देख जनता नेता कहना छोड़कर स्वामीजी शब्द से अभिहित करने लगी। देखते-देखते अनेक गाँवों के साधारण किसान स्वामीजी के अनन्य भक्त हो गये। वे लोग अपने यहाँ भी वैसी ही योजना करने को उत्सुक हुए। विजय ने पाँच-छ: गाँव में जहाँ से मदरसे दूर थे, और किसान-बालकों को पढ़ने की असुविधा थी, उसी तरीके पर साधारण शिक्षा देनेवाला, उसी-उसी गाँव का मामूली पढ़ा-लिखा, कलम की नौकरी करने में अयोग्य, गृहों में हताश रहने-वाला एक-एक युवक नियुक्त कर दिया।

बुधुआ बहुत कुछ अच्छा हो गया, पर अभी काम नहीं कर सकता। गाँव में टहल लेता है। पीठ के बरारों पर पड़ी पपड़ियों से मार के निशान साफ जाहिर हैं। दोनों हाथों में बाजू बाँधनेवाली स्त्रियों के स्याह दाग-जैसे मार के निशान कई जगह स्पष्ट हैं।

बुधुआ ने सुना, आज गाँव में डिप्टी साहब का दौरा है। दौड़ा हुआ बगीचे-वाली शाला में स्वामीजी के पास गया। लड़के पढ़ रहे थे। हाँफते हुए विजय को डिप्टी साहब के आने की खबर दी। उसकी इच्छा जानकर विजय उसे डिप्टी साहब

के पास ले चलने को राजी हो गया। सुना, डिप्टी साहब एक पहर दिन रहने से शाम तक इजलास करते हैं, भगवानदीनवाले बाग में खीमे गड़ चुके हैं। दफ्तर, उनके मातहत अफसर, सिपाही और नौकर-चाकर आ गये हैं। डिप्टी साहब भी शिकार कर जल्द आनेवाले हैं, नाम है सरदारसिंह। गाँव के जमींदार और पटवारी सुबह से ही गाँव आये हुए किराये के टट्टू-जैसे दौड़-धूप कर रहे हैं।

देखते-देखते चरण कुम्हार, पलटू अहीर, छक्कन और घसीटा चमार, लाला गंगादीन, जगतू वगैरा मिश्र जातियों के कई आदमी स्वामीजी के पास उपस्थित हुए, और हाथ जोड़कर साक्षात् ईश्वर के सामने जैसे, अमित-विक्रम, इंगित-मात्र से शासन-चक्र चूर्ण कर सुखकर सुराज दिलानेवाले ऐन्द्रजालिक नेता स्वामीजी के सामने परम-भक्ति-भाव से नत-मस्तक खड़े हो गये। किसी भी मन्द संवाद से स्वामीजी को इनकी मानसिक दशा से प्राप्त दुःख के इतना दुःख न होता। डिप्टी साहब के शुभागमन में इन्हें कितने अशुभ की शंका है, इनकी भक्ति की छाप में मुद्रित हृदय के वाक्य-कलाप स्वामीजी ने पढ़ लिये। विशेष ज्ञान की प्राप्ति के लिए उन्होंने चरण से प्रश्न-पथ पर प्रथम चरण रक्खा, "क्या बात है चरण ?"

"स्वामीजी, हर साल साहब आते हैं, और आबदस्त तक के लिए बासन मुझे भेजने पड़ते हैं। नौकर-चाकर जितने हैं, चपरासी तक, लोटे मलने की मेहनत बचाने को, मुफ्त के कमोरे ले-लेकर जंगल जाते हैं। गगरी, पर्छे, नाँद, कमोरे, बड़े से छोटे तक, एक बासन घर में नहीं रह जाता। महाराज, पाँच-छ रुपये का धक्का सहता हूँ।" चरण भक्ति-पूर्वक व्यथा कहकर साश्रु अनिमिष रह गया है।

डिप्टी साहब को नाँद भी देने पड़ते हैं, यह सोचकर विजय को हँसी आ गयी। सकौतुक पूछा, "तो नाँद क्यों देते हो चरण ? डिप्टी साहब को सानी का भी शौक है ?"

"महाराज, घोड़े जो साथ रहते हैं।" विशुद्ध हृदय से चरण ने कहा।

"तुम्हें दाम नहीं दिया जाता ?"

"दाम मिलता होगा, तो जिमींदार की जेब में रह जाता होगा।" चरण ने तअज्जुब से सोचते हुए कहा।

"अच्छा, अब के दाम लेकर बासन देना या कह देना, नहीं हैं।"

फिर पलटू अहीर बढ़ा, और चिर काल के प्रहार से जैसी प्रकृति बन गयी थी, उसी अभ्यस्त न्यस्त मुद्रा से, टूटी आवाज, बोला, "महाराजजी, डिप्टी साहब को बीस सेर दूध बिना दाम देना मेरा काम है, और बीस सेर में भी उन्हें क्या होता है, पर मेरे पास इससे ज्यादा का ठिकाना नहीं, बाकी गाँव से वसूल होता है।"

छक्कन और घसीटे ने शिकायत की, "पहर-भर रात रही, तब से बीघे-भर की घास छीलकर छोलदारियों की जगह बनायी, अब मालिक कहते हैं, लकड़ी चीर दे। दाम कुछ नहीं मिलता।" औरों ने भी बेगार की शिकायत की।

क्रोध से विजय का चेहरा लाल पड़ गया। पर उसने नहीं सोचा कि यह सब गाँवों में पैत्रिक अधिकारों की तरह अशक्तों पर शक्तिवालों के सनातन अधिकार में दाखिल है। सदर्प उसने कहा, "क्यों तुम लोग ऐसा करते हो ? आपस के झगड़े में एक भाई की खोपड़ी में लट्ठ मारकर फाँसी में लटक जाते हो, और इस अन्याय

के सुधार के लिए जान पर नहीं खेल सकते ? साहब तनख्वाह और दौरे के लिए राह-खर्च नहीं पाते ? फिर तुम्हें देने से क्यों इनकार करते हैं ? और अगर देते भी हों, तो अब के पता चल जायगा कि वह जमींदार के पेट में जाता है या दफ्तर में ही हज्म कर लिया जाता है।"

लोगों को जैसे आत्मा के भीतर बल प्राप्त हुआ हो, उनका मानसिक शरीर शक्ति के प्रवाह से धुएँ से गुब्बारे की तरह फूलकर, हर सिकुड़न को भरकर, जैसे यौवन में भी न प्राप्त किया हुआ पूर्ण हो गया। एक ऐसी हिम्मत आयी, जो आज तक नहीं आयी थी, जैसे 'मुश्किल-आसान' के सब मन में प्रत्यक्ष प्रमाण बन रहे हों।

"जब तक डरोगे," विजय ने कहा, "डर पीछा नहीं छोड़ सकता, यही मुद्दतों से भरी हुई तुम्हारे अन्दर स्वभाव की कमजोरी है। अगर पढ़-लिख नहीं सके, और पढ़-लिखकर भी लोग कभी ज्यादा गिर जाते हैं, जब बुद्धि को बुरे स्वार्थ की तरफ फेरते हैं, खैर, तो भी तुम अपने स्वभाव को ऊंचा उठाने की कोशिश कर सकते हो। जब देखो, किसी काम के लिए दिल नहीं तैयार, तब जरूर-जरूर उसे करने से इनकार कर दो। अरे, मौत तो चारपाई पर होगी, फिर खुद क्यों नहीं उसका सामना करना सीखते ? अच्छा, जाओ, लड़कों की पढ़ाई रुक रही है।"

सब लोग चल दिये। चलते समय प्रणाम करना भूल गये थे, इतनी शक्ति भर गयी थी भीतर, संस्कारों से बना-बनाया हुआ वह शरीर ही उन्हें भूल गया था। उस वक्त वह शक्ति-शरीरवाले बन रहे थे। बड़े जोश से लौटे हुए घर जा रहे थे कि लाख माँगने पर भी विना दाम बासन न दूंगा, बेगार हरगिज नहीं कर सकता —मैं नौकर हूँ ?

सौ कदम जाने पर छक्कन को अपने स्वरूप का ज्ञान हुआ--एक दफा पुलिस की बेगार का बुलावा आया था, वह घर से नहीं निकला, औरत ने कहा, वह नहीं हैं, तब पुलिस के सिपाही घर में घुसकर मारते-मारते उसे बाहर ले आये थे, और बेगार करायी थी, बोझ लेकर उसे थाने तक जाना पड़ा था। अगर उसे बेगार न करनी होती, तो चमार के बदले वह जमींदार होकर न पैदा होता ? जब वह ब्राह्मण-ठाकुर नहीं, तब ईश्वर ने ही उसे बेगार खटकनेवाला चमार बनाकर भेजा है। करनी का फल तो सभी को भोगना पड़ता है।

जिस तरीके से विचार करने का उसे अभ्यास, बाप-दादों से मिला हुआ संस्कार था, उसकी उधेड़-बुन में पहले ही की तरह जाल बुनकर अपने को उसने फाँस लिया, और बड़ी देर से गायब रहने पर डरा। जमींदार उसे खोजते होंगे। यह कोई मामूली थाने के सिपाही नहीं, डिप्टी साहब हैं, जो इजलास में बैठकर फैसला करते हैं। हाँ को ना और ना को हाँ करने का जिन्हें पूरा अख्तियार है। उसे सज़ा कर दें, तो बाल-बच्चे भूखों मर जायँ।

सोचकर, डरकर उसने कहा, "चरण काका, तो फिर क्या कहते हो ?"

जो दशा राह चलते हुए छक्कन की थी, वही चरण काका तथा और सबकी थी। चरण ने कहा, "स्वामीजी ने तो जबान-भर हिला दी, यहाँ तो बासन न गये, तो पीठ का चर्सा न रह जायगा।"

"तो स्वामीजी किसी के साथ बाँस न बजावेंगे। लखुअरा ठीक कहता था,"

मधुआ ने कहा, "जिनके पास तोप और बन्दूक है, वे जबान से नहीं मान सकते।"

"तो तुम दोगे बासन ?" छक्कन ने पूछा।

"बासन देता हूँ, तो स्वामीजी का मान नहीं रहता; नहीं देता, तो मार खाता हूँ। कहो, सजा बोल दें डिप्टी साहब, तब चाक स्वामीजी न चलावेंगे, लड़के मर जायँगे भूखों। इधर ठोकर भी 5-6 रुपये की पड़ती है।" चरण ने द्विविधा करते हुए कहा।

"भाई हम तो जायँगे," मधुआ ने कहा, "एक दिन की मजूरी न सही।"

"भाई, सुनो, पलटू पलट नहीं सकता, पूरब के सूरज चाहे पछाँह में उगें।" पलटू ने कहा।

"साले, अहिर का मूसर, कल से ढोर निकलना मुश्किल हो जायगा, बड़ी वीरता बघारता है, दरवाजे के खूंटे उखड़वा डालेगा जमींदार। है तेरे बिस्वा-भर कहीं जमीन, जहाँ ढोर खड़ा करे ?" चरण ने डाटकर कहा।

"मैं नदी-पार सुसराल जा बसूँगा, वह कहती है, यहाँ ढोर मरे जाते हैं; न चारा, न घास; मेरे मायके में नदी के किनारे छाती-भर चारा होता है, और बिकता भी है सेंत। तू अपनी मिट्टी की सोच। साल-भर बर्तन गढ़ता है जिमीदार की मिट्टी से और एक रोज बासन देते मुंह बिगाड़ता है।" लापरवाही से पलटू ने कहा।

बुधुआ (काँपते हुए)—"लेकिन सब लोग कसम कर चुके हो कि कोई काम स्वामीजी और गाँव की सलाह विना न करोगे। अगर कोई करे, तो उसका हुक्का-पानी और गाँव के लोगों में उठना-बैठना बन्द कर दिया जाय। अब तुम्हीं लोग ऐसा कह रहे हो !"

"अरे, तो बासन लिये बैठा है कोई कि ले जाब ? एक बात-की-बात कह रहा हूँ।"

"वाह रे चरण काका, तुमसे कोई सच-सच पूछे, तो तुम बात-की-बात कहो !"

"एँह ! गाँव चलोगे, तो पकड़ जाओगे, टहलते होंगे जम के दूत, मैं अब इधर से नाले में जाकर छिपता हूँ।" पलटू राह काटकर दूसरी तरफ मुड़ा। यन्त्रवत् और लोग भी साथ हो लिये। सिर्फ बुधुआ रीढ़ टेढ़ी किये, उस पर एक हाथ रक्खे, एक हाथ एक घुटने से टेककर, दूने धैर्य से काँखता हुआ और धीरे-धीरे ढेंकी की चाल गाँव की तरफ चला।

दरवाजे पहुँचा ही था कि जमींदार साहब और कुछ सिपाही मिले।

"क्यों रे," गरजकर जमींदार साहब ने पूछा, "चरना को देखा है ?"

और जोर से काँखकर, देर तक यक्ष्मा की खाँसी खाँसकर बुधुआ ने जवाब दिया कि कल से उसने चरण को नहीं देखा। और जमींदार तथा सिपाहियों को सम्भ्रम-सलाम कर घर का रास्ता लिया। उसकी मार से जमींदार साहब दिल से घबराये हुए थे कि स्वामीजी कहीं उसे लेकर खड़ा न कर दें, इसलिए उसे एक ऐसे काम से रखना चाहा कि तमाम दिन फुरसत न हो, और मेहनत भी न पड़े।

सोचकर उन्होंने कहा, "बुद्धू, एक काम तो करो।"

डरकर बुधुआ रुक गया। त्रस्त आँखों से देखने लगा।

"तुम जरा हमारे गाँव तक चले जाओ, काम और कुछ नहीं, यह लो, बीमार हो, इसलिए चार आने तुम्हें मजदूरी देते हैं। लल्ला बीमार है, यह चिट्ठी लल्ला के मामा को दे देना, इसमें दवा देने का हाल लिखा है, वह पढ़ लेंगे। बस, इतना ही काम है।"

बुधुआ घबराया। मार से बचने के लिए इनकार न किया। चिट्ठी माँगी। जमींदार ने जेब से चुटका निकालकर लिखा, और कहा, "लौटकर डेरे में पैसे ले लेना।"

"अभी चले जाओ बुद्धू।" स्नेह-शब्दों में कहकर जमींदार दूसरी तरफ आदमियों की तलाश में गये। सिपाहियों को बुधुआ ने इतना कहते सुना, "कहिए साहब, न मिले, तो जायँ, अब डिप्टी साहब आ गये होंगे।"

बुधुआ समझ गया। चिट्ठी लेकर वह जमींदार साहब के गाँव के बहाने सीधे स्वामीजी के पास फिर पहुँचा। बुधुआ वगैरा के आने के बाद कुछ लोग और वहाँ नहाने के लिए गये थे, और दूध-घी की चर्चा थी कि मुफ्त की गुनहगारी पड़ती है। स्वामीजी ने सबको देने से मना कर दिया था। लड़के छूटकर लौट रहे थे, आपस में बातचीत कर रहे थे, बुधुआ ने सुना।

स्वामीजी को वह चिट्ठी देते हुए उसने कहा, "मुझे यह चिट्ठी घर पहुँचाने के लिए दी है।" कुछ सन्देह में आ विजय चिट्ठी पढ़ने लगा। लिखा था—इसे शाम तक खिला-पिलाकर बहला रखना, छोड़ना हरगिज नहीं।

पढ़कर, मुस्किराकर विजय ने चिट्ठी रख ली, और कहा, "यहीं रहो बुद्धू, तुम्हें जाना न होगा, देखो, भोजन पक जाय, तो यहीं खा लो, फिर सीधे डिप्टी साहब के पड़ाव को चलें। चरण वगैरा को जानते हो, कहाँ हैं?"

"हाँ, यहीं नाले में बैठे होंगे।"

"नाले में?"

"हाँ।"

"नाले में क्यों?"

"घर जायें, तो मारे न जायँगे; डटकर छिपे हैं।"

"तो जिन्दगी-भर छिपे रहेंगे? जब निकलेंगे, तब न पिटेंगे? तुम जानते हो, तो उन्हें बुला लाओ।"

बुधुआ नाले की तरफ चला। विजय स्नान कर भोजन पकाने लगा। चौका-बर्तन गाँव का कहार कर जाता है।

नाले में बैठे हुए लोग उचक-उचककर देखते थे कि कोई आता तो नहीं। बुधुआ को देखकर चरण उठकर खड़ा हो गया। आँखों में शंका भरी हुई थी। सोच रहा था, घर में तो नहीं घुस गये।

पास जा बुधुआ ने कहा, "स्वामीजी सबको बुलाते हैं। जमींदार ने हमें अपने घर भेजा था, स्वामीजी ने रोक लिया। अब देख, आज क्या गुल खिलता है।"

एक-एक करके छक्कन, पलटू, मधुआ वगैरा नाले से निकले, और बुधुआ के साथ स्वामीजी के पास चले।

बड़ी देर तक जमींदार के पीछे-पीछे घूमकर, हैरान होकर दस बजे के बाद

सिपाही लोग जमींदार को कलेक्टर साहब के सामने याद करने का न्यौता देकर चले गये। गाँव में ऐसा स्वागत था कि कहीं भी दरवाजा खुला नहीं मिला।

दस

दोबारा हृदय को बल मिलने पर सब लोग गाँव गये, और भोजन-पान समाप्त कर दोपहर को स्वामीजी के पास लौट आये। गाँव में कोई उपद्रव नहीं हुआ। जमींदार साहब से नहीं मिले।

दोपहर कुछ ढलने पर सबको लेकर विजय डिप्टी साहब के पड़ाव को चला। कुछ ही दूर पर उनका खीमा था। नजदीक जाकर देखा, हाल के पकड़े हुए चोर की तरह जमींदार साहब सिपाहियों के बीच में खड़े किये हुए थे। अभी तक डिप्टी साहब ने उनसे कोई कैफियत नहीं तलब की। वह दस बजे खीमे के भीतर गये हुए अभी तक बाहर नहीं निकले। चपरासी इधर-उधर बातचीत कर रहे थे, "भूखों मार डाला साले ने, जी चाहता है, गोली मार दें।"

कोई-कोई आवाज विजय के कानों तक गूंज जाती है। उसने निश्चय किया कि आज आप लोगों को फलाहर-रूप सूक्ष्म भोजन के अतिरिक्त माल-मलाई की शायद विशेष सुविधा नहीं प्राप्त हुई, गर्म तवों पर घी न पड़कर एक-एक बूंद पानी पड़ रहा है, जिससे यह छनकार आ रही है, और चतुर्दिक् धूमायमान है। पटवारी एक बार जमींदार को सिर उठाकर देख लेता है, फिर अपने कागजात में पहले से अधिक दत्तचित्त हो जाता है। गाँव के लोगों के जाने पर उसे जीवन में पहलेपहल अद्भूत प्रकार का भय हुआ। जमींदार साहब तो बुधुआ को देखकर अधमरे हो गये, और लोग जितने थे, उन सबसे भी आज के अभियोग का तअल्लुक है, भविष्य पर विचार कर जमींदार साहब का थूक सूख गया। जितनी गुंजायश झूठ कहने की थी, जाती रही।

एक महुए के पेड़ के नीचे विजय लोगों को उनका खास-खास पाठ समझाने लगा, और पूरा भरोसा देकर कहा कि वे भय न करें। जो डरता है, उसकी बात बिगड़े बगैर नहीं रहती। जिसके दिल में जो कुछ है, साफ-साफ डिप्टी साहब से कहे। इसके लिए पहले बुधुआ को ही उसने ठीक किया, और समझा दिया कि सब लोग साथ रहेंगे, साहब के पूछने पर गवाही जरूर दें कि उनके सामने वह पीटा गया। बुधुआ से कह दिया कि मुकदमा चलाने के लिए कहें, तो कह देना—"साहब, मेरे पास मुकदमा चलाने को रुपया होता, तो लगान ही वाले को न चुका देता। इतनी मार क्यों खाता?"

और-और लोगों को भी उनकी मार्मिक बातें समझाकर निडर कहने के लिए भेज दिया कि साहब के निकलते ही सब लोग बढ़कर लम्बी दण्डवत् करना और

बुधुआ को अपनी रामकहानी कह लेने देना। विजय उसी पेड़ के नीचे बैठा रहा।

दौरे में हाकिमों को प्राय: मौका देखना पड़ता है। यहाँ भी एक ऐसा ही मामला था। सरहद के दूसरे गाँव के जमींदार ने एक बाग बेदखल करने की अर्जी दी थी। उनके हिसाब से बाग बंजर था और लावारिस। बाग के स्वामी स्वर्ग सिधार गये थे। तीन और हकदार खड़े हुए। दो दूर के भैयाचार, जिन्होंने बाग के अधिकारी के साथ मरने से पहले तक तअल्लुक नहीं रक्खा, मरने के बाद दोनों ने सिर घुटाकर क्रिया-कर्म कर डाला, और कई महीने हो चुकने पर भी लोखर और लोटा लेकर अदालत पेश होते थे; तीसरा हकदार उस मृत मनुष्य का नाती, लड़की का दूध-पीता लड़का था। पर वह लड़की उसी बाग के अधिकारी रामनाथ सुकुल की है, अदालत में इसका पूर्ण प्रमाणाभाव था। मृत रामनाथ के भैयाचार, जमींदार और पटवारी हाकिम के पूछने पर इनकार कर गये थे कि वह रामनाथ की लड़की थी। रामनाथ के कोई लड़की थी, यह भी किसी को मालूम न था। क्योंकि रामनाथ के जीवन-काल तक कभी किसी लड़की को किसी ने नहीं देखा। भँवर में चक्कर खा एक तरफ को झुकी हुई अब्र डूबी, तब डूबी नाव के सवारों की तरह रामनाथ की युवती कन्या और युवक दामाद की दशा थी। मछुए बृहत् जाल में जैसे गाँव की सभी मछलियों को जमींदार ने अपनी तरफ अपनी पकड़ में, अपने ही दया-वारि के वश कर रक्खा था। दूसरे जमींदार अपने किसी दूसरे जमींदार भाई के ऐसे मामलात में दस्तंदाजी नहीं करते, न अपनी रियया द्वारा होने देते हैं। अभिप्राय यह कि कन्या और दामाद सब तरफ निराश हो चुके थे। महुए के नीचे कुछ आदमियों को देखकर पति को लेकर रामनाथ की लड़की उधर ही चली। गोद में उसका बच्चा मुरझा रहा था। मा के कपोलों पर आँसुओं के कई सूखे तार लुप्तजल भरे हुए नदी-पथों का प्राचीन प्रवाह सूचित कर रहे थे। बड़ी चेष्टा करने पर भी, दुधमुँहे बच्चे को उसकी जीविका से जीवन दे, गाँव की कन्या और गो पर कृपा करने की बार-बार प्रार्थना करने पर भी, जल में रहकर मगर से वैर करनेवाला कोई भी न निकला। रामनाथ की कन्या गाँव या बिलकुल पड़ोस में परिचय का प्रमाण न पा हताश हो चुकी थी। पर मनुष्य की आशा बड़ी अद्भुत है। महुए के नीचे कुछ आदमियों को देखकर पुनश्च कुछ आश्वस्त हो बढ़ी।

"भैया!" विजय को लक्ष्य कर पूछा, "तुम इसी गाँव में रहते हो?"

"हाँ, क्यों?"

युवती अपना हाल कह गयी। विजय ने अपने आदमियों से पूछा।

जगतू ने कहा, "यह सरजू बुआ हैं, रामनाथ दादा की बिटिया, वह उनकी बाग है, आम बीनने आती थीं, जब ब्याह नहीं हुआ था, हम लोग आम छीनकर खाते थे, और रुलाते थे। क्यों बुआ, है याद?"

बुआ के आँसुओं से सूखे, चर्राये कपोलों पर दुःख के समय भी, बाल्य की एक सुखकर स्मृति से, लाज-विजड़ित मन्द सहृदय हँसी चक्राकृति फैल गयी।

विजय ने कहा, "आप निश्चिन्त रहें, जरूरत पड़ने पर आप जगतू तथा और दो आदमियों को शिनाख्त के लिए ले जायँ। यह भी कह दें कि गाँव जमींदार का है, गाँव से गवाह नहीं मिल सके, लोग जमींदार से दबते हैं। हाकिम को विश्वास

हो जायगा। जरूरत पर जबानी कहला दें। अगर आज फैसला न हुआ, तो ये दूसरी जगह भी नामजद होकर गवाही दे आवेंगे। पर हाकिम को विश्वास है, जान पड़ता है, इसीलिए भैयाचारों की हिम्मत और भैयाचारी वह देख रहे थे कि लड़की के सम्बन्ध में क्या कहते हैं, अब आपका लड़की होना साबित होते ही उन सबका मुकद्दमा हारेगा, और बाग बेदखल होने लायक हैसियत से गिरा हुआ नहीं, यह तो हाकिम खुद मौका देखकर समझ जायँगे—बाग़ खूब भरा है न ?"

"भरा ? स्वामीजी, पन्द्रह से कम भेड़िए न निकलेंगे, और आम, महुए, जामुन, खीरनी, बेर, इमली, कैथे, पीपल, पकरिया, इनके अलावा हजारों झाड़ और चारो ओर से कटीली झाड़ियों का घेरा, बाग है, पूरा वन ! वह देखिए, बेनई देख पड़ती है।" जगतू ने उँगली उठाकर बाग दिखलाया।

बुधुआ इन बातों से दूर पूरी एकाग्रता से साहब के निकलने की प्रतीक्षा कर रहा था। मन-ही-मन वह कितने बड़े प्रतिशोध के लिए तैयार !—ऐसा मौका उसे कभी नहीं मिला। आज जमींदार साहब से आँखें मिलाते हुए वह बिलकुल नहीं डरता, वह निर्दोष है, फिर भी उसके हृदय ने कितने बार एकान्त में अपने दुर्बल तार झंकृत कर-कर शक्तिमानों से उसे निरस्त रहने की सलाह दी है, यह सब स्मरण, सब दौर्बल्य एकत्र हो, वाष्प के मेघों की तरह पूर्ण प्राबल्य से सूर्य को घेर-कर उसे समझा देना चाहता है कि तपन के विरोध में सिक्त करने की वह कितनी शक्ति रखता है।

डिप्टी साहब को मौका देखने के लिए जाना था। जमींदार साहब ने किस प्रकार स्वागत किया था, इसका प्रमाण भी उन्हें दूसरे दिनों की तुलना में आज का भोजन दे चुका था। जमींदार से वह नाराज थे, इसलिए कि दाम देने पर भी वह सामान नहीं जुटा सका। अवश्य दाम का कहीं नाम तक नहीं लिया गया। दाम की आशा होती, तो माल आशा से कुछ अधिक मिलता। पर कर्मचारी लोग जहाँ आँख दिखाकर धर्म पालन करा लेते हैं, और दाम, खर्च की तालिका पेश कर अपनी जेब में रखते या आपस में बाँट लेते हैं, वहाँ दाम के सम्बन्ध में वे इतने उदार क्यों होने लगे, फिर जब जमींदार स्वयं उनका खर्च चलाते हों। कर्मचारियों की तरह जमींदार भी फायदे में रहते हैं। माल उनके घर से नहीं जाता। वह सिर्फ आठ-दस सेर आटा और डेढ़-दो सेर दाल घर से मँगवा देते हैं। बाकी सब्जी, घी, दूध, मिट्टी के बर्तन और गड़रियों के बकरे तक रियाया से लेकर देते हैं। मुनाफा यह होता है कि कर्मचारियों से उनकी पहचान बढ़ती, अदालत में काम निकलता है। इसी-लिए, डिप्टी साहब के आने पर, सिपाहियों के साथ आजकल के सुशासन के तौर पर कलेक्टर साहब का अतिरंजित प्रचार और प्रजा की श्रद्धा की जगह भय मुद्रित कर टेढ़ी उँगलियों घृत निकालने की कहावत चरितार्थ करते हैं।

अब के ऐसा नहीं हो सका। केवल आटा-दाल और एक रुपये का घी और तीन-चार सेर तरकारी दूसरे गाँव से खरीदवाकर भेज दिया था। डेरे के सिपाहियों का दो सेर दूध था, वह दूध चला गया था। इससे डिप्टी साहब और उनके कर्मचारियों को ही पूरा नहीं पड़ा, सिपाही-चपरासियों की बात क्या ? पर देवता के गण प्रभाव में बड़े होते हैं, ऐसा शास्त्रकारों ने लिखा है। देवता थोड़े उपचार से प्रसन्न

हो सकते हैं, पर उपदेवता विना बलिदान के बात नहीं करते। डिप्टी साहब के धैर्य के लिए चीज न मिलने की कैफियत काफी होती, पर सिपाही और चपरासी कभी कैफियत नहीं देखते। उन्होंने कर्मचारियों से सलाह कर साहब से कह दिया कि जमींदार ने दाम देने पर भी कोई मदद नहीं की, उल्टे कहा, "मैं डिप्टी साहब का नौकर हूँ? चीजें कहाँ मिलती हैं, चपरासियों को पता नहीं था, कचहरी का वक्त हो जाने के कारण वे दूसरे गाँव नहीं जा सके, कमर बाँधकर तैयार हो गये, भूखे खड़े हैं।" डिप्टी साहब को इसके प्रमाण की जरूरत नहीं हुई, क्योंकि ऐसा मुकद्दमा अभी तक उनके पास नहीं आया। जमींदार को बुलवाकर उन्होंने बाहर बैठाल रक्खा। अब निकलकर सरकार क्या होती है, अच्छी तरह याद करा देंगे।

डिप्टी साहब अपने खीमे से निकलकर बीस कदम बाहर आये थे कि सिपाहियों के रोकने पर भी गिड़गिड़ाता हुआ बुधुआ पैरों पड़ने के लिए जमीन पर लम्बा होकर एक हाथ से खुली पीठ के बरारे दिखाकर रोने लगा।

डिप्टी साहब को उसकी दशा पर दया आ गयी। स्नेह-स्वर से उसे अभय देते हुए रुककर रोने का कारण पूछा, बुधुआ और फफक-फफककर सान्त्वना से उच्छ्वसित हो-हो रोने लगा। डिप्टी साहब परीक्षा की दृष्टि से पीठ के बरारे देखते हुए स्वयं बोले, किसी ने मारा है इसे। उस उच्छ्वास से रोते हुए रुक-रुककर बुधुआ ने कहा, "जमींदार कृपानाथ ने दो रुपये बाकी लगान के लिए मारा है।"

अब तक विजय तथा और-और लोग जो अपने-अपने मुकद्दमे में या दर्शक की हैसियत से गये थे, एकत्र हो गये। कुछ सिपाही जमींदार साहब को घेरे हुए वहीं खड़े थे। धीरे-से किसी ने कहा, "हुजूर, जमींदार साहब हैं इसी मिजाज के।"

साहब रुक गये। पटवारी को बुलाया। भय और श्रद्धा के कूबड़ से भारग्रस्त केवल सिर उठाये ऊँट की चाल दौड़ता हुआ पटवारी आया। साहब ने कहा, 'इसके जोत की पैदावार परसाल की क्या है? बताओ।' सलाम कर पटवारी ने कहा कि साहब की आज्ञा न रहने से पैदावारवाली बही वह नहीं ले आया, हुकुम हो, तो कल लाकर पेश करे। बुधुआ से साहब ने कहा, 'तुम जमींदार पर मुकद्दमा चला सकते हो।' जैसा सिखलाया हुआ, बुधुआ ने कहा, "हुजूर, रुपया होता, तो लगान न चुका देता, मार क्यों खाता?"

साहब ने जमींदार को पूछा। बढ़ाकर सिपाहियों ने परिचय करा दिया। कृपानाथ की जबान से निकला, "हुजूर, ये लोग कांग्रेस से मिले हैं, और एक आदमी वह खड़ा है, तमाम गाँव बिगाड़े हुए है। सारी करामात इसी की है।"

साहब ने विजय की तरफ देखा। विजय बढ़ गया। न-जाने क्यों, साहब के मन में विजय के प्रति इज्जत पैदा हुई। पूछा, "आप कांग्रेस में हैं?"

"जी नहीं।"

"आप यहाँ के रहनेवाले हैं?"

"जी नहीं।"

"फिर यहाँ क्यों हैं?"

"किसान-लड़कों को पढ़ाना मेरा लक्ष्य है, मैं और कुछ नहीं करता, जो भीख गाँव से बाहर मुफ्त जाया करती है, उसके दुअन्नी से भी कम में मेरे जैसे तीन शिक्षकों की गुजर हो सकती है, केवल भोजन कर गरीबों को शिक्षा देना मैंने अपना लक्ष्य कर लिया है।"

साहब ने आपाद-मस्तक विजय को देखा।

"आप संन्यासी हैं?" पूछा।

"जी हाँ, यह काम अब तक संन्यासियों के ही हाथ रहा है, जो कम लेकर ज्यादा देते रहे।"

"आप कहाँ तक पढ़े हैं?"

"मैं बम्बई विश्वविद्यालय का ग्रेजुएट हूँ।"

डिप्टी साहब नौजवान थे। हाल ही कॉलेज छोड़ा था। तब तक विद्या और विद्यार्थियों की प्रेम-वर्षा शासन-समुद्र में मिश्रित हो लवणाक्त न हुई थी। प्रेम से पास बुला विजय से गाँव के इस उपद्रव का कारण पूछने लगे। विजय ने जमींदार की चिट्ठी निकाली। बुधुआ के हटाने का मार ही कारण है कि साहब के पास प्रमाण न पहुँचे, सुझाया। काट पर डाट ऐसी बैठ रही थी कि साहब विना विश्वास किये रह नहीं सके। फिर चरण, छक्कन, घसीटा, पलटू आदि को बुलाकर रसद का छिपा रहस्य समझाया। रियाया पर होते हुए ऐसे-ऐसे अत्याचारों का उन्हें बिलकुल ज्ञान न था। जिस विषय में उनके कर्मचारी तक सटे हुए थे, उसका उन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया। प्रसंग न उठाया। चिढ़कर जमींदार के लिए आज्ञा दी, इसे हटा दो। सिपाहियों ने ब्याज-समेत वसूल किया, यानी कुछ दूर तक कान पकड़कर घसीटा, फिर धक्के लगाकर रिस बुझायी। विजय से साहब ने कहा, "आपके ऐसे कार्य के लिए मैं हृदय से आपको बधाई देता हूँ, अगर कांग्रेस से आपका तअल्लुक नहीं।"

फिर साहब बाग की तरफ बढ़े। विजय अपने आश्रम की ओर चला। कुछ आदमी सरजू बुआ की गवाही के लिए रह गये। गवाही हुई, और बाग की हैसियत बाग लिखकर साहब ने रामनाथ के नाती को ही वह हिस्सा दिया।

गाँवों में चारो तरफ किसानों में विजय की जय-वैजयन्ती फहराने लगी। जिन-जिन गाँवों में अभी तक किसी शिक्षा का प्रसार न हुआ था, वहाँ-वहाँ होना निश्चय हो गया। वहाँ के कई गाँवों का विजय प्रमुख मनुष्य माना जाने लगा। जमींदारों ने रिपोर्ट डरकर न की कि डिप्टी साहब की स्वामीजी पर कृपा है, कहीं उल्टा फल न हो। विजय भी अपने निश्चय के अनुसार पूरी ताकत से शिक्षा के विस्तार पर लगा। उसके पास कुछ ऐसे भी लड़के आने लगे, जिन्होंने पासवाली पाठशाला से चहर्रुम पास किया था, पर अर्थाभाव के कारण मिडिल पास करने तहसीलवाले मदरसे नहीं जा सके।

ग्यारह

अलका पिता के सुखकर वृन्त पर प्रस्फुट कली-सी कल्पना के समीर से अपनी ही हद में हिल रही है—सरोवर के वृक्ष पर फलित एक किरण उसके नवीन जीवन की चपलता। ज्ञान में भी नहीं जानती, जीवन का ऋतुराज तन्वी को कुछ पृथुल कर, उसमें मधु सुरभि भर, अपलक ज्योति से सजाकर कब दृष्टि से ओझल हो गया—ऐसी सुघर, साँचे में ढली वाणी की वीणा बना गया कि कोई भी मनुष्य उसे देखकर क्षण-भर चकित हो सोचे, ऐसी छवि उम्र-भर कभी नहीं देखी। इतना जादू, जैसे जागरण के बाद स्वप्न-स्मृति सदा पलकों पर—विस्मृति की सलील सलिल-राशि से उठी हुई भूली परी एकाएक रूप में निखरकर सामने खड़ी हो गयी हो ! प्रात: रश्मि-सी पृथ्वी की पलकें ज्योति:स्नान करती हुई, मनुष्यों के परिचय को सूक्ष्मतम किरण-तन्तुओं से गूँथती हुई, जग के जीवों को एक ही ज्योतिर्मय हारकर ! किंशुक के देह की डाल जैसे पुष्पांशुक से ढक गयी है ! वह स्वयं कोई कारण नहीं खोज पाती---वह इतनी असाधारण क्यों हो गयी। पिता के पास कुछ भी ऐसे विलासवाले उपकरण नहीं, जो अपना भिन्न-भिन्न आभरण नाम धारण कर, खौलते हुए दूध की तरह उफानों से अपनी विशालता का परिचय देते रहें, और मनुष्यता के पात्र को ही छापकर छलक जायँ। फिर भी न-जाने वह कौन-सी शक्ति उस साधारण बगीचे की कली को भी बादशाह-जादियों की नजरवाली कली की तरह उभाड़-उभाड़कर चटकने के लिए विवश कर रही है। प्रति अंग पर कितना उच्छ्वास—कितना हास—कितना विलास ! पिता उसके अज्ञान के भीतर से निकलते हुए दार्शनिक सूत्रों का अपूर्व चमत्कार देख, प्रमाण पा, चकित होकर ज्ञान की हद में निर्वाक् बँधे रह जाते हैं, खुलकर उसे कुछ नहीं कह सकते। वह सबको समान स्वातन्त्र्य उपभोग के लिए देते आये हैं, यह उनका स्वभाव है, इसलिए अलका के उस विकास पर उन्होंने दबाव नहीं डाला। धीरे-धीरे एक साल पार हो गया, पर विजय की खबर न मिली। अलका को ऐसा दिन नहीं जाता, जब एक बार अपने अन्तरतम प्रदेश में पिता की आँख बचा चुपचाप अपने अदेख पति से वार्तालाप न करती हो। कितनी शक्ति वह मौन तन्मयता प्रियतम के हृदय में भर देती है, किसी दार्शनिक को क्या मालूम ! किस प्रकार बार-बार विजय अपने कार्य के लिए एक अपराजिता प्राणों की पूर्ण शक्ति का प्रवाह प्राप्त करता, जहाँ से वह आती है, वहाँ—उस तपस्या, शान्ति, जीवन की चिर-संगिनी की ओर उसे न फेरकर दूसरी ओर, लोक-कल्याण के लिए, किस तरह फेरता है, इसकी दार्शनिक व्याख्या करने में कौन समर्थ है ? जिस अलका द्वारा अज्ञात इंगितों से विजय को सत्य-प्रेम का यह बल प्राप्त होता है, उसी अलका को अपने हृदय के श्रुति-कल्पित कलंक-भावना से विजय क्या विष अज्ञात भाव से दे रहा है !—यदि इसका फल अलका के भविष्य-जीवन में विपरीत हो, तो क्या विजय सोच सकता है कि उसे सत्य से असत्य के मार्ग पर ले चलने का सबसे अधिक उत्तरदायित्व विजय का ही था ? संसार के किसी भी प्रश्न का यथार्थ

उत्तर नहीं मिला; देवता भी उतरकर नहीं दे सकते !

सावित्री पहले दो-तीन महीने तक रही, फिर बालिकाओं के शिक्षा-क्रम में बाधा पड़ रही होगी, सोचकर गाँव चली गयी। पिता और अलका को तकलीफ होने के विचार से एक चतुर दासी देख-रेख के लिए और एक ब्राह्मण भेज दिया। अलका पढ़ रही थी, दैनिक गृह-कर्म उससे कराना उसने अनुचित समझा।

अलका के रहन-सहन में सावित्री के स्वभाव का पूरा प्रभाव पड़ा। ऐसी पढ़ी हुई कुशल विदुषी की तरफ, उसके कार्य-कलाप से, अलका का विद्यार्थी मन आप खिच गया, चुम्बक की ओर लोहे की कमजोर सुई की तरह। सावित्री कभी शृंगार नहीं करती, सुहाग का एक भी चिह्न नहीं धारण करती। इस सम्बन्ध में एक रोज अलका से उसने कहा था—'सुहाग प्राणों का विषय है, किसी चिह्न का धारण उसे धवल नहीं करता। दागे हुए साँड या कम्पनी-विशेष के घोड़ों की तरह किसी देवता या पुरुष के नाम चढ़ जाने की मुहर लगाकर फिरना स्त्रियों के लिए सम्मानजनक कदापि नहीं।' सावित्री सेन्दुर, टिकुली, चूड़ी आदि कभी नहीं पहनती, पर उसके हृदय में अपने पति के प्रति अपार प्रेम है। अलका पर इसका प्रभाव पड़ा। कुछ ही समय में सत्य इसे भी जँचने लगा; बिना किसी भूषण के अलका हलकी रहने लगी, मन पावन चिन्तन में स्वस्थ रहा।

स्नेहशंकर अलका को पढ़ाते और साथ लेकर लखनऊ के दर्शनीय स्थान दिखा लाते हैं। नाटक, सिनेमा और कभी-कभी मित्रों के मकान भी अलका के साथ जाती है। एक-एक उद्देश का सभी को नशा रहता है। पुस्तकें लिखना और अलका को एक बार ज्ञान में प्रतिष्ठित करके देखना, ये ही दो स्नेहशंकर के सम्मिलित उद्देश हैं। कुछ पढ़ी-लिखी अलका पहले से ही थी, अब परिश्रम कर पिता की योग्य उत्तराधिकारिणी होने चली। स्नेहशंकर अँगरेजी भी सामयिक प्रधान भाषा जानकर पढ़ाते थे। नाटक, सिनेमा आदि बहुत-से ऐसे थे, जिनके प्रति स्नेहशंकर की अपनी कोई प्रेरणा न थी, खासकर हिन्दी, उर्दू में तो एक भी नाटक-सिनेमा उन्हें पसन्द नहीं आया। वह जैसा चाहते थे, जनता की चाह उससे बहुत पीछे थी। वह केवल दो-तीन घण्टे में एक सचित्र पुस्तक पढ़ा देने, सामाजिक रुचि की आलोचना कर अलका की दृष्टि को समयानुकूल तथा मार्जित कर लेने के विचार से नाटक, सिनेमा आदि देखने जाते थे।

ज्यों-ज्यों शिक्षा गहन हो चली, त्यों-त्यों अलका के विचारों में उन्हें फूलों से फल का निश्चय होने लगा। अलका का मन कलरव से अलग, आकाश की तरह जीव-जग से ऊपर रहने लगा। स्वभाव में गम्भीर रहनेवाले अपने अज्ञान को ही ओढ़कर गहन बन जाते हैं, इसकी व्याख्या वह पिता से सुन चुकी थी, और उनके कितने ही मित्रों को मिलते समय ज्ञान-गम्भीर बनते देखकर मन-ही-मन हँस चुकी थी। उसकी तमाम क्रीड़ाओं में हृदय से स्वच्छ होंठों पर आयी, मधुर व्रीड़ा पढ़-पढ़कर स्नेहशंकर अपने उद्देश में स्थिर होने लगे।

विचार, वयःक्रम, पिता तथा दीदी की मुहर से प्रतिदिन वह स्पष्टतर छप-छपकर निकलने लगी। बाल्य का खोया चापल्य उस खुले बालोंवाली, नग्न-पद अमल अलका पर, च्युत-राज्य राजा की पुनः अधिकार-प्राप्ति जैसे प्रतिष्ठित होने

लगा। विद्यार्थिनी पर तारुण्य की सब निर्दोष प्रचलित क्रीड़ा प्रथाएँ प्रभाव छोड़ अपनी तरफ खींचकर लिप्त करने लगीं। टेनिस का गेंद ले, उछालती, दौड़ती, पकड़ती हुई, छत तथा भीतर मकान का आसमान सुखद कलरवों से समुद्वेल करती, हँसती, आँचल उड़ाती हुई, पिता की बगल में हाँफती थककर बैठ जाती है। पिता स्नेह की दृष्टि से देखकर, जनाने उस छोटे-से बगीचे में दौड़कर स्वास्थ्य ठीक रखने को उत्साह देते हैं।

स्नेहशंकर की कुमारी यही अलका कभी भावावेश में विजय की प्यारी मानसिक शोभा बनकर, छत पर, सान्ध्य सूर्य-किरण की कृशता देख, उनसे नजर मिला, जैसे उन्हीं के साथ कहीं किसी की खोज में, अस्त हो रही हो; शान्त, संयत, निष्पात पलकों से निष्पन्द खड़ी हुई, केवल शून्य की थाह-सी लेती, कहाँ डूबकर चली जाती है! आँचल सिर से खुलकर गिर गया, बाल उड़-उड़कर गाल, वक्ष पर आ गये, वह उसी अपरिचित ध्यान में तन्मय है! किरणें उससे बिदा होकर चली गयीं। धरा को अँधेरे ने उसी के हृदय की तरह ढक लिया। पृथ्वी का ताप आकाश की पलकों से अदृश्य शिशिर के आँसू बन-बनकर प्रतिदान में प्रिया का हृदय सिक्त करने लगा, पर उसे उसके प्रिय की मौन प्रेरणा किस रूप में मिली, वह नहीं जानती। डूबकर शून्य गह्वर से बाहर निकल भीतर हृदय का जैसा अपने चारो ओर अन्धकार देख, धीरे-धीरे छत से नीचे उतर आती है। कभी-कभी, किसी-किसी दिन देर हो जाती, पिता बुला भेजते हैं, दासी आकर देखती, अलका छत की चारदीवार पकड़े चिन्ता में कहीं अन्तर्धान है! दासी हिलाकर बुलाती है, तब, होश में आ, डरकर, नहीं जानती क्यों अपराध की दृष्टि से पिता को देखती हुई, पलकें झुका, किताब ले पढ़ने बैठती है। स्नेहशंकर हँस देते हैं, अलका का शून्य पवित्र वात्सल्य रस से पूर्ण हो जाता है। पिता मर्म पर दृष्टि रख पूछते हैं, 'आज तू गम्भीर है?' अर्थ समझ पुत्री आँसुओं में हँस देती है। दुःख के प्रतिघात से पिता भी दुखी हो जाते हैं, अलका स्वभावतः दुःख से मुक्ति पाती, नत-मस्तक धीरे-धीरे पढ़ने लगती है।

इस प्रकार अपने स्वभाव को बार-बार भूलती, बार-बार याद करती हुई एक साल पार कर गयी। पिता उस सरिता की प्रवाह-गति का पूरा परिचय रखते हैं। वह उसे उसी के पति की ओर लिये जा रहे हैं, जहाँ अपार तृप्ति का सागर है, जो उसके पति का बृहत् रूप है, जहाँ चिन्ता का प्रवाह ही चुक गया है—भोग की इच्छावाले मिलन का दुःख नहीं। वहीं से उससे उसकी बहनों के लिए सबसे बड़ा त्याग करायेंगे—यह उनका आदर्श है, इसी की पूरी तैयारी उनकी शिक्षा। संस्कारोंवाले सुहाग पर कुछ दूर तक सोचकर स्नेहशंकर अभी कुछ नहीं कहते; जानते हैं, यह छोटा, यह दो प्रेमियों का गले-गले लगना अपने महत्त्व में बड़े से छोटा कभी नहीं; केवल वियोग दुःखप्रद है, इसलिए ज्ञान की दृष्टि से अनित्य।

आज थिएटर जाने की बात है। कलकत्ते का कोरिथियन-थिएटर उत्तर-भारत का सफर करता हुआ लखनऊ आया है। स्नेहशंकर के मित्र लखनऊ के सहायक डिप्टी-कमिश्नर पं. ज्ञानप्रकाश और उनकी पत्नी भी जायँगी। स्नेहशंकर और ज्ञानप्रकाश की इधर कुछ दिनों से घनिष्ठ मैत्री है, पहले परिचय था।

ज्ञानप्रकाश दार्शनिक तो बहुत अच्छे नहीं, पर आर्यसमाजी होने के कारण वैदिक साहित्य पर पूरी भक्ति रखते है। वह सिद्ध नहीं कर सकते पर वेद अपौरुषेय हैं, इस पर उनका विश्वास दृढ़ है। रोज हवन करते हैं। एक बार किसी अखबार में लिखा था, आजकल आग में घी फूंकना बेवकूफी है, जब घी खाने को नहीं मिलता। आक्षेप करनेवाली एक लेखिका थीं। नाम सावित्री था। इन्हें यह लेख आर्य-धर्म के विरुद्ध मालूम दिया। अपने सिद्धान्त की रक्षा के लिए इन्होंने वेद तथा गीता की आवृत्तियों से सिद्ध किया कि मेघ विना हवन किये जल नहीं बरसा सकते, हवन छोड़कर ही अधिकांश लोग अनार्य हो गये हैं। फिर लेखिका के सावित्री नाम पर भी इन्होंने प्रक्षेप किये, यद्यपि सरकारी नौकरी के मैदान में वाद-विवाद पर इतना बढ़ना हानिकारक था। बात यहीं से नहीं खत्म हुई। लेखिका सावित्री ने युक्तियों और प्रमाणों की पुट दे-देकर हवन करना सोलहो आने बेवकूफी फिर साबित किया। लिखा—"सूर्य द्वारा समुद्र के विशाल कुण्ड से अविरत जल जला-जलाकर जो प्रकृति पानी बरसाती है, वह नकलचियों के घृत-हवन की अपेक्षा नहीं करती। जहाँ मनों घी वेवकूफी में जलता हो, वहाँ आर्य निस्सन्देह अनार्य हो गये हैं। वह घी और यव गरीबों के पेट के अग्नि-कुण्ड में जलकर उनकी नसों में रक्त तथा जीवनी शक्ति संचित करके ही यज्ञ की सर्वोच्च व्याख्या से सार्थक होगा। जहाँ लाखों टन जले कोयले का धुआँ वायु-मण्डल में जहर भर रहा हो, वहाँ मामूली संख्या के आर्य-समाजी तोले-तोले घी फूंककर वायु-मण्डल शुद्ध कर देंगे! प्रकृति ने इसे पवित्र करने के कार्य में पहले से हवा को लगा रक्खा है। वह बह-बहकर धुएँ का जहर जल की धारा की तरह फटकारती, साफ करती रहती है—" आदि-आदि। जवाब देखकर डिप्टी-कमिश्नर साहब का रंग उड़ गया। बात लाजवाब थी। पर स्वामीजी, जिन्होंने डूबते हुए देश के हाथों बए की तरह वेदों को रक्खा, हवन करने को आवाहन किया, वह बगैर गहरे पैठे, मतलब समझे ही ऐसा करने को कह गये हैं, उनके तेजस्वी मन को विश्वास न हुआ। उन दिनों स्नेहशंकर लखनऊ में ही रहते थे। इनके पास इस लेख का उचित उत्तर लिखवाने आये। डिप्टी-कमिश्नर साहब को इनके ज्ञान पर पूरा विश्वास था। लेख और नाम देखकर स्नेहशंकर हँसे। कमिश्नर साहब ने कहा, "यह तो घर ही की बहू है।" परिचय दिया। कहा, "आपने ठीक लिखा है; ऋषियों ने इन कर्मों का प्रति-पादन बड़े-बड़े ज्ञान के आश्रय से किया है।" कमिश्नर साहब प्रसन्न हो, मार्मिक उच्छ्वसित आँखों से देखकर बोले, "वही तो मैंने कहा, बिलकुल तख्ता उलट देना चाहती है! लेकिन आपके घर में नास्तिक—और स्त्री!" "कुछ नहीं, लड़कपन है।" स्नेहशंकर मुस्किराये, बोले, "आपसे क्या कहूँ? आप ऐसी आलोचना का उत्तर ही न दें, उपेक्षा कर जायँ।"

डिप्टी-कमिश्नर साहब प्रसन्न होकर चले गये। अलका बैठी हुई आँखें नीची किये मुस्किरा रही थी। उनके चले जाने पर पिता से पूछा, "आपने इन्हें कैसी सलाह दी?" "यह तो दुनिया है" स्नेहशंकर बोले, "जो जैसी खूराक का आदी है, वह वैसी ही खूराक पाने पर प्रसन्न होता है। इनका जिधर रुख था, उधर हमने इन्हें चार कदम बढ़ा दिया; अब मजे में पाव-भर घी हवन-कुण्ड में रोज फूंककर

गरीबों के मुँह राख झोंकते रहें। साश्चर्य अलका अपने अद्भुत पिता की ओर ताकती रह गयी।

दूसरे दिन अलका को साथ लेकर स्नेहशंकर भी डिप्टी-कमिश्नर साहब के घर गये। इस तरह आना-जाना लगा रहा। आज थिएटर जाने का निश्चय था। पहले से चार सीटें रिजर्व करा ली गयी थीं। शाम का भोजन समाप्त करके डिप्टी-कमिश्नर साहब अपनी धर्मपत्नी के साथ स्नेहशंकर और अलका को ले जाने के लिए खूब सजकर आये। वे तैयार थे, सब लोग बैठ गये।

बारह

ठीक नौ बजने पर तमाशा शुरू होगा। स्नेहशंकर और ज्ञानप्रकाश के बीच, अर्चेस्ट्रा में, ज्ञानप्रकाश की पत्नी और अलका बैठ गयीं। पत्नी पति की तरफ, अलका पिता की तरफ। हाल ऐसा भरा, जैसे रेत पर सटे बगले बैठे हों। नव्वाबी सभ्यता के सूक्ष्मतम तन्तुओं-सी देहवाले, तहजीब के रूपक, लखनऊ के रईस, राजे, तअल्लुकेदार और देशी अफसर कोई-कोई अपनी महिलाओं के साथ, सामनेवाली सीटें आबाद किये, शान से गर्दन उठाये बैठे हुए हैं। कोई-कोई सफेदपोश बड़ी-बड़ी आँखोंवाली अलका को बड़ी तन्मयता से देख रहे हैं।

खेल सामाजिक है। नाम है 'सच्चा प्यार'। समय पर ड्राप उठा। खेल शुरू हो गया। रोशनी में एक साथ हाथ मिला गुच्छों में खिली चपल कलियों-सी परियाँ लोगों की अपल आँखों में खिंच गयीं। विद्या की अगम चारदीवार के अन्दर न आने पर भी संगीत और शायरी के रसज्ञ रईस फड़क उठे।

दर्शकों में साश्चर्य उत्साह भर-भरकर नाटक होने लगा। एक राजा शिकार खेलने को चले। नेपथ्य में घोड़ों की टापों का रूपक कर स्टेज भड़भड़ाया गया, आवाज-पर-आवाजें आने लगीं—'सब लोग होशियार हो जाओ, तूफान उठ रहा है, ओफ् ओले गिर रहे हैं!' फिर किसी ने तार-स्वर से पुकारा—'महाराज, अरे! हमारे महाराज कहाँ?' फिर समझाया गया, शायद उनका घोड़ा बहक गया है! फिर दूसरे दृश्य में राजा एक झोंपड़ी के भीतर ओले के स्वर्गीय प्रहार से घायल, चारपाई पर पड़े कराह रहे हैं; एक सुन्दर युवती कृषक-कुमारी उनकी शुश्रूषा कर रही है।

स्टेज के और-और लोग इस समय पूरे एकाग्र हैं, पर पिता से अलका ने शंका की, इन राजा के साथियों को क्या हुआ होगा पिता?

हँसकर स्नेहशंकर बोले, "सम्भव, वे बच गये हों, राज्य में खबर देने के लिए, देखो।"

किसान-युवती अपने छोटे भाई के साथ अकेली है। उसके पिता और भाई

अपने पड़ोसियों के साथ तीर्थ करने गये हैं। राजा अच्छे होकर उसके प्रेम के पाश में फँस गये।

अलका ने फिर पूछा, "क्या इनकी शादी अभी हुई नहीं?" "दुष्यन्त की तरह, बहुत मुमकिन, हुई हो।" स्नेहशंकर प्रसन्न व्यंग्य से बोले। लोग अत्यन्त एकाग्र होकर यह प्रेम-लीला देख रहे हैं। राजा ने ईश्वर-साक्षी कर गान्धर्व रीति से किसान-युवती का पाणिग्रहण किया। दर्शक शृंगार के मन्त्र से मुग्ध हो गये! अलका चुपचाप, राजनीति के समालोचक की तरह, अपनी पूर्वकृत भविष्य-चिन्ता के निश्चित फल की ओर लक्ष्य किये हुए है।

वैसा ही हुआ। राजा के साथी बाल-बाल बचकर राजभवन पहुँच गये। राजमाता, रानी तथा मन्त्री को राजा के गायब होने की खबर हुई, राजमाता मूर्च्छित हो गयीं, रानी आठ-आठ आँसू रोने लगीं। राजा की त्वरित तलाश के लिए मन्त्री ने चराचर चर भेज दिये।

उस कृषक-युवती के प्रेम में राजा ऐसे फँसे कि निकलना दुश्वार हो गया। इतनी भी खबर नहीं कि उस प्रेयसी से अपने विवाहित होने की, अपनी रानी की एक बार बातचीत करते। अवश्य यह सौत का जिक्र शास्त्रानुसार वर्जित है, और कुल हिन्दू और मुसलमानों में जो राजा के लिए इच्छानुसार वर बनते रहने की स्वतन्त्रता वरण किये बैठे थे, यह भी प्राचीन संस्कारों का शुभ धर्म था, इसीलिए उनके इस शृंगार-रस में दुर्भावना की मक्खी नहीं पड़ी। अलका को सबसे बड़ा तअज्जुब बचपन में सुनी एक दन्त-कथा का प्रमाण मिलने पर हुआ कि सचमुच राजा प्रेम के जादूवाले बंगाले में मनुष्य से ऐसे भेड़ बने कि किसान-युवती अपनी हद के खूँटों में इच्छानुसार उन्हें छोरने-बाँधने लगी। बेचारे पशु की जबान, आदमी की तरह सच्चा हाल कैसे बयान करती!—अलका अब ऐसा सोच लेती है।

एक रोज पास ही की नदी में यह नयी युवती स्नान करने गयी। राजा उसके घर में रक्खे हुए हैं। ऐसे समय एक चर व्याघ्र की तरह घ्राण-मात्र से राजा का निश्चय कर भीतर झाँकता है। देखकर प्रसन्न हो पास जाता और राज्य के दुःख कहता है। एक साथ राजा ऐसे आवेश में आते हैं कि अपने देश को इतने दिन भूले रहने के लिए अपने को धिक्कार देते हुए उसी वक्त चर के साथ घर चले जाते हैं। युवती स्नान कर लौटती और राजा को न देख व्याकुल होकर रोती रहती है।

युवती का छोटा भाई ढोर चराकर लौटा, और बहन को उदास बैठी हुई, सजल दृग आकाश देखती हुई देखकर पति से उसे मिला देने की प्रतिज्ञा की; इतने छोटे मुँह इतनी बड़ी-बड़ी बातें सुनकर एक तरह रंगस्थल के सभी दर्शक 'असम्भव' को प्रकृति से निकाल देने के पक्ष में नेपोलियन बन गये, जैसे प्रयत्न-कथा के दुर्गम अन्धकार में सत्य-रत्न के विना भी, प्रकाश पाने के वे आदी हो गये हैं।

कुछ दिनों बाद उसके पिता और भाई पड़ोसियों के साथ लौटे, और अन्य स्त्रियों से सुना कि कन्या किसी नवागत पुरुष से प्रणय कर गर्भवती हो गयी है। पिता ने पुत्री और एक धर्म-पत्नी के सम्मान के प्रतिकूल अनेक कटु शब्द कहे, जिससे उसी रात पिता का आश्रय छोड़कर पति के ऐश में निरुद्देश हो गयी।

अलका अपनी सारी शक्तियों से एकाग्र है। सहानुभूति के स्रोत से उसकी समालोचना के घाट की जंजीर हाथ से छूट गयी। पिता रह-रहकर एक नजर यह बदला हुआ मनोभाव देख लेते हैं। चलते-चलते तेज धूप से प्यासी एक आश्रय देखकर बैठ गयी, उत्पल-कलमांगी, जीवन के सान्ध्य क्षण में द्विदल लोचन मूंद लिये, फिर वहीं पृथ्वी की शून्य गोद में निस्तरुलता-सी मूर्च्छिता हो गयी।

वहाँ एक महात्मा की कुटी थी। बाहर आ इस सीता को धूलि-धूषिता अवलुण्ठिता देखकर दयार्द्र हो जल-सेककर होश में लाये और समस्त कारण अवगत हो प्रज्ञा-शक्ति से उसके जीवन के भविष्य-पट-चित्र प्रत्यक्ष करने लगे; पुनः दर्शकों पर भाग्य के अखण्डन आलेख्य का प्रभाव छोड़ते हुए तार-स्वर से स्वगत बोले, "एक पतिव्रता को गत जन्म में पतिवंचिता करने के अपराध में सीता की तरह इसे चिर पति-विरह सहना होगा।"

त्वरित अपनी आलोचक-स्थिति में आ अलका मन की जबान से कह गयी, "हश ! सफेद झूठ, यह लेखक की चालबाजी है ! यह नीच-कुल की है, इसलिए साधारण जनों की दृष्टि में पत्नी-रूप से इसे न मिलने देगा।" मन के दाँत पीस-कर रह गयी। स्नेहशंकर ने उसकी मुद्रा की ओर फिर देखा।

फिर महात्माजी ने तीन दिन ऐसी तीव्र तपस्या की कि उसके पति महाराजा-धिराज को मृगया के लिए सामन्त-सरदारों के साथ उस तपोवन की तरफ आना ही पड़ा। ऋषिराज ने उस युवती को महाराज से अपनी दुःख-कथा कहने के लिए कहा। अनेक सभ्यों के साथ महाराज को देखकर उस युवती ने उन्हें पहचानकर भी अपने पति-रूप से परिचित न किया, सोचा, पति की इज्जत रखना ही पत्नी का धर्म है।

अलका बिलकुल न समझ सकी कि यह कौन-सा पत्नी-धर्म हो सकता है। जनता गद्गद कण्ठ से साधु-साधु कहने लगी। पुरुष की जहाँ इतनी महत्ता बढ़ रही हो, वहाँ पुरुष-जाति प्रसन्न हुए विना कैसे रह सकती है, अलका सोचने लगी, पर पर्दे की स्त्रियों की क्या हालत होगी ? क्या वे भी ऐसे कार्य को आदर्श सोचती होंगी ? श्रीमती डिप्टी-कमिश्नर की राय के विना उसकी चपलता न रुक सकी; पूछा, "यहाँ आपको कैसा लग रहा है ?" "बहुत ऊँचा आदर्श है, बहुत अच्छा दर्शाया है।" यह उत्तर पा प्रहत हो, विरोध की आँखों से एक बार देखकर अलका चुप हो गयी।

पत्नी ने तो तत्काल पहचान लिया, पर पति उत्कल महाराज की कमल-आँखों पर उस पूर्व जन्म के शाप की छाप जो पड़ी, वह किसी तरह भी भले-चंगे मनुष्य होकर न पहचान सके। बार-बार, बड़े सहृदय-भाव से, अच्छी तरह देखते हुए, पूछा, "तुम उस दुराचारी पति का नाम जाहिर कर दो, मैं उसे दण्ड दूंगा।" पत्नी ने कहा, "वह एक राजा है।" पर राजा होश में न आये। महात्माजी सच्चे वाल्मीकि थे नहीं, न नाटक के लेखक महोदय ही वाल्मीकि के ऋषित्व से परि-चित; दुखीजनों का राजा ही पोषक है, अतः महाराज यह शिकार कर अपने यहाँ परवरिश के लिए ले चले। रास्ते में इत्तिफाक से उसका वही छोटा भाई बहन के निकल जाने पर उसे पति से मिलाने के लिए घर छोड़कर निकला हुआ आ मिला।

वह राजा को पहचानकर उसी ताव से बातें करने लगा, जैसी उसके घर की स्थिति थी। उसे राजा साहब ने पहचाना, तब युवती का मुख भी याद आया। युवती को साथ लेकर कुछ लोग आगे थे, उसके भाई ने अपनी बहन को नहीं देखा, न राजा ने दिखाने की जरूरत समझी। बल्कि लेखक महोदय की कृपा से ऐसा किया कि साथवाले अपर लोगों को भी विदा कर दिया; फिर एकान्त में कृषक-कुमार से करुणा-क्रन्दन करने लगे कि उन्हें विस्मरण हो गया था। लेकिन फिर भी उससे उसकी बहन का हाल न कहा कि वह आगे साथ ही चल रही है। फिर पर्दा गिरा और मामला खतम। फिर कौन पूछता है कि किसान-कुमार कहाँ गया ?

राजधानी में कृषक-किशोरी अस्तबल से होड़ करनेवाली कबूतर के दर्बों-सी बनी हुई आवारागर्द औरतों की एक साधारण खोली में लाकर रक्खी गयी। आधी रात को पूरे छद्म-वेश में महाराज वहाँ तशरीफ ले गये। फिर क्षुरधार प्रणय की बाढ़ में ऐसा बहे कि लोगों पर पूरा प्रभाव पड़ गया, और अलका के छक्के छूट गये। वह किशोरी स्त्री प्राण रहने तक पति की मर्यादा अक्षुण्ण रक्खेगी, यह प्रण किया। सुनकर महान् पतिव्रत के आदर्श-ज्ञान से पुलकित जनता ने पलकें मूंद लीं, और आहें भरने लगी। महाराज भी पूरा प्रेम जता, अपना फर्ज अदा कर, बड़े दु:खित भाव से धीरे-धीरे चले गये। सुबह होने पर किशोरी धर्माधिकरण लायी गयी, और पति का नाम न बतलाने पर कलंकिनी करार दी गयी ! कलंक का एक निशार सूच्यग्र जले लोह से लगाया गया, और उसी अस्तबल में लाकर डाल दी गयी।

उसके लड़का पैदा हुआ, राजकुमार। पर किस्मत अस्तबल के साईसों के लड़कों से बदतर। महाराज ने फिर कभी उधर नजर नहीं की। लड़का पेट में था, इसलिए लेखक को निकालना ही पड़ा। यदि आदर्शवादी कला को पेट से बच्चा उड़ाने का कोई कौशल हासिल होता, तो हिन्दी के नाटक-उपन्यास-सम्राट् ऐसे समय जरूर इसका प्रदर्शन करते। लाचार, बच्चा हुआ, और कुछ दिनों बाद स्वर्ग सिधार गया। नाटक में पहली रानी के कोई पुत्र नहीं। फिर भी इस बच्चे पर रहम न हुआ। फिर माता पागल हुई, वेश्या का आश्रय ग्रहण किया, गाना-बजाना सीखा और अन्त में महाराज की महफिल में नाचकर, उन्हें अपने प्राचीन परिचय के प्रेम से मकान तक खींचकर, बीमार हो, भाई द्वारा जनता की आँखों राज-परिणय का भेद खुलने के पश्चात्, राजा, पति या उपपति की गोद में मरी। उसका एक स्मारक ताजमहल की तरह महाराज ने तैयार कराया, और ऐसी प्रेम की मूर्ति पर मृत्यु के बाद रोज पुष्पांजलि अर्पित करने लगे।

दर्शकों के हर्षातिरेक से अभिनय समाप्त हुआ। स्नेहशंकर ने देखा, अलका के अपांगों में नफरत खिंच रही है। डिप्टी-कमिश्नर के साथ सब लोग उठकर बाहर आये।

किसी ने लक्ष्य नहीं किया, एक दूसरा युवक शुरू से आखीर तक अलका को देखता रहा।

मोटर लगी हुई थी। सब लोग बैठ गये। पहले स्नेहशंकर के मकान मोटर गयी। पिता-पुत्री उतर गये। एक दूसरी मोटर शीघ्र निकल गयी।

डिप्टी-कमिश्नर घर गये। रास्ते में उनकी पत्नी ने कहा, "लड़की कैसी भोली और सुन्दर है ! बरबस जी का प्यार हर लेती है।"

डिप्टी-कमिश्नर निःसन्तान हैं। कहा, "हाँ, हमारी तबियत भी उसे देखकर बहुत खुश होती है। मुँह पर किसी भी प्रकार का छल-कपट नहीं।"

"एक जगह शायद मतलब समझ में नहीं आया, लड़की ही तो ठहरी, मुझसे पूछा, मैंने समझाया, क्योंकि ऊँचा भाव था।" आतमप्रसाद का स्वाद लेते हुए पत्नी ने कहा, "तुम कहो न, स्नेहशंकरजी यह लड़की हमें दे दें।"

"इच्छा तो हमारी भी होती है। ऐसा देखती है, जैसे अपनी लड़की हो। अच्छा, कल कहेंगे। वह जैसे सज्जन हैं, उनसे हमारी इच्छा पूरी होगी, ऐसी आशा है।"

तेरह

अजित मामा के यहाँ न गया। उसे पकड़ जाने, शोहरत होने पर घर खबर पहुँचने का खौफ हुआ। कुछ पुलिस से भी डरा, जिसकी आँख में धूल झोंककर यह बाना बनाया था। सीधे विजय की ससुराल पहुँचा। लालगंज में गीता की किताब खरीद ली; अँगरेजी जानने की जड़ मार दी। घुटी चाँद, सफाचट डाढ़ी-मूछ, नाम स्वामी धर्मानन्द, खयालात सात सदी पीछे के, हाथ में मोटा सोंटा, बगल में झोला, जिसमें चिलम और गाँजा खासतौर से हिफाजत से रक्खा हुआ—दूसरों को पिलाना, उन्हें बहलाकर मतलब गाँठना, बातचीत पूरे गँजेड़ी की; बैठा गला। धर्मानन्दजी ने सोचा—'विजय की तरह विद्या के बल से बल-विद्यार्थियों को, पूँछ ऐंठ-ऐंठकर, राह पर लाना गधों को घोड़ा बनाना है, लिहाजा एक बिलकुल गैर-मुमकिन बात; फिर अक्लमन्द कैसा, जो दस कदम पेश्तर न सोच ले ? बात यह कि असर जात का नहीं जाता; किसान जमाने से गँवार और जमाने तक ऐसे रहेंगे; विजय को यह एक शौक चर्राया है, बल्कि झक या कहें दिमाग की कमजोरी है; हल जोतने और किताब पढ़ने से बड़ा बट्टा; कहीं के किसान पढ़े-लिखे हैं, इसके मानी ये न हुए कि वे विलियम पिट हो गये; फिर अगर ऐसा ही खयाल है कि किसान पूरी ताकत से हल की मूठ पकड़कर भी पूरी सफाई से कलम चला लेंगे, तो न्यूटन की राह लोग क्यों नहीं पकड़ते ?—विजय को पहले भेड़ चराना था, न कि पढ़ना।'

दुनिया में सब लोग अपने-अपने फायदे की युक्तियाँ निकाल लेते हैं। धर्मानन्द-जी दुनिया में विनोद-कौतुक से रहनेवाले जीव हैं। लिखाई-पढ़ाई का काम वह नहीं कर सकते, ऐसी बात नहीं; उसके क्या गुण और उपयोग हैं, वह जानते हैं; पर एक ही किस्म की निरन्तर बकवाद से वह बहुत घबराते हैं; दो रोज, चार रोज, दस रोज तक ज्यादा-से-ज्यादा वह लड़कों को पढ़ा दे सकते हैं। पुलिस पीछा

किये थी, घरवाले सर खाये थे, चले आये। एक नया अनुभव होगा। फिर विजय की कथा भी कम दिलचस्प नहीं।—एक रोज की शोभा इतिहास के कितने रंजक पृष्ठों के पश्चात् छिपी होगी! पुनः, जीवन के नैश मुहूर्त में एक ही स्नेह की किरण से खिले कैरव और चन्द्र के बन्धुत्व की तरह विजय और अजित परस्पर हिले-मिले—किसी राहु के छन्द से बदन जब तक तमोवृत न होगा, अजित विजय को स्निग्ध-हृदय की अमृत-ज्योत्स्ना से तब तक सींचता रहेगा। अपरंच, जिनके यहाँ की भीख पर उसे काल यापन करना है, उनका ऋण भी वह ब्याज समेत चुका देगा, वह विजय से मैत्री में पीछे कदम रखनेवाला नहीं।

इस प्रकार कल्पना की उधेड़-बुन में बगल में झोला लटकाये स्वामी धर्मानन्दजी विजय की ससुराल से दो कोस फासले पर एक गाँव पहुँचे। बगीचे से लकड़ी तोड़कर धूनी जला दी। आग तैयार होने पर बदन में खूब राख मलकर बैठ गये। जगह सुहावनी, पास ही मन्दिर और कुआँ, लोगों की आमदरफ्त की काफी गुंजायश।

धीरे-धीरे बाबाजी के पास भक्त-किसान खेतों से आ-आकर एकत्र होने लगे। बाबाजी ने बिना व्यर्थ वाक्य-व्यय के, पूर्ण धीर-गम्भीर मुद्रा से गाँजा मलने को भक्त वृन्द के सामने बढ़ा दिया। यथेष्ट लोभ होने पर भी भक्तगण पहले हिचके। किसी ने कहा, "बाबा, आपका प्रसाद तो है, पर कैसे लिया जाय, शाम को हम लोग ठेके से ले आवें, तब आपका प्रसाद लें।"

बाबा धर्मानन्दजी ने आँखें मूँदकर, नाक सीधे आसमान की तरफ उठाकर सिर हिलाया कि यह कथन शास्त्र-संगत नहीं। भक्तगण सभक्ति चकित हो तपस्वी बाबाजी की विशाल मुद्रा देखते रह गये। धीरे-धीरे सानुनासिक-स्वर बाबाजी ने कहा, "बेटा, यह तो भगवत पर तुम्हारा ही चढ़ाया हुआ प्रसाद है; साधू के पास पैसे कहाँ?"

भक्तगण बड़े प्रसन्न हुए। उन्हें ऐसे बाबाजी अब तक नहीं मिले थे, जो भक्तों को घर का माल खिला जाते। बड़ी विनय से गाँजे की कली लेकर मलने लगे।

तैयार होने पर बाबाजी को भोग लगाने के लिए दिया। बाबाजी होश में एक दफा खानेवाली तम्बाकू जरा-सी खाकर बेहोश हुए थे, फिर नयी रोशनी की बत्ती सिगरेट में भी कभी आग नहीं लगायी। बड़े संकोच में पड़े, पर जिरह में न कटने के जवाब पहले से सोच रक्खे थे। पूर्ववत् नक्की स्वर से कहा, "गरुजी की आज्ञा इस समय कुछ दिनों के लिए दम छोड़ देने की है; बात यह है बेटा कि जो धुआँ मैं मुँह से निकालता हूँ, वह गुरुजी पीते हैं; जो तुम निकालते हो, निकालोगे, वह हम लोग पीते हैं, पियेंगे; आजकल इस चेले को गुरुजी ने अपना अधिकार दे रक्खा है कि अब अपनी गरमी हमें न पिलाओ, दूसरों की गरमी पीना सीखो।"

ऐसे धूम्रपान की कोई व्याख्या हो भी सकती है, इसकी जाँच पूरी-पूरी कौन करे? बेचारे किसानों ने चुपचाप विश्वास कर लिया। एक-दूसरे को देखते हुए बाबा धर्मानन्दजी की पुनः आज्ञा मिलने पर सभय पीने लगे। खूब दम कसकर गाँव गये, और सबको एक अजीब बाबाजी के पधारने की खबर सुनायी। तारीफ

में कहा, "बाबाजी चिलम नहीं पीते, सबकी चिलम का धुआँ पीते हैं।"

दूसरे ने कहा, "तुम घर में बैठे हुए चिलम पियो, बाबाजी अपने आसन से धुआँ पी लेंगे।"

तीसरा बोला, "हाँ भाई पूरे महात्मा हैं, देखो दग-दग कर रहा है चेहरा; लेकिन अभी उमर कोई बहुत जियादा नहीं।"

"तू तो बैल है पूरा," पहला बोला, "अरे, साधू की उमर का कुछ हिसाब रहता है ? हम-तू हैं कि पच्चीस साल में बाल पक गये ? महात्मा को ऐसा न कहना चाहिए। अभी कहो हमारे बाबा की बातें कहने लगें।"

"स्वभाव के बादसाह हैं।" दूसरे ने बड़ाई की।

"बादसाह ? बादसाह भी उनके पास आते हैं, और झख मारते हैं।" आँखें काढ़कर दूसरे को देखता हुआ पहला बोला।

गाँव के छोटे-बड़े साधारण भलेमानस ऐसे अद्‌भुत बाबाजी के आने की ख़बर पा भक्ति-भाव से अपना-अपना कार्य छोड़कर मिलने चले।

देखते-देखते चारो ओर से धूनी घेरकर प्रणाम कर-कर गाँव के सभी वर्णों के लोग नजदीक फासले पर बैठे हुए पूरी भक्ति की नजर से बाबाजी को देखते रहे। इनमें व्रजकिशोर बाबाजी की तरह नवयुवक है, बाबाजी की उम्र की बराबरी वह नहीं कर सकता। सफाई से रहता है। देखकर बाबाजी भी इसी की ओर मन-ही-मन औरों की तरफ से ज्यादा खिचे, ऐसी उसकी आजकल की पसन्दवाली काट-छाँट। वह दो साल तक कॉलेज की हवा भी खा चुका है। बड़े गौर से अँगरेजी समालोचना की निगाह से बाबाजी को देखने लगा। राख के भीतर बाबाजी की चमकीली तेज आँखें देख-देखकर व्रजकिशोर मुस्किरा रहा था, सोच रहा था कि यह आदमी दूसरों का निकाला हुआ धुआँ कैसे पी लेता है।

महात्माजी आगन्तुक जनों से परिचय कर कुशल पूछने लगे।

प्रश्न—"यहाँ के कौन जमींदार हैं ?"

उत्तर—"तअल्लुकेदार मुरलीधर, स्वामीजी !"

प्रश्न—"तुम लोगों के सुख-दुख में शरीक तो होते हैं ?"

लोग एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। फिर स्वामीजी के लिए 'रमता योगी, बहता पानी,' का ख़याल कर उन्मन हो गाँव के एक पुराने भलेमानस बोले, "हाँ, स्वामीजी, आजकल जैसे और जगहों के राजे रियाया की खबर करते हैं, वैसे वह भी हैं।"

"नहीं, दिल का भाव ठीक-ठीक साधू से कहा करो, वह तुम्हारी प्रार्थना ईश्वर के पास तक भेजता है, और जैसी उसकी मर्जी होती है, तुम्हें बतलाता है। साधू से अपना मतलब छिपाना अपने आपको धोखा देना है। वह जो ईश्वर का सेवक है, उसके जनों की पहले सेवा करता है।" स्वामीजी ने ओजस्वी शब्दों में लोगों के शंका से दबे हृदय को उभाड़ दिया।

गाँव के लोग, जो अभी तक तिलिस्म के उस्ताद की नजर से स्वामीजी को देख रहे थे, समझे, उनके सुख-दुख, विशेषकर उनके दुख की जगह स्वामीजी सेवा का मरहम रखना चाहते हैं। व्रजकिशोर एक बदली हुई भावना से देखने लगा।

धर्मानन्दजी भी साथ-साथ लोगों के मनोभाव पढ़ते जा रहे हैं। अपने-अपने उद्देश की सिद्धि की सबको धुन होती है, सब उसी गरज से दूसरों के पाबन्द होते हैं।

स्वामीजी की इतनी-सी बात से, पार न देखनेवाले, निरुपाय पारावार में पड़े हुए गाँव के लोग साक्षात् ईश्वर के पास प्रार्थना पहुँचानेवाले स्वामीजी को जितने अपनाव से देखने लगे, उसकी वर्णना कोई भी भाषा नहीं कर सकती, साक्षात् सरस्वती वहाँ मौन है। आज तक समर्थ के खिलाफ खुलकर एक भी आवाज करने की शक्ति उनमें किसी की न थी, वे नव्वाबी युग से अब तक शक्तिमान् का साथ देकर अपनी ऐहिक आशा पूरी करते आये थे—उनके खिलाफ सर उठाने का स्वभाव मर चुका था; आज उनके ठीक प्राणों में एक सहृदय आवाज हुई। गाँव के अच्छे-अच्छे लोग थे—चौंककर एक नया प्रकाश देखा।

"महाराज!" एक बूढ़े, गाँव के सभी जातियों के मान्य भलेमानस ने कहा, "अगर राजा खुद रियाया के माल व इज्जत पर हमला करने लगे, तो फरियाद किसके पास करें?"

"इज्जत किसे कहते हैं, जब आप लोग समझेंगे, तब दूसरे लोग भी आपकी इज्जत लेने की हिम्मत न करेंगे।" स्वामीजी ने कहा, "अभी तो एक-दूसरे को बेइज्जत करके अपनी इज्जत बढ़ानेवाला हजार वर्ष से एक-सा चला आता हुआ कायदा आप लोग अख्तियार किये बैठे हैं।"

लोग कुछ समझे नहीं, समझने की उत्सुक आँखों से देखते रहे।

स्वामीजी फिर बोले, "आप लोग एक दिन में न समझेंगे। क्योंकि ठगने और ठगा जाने की आदत आप लोगों की रग-रग में भर गयी है। महाजन, जमींदार, वकील, धर्म, समाज और भाइयों से ठगा जाना आप लोगों का स्वभाव बन गया है। आप लोगों के दिल के आइने में मतलब गाँठने का जो जंग लगा है, वह एक दिन में साफ न होगा, और इसलिए अभी माल व इज्जतवाला चेहरा आप लोगों को न दिखेगा। कुछ दिनों बाद कुछ साफ होने पर देखियेगा। आप लोग कहें, तो इसके लिए कोशिश की जाय।" लोगों ने समस्वर से सम्मति दी। स्वामीजी ने कुछ समय तक ठहरने का वादा किया। लोगों को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। दूसरे दिन पुन: इस प्रसंग पर बातचीत करने के लिए गाँव-भर की जनता को पिछले पहर एकत्र होने को स्वामीजी ने आमन्त्रित किया।

सब लोग स्वामीजी का रुख समझकर चलने लगे। व्रजकिशोर को अपने ब्रह्म-ज्ञान का सच्चा अधिकारी समझकर स्वामीजी ने कुछ समय तक रहने के लिए रोका।

उठे हुए लोग कुछ दूर जा आपस में स्वामीजी के अन्तर्यामित्व पर आश्चर्य करने लगे कि व्रजकिशोरवाला हाल स्वामीजी ने जरूर समझ लिया, नहीं तो रोकते क्यों। फिर गाँव के भाग्य की प्रशंसा करने लगे कि ऐसे मौके में स्वामीजी का आना ईश्वर की इच्छा का खास मतलब रखता है।

एकान्त हो गया। व्रजकिशोर को देखकर स्वामीजी राख के भीतर मुस्किराये। व्रजकिशोर इस अद्भुत तरह की बातें करनेवाले, दूसरों की चिलम का धुआँ पीनेवाले स्वामीजी को शून्य दृष्टि से देखता रहा।

"तुम क्या करते हो ?" स्वामीजी ने पूछा।

"अभी-अभी बेकार हो गया हूँ। इससे पहले तअल्लुकेदार मुरलीधर के यहाँ कुछ दिनों नौकर हो गया था।"

"फिर ?"

"फिर एक दिन कमिश्नर साहब इलाके से तीस मील दूर हरखा वन में शिकार खेलने आये। मुझे हुकुम हुआ, उनकी रसद, जिसमें मुर्गियाँ भी थीं, वहाँ लेकर जाऊँ।

"मैं हाउस-होल्ड इन्स्पेक्टर था। मेरे मातहत जितने आदमी थे, सब हिन्दू थे। तअल्लुकेदार साहब के मकान के अन्दर किसी मुसलमान की पैठ नहीं, पर मकान से बाहर, हिन्दुओं की आँख बचाकर हिन्दू-मुसलमान में वह भेद-भाव नहीं रखते। वक्त बहुत थोड़ा था। मुर्गियाँ खरीदकर लानेवाला कोई न मिला। हिन्दू-नौकरों ने मुर्गी छुने से पहले नौकरी छोड़ना मंजूर किया। तीन-चार मुसलमान नौकर थे। पर वे बगीचे की कोठी में, खास आदमियों में थे। उन पर सेक्रेटरी साहब का हुक्म था। कस्बे में एकाएक बेकार मुसलमान न मिला। दस बजेवाली मोटर भी निकल गयी। मैं हैरान हो रहा था कि किसी ने तअल्लुकेदार साहब से जड़ दिया कि मैं साहब की मुर्गियाँ लेकर अभी नहीं गया। अब वक्त पर मुर्गियाँ पहुँच भी नहीं सकती थीं। तअल्लुकेदार साहब ने मुझे बुलाया, और आग हो गये। रह-रहकर होंठ चबाते, मुट्ठियाँ बाँधते और तू-तुकार करते रहे—अबे ब्राह्मण के बच्चे, अगर आदमी नहीं मिले थे, तो तू किस मर्ज की दवा था, तू क्यों नहीं ले गया, यह काम तेरा था या मेरा—अबे बोल ?—मैंने जो तार कर दिया कि आपके वास्ते रसद और मुर्गियाँ जा रही हैं, इसका क्या जवाब दूँ ? मैं इसका क्या जवाब देता ? फिर हुक्म हुआ, इसे कान पकड़कर निकाल दो।" व्रजकिशोर के आँसू आ गये—"फिर इसी तरह निकाल दिया गया। यहाँ मा घर देखती थी, वहाँ बहन, वह ब्याह के तीसरे महीने विधवा हो गयी है, भोजन पका देती थी। निकाला जाने पर डेरे गया, तो बहन ने कहा, तुम नहीं गये, अच्छा हुआ; माधव की अम्मा कहती थीं, आज रात को जमींदार के लोग मुझे पकड़ ले जाते। उनके यहाँ ऐसा करना कुछ बुरा नहीं, कोई बड़ी बात नहीं, रोज का काम है। यह गाँव भी उन्हीं से है, स्वामीजी, सदा शंका लगी रहती है।" युवक उदास आँखों से स्वामीजी की ओर देखने लगा।

स्वामीजी की पलकों पर दूरतर भविष्य का निकट छायापात स्पष्ट था।

दोनों बड़ी देर तक मौन रहे। कितनी करुणा उन पलकों पर थी ? व्रजकिशोर को ऐसी मौन सहानुभूति में प्रकट स्नेह आज तक नहीं प्राप्त हुआ। उसने आश्वस्त होकर कहा, "स्वामीजी, समय बहुत हो चुका, चलकर मेरे यहाँ भोजन करने की कृपा कीजिए।"

स्वामीजी सहमत हो, मन्दिर में अपने कपड़े रख कमर में एक दूसरा वस्त्र बाँधकर व्रजकिशोर के साथ चल दिये।

सादर स्वामीजी को बाहर कम्बल पर बैठाल भीतर जा थाली लगवाकर बुलाया। हाथ-पैर और मुँह धोकर स्वामीजी भोजन करने बैठे। भ्रम, कभी न

करने से याद न रही—स्वामीजी के मुँह की राख धोने के साथ धुल गयी। उस कान्तिमान् चेहरे को कुछ विस्मय के साथ व्रजकिशोर देखता रहा।

रसोई में उसकी बहन वीणा थी। अनावृत मुख, शुभ्र कुन्द-कलिका-सी निष्कलंक, तुषार-हत वाष्प-व्याकुल कमलनेत्र; किसी चित्रकार ने जैसे करुणा की सोलह साल की तस्वीर खींच दी हो; एक नजर स्वामीजी को देखकर, सभय प्रार्थना से पूर्व भोजन की पूर्ति के लिए तत्पर।

कितनी करुणा भारत की झोंपड़ी-झोंपड़ी में है? स्त्री आँख की पुतली-सी नाजुक है, हमेशा पलकों के दुहरे परदे में बन्द रहती है, जब किसी साधारण भी अनिष्ट की सम्भावना होती है;---मायका और ससुराल, कार्य सबसे सूक्ष्म—केवल दर्शन, पर वह कठोरतम कार्यों का कारण है। संसार की प्रति प्रगति की सुलोचना स्त्री ही नियामिका है—-स्वामीजी खाते हुए सोचते रहे—क्या एक बाजू कतर देने पर चिड़िया उड़ सकती है? स्त्रियों की दशा क्या ऐसी ही नहीं कर रक्खी यहाँ के कल्मष में डूबे, धर्म को ठेका कर रखनेवाले लोगों ने?

"क्या नाम है इसका?" स्वामीजी ने पूछा।

"वीणा, स्वामीजी," व्रजकिशोर ने उत्तर दिया।

वीणा सजीव चंचल हो गयी। स्वामीजी चुपचाप भोजन कर, हाथ-मुंह धो, बाहर गये।

चौदह

विजय के प्रयत्न से साधारण जनों की सहानुभूति बादलों के छिन्न, कटे टुकड़ों की तरह ग्राम्य आकाश घेरकर एकत्र होने लगी। शीतल, सत्-समीर के मन्द-मन्द झोंके हृदय का पहला ताप हरने लगे। ऋतु बदल गयी। शिक्षा के जल से उर्वरा भूमि भीग गयी। श्यामल सजल मसृण तृण-बाल एक साथ सिर उठाकर पूर्ण प्रीति से लहराने लगे। हवा के साथ बँधकर एक तरफ झुकना पहले-पहल सीखा। ज्यों तृण-संकुलता बढ़ने लगी, स्थानीय पशु-वृत्ति उसे चलकर जीवन की पुष्टि के लिए त्यों-त्यों प्रबलतर, उच्छृंखल हो चली।

देहात के जमींदार लोग किसानों का यह संगठित शिक्षाक्रम देखकर घबराये। प्रकाश मिलने पर स्वभावतः लोगों को अँधेरे की स्थिति, दुःख आदि मालूम हो जाते हैं, और उनका पहला वह भय दूर हो जाता है। विजय के ओजस्वी रूप के भीतर जो शिखा साधारण जनों को दिखी, वह इतनी उज्ज्वल पहले किसी के भीतर न दिखी थी, इसलिए देहात के लोग आज तक आत्म-परिचय-वंचित रह गये थे; और, ज्यों-ज्यों उन्हें अपने हृदय की ज्योतिर्मयी महिमा-मूर्ति से परिचय मिलने लगा, और सबको एक ही जग-विटप के मनुष्य सुमन होने का ज्ञान-सूत्र

प्राप्त हुआ; उसका पूर्वरूप, जिसमें वह जमींदार के क्रीतदास, ब्राह्मणों के चिर-सेवक और अपने एक दूसरे भाई पर प्रहार करने को उद्यत पुलिस के हाथ के हथियार थे, बदलने लगा; जमींदारों, ब्राह्मणों और पुलिस के कांस्टेबिलों-चौकीदारों की त्यों-त्यों त्योरियाँ चढ़ने लगीं।

यदि ताल की मछलियाँ जाल से निकल जाने की कोशिश करें, तो धीवर लोग सारा जल सींचकर उन्हें पकड़ेंगे, यह प्राकृतिक नियम है। विजय के कृत्यों से विजित जमींदार और कुछ और-और लोग इसी प्रकार पहले जाल डालकर फिर जल सींचने का उद्योग करने लगे। पहले, जब जबानी डाँट-फटकार बेकार हुई, तो बड़े साहब के यहाँ विजय के नाम किसानों को बरगलाने की अर्जियाँ देने लगे; कुछ समय तक इसका कुछ असर न होता हुआ देखकर कानूनी चालों से किसानों को किश्ती मात करने पर तुले। पीछे पुलिस और स्थानीय प्रतिष्ठित ब्राह्मण, क्षत्रिय और कायस्थों का बल था, जो गोल पेंदेवाले लोटे की तरह सब तरफ लुढ़कते हैं; जरा इशारा चाहिए; उनका भरा जल ढल जाता है, इसकी उन्हें परवा नहीं; वे खाली रहकर ज्यादा ठनकना चाहते हैं--आवाज-आवाज पर बोलना।

विजय का दीन-दुखियों में बल था। यद्यपि दिल से उसे सभी मानते थे। दीन जनों में सामाजिक और व्यावहारिक कमजोरियाँ-ही-कमजोरियाँ रहती हैं। पड़ोस के जमीदारों ने यहीं से अपनी कामयाबी की नींव डालना शुरू किया। गरीब होने के कारण अधिकांश किसान गाँव और पड़ोस के महाजनों के कर्जदार थे। किसी-किसी का लगान भी बाकी था। जमींदार लोग किसानों की अवस्था जानते थे कि गरीब हैं, कुछ दे नहीं सकते, अगर दावा कर देंगे, तो रुपये कुछ और अदालत में व्यर्थ खर्च होंगे, और वसूल कुछ न होगा। इसलिए अगली फसल तक धैर्य रखते थे, और फसल होने पर कुल बकाया और हाल का जो कुछ होता था, वसूल कर लेते थे। अगर किसान किसी महाजन का भी कर्जदार हुआ, तो उसकी रास की लाश पर श्वान और गीध की, अपनी-अपनी सुविधानुसार, झपट होती थी, एक दूसरे की आँख बचाकर नोच लेते थे। पर अब के मिलकर देहात की सामाजिक और जमींदारी प्रतिष्ठा कायम करने के स्वार्थ की गन्ध से रोचक निश्चल उद्देश से जमींदार और महाजनों ने किसानों को तंग करने की सोची। किसानों का सबसे बड़ा कसूर यह है कि वे पहले की तरह नहीं डरते; लगान के अलावा वाजिब-उल्-अर्ज से अधिक जो रकम और परिश्रम किसानों से लिया जाता था---हली, भूसा, रस, पुआल, सिंचाई का काम आदि, अब नहीं देते; और ऐसा देखते हैं, जैसे परम मित्र हों।

दबे हुए जो होते हैं, दबाना उनका स्वभाव बन जाता है। और जब न दबनेवाली वृत्ति बढ़ती है, तब दबनेवाली वृत्ति भी अपनी उसी शक्ति से बढ़ती रहती है। फिर जिसमें शक्ति अधिक हुई, उसकी विजय हुई। जमींदारों ने अपने एक बड़े स्वार्थ की रक्षा के लिए 'अर्ध तजहिं बुध सर्बस जाता' वाली नीति पकड़ी। वसूल करने के अभिप्राय से नहीं, तंग करने के विचार से बाकी लगान का दावा दायर कर दिया। आसपास के चुन-चुनकर गरीब किसान लिये गये। सम्मन जारी हुए। पर जिन-जिनके नाम आये, उन्हें पता भी न चला, और सम्मन तामील हो गये। किसी में लिखा गया, सम्मन

नहीं लेता, भग गया। साथ दो गवाह भी हो गये। किसी में लिखा गया, घर से बाहर नहीं निकलता, घर में है, इसलिए दरवाजे पर सम्मन चस्पाँ कर दिया। दो गवाहों के दस्तखत। इसके बाद एकाएक पास-पड़ोस के उन गाँवों में, उन्हीं-उन्हीं किसानों के नाम वारण्ट। सब पकड़कर बैठाये गये। गाँव में खलबली मच गयी। स्त्रियाँ ऊँचे, करुण स्वर से स्वामीजी के नाश के लिए हाथ उठाकर ईश्वर से प्रार्थना करती हुई रोने लगीं। कोई विलाप करती हुई अपने महाजन के पास दौड़ी, कोई गाँव के प्रतिष्ठित धनी सज्जन ब्राह्मण-कायस्थ के मकान की तरफ चली। कोई जमींदार के पैरों पड़ने लगी। कोई जमानत के लिए चाहिए, नहीं तो सीधे हवालात बन्द किये जायँगे। किसानों में किसी की हैसियत ऐसी नहीं, जिसकी जमानत मंजूर हो। चारों तरफ से सधा काम, सरकार के लोग, जमींदार, महाजन-सब सधे। बेचारे खेत जोतनेवाले सीधे किसान, अदालत और पुलिस के नाम से डरनेवाले, हवालात के ताप से सूख गये। लगान बाकी था ही, अदालत में झूठ कैसे कहेंगे; जमींदार के कागजात झूठ नहीं हो सकते। सरकार का लगान बाकी है, इसलिए सजा जरूर होगी। ईश्वर पर विश्वास रखकर, विश्वाम के बल पर अनहोनी को सब प्रकार सिद्ध करने की जिनकी आदत है, उनके लिए हवालात के बाद सजा तक की कल्पना कर लेना कोई बड़ी बात नहीं। जब लोगों ने सोचा कि पता नहीं, कितने दिनों तक हवालात में बन्द रहना पड़ेगा, और वहाँ भंगी का बनाया भोजन भी करना पड़ता है, नहीं तो कोड़े पड़ते हैं, अगर सजा हो गयी, तो लड़के-बच्चे मर जायँगे, दीन-दुनिया दोनों तरफ से गये, लौटकर रोटी देनी पड़ेगी, तब, चिरकाल की संचित अपनी प्यारी कायरता के सुख की याद कर-कर जमींदार से जुदा होने का अपराध पूरे मन से स्वीकार कर, बालकों की तरह फूट-फूटकर रोने लगे। गाँव के महाजनों ने जमानत देने से इनकार कर दिया। हर गाँव से एक-एक, दो-दो आदमी स्वामीजी के पास मदद के लिए आये, और अपने दुख का बयान कर रोने लगे। विजय ने सबको समझाकर कहा कि हवालात सबको चले जाने के लिए कहो, पेशी के दिन और-और लोगों को लेकर हम आते हैं, हवालात में फाँसी नहीं हो रही, और अपने हक के लिए और सत्य के लिए लड़ रहे हो, डरो मत। पर इसका लोगों पर कुछ प्रभाव न पड़ा। क्योंकि हली न देने में अपना फायदा किसानों को देख पड़ा था, अब नुकसान सामने है। स्त्रियाँ तथा और-और किसानों के भाई-बन्धु समस्वर से कहने लगे, हमें इसी स्वामी ने चौपट कर दिया, हमें तो अपने जमींदार के राज में सुख है। हाथ जोड़कर सब प्रार्थना करने लगे, अब के कसूर माफ कर दिया जाय, मालिक अब कान पकड़ते हैं, ऐसा काम कभी न करेंगे—तुम जो राह निकालोगे, उसी से चलेंगे। पर किसी की न सुनी गयी। चपरासी, कांस्टेबिल, जमींदार और कुछ हर गाँव के प्रतिष्ठित लोग गिरफ्तार किसानों को लेकर थाने की तरफ चले। कुहराम मच गया। रोती-बिलखती, अपने जमींदार के पैरों पड़ती हुई, धूलि-धूसर किसानों की स्त्रियाँ भी गाँव की हद तक आयीं, और एक जगह पछाड़ खाकर ऊँचे स्वर से बार-बार करुणा-मिश्रित प्रार्थना करने लगीं।

किसी की एक न सुनी गयी। सब थाने हाजिर किये गये। हवालात की तरफ

देखकर बड़े दुख से उभड़-उभड़कर सब रोने लगे। हाथ जोड़कर बार-बार अपने जमींदार से कृपा की भीख चाहने लगे। उन्हें हर तरह हारे हुए देखकर, उनसे यह मंजूर करा कि कभी अब स्वामीजी को कोई एक मुट्ठी भीख न देगा, जो पास बैठेगा, उसे जुर्माना पाँच रुपया देना होगा, मुकदमा दायर करने में जो खर्च हुआ, उसका दूना लिखकर उस पर अँगूठा-निशान और साथवाले पड़ोस तथा गाँव के म ाजनों की गवाही करा जमींदारों ने उन्हीं से किसानों की जमानत भी लिखा दी। सब लोग जैसे यम के फन्दे से छूटे।

दूसरे ही दिन थानेदार साहब सदल-बल आ धमके, और स्वामीजी को गिरफ्तार कर लिया। जमींदारों ने ऐसा ही माया-जाल रचा था। स्वामीजी का चालान हो गया, सुनकर रहे-सहे लोगों की हिम्मत भी पस्त हो गयी। गाँव-गाँव यह आतंक फैल गया। गाँवों में जो साधारण-से पढ़े-लिखे लोग किसान-बालकों को पढ़ानेवाले मास्टर थे, गाँव छोड़कर शहर भाग गये। बालकों ने भी पाठशाला जाना बन्द कर दिया। जमींदार और महाजन लोग रास्ते में मिलने पर आँख दबाकर हँसने लगे।

स्वामीजी का जिला-जेल चालान कर दिया गया। अदालत में थानेदार को शहादत पेश करने की तारीख मिली। मुकद्दमा राजद्रोह पर था। थानेदार कृपानाथ के गाँव मदद के लिए आये। जितने किसान स्वामीजी के भक्त थे, सबको कृपानाथ ने बुलवाया, और थानेदार की तरफ से साक्ष्य के लिए जाने को कहा। दूसरे गाँव के भी किसान लिये गये। किसी में यह हिम्मत न थी, जो गवाही देने से इनकार कर देता, फिर थानेदार साहब ने अपनी इच्छा के अनुसार सबको सिखला दिया कि यह-यह कहना।

पेशी के दिन विजय ने देखा, बुधुआ पहला गवाह है। तरह-तरह की बातों से 'एकं सद्विप्राः बहुधा वदंति' यह उक्ति राजद्रोह के सम्बन्ध में सबने साबित की। विजय की आँखों से आँसू बह चले, किसानों की दशा के विचार से। विचारक को मालूम हुआ, स्वामीजी को कुछ नहीं कहना; तब एक साल की सजा कर दी। किसान अपनी पूर्वस्थिति में दाखिल हो गये।

पन्द्रह

कुछ दिनों बाद, हृदय का उत्सुक उत्स विजय के सुख-पुर की ओर शोभा के रहस्य-समुद्र से मिलने के लिए अजित को भीतर से धकेलने लगा। अजित का जैसा कौतुक-प्रिय पहले से स्वभाव था, वह कल्पना-लोक में लीन, मित्र की शून्य हृदय की शोभा को, एक चिह्न के सहारे प्रयत्न पर युगों की लुप्त श्री के अन्वेषक की तरह, पत्र-मात्र के आशय से खोजने के लिए चला। अज्ञान, भ्रम, कल्पना, उप-

कथन तथा घटनाओं की कितनी मिट्टी के नीचे ऐसे पत्र की सुहृत् लेखिका अपनी चिर निर्मल धवल धौत शोभा लिये रत्न-प्रभा की तरह, अथाह जल-तल में शुक्ति की तरुण-मुक्ता-सी, अपने जीवनोद्देश पर यह शेष-पत्र-पुष्पार्पण कर पतझड़ के समय दारु-देह की अदृश्य सुमनावलि की तरह रूप-भार सुरभिवाली यह निरुपमा कहाँ छिपी होगी ? यदि ताप से दह-दहकर क्षीण से क्षीणतर होती हुई अपने ही प्रिय-पद-चिह्न में लीन हो गयी हो, तो ? उसे मैं कहाँ खोजूंगा ? इस प्रकार अनेकानेक काल्पनिक रूप गढ़ता-बिगाड़ता हुआ, प्रगतिशील जीवन-यान के मानसिक उधेड़-बुन में पड़े हुए पथिक की तरह पथ पार करता हुआ अपने उसी वेश में वह विजय की ससुराल के प्रान्त भाग के एक प्रान्तर में पहुँचा, और एक पेड़ के नीचे, रास्ते के किनारे, कुछ लकड़ी एकत्र कर, धूनी रमाकर ध्यान में बैठ गया।

एक स्त्री सिर पर एक भार रक्खे आती हुई देख पड़ी। सजग हो, आसन मारकर साधु ने पलकें मूंद लीं। खुली, उसरीली उस काफी लम्बी-चौड़ी भूमि के बाद विश्राम करने की यहीं एक सुखद छाँह थी। तब तक काफी जाड़ा नहीं पड़ रहा था। साधु को देखकर मनहारिन की आँखों का कौतुक बदल गया। थक भी चुकी थी। अपना हल्का भार उतारकर, तृप्ति की लम्बी साँस छोड़कर बैठ गयी। बाबा-जी से अपने फायदेवाली बातें सोचने लगी। बाजार के लोग, चाहे शहर के हों या देहात के, स्वभावत: खबरें प्राप्त करने के इच्छुक, कौतूहली होते हैं। कोई नयी खबर बाबाजी से मिल जाय, जैसी अक्सर साधुओं से अब तक उसे मिलती रही है, तो घर-घर सुनाती हुई, स्त्रियों को उभाड़कर, आशा में बाँधकर, अपना माल ज्यादा बेच सकेगी। मुमकिन, कोई पुरस्कारवाली बात बाबाजी से मिल जाय, इस गरज से कुछ विश्राम कर, उठकर बाबाजी के पास जा, हाथ जोड़कर दण्डवत् की। आँखों में हँसती रही। वह बहुत बार बाबाजियों से मिल चुकी है। वे भिन्न-भिन्न अनेक रूपों से उसके सामने आ चुके हैं। उनमें इन्द्रजाल का भण्डार, ऐयाशी के गुप्त रहस्य, लड़के होने के उपाय, चोर-डाकुओं के पते, वशीकरण-मन्त्र और विधाता से न हो सकनेवाली कितनी ही घटनाओं का संघटन प्रत्यक्ष कर चुकी है— जैसे किसी स्त्री के प्रेमी को, जो हजार मील दूर परदेश में कार्यवश रहता है, रात ही-भर में प्रेमिका की खबर दे आना, जो अपढ़ है, और सुयोग न मिलने के कारण पत्र लिखवाने से लाचार; ऐसा ही किसी पुरुष की ओर से पर्दे के साथ पर्त के भीतर रहनेवाली स्त्री के लिए करना; मन्त्र-शक्ति से भरी हुई राख हाथ में लेकर नाम के साथ फूंक देने पर लाख योजन दूर बैठे हुए दुश्मन का उसी वक्त खात्मा हो जाना; दी हुई रोली का तिलक लगाकर चलने से दूसरों का तिलकवाले को न देख पाना; बाबाजी का दिया हुआ कंकड़ सिर पर रख, साफा बाँधकर जाने से मुकद्दमा जीत जाना आदि-आदि। जहाँ मुश्किल मुकाम देखते थे, वहाँ बाबाजी लोग अनुपान ऐसे ही बतला देते थे, जो उसके सीधे उपाय के ही अनुसार टेढ़े होते थे। अत: फल न होने पर अविश्वास करने का कारण न रह जाता था। वशीकरण आदि पर तो मनहारिन को स्वयं विश्वास है, क्योंकि शोभा पर उसने इसका प्रयोग एक बाबाजी से कराया था, और उसके मा-बाप इसी के बाद मरे थे, और वह हाथ भी आ गयी थी। पर चूंकि, बाबाजी के कहने के अनुसार, हाथ आने के

दूसरे दिन गाँव से न हटायी गयी, इसलिए दूसरे के साथ चली गयी, मन्त्र की शक्ति उसे दूसरी राह से निकाल ले गयी; क्योंकि उसे निकल जाना ही था !

कौतुक से मिली भक्ति से ज्यों ही उस स्वार्थ की पुतली को सामने झुकते हुए अजित ने देखा, त्यों ही आँखें मूँदकर, अपना प्रभाव डालने के उद्देश से, जोर से बोला, "दूर हो, दूर हो, मैं नहीं बचा सकता तुझे ।"

मनहारिन के होश उड़ गये । जितने पाप उसने किये थे, छाया-चित्रों की तरह उनकी तस्वीरें आँख के सामने सजीव होकर तरह-तरह की विकृत आकृतियों से उसे डराने लगीं और उसने सोचा कि मेरे पापों का हाल बाबाजी को मालूम हो गया। उसका तमाम जीवन पाप करते-करते बीता है । अजित भी उसकी मुरझायी श्री एक बार देखकर, पलकें बन्द किये, अपनी ताक में, चुपचाप बैठा रहा ।

"क्यों बाबाजी, क्या देख रहे हैं आप ?"

"तू क्या नहीं जानती कि क्या देख रहे हैं ? फल देख रहे हैं, जो अब तू भुगतेगी ।"

अजित को फल-फूल का कुछ भी हाल मालूम न था । पर आदमी के पुतले में वासना के फूलों से भोग के कड़ुवे फल लगते हैं, इसका अनुमोदन किताबों में उसे मिल चुका था, और उदाहरण भी अपनी ही आँखों कई प्रत्यक्ष कर चुका था । कानपुर के सरसैया घाटवाले रास्ते के दोनों ओर जो साधु बैठे रहते हैं, उनमें एक के पास उसका एक मित्र गया था । साधु के पास प्रणाम करने के लिए जो जायगा, वह जरूर पापी होगा; अपने एक या अनेक कृत पापों के स्मरण से जब उसे चैन नहीं पड़ता, तब वह साधु की तरफ दौड़ता है कि प्रणाम करके अपने पाप का बोझ दूसरे पर लाद दे । साधु इस तत्त्व को खूब समझते हैं । उस मित्र को उस साधु ने फटकारा, तो उसने सारा किस्सा बयान कर दिया, और ऊपर से पूजा भी चढ़ायी । अजित को एक हाल और मालूम था । एक डॉक्टर थे । वह आध्यात्मिक चिकित्सा करते थे । लखनऊ में रहते थे । आध्यात्मिक चिकित्सा का नाम सुनकर अधिक-से-अधिक लोग उनके बँगले पर आने लगे । डॉक्टर को रोग बतलाना धर्म है । और, पीड़ा के प्रशमन के लिए स्वभावतः रोगी उस समय सारल्य की मूर्ति बन जाता है । इस तरह, कुछ दिन आध्यात्मिक चिकित्सा करने के बाद, डॉक्टर साहब ने संसार के रोगियों की संख्या में मालूम कर लिया कि एक विशेष रोगवाले प्रतिशत सत्तर से अधिक हैं । फिर तो डॉक्टर साहब सिर्फ चेहरा देखकर ही रोग के लक्षण बतलाने लगे । उनके उसी खास रोग के कोठे में जब सैकड़ा सत्तर आदमी पड़ते हैं, तब केवल चेहरे से रोग की पहचान कर रोग के साथ लोगों के चरित्र की कथा कहने लगे, और डॉक्टर साहब को आसानी से सैकड़ा सत्तर नम्बर मिलने लगे । बड़ा नाम हुआ । पर डॉक्टर साहब को यह ख्याल न रहा कि उनकी यह चारित्रिक पहचान केवल लखनऊवालों पर ज्यादातर पूरी उतरती है, अब नाम फैल गया है, और बाहर से भी लोग आने लगे हैं, जो ऐसे मर्ज में मुब्तिला अक्सर नहीं होते । लिहाजा उन्होंने बड़ी भारी गलती की । देहात से एक सूबेदार साहब आये । उम्र चालीस साल, खासे तगड़े-पट्ठे । पर बदन में एकाएक पारा फूट आया था, जिसके दाग चेहरे पर भी जाहिर थे । डॉक्टर साहब धाक जमाने के इरादे से चेहरा देखते

ही गालियाँ देने लगे। सूबेदार साहब ने सोचा, यह शायद आध्यात्मिक चिकित्सा-प्रणाली के अनुसार डॉक्टर साहब मेरे रोग को गालियाँ दे रहे हैं, जैसे किसी के सिर ब्रह्मराक्षस आने पर लोग उस आदमी से नहीं, ब्रह्मराक्षस से बातें करते हैं। पर जब सूबेदार साहब को ही वह कहने लगे—"तू ने ऐसा (सम्बन्ध-विशेष का उल्लेख कर) किया है, बड़ा नीच है, आदि-आदि," तब सूबेदार साहब की समझ में बात आयी कि यह रोग पर नहीं, मेरे ही झूठ इतिहास पर व्याख्यान हो रहा है। बस, डॉक्टर साहब को देहाती सूबेदार साहब ने उलटा सिर के बल खड़ा कर दिया, और अपने चार सेरवाले चमरौधे उपानहों से चाँद गंजी कर दी; फिर मेडिकल कालेज रोग की परीक्षा करवाने चल दिये। वहाँ डाक्टर की पूछताछ से मालूम हुआ, सूबेदार साहब के पिता को यह रोग था, और सूबेदार साहब के पैदा होने से पहले इनके बीज उनमें आ चुके थे।

अजित इसीलिए चारों ओर से चौकस है। किसी प्रकार भी मनहारिन के मन में कुछ झूठ की शंका हुई कि यहाँ उसके चारों ओर अथाह गहराई हो जायेगी, फिर बुद्धि की बल्ली नहीं लग सकती, कुहरे में प्रकाश की तरह सत्य-रहस्य उसकी अपनी पृथ्वी से दूर ही रहेगा।

बाबाजी को एक समझ लेनेवाली आवाज पर चुपचाप बैठा हुआ देख मनहारिन ने समझा, बाबाजी जरूर सबकुछ समझ गये, यह दूसरों से कह देंगे, तो लोग मुझे जीती गाड़ देंगे, और अगर मेरे खिलाफ कोई कार्रवाई होती होगी या कोई खुदाई मार पड़नेवाली है, तो उसे भी यह देख चुके होंगे, नहीं तो ऐसा क्यों कहते। यह जरूर कोई सच्चे साधु हैं, कैसा चेहरा जगमगा रहा है! जो होना है, उसके बचाव के लिए इन्हीं की शरण क्यों न लूँ?

ऐसा निश्चय कर बड़ी भक्ति से उसने प्रणाम किया, और हाथ जोड़े हुए खड़ी रही।

अजित समझ गया कि यहाँ दाल में काला अवश्य है, और पेंचदार शब्दों में फिर कहा, "अगर साधुओं से भी छिपाना है, तो हाथ जोड़कर खड़ी क्यों हो? जाओ। जब तक आ नहीं पड़ती, तब तक आदमी की पुतली नहीं समझना चाहती।"

मनहारिन को ऐसा जान पडा कि अब कुछ हुआ ही चाहता है। घबराकर बोली, "महाराज, पेट पापी चाहे जो करा ले, थोड़ा है। अब आप ही मुझे बचाने-वाले हैं।"

पूरा विश्वास हो जाने पर कि यह कुछ या बहुत हद तक बदमाश जरूर है, उस पर अपनी दूसरी दूरदर्शिता का प्रभाव डालने के उद्देश्य से गम्भीर हो अजित ने दूसरी भविष्यवाणी की. जिस तरह की विजय से सुनकर वहाँ के जिलेदार पर उसकी धारणा बँध गयी थी, "इस गाँव जिलेदार, उफ्! कितना टेढ़ा आदमी है! समझता है उसका मतलब कोई नहीं जानता। अरे बच्चे, तू ईश्वर की आँखों में धूल झोंकेगा? उसके बन्दे सबकुछ जानते हैं। एक पहर से लगातार उसके भूतों से लड़ रहा हूँ. विना भूतों को उतार दिये साधु गाँव में भिक्षा लेने कैसे जाय? पर भूत नहीं उतर रहे। उसके दिल में तो कहीं रत्ती-भर भलाई का ठौर नहीं,

इसलिए भूत छोड़ भी नहीं रहे !"

अजित आप-ही-आप जोर से खिलखिलाकर हँसा, "तुम्हारे भूत सब बयान कर रहे हैं। अच्छा, ऐसा भी किया ! अच्छा, यह भी हुआ !"

यह कहकर मुस्किराती आँखों से मनहारिन की तरफ देखा। उसको जिलेदार पर होनेवाली बातें सुनकर काठ मार गया था। उसके अपने भी पाप जिलेदार के साथ किये हुए याद आ रहे थे। स्वामीजी जान गये। समझकर उनके देखने के साथ बोली, "इसी ने मुझसे कहा था महाराज, और रुपये का लालच दिया था कि पच्चीस रुपये दूंगा, अगर शोभा को ला दे। बड़ा बदमाश है, उसके बाप की चार-पाँच हजार की रकम घर में डाल ली। उसे भी बिगाड़ देता, पर वह खुद कहीं चली गयी। बड़ी नेक, बड़ी भोली लड़की थी महाराज ! और पता नहीं, कहीं इसी ने मारकर डाल दिया हो, पर लोग कहते हैं, किसी के साथ भग गयी।"

सिर हिलाकर स्वामीजी ने कहा, "बात तू ठीक कहती है।"

महाराज का मन पा, उनकी कृपा से अपने बचाव की पूरी आशा कर, आप-ही-आप उच्छ्वसित हो मनहारिन कहने लगी, "महाराज, इस गाँव का ताल्लुकेदार, कौन नाम ले मुए का—चार रोज खाना न मिले, पक्का बदमाश है, वही यह सब कराता है, उसी के लिए बेचारी को घर छोड़कर भागना पड़ा।" कहकर एकाएक करुण स्वर से रोने लगी, फिर आप ही आँसू पोछकर कहा, "और रामलोचन की बेटी तो या अल्लाह ! ऐसी गयी, जैसे किसी को पता भी न हो।"

"अच्छा, अब तू जा, कल मिलना, मैं शाम तक उसके भूतों को दो रोज के लिए मना लूंगा।" कहकर स्वामीजी ने पलकें मूंद लीं। मनहारिन उनकी प्रसन्नता से खुश हो, अपनी टोकरी सिर पर रख, गाँव की ओर चली।

सोलह

मनहारिन के पैर तेज उठने लगे। सोचने लगी—कब गाँव पहुँचूं, कब महादेव मिले। अपनी ओर से निश्चित हो गयी थी कि खुदाई मार बाबाजी टाल ही देंगे, दूसरों के लिए कौतुक बढ़ा। महादेव से वह नाराज थी। महादेव उससे काम भी निकालता था, और शेखी भी बघारता था, जैसे उसका मालिक हो। शोभा के मामले में पच्चीस रुपये देने को कहा था, सिर्फ दो दिये थे, और एहसान भी नहीं माना, कहा कि यह सब तो मैंने खुद किया है, तुझे इसीलिए दो रुपये देता हूँ कि तू बुरा न माने। अब वही महादेव अपने पाप के फन्दे में फँसा है। देखूं जरा, क्या कर रहा है। अल्लाह की कसम, जो कभी बाबाजी का नाम बताऊँ। ले अब मजा और देखती हूँ, कौन तुझे अच्छा किये देता है।

सोचती हुई मनहारिन गाँव के भीतर आयी। निकास पर ही जिलेदार महादेव-

प्रसाद का मुकाम, जमींदार का डेरा मिला। चौपाल में चारपाई पर पड़े महादेव-प्रसाद कराह रहे हैं। तीन-चार रोज से कमर में सख्त दर्द है। कुछ बुखार भी है। चारपाई के एक बगल कच्ची मिट्टी के गमले में कण्डे की आग सुलग रही है, थूहड़ और मदार के कुछ पत्ते इधर-उधर पड़े हैं, जैसे सेंक हो रही थी, और ये पत्ते बाँधने के काम से आये गये थे, तीन-चार साल पहले एक वेवा की अटारी से रात को कूदने से कमर में इन्हें चोट आ गयी थी, अब एकाएक उभर आयी है।

महादेव का कराहना सुनकर मनहारिन बड़ी खुश हुई, और बाबाजी पर उसे पूरा विश्वास और अचल भक्ति हो गयी। "अरे जिलेदार साहब," चारपाई के नजदीक आ आवाज दी, "क्या हो गया है आपको? आज पाँचवें दिन मुझे इस गाँव फेरी डालने का मौका मिला है, उस रोज तो आप अच्छे थे।"

"अरे भाई, मर रहा हूँ, और क्या कहूँ।" काँखते हुए महादेवप्रसाद ने कहा।

मनहारिन ने टोकरी वहीं उतारकर रख दी। इधर-उधर देखा, कोई न देख पड़ा। पास जाकर धीमे स्वर से कहा "यह और कुछ नहीं, तुम्हारे ऊपर भूत सवार हैं। गाँव के किनारे एक बाबाजी बैठे उन भूतों से लड़ रहे हैं। कहते हैं—ये सब पापवाले भूत हैं। महादेवप्रसाद के सब हाल बयान कर रहे हैं, और वह जो कुछ कहते हैं, हर्फ-हर्फ सच्चा है। अभी तुम्हें देखा नहीं। पर सारा हाल बयान कर रहे हैं। और एक ही का हाल नहीं, सबका, चाहे जो जाय। मुझसे कहने लगे, मनहारिन, तू दिल से बड़ी भली है, तेरे पेट में छल नहीं रहता, महादेव जिलेदार ने तेरे रुपये नहीं दिये, इसका उसे बड़ा बुरा फल मिलेगा।"

पिछले वाक्य से महादेवप्रसाद को आग लग गयी। पहले जैसा विश्वास हुआ था, वैसा ही अविश्वास भी हुआ कि बिलकुल झूठ कह रही है। लछमन तरकारी लेकर मकान के भीतर गया था, उसे आवाज दी। रुख बदला हुआ देखकर मनहारिन ने अपनी टोकरी उठायी, और यह कहकर कि आप समझोगे, मैं सच कहती हूँ या झूठ, वहाँ से चल दी।

फिर घर-घर बाबाजी के शाम को आने की बात, महादेव के भूतों से लड़ना, मन की बात जान लेना, बहुत पहुँचे हुए फकीर होना, शोभा का रत्ती-रत्ती पता रखना, और सब प्रकार के असम्भवों को क्षण-मात्र में सम्भव कर देना आदि-आदि खूब रँगकर स्त्रियों को सुनाने लगी। बाबाजी के दर्शन के लिए तरह-तरह की कामना रखनेवाली स्त्रियों को उद्ग्रीव कर, पूरा विश्वास भरकर शाम से पहले अपने घर चली गयी। बाबाजी ने दूसरे दिन मिलने के लिए कहा है, इस न नाँघने-वाले उपदेश पर पूरी भक्ति रखने के कारण दूसरी राह से घर गयी। बाबाजी से उस रोज फिर नहीं मिली।

चार बजे के करीब, पिछले पहर, अजित गाँव के भीतर गया। उसे गाँव के कई और लोगों ने आसन मारकर धूनी के किनारे ध्यान करते हुए देखा था। गाँव में जाकर उन लोगों ने भी महात्माजी के आगमन की चर्चा की। मनहारिन पूरे उद्वेग से प्रचार कर ही रही थी। महात्माजी गाँव के किनारे बैठे हुए तपस्या कर रहे हैं, दुपहर बीत गयी है, उन्हें कुछ भोजन न पहुँचाया जायगा, तो गाँव के लिए हानिकर है, इस विचार के, धर्म को प्राणों से प्रिय समझनेवाले कुछ लोग दूध,

मिठाई और भोजन आदि थाली में सजाकर ले गये, पर स्वामीजी ने गम्भीर होकर कहा, "तुम लोगों की सेवा से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, मैं दिन को भोजन नहीं करता, शाम को तुम्हारे गाँव जाने पर करूँगा, अभी मैं एक विशेष कार्य में दत्तचित्त हूँ, तुम लोग लौट जाओ।"

लोग प्रणाम कर, स्वामीजी की प्रोज्ज्वल यौवन की शिखा को राख में ढकी हुई कुहरे के भीतर से सूर्य की सुन्दरता देखकर मन-ही-मन प्रशंसा करते हुए चले गये, स्वामीजी के गाँव जाने पर लोग उनके दर्शन के लिए एकत्र होने लगे। सन्ध्या के बाद अधूरी आकांक्षावाली स्त्रियों ने मौका मिलने पर दर्शन करेंगी, सोच रक्खा था। मनहारिन के मुँह से जैसी तारीफ वे स्वामीजी की सुन चुकी थीं, उन्हें विश्वास हो गया था कि जरा-सी प्रार्थना कभी भी स्वामीजी की कृपा होने पर अधूरी न रह जायगी। जिसके पति को खबर न थी, और जो स्वामीजी से कोई कामना पूरी कर लेना चाहती थी, पति के आते ही स्वामीजी की अनर्गल तारीफ कर दर्शन के लिए भेज दिया, और लोगों के आने पर खुद भी जायगी, यह आज्ञा ले ली।

एक तरफ गाँव के एक बड़े शिवालय में स्वामीजी ठहरे हुए हैं। अभी सूर्यास्त नहीं हुआ। अस्ताचल चलनेवाले सूर्य की किरणों से शिशिर के शीश पर सुनहला ताज रक्खा हुआ है। खगकुल अपने आवास की डाल पर स्नेह-कलरव द्वारा मातृ-स्वरूपा प्रकृति की रानी की सान्ध्य वन्दना कर रहे हैं। नवीन शस्य और सजल शोभा दिगन्त तक फैली हुई मनुष्यों के जीवन की छोटी-बड़ी कल्पनाओं की तरह पृथ्वी की गोद पर लहरा रही है। मधुर मोहक स्वप्न की तरह, मनुष्य के मन को अपनी स्थितिवाली संकीर्णता से भुला, माया-मरीचिका में दूर—दूरतर ले जाकर सुख और ऐश्वर्य का पूर्ण अधिकारी बना रही है। प्रकृति की इसी प्राकृत अवस्था के कारण आज घोर दुःख में पड़ा हुआ मनुष्य कल सुख की कल्पना-मात्र से उसे भूल जाता है। यहाँ के मनुष्य सब ऐसे ही दिखते हैं। सबके चेहरे पर प्रसन्न संसार की माया, प्रशंसा, तृप्ति ही विराजमान है। कल जो तूफान उठा था, जिसमें उनके भरे हुए कितने ही जहाज डूब गये थे, आज उस क्षति का कोई चिह्न उनके चेहरे पर नहीं। वे पहले ही जैसे सुखी, निश्चिन्त हैं। प्रकृति ने, जिसने बाहर से उनका सब कुछ छीन लिया था, आज भीतर से और बाहरवाली विराट् प्रकृति से, जिसके भोग में सबका बराबर हिस्सा है, उन्हें सभी कुछ दे दिया है—वे अभाव का अनुभव नहीं करते। कितने कष्ट हैं यहाँ, कितनी कमजोरियों से भरा हुआ संसार है यह, पद-पद पर कितनी ठोकरें लग चुकी हैं, पर सब लोग फिर भी समझते हैं—वे अक्षत हैं, वे ऐसे ही रहेंगे; तभी पूरी प्रसन्नता से हँसते हैं, और खूब खुलकर बात-चीत करते हैं। वर्षा की बाढ़ की तरह कितने प्रकार के दुःख-कष्ट उन्हें उच्छ्वसित कर, डुबा-डुबाकर चले गये, पर दुःख-जल के हटने के बाद कुछ ही दिनों में सूखकर फिर वैसे ही ठनकने लगे। साधु-दर्शन के लिए तन-मन-धन से आये हुए इन लोगों के प्रमाद-स्वर में तन, मन और धन की ही गुलामी के तार बज रहे हैं। बातें ईश्वर की करते हैं, पर ध्वनि संसार की होती है कि हम बड़े मौज में हैं—ईश्वर की बातचीत खाते-पीते हुए सुखी मनुष्यों का प्रलाप है।

अजित यही सब, चुपचाप बैठा हुआ, सोच रहा था। लोग स्वामीजी की

तारीफ कर रहे थे कि ज्ञान का क्या कहना है, नहीं तो स्वामीजी की उम्र अभी संन्यास लेनेवाली न थी। साथ-साथ थोड़ी उम्र में योग लेनेवाले शुकदेव, नारद, ध्रुव आदि ऋषियों और तपस्वियों के उदाहरण एक के बाद दूसरा पेश करता जाता, बातचीत का सिलसिला धर्म, इतिहास, योग और दर्शन के भीतर से न टूटता था।

जब अपनी वर्तमान स्थिति, सामाजिक दुर्दशा, राजनीतिक हीनता और धार्मिक पराधीनता पर किसी ने भी प्रश्न न किया, तब घबराकर और अयोग्यों को रत्न-राशि देने पर दुरुपयोग के विचार से उन्हीं की मानसिक स्थिति के अनुकूल अजित उपदेश-मिश्रित बातें कहने लगा।

"आजकल गृहस्थों के घर में शुद्ध धान्य नहीं होता, इसलिए साधु को भोजन से पाप स्पर्श करता है, संस्पर्श दोषवाली कथा तो तुम लोगों को मालूम होगी ?" स्वामीजी ने गम्भीरता से कहा।

लोग एक-दूसरे की तरफ देखने लगे। सुगन्ध पुष्प में भी कीट होते हैं। वहाँ ऐसा कोई न था, जिसमें किसी प्रकार का भी धब्बा व्यक्तिगत या पारिवारिक न लगा हो; किसी के पिता पर, किसी की माता पर, किसी की बहन पर, किसी के अपने शरीर पर। सब लोग चौकन्ने हो गये, और अपने साथ-साथ दूसरों के चरित्र की चित्रावली देखने लगे, मन में भरे, तकरार होने पर जिसे गोली की तरह दागते थे। मन प्रशमित हो जाने के कारण सब लोग स्वामीजी की दूरदर्शिता के कायल हो गये।

यद्यपि अजित को लोगों की मुख-मुद्रा से अपने सिद्धान्त की सच्चाई मालूम हो गयी, फिर भी अकारण उसने इधर को रुख नहीं किया। एक स्थविर मनुष्य की ओर देखकर पूछा, "आप लोग यहाँ कैसे रहते हैं ?"

"बड़े अच्छे रहते हैं महाराज, आपकी कृपा से कोई दुःख नहीं।" हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता से उसने उत्तर दिया।

'आज यही नम्रता शक्ति-क्षीणता का कारण है।' मन-ही-मन अजित ने सोचा, 'ये अपने दुःखों को कहने से भी घबराते हैं, सहते हुए मर जाना इन्हें स्वीकार है, कितना पतन है यह !'

कुछ इधर-उधर की बातें हुईं। शाम हो गयी थी। अजित ने अपने कर्म-काण्ड में लगने के लिए कहा। लोग उठकर चले।

रात क्रमशः घनीभूत होने लगी। अजित का दिखाऊ कर्म-काण्ड पूरा हो गया। संस्पर्श-दोष के विषय पर जैसी बातचीत स्वामीजी ने की थी, आनेवाले लोगों में से किसी को भी स्वामीजी के लिए भोजन भेजवाने की हिम्मत न हुई। क्योंकि कहीं स्वामीजी ने संस्पर्श-दोषवाला हाल लोगों से बयान कर दिया, तो नाक जड़ से कट जायगी, यद्यपि उसकी नाक गाँव के बाकी सभी लोगों के मन के हाथों कटी ही रहती थी—एक-दूसरे की नाक गदोरी पर रखकर दिखाते हुए दूसरे से बात-चीत करते हों—ऐसा भाव रहता था।

यह स्पर्श-दोषवाली व्याख्या स्त्रियों के कान तक न पहुँची थी। पहुँचती भी, तो इतना व्यापक अर्थ शायद वे न लगातीं, यद्यपि दूसरों को इस दोष में पतित

देखने की वे ही अधिक अभ्यस्त थीं। इसलिए न लगातीं, क्योंकि उन्हें स्वामीजी से वरदान लेना था।

कुछ रात बीतने पर गाँव से कुछ स्त्रियाँ स्वामीजी के दर्शन के लिए चुपचाप गयीं। जहाँ स्वामीजी टिके हुए थे, वहाँ तक जाने में कोई भयवाली बात न थी। एक पहर से कुछ अधिक रात तक स्वामीजी के पास स्त्रियों की भीड़ रही। उनका चढ़ाव स्वामीजी उन्हीं पत्तलों में धूनी के एक बगल रखवाते गये, और राख उठा-उठाकर हर प्रार्थना की अचूक दवा के तौर चुपचाप देते रहे। बड़े भक्ति-भाव से राख आँचल के छोर में बाँध-बाँधकर स्त्रियाँ लौटती रहीं।

रात डेढ़ पहर बीत गयी। चारो ओर गाँव में सन्नाटा छा गया। लोग घरों में सो गये। अजित भविष्य के छिपे हुए चित्र को कल्पना-शक्ति से तपस्वी की तरह प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न कर रहा था। पर चारो ओर उसे अन्धकार-ही-अन्धकार देख पड़ता है। ऐसे समय उसी की कल्पना मानो नारी-रूप ग्रहण कर भक्त के सामने श्यामा की तरह आकर खड़ी हो गयी।

स्वच्छ-सफेद वस्त्र में अकेली एक युवती स्त्री को सामने खड़ी हुई देख अजित की नस-नस में रक्त-प्रवाह तेज हो गया। इसका क्या कारण, जो इतनी रात को वह युवती स्त्री यहाँ आयी? अपने को सँभालकर दृढ़ स्वर से पूछा, "तुम कौन हो?" युवती धीरे-धीरे बढ़कर उसके निकट आयी, और भूमिष्ठ हो प्रणाम किया।

"महाराज, मेरा नाम राधा है," उठकर हाथ जोड़कर कहा, "शोभा मेरी दीदी है, जब से गयी, उसका पता नहीं मिला। आप तो जानते हैं, मनहारिन मौसी कहती थी, बताइए।"

राधा के कण्ठ की सहानुभूति से अजित को मालूम हो गया कि यह स्नेह-पीड़ित होकर शोभा का पता मालूम करने आयी है।

"तुम्हारी कैसी दीदी है?" स्वामीजी ने पूछा।

राधा सिसक-सिसककर रोती हुई धीरे-धीरे कहने लगी कि वह शोभा के यहाँ टहल करती थी, शोभा के पिता-माता का स्वर्गवास हुआ, उसे महादेव के गाँव के तअल्लुकेदार के यहाँ धोके से ले जाना चाहता था, पर राधा को अपने पति से खबर मिली, उसने शोभा से कहा, उसी रात को वह गायब हो गयी—बगीचे-बगीचे न-जाने कहाँ जाकर छिप गयी है, इसके बाद राधा कानपुर कुछ दिन के लिए गयी थी पर वहाँ शोभा का पता न मिलने से जी ऊबा, तो चली आयी, यहाँ आने पर उसे मालूम हुआ कि उसके स्वामी उसे लेने के लिए आये थे। एक-एक बात अजित पूछता गया, और राधा कहती और आँसू पोंछती गयी।

राधा का ऐसा प्रेम देखकर अजित अपने को छिपा न सका। कहा, "राधा, मैं संन्यासी नहीं हूँ, तुम्हारी ही तरह शोभा की खोज करनेवाला उसके पति विजय का एक मित्र अजित हूँ। यदि मैं कभी शोभा का पता लगा सका, तो पहचान के लिए तुम्हें ले जाऊँगा। यह भेद किसी से जान रहने तक कहना मत। अब मुझे वह बगीचा भी दिखा दो, जिससे होकर शोभा गयी थी।"

वह स्वामीजी नहीं, शोभा के पति विजय का मित्र अजित है, उसकी शोभा दीदी को खोजता हुआ आया है, सुनकर राधा को शोभा के मिलने का सुख हुआ।

मित्र का मित्र, पुरुष हो, स्त्री, मित्र ही है। कितना स्नेह मिलता है ऐसे मित्र से ! राधा कली-कली से खुल गयी। राजी हो, बाहर-बाहर, गाँव के रास्ते छोड़कर वासुदेव बाबा के पास अजित को ले चली। कितना सुख एक साथ चलकर उसे मिल रहा है, अनुभव कर रह जाती है।

सत्रह

कई रोज हो गये, स्वामीजी नहीं लौटे। वीणा अपने ऊपर होनेवाले ताल्लुकेदार के अत्याचार की रोज शंका करती और वीणा के तार की ही तरह काँप उठती है। उसका सहृदय भाई व्रजकिशोर भी उसके लिए सोच में रहता है। विधवा कितनी असहाय और अनावश्यक इस संसार के लिए है। वीणा सोचकर, रोकर, आप ही आँचल में आँसू पोंछ लेती है—'क्या विधवा-जैसी दुखी विधाता की दूसरी भी सृष्टि होगी, जो सखियों में भी खुले प्राणों से बातचीत नहीं कर सकती, भोग-सुखवाले संसार के बीच में रहकर भी भोग-सुख से जिसे विरत रहना पड़ता है, आँख के रहते भी जिसे चिरकाल तक दृष्टि-हीन होकर रहना पड़ता है?'

कैसे दो परस्पर विरोधी संग्राम वीणा के जीवन में छिड़े हैं। एक ओर तो मरुस्थल के पथिक का-सा चित्त सदैव व्याकुल है, दूसरी ओर उसके जीवन की अदृश अप्सरा, अपनी सोलहो कलाओं से विकसित, उसके हृदय के तारों को खींच-खींचकर चढ़ा रही है—प्रति-जीवन की रंग-भूमि में जैसे मृदु चरण उतरकर अपनी वासना-विह्वल नयी रागिनी गाया करती है, गाना चाहती है; यह ज्ञान नहीं कि यह विधवा है—इसके उज्ज्वल वस्त्र पर काले छींटें पड़ेंगे—जीवों को साँस-साँस पर पैदा हुई प्राण-प्रियता में बाँधकर चिर-अधीन कर रखनेवाली प्रकृति देह की विटपी को वासन्तिक पृथुल-पल्लव-भार, सुमनाभरण, सौरभ-मद से भर रही है। मनुष्यों के कानून का कोई मूल्य होता, यदि वह पूर्ण के लिए पूर्ण कुछ होता, तो प्रकृति भी मर्यादा को मानकर, उसके सामने आँखें झुकाकर चलती। चिर-अभ्यास से बँधा वीणा का रुचिर मन भीतर के इस अपार उत्सव में इसीलिए आप-ही-आप सम्मिलित हो जाता है, जब कि यह मन की ही एक स्वतन्त्र रचना है, जहाँ वीणा को उसने संसार के यज्ञ में श्रेष्ठ भाग लेने के योग्य बना दिया है।

तब वीणा अपने एकमात्र आश्रय स्वामीजी को सोचकर, उनकी निश्चल-निश्छल सहानुभूति में डूबकर, स्वप्न के भीतर जैसे मन्द पद-चाप प्रणय से हिलते हृदय से साथ-साथ फिरती हुई स्नेह और सौन्दर्य की अपलक आँखों से देखती रहती है। स्वामीजी को वह क्यों प्यार करती है, वह नहीं जानती; वह प्यार करती है, किसी से कह नहीं सकती; प्यार न करे, ऐसा नहीं हो सकता। स्वामीजी के हृदय में उसके लिए क्यों सहानुभूति पैदा हुई?—वह विधवा है, इसलिए उसका स्वामी

उसकी दृष्टि से सदा के लिए ओझल हो गया है--वह कृपा की पात्री है, इस कारण; और स्वामीजी मन से उसे फिर विवाह कर सुखी होने की आज्ञा देते हैं—इतनी उदारता उसके लिए जब वह दिखा चुके हैं, तब उसके हृदय के देवता उनके लिए अनुदार कब होंगे ? जिन्होंने स्वामीजी के भीतर से उसे इतना दिया था, वे ही उसके भीतर से स्वामीजी को इतना दे रहे हैं।

दिन ढलते-ढलते खबर मिली कि स्वामीजी आ गये। वीणा दूसरों के अश्रुत मधुर स्वर से बज उठी। व्रजकिशोर स्वामीजी के पास गया।

"कोई नयी बात तो नहीं हुई ?" आग्रह से अजित ने पूछा।

"नहीं स्वामीजी, पर शंका है, और कोई तअज्जुब नहीं, जब हो जाय।" व्रजकिशोर ने दुर्बल कण्ठ के श्लथ शब्दों में कहा।

"मैं समझता हूँ, तुम अपनी बहन को लेकर मेरे साथ कानपुर चलो; वहाँ एक मकान तुम्हारे लिए ठीक कर दूंगा, खर्च की चिन्ता न करो; खर्च मैं देता रहूँगा; पर एक भेद मत खोलना; मैं उन्नाव उतरकर, दूसरी गाड़ी से आकर तुम्हें मुसाफिरखाने में, सादी पोशाक में, मिलूंगा, वहाँ तुम्हारा बन्दोबस्त ठीक कर मुझे फिर यहीं लौट आना है; पर स्थायी रूप से इस गाँव में न रहूँगा; तुम कुछ और मत सोचो, मैं तुम्हारी ही तरह एक मनुष्य, तुम्हारा मित्र हूँ। जाओ, आज ही वाली गाड़ी के लिए तैयार कर लो।"

व्रजकिशोर सूख गया। पूछा, "आपका नाम ?"

"मेरा नाम अजित है; पर किसी से कहना मत।"

व्रजकिशोर चला गया। दूसरे दिन वीणा ने कानपुर-स्टेशन पर देखा, स्वामीजी स्वामीजी नहीं, एक सुन्दर नवयुवक हैं।

अट्ठारह

वर्षा के घुंघराले, काले-काले दिगन्त तक फैले हुए बाल धीमी-धीमी हवा में लहरा रहे हैं। उसने सारे संसार को सुख के आलिंगन में बाँध लिया है। प्रसन्न-मुख जड़ और चेतन प्रतिक्षण प्रणय के सुख में तन्मय हैं। पक्षियों के सहस्रों वरभंग निस्तरंग शून्य-सागर को क्षुब्ध कर-कर उसी में तरंगाकार लीन हो रहे हैं। गुच्छों में खुली-अधखुली किरणों की कलियों-सी युवती-तरुणी-बालिकाएँ, जगह-जगह हिंडोरों पर झूलती हुई; इसी प्रकार जनता के समुद्र को सुहावने सावन, मल्लार, कजली और बारामासियों से समुद्वेल कर रही हैं। सुप्ति के स्वप्न में भारत जगने का दुःख भूल गया है।

दिन की इस रात में केवल प्रभाकर जग रहा है। उसी ने इस रूप की मरीचिका को आत्मसमर्पण नहीं किया। अपने कमरे में फ्रांस के विप्लव पर लिखी हुई

एक पुस्तक चुपचाप बैठा हुआ पढ़ रहा है। संसार की जन-सत्ता के विचार-विवर्तनों पर दूर परिणाम तक बहता हुआ चला जाता है।

इसी समय एक वाहक के हाथ एक पत्र मिला। वाहक की चपरास देखकर प्रभाकर समझ गया, पत्र अदालत के किसी हाकिम द्वारा भेजा हुआ है। वाहक अपनी किताब में दस्तखत करा, छाता लगाकर, दूसरे पत्र जल्द-जल्द पहुँचाने के उद्देश से चला गया। प्रभाकर ने चिट्ठी खोलकर देखी। सह. डिप्टी-कमिश्नर ज्ञानप्रकाशजी ने बुलाया है। घड़ी देखी, साढ़े चार का समय। आज ही पाँच बजे मिलने के लिए बँगले पर बुलाया है। कुछ जल-पान कर अपने साधारण पहनावे में प्रभाकर डिप्टी-कमिश्नर साहब के बँगले के लिए रवाना हो गया।

पहुँचकर देखा, एक तरफ कुछ आदमी बेंचों पर बैठे हुए बातचीत कर रहे हैं। सामने काफी बड़ा, कटी हुई हरी घास का मैदान। नौकर टेनिस खेलनेवाला नेट लगा रहे हैं। प्रभाकर को पहले तो कुछ संकोच हुआ, पर मन को अँगरेजी सभ्यता से रँगकर धीरे-धीरे खिलाड़ियों में शरीक होने के लिए, उसी तरफ बढ़ा। वहाँ ऐसा कोई न मिला, जिसकी आज्ञा लेता। पुनः डिप्टी-कमिश्नर साहब के वहीं रहने की सम्भावना दिल को सुबूत दे रही थी।

जब प्रभाकर वहाँ पहुँचा, तब वहाँ के लोगों की खास बातचीत का तार न टूटा था। दो युवतियाँ और तीन युवक बेंचों पर बैठे थे। कुछ ठहरकर, जैसे अपरिचित प्रवेश के लिए भीतर तैयार हो रहा हो, जब मौजूद लोगों ने आने का कारण नहीं पूछा, एक तरफ, छूत से बच-बचाकर बैठ गया। एक बार देखा तो सबने, पर पूछा किसी ने नहीं।

उपस्थित लोगों का चलता प्रसंग न रुका। एक युवती ने कुछ बेअदब सरल स्वर से पूछा, "हाँ तेज बाबू, गवर्नर साहब ने फिर क्या कहा ?" पूछकर आँखों में हँसती हुई तेज बाबू को देखती रही।

बाबू तेजनरायन अपने नाम के सार्थक उदात्त स्वरों से, अपनी प्रतिष्ठा के मुख्य प्रचारोद्देश को छिपाकर, गौण गवर्नर साहब से मिलनेवाला प्रसंग कह चले, "गवर्नर साहब बड़े प्रेम से मिले। अँगरेजी सुनकर दंग हो गये। तारीफ भी दिल खोलकर की। कहा, ऐसी अँगरेजी आप बोलते हैं, उच्चारण, स्वरपात सब इतने ठीक कि विवश होकर कहना पड़ता है कि यह कुइन्स् इँगलिश (रानी के मुँह की अँगरेजी) है, और हिन्दोस्तानवाले अँगरेजी क्या बोलते हैं, अपनी नाक कटाते हैं। फिर मेरे प्रबन्ध की तारीफ की।"

"आपका प्रबन्ध कहाँ छपा है ?" युवती ने भौंहें टेढ़ी कर परीक्षा के स्वर से पूछा।

"दी न्यू लाइट में।" तेज बाबू ने विनय के गर्व से कहा।

"अच्छा, नाम तो इस अखबार का—अखबार है या मासिक पत्र ?—अभी तक नहीं सुना।" युवती ने उसी तरह पूछा।

"साप्ताहिक है। हाल ही निकला है। खूब लिखता है।"

"अच्छा, तो यह पत्र भी गवर्नर साहब पढ़ते हैं !" गम्भीर हो युवती ने अपनी की चोट छिपा ली।

"हाँ, उनके पास सभी पत्र जाते हैं।" स्वर में तेज बाबू अप्रतिभ हो रहे थे।

"हाँ, फिर ?" युवती ने उत्साह दिया।

"कहने लगे, बहुत अच्छा प्रबन्ध आपने लिखा है। आप जैसा धर्म चाहते हैं, आपको चाहिए कि देशी नरेशों में, खासकर राजपूताने में आप इसका प्रचार करें। इससे उनको एक नयी रोशनी मिलेगी। वे आधुनिक बन सकेंगे। फिर शिकार की बातचीत हुई। मुझे साथ ही लिये जा रहे थे। मैंने कहा, मैं अपनी बन्दूक घर छोड़ आया हूँ, मेरा हाथ उसी में अच्छा सधा है, बन्दूकों में मक्खियाँ तरह-तरह की होती हैं, इसलिए नयी बन्दूक से पहले-पहल निशाना ठीक नहीं लगता। सुनकर गवर्नर साहब हँसने लगे। समझ गये कि इन्हें इधर भी काफी दखल है।"

युवती कुछ सोचकर मुस्किरायी। हँसी को पीकर तेज बाबू पर बाढ़ रखती हुई अपनी संगिनी से बोली, "तेज बाबू हैरो के पढ़े हुए हैं, बराबर लॉर्ड घराने के लड़के इन्हें न्यौते देते रहे, और ये दो हजार खर्चवाले न्यौते का जवाब पाँच हजार खर्च से देते गये !"

"सब आपकी कृपा है !" बड़े नम्र भाव से तेज बाबू ने उत्तर दिया।

"कहते हैं, वहाँ के बड़े-बड़े लोग भी आपको नहीं लुभा सके। कोई बड़ी बात नहीं थी, सिर्फ धर्मवाला चोला जरा बदल देना था, बस, लॉर्ड खानदान की एक मिस इनसे सादी करने को एक पैर से तैयार थी।" चपला कौंधकर भाव की गहनता में छिप गयी। निकलकर फिर पूछा, "आपने तो कुछ नाम बतलाया था ?"

"नहीं, अब उनकी शादी हो चुकी है, नाम बतलाना जरा सभ्यता के···" तेज बाबू गिड़गिड़ाये।

"हाँ-हाँ, खिलाफ होगा।" अपनी संगिनी की तरफ फिरकर युवती बोली, "यह कोई मामूली त्याग नहीं ! मैं समझती हूँ, वह स्त्री बड़ी भाग्यवती है, आप-जैसे सच्चरित्र नयी रोशनी के तिलक विवाह के लिए जिसे पसन्द करेंगे।"

तेज बाबू तरुणी को प्राप्त करने की प्यासी दृष्टि से देखते रहे। बार-बार आकर-इंगित द्वारा उसे समझा चुके हैं कि विवाह के योग्य वह उसे ही इस संसार में समझते हैं, और उनके ये इशारे युवती समझ भी चुकी है।

तेज बाबू जज के लड़के हैं। एकाएक उठकर खड़े हो गये, कहा, "सीधे यहीं चला आया, आज्ञा दीजिए, टेनिस सूट बदल आऊँ। कमिश्नर साहब भी निकलते होंगे।"

"सुना है, गिरगिट दिन-भर में बहुत से रंग बदलता है, आप तो आदमी हैं; एक रोज कोट उतारकर कमीज पहने हुए खेल लीजिए, हम लोग खिजाँ को बाहर समझ लेंगी।"

"आपकी जैसी आज्ञा। पर टेनिसवाले जूते नहीं। विना जूते के···"

"जूते आपको यहीं मिल जायँगे।" युवती की तरुणी संगिनी हँसी न रोक सकी। दूसरे सज्जन रामकुमार और राधारमण भी मुस्किरा दिये।

रामकुमार मजाक को कायम रखने के विचार से बोले, "आजकल तो नंगे

पैर खेलने की सभ्यता है।"

तेज बाबू ने मस्तिष्क में विशेष जोर दिया। पर उन्हें याद न आया, योरप में लोगों को नंगे पैर खेलते हुए कहाँ देखा है। पर युवती के सामने, इतना योरप-भ्रमण करके भी मामूली-सी बात में अज्ञ बन जाना अपमानजनक है, सोचकर बोले, "अभी यह प्रथा महिलाओं में ही कहीं-कहीं प्रचलित हुई है।"

"पर आप महिलाओं के पथ-प्रदर्शक जो हैं। उस रोज आपने कहा था," युवती बोली, "कहीं आपने व्याख्यान में कहा है, महिलाओं को मुक्त नभ के निस्सीम प्रांगण में रहना चाहिए। क्या आपका यह उद्देश है कि वे बेचारी कभी अपने घोंसले में लौटें ही नहीं, मुक्त नभ के निस्सीम प्रांगण में उड़ती ही रहें?"

तेज बाबू लज्जित हो गये। कहा, "नहीं-नहीं, मेरा यह मतलब नहीं, मैं केवल महिलाओं की मुक्ति चाहता हूँ, और आजकल उन पर जो हृदयहीन अत्याचार हो रहे हैं, उनसे बचाने के लिए जगह-जगह महिला-मन्दिरों की स्थापना की जाय, कहा था।"

"हाँ-हाँ, मैं समझी।" युवती गम्भीर होकर बोली, "गोशालाओं के तौर पर आप महिला-मन्दिर खोलवाना चाहते हैं, परन्तु वहाँ की आमदनी की तरह, मुमकिन, यहाँ की रकम भी महिलाओं की सेवा से पहले माहिलों के खर्च में सर्फ हो।"

डिप्टी-कमिश्नर साहब आ गये। 'अलका, तेज बाबू से बातें हो रही हैं' कहकर, मन-ही-मन मुस्किराते हुए दूसरी तरफ मुड़े। बैठे लोग खड़े हो गये। मुखातिब होते हुए देखकर प्रभाकर बढ़ा।

अलका बैठी हुई प्रभाकर को एकटक देखती रही।

"कुछ खेल लें, फिर आपसे बातें करें।"

प्रभाकर कुछ न बोला। आत्मसम्मान के साथ सिर झुकाये हुए खड़ा रहा।

डिप्टी साहब ने पूछा, "आप तो टेनिस खेलते होंगे?"

"पहले खेलता था, अब बहुत दिनों से छूट गया है खेलना, आप लोग खेलिए।" प्रभाकर ने आत्मसम्मान से भरी भारी विनय से कहा।

तेज बाबू इस नये युवक का खेल देखने से लिए उत्सुक हो उठे। उस मण्डली में सबसे अच्छा वही खेलते थे। उन्हें स्वभावत: इच्छा हुई, इस युवक के विपक्ष में खेलकर इसे हराऊँगा, तो अलका खुश होगी। अलका को वे मन से सर्वस्व अर्पण कर चुके हैं। बदले में उसका सर्वस्व चाहते हैं। अभी अविवाहित हैं, अलका की उनके साथ शादी होने में कमिश्नर साहब की भीतर-भीतर इच्छा है, क्योंकि अलका सुखी रहेगी। अब अलका को वह रोज अपने यहाँ बुलाते हैं, और कन्या के समान ही स्नेह करते हैं। तेजनरायन को कमिश्नर साहब के इस भाव का मौन अन्त:प्रेरणा द्वारा पता है।

तेज बाबू के बुलाने पर कमिश्नर साहब ने भी जोर दिया, प्रभाकर ने बहुत कहा कि बहुत दिनों से खेलने की आदत नहीं, कुछ बन न पड़ेगा। पर हराने की गरज से हाथ पकड़कर तेज बाबू बड़े आग्रह से खींचते हुए कहने लगे, "चलिए, सिर्फ दो गेम खेल लीजिए।"

लाचार हो प्रभाकर अपने साधारण जूते उतारकर खेलने के लिए चला, और, और लोगों ने टेनिस खेलनेवाले जूते पहनकर रैकेट ले लिये। एक तरफ कमिश्नर साहब और तेज बाबू हुए और दूसरी तरफ बाबू रामकुमार और प्रभाकर।

खेल होने लगा। प्रभाकर बड़ा तेज खिलाड़ी निकला। अलका को प्रभाकर की सादगी और खेल बहुत पसन्द आया। उसकी खिंची चितवन में प्रभाकर की प्रशंसा के शब्द लिखे थे। तेज बाबू ने बड़े कायदे दिखलाये, पर हारते ही रहे। ज्ञानप्रकाशजी को प्रभाकर से जरूरी काम था। पोशीदा बातचीत करनी थी। इसलिए कुछ देर बाद खेल समाप्त कर दिया। तेज बाबू झेंप रहे थे। हार से बात-चीत का तार कट चुका था। इसलिए युवती से उस रोज़ खेल की विशेषताएँ बतलाने से रहित हो, अपनी मोटर पर, केवल एक अप्रतिभ बिदा ग्रहण कर चल दिये।

कमिश्नर साहब ने कहा, "हम जरा आपसे बातचीत करने के लिए बाहर जाते हैं, तब तक तुम लोग यहीं रहो, इच्छा हो, तो अपनी मा के पास चली जाना। लौटकर तुम्हें भेजवा देंगे।"

अलका को ज्ञानप्रकाशजी ने स्नेहशंकरजी से कन्या-रूप माँगा था। वह निस्सन्तान हैं। अलका के लिए उनके और उनकी पत्नी के हृदय में वात्सल्य-रस संचरित हो आया है, देख कर स्नेहशंकरजी ने कहा था—अलका को वह अपनी ही कन्या समझें, जब तक उसकी पढ़ाई पूरी नहीं होती, तब तक स्नेहशंकरजी का उस पर उत्तरदायित्व है। इसी स्नेह से ज्ञानप्रकाशजी रोज एक बार अलका को मोटर भेजकर बुला लिया करते हैं। पहले वह कभी-कभी आती थी। अब स्नेहशंकरजी ने स्वेच्छापूर्वक आने-जाने में उसे स्वतन्त्र कर दिया है।

"आप जाइए, मैं शान्ति को छोड़ आने के लिए जाती हूँ, यहीं तो घर है, जब तक आप लौटेंगे, लौट आऊँगी।" अलका शान्ति के साथ चल दी। रोज आने के कारण कमिश्नर साहब को अपने मित्र से प्रभाकर के सम्बन्ध में बातचीत करते हुए उसने सुना था। प्रसंग मालूम करने का मन में कौतुक भरकर चली गयी।

उन्नीस

डिप्टी-कमिश्नर साहब प्रभाकर को मोटर पर लेकर बाहर चले गये। एक खुले मैदान में मोटर खड़ी कर दी, और नव्वाबी के समय के एक जीर्ण प्रासाद के पाद पीठ पर बैठकर बातचीत करते हुए अपने उद्देश की पूर्ति में लगे।

कुछ दिनों से लखनऊ में प्रभाकर का नाम है। साधारण श्रेणी के लोग उसे ईश्वर की तरह मानते हैं। कुलियों में शिक्षा-संगठन आदि उसने जारी कर दिया है। इसलिए दो-एक फर्म के मालिकों ने उसके खिलाफ दरख्वास्तें दी हैं कि वह

उनके खिलाफ कुलियों को उभाड़ा करता है। ज्ञानप्रकाशजी यह सब दबाने के प्रयत्न में हैं।

"आप व्यर्थ अपनी जिन्दगी बरबाद कर रहे हैं। आपको बहुत अच्छी नौकरी मिल सकती है, अगर मैं सिफारिश कर दूँ, और मैं कर दूँगा। आप सिर्फ अपनी तरक्की के रास्ते आ जाइए।"

इतने आग्रह से डिप्टी कमिश्नर साहब को अपनाते हुए देखकर प्रभाकर के होंठों पर मुस्किराहट आ गयी। पर धीरे-धीरे गम्भीर हो गया। एक लम्बी साँस छोड़ी। फिर नजर उठाकर कोई दबाव न डालनेवाली, गान्धार, मध्यम, पंचम आदि स्वरों के आरोह-अवरोह से रहित, बिलकुल बराबर आवाज में कहा, "अच्छी नौकरी मिलने पर भी तरक्की का तो कोई भी कारण मुझे नहीं देख पड़ता।"

"क्यों ?" आँखें स्फरित, साश्चर्य कमिश्नर साहब ने पूछा। उनके मुख की रेखाओं पर चाँदनी पड़ रही थी, जैसे कुछ सोचकर अपनी सदा की सुकुमार हँसी हँस रही हो, कठोर मनोभाववाले की बिगड़ी हुई सूरत अपने कोमल प्रकाश से दूसरों को प्रत्यक्ष करा रही हो।

प्रभाकर ने कमिश्नर साहब के मुख की ओर नहीं देखा, केवल उनकी आवाज तोल रहा था। कहा, "नौकरी से जो रुपये मिलते हैं, वे अंक में जितने ज्यादा होते हैं, देश के आर्थिक विचार से वे दशमिक विन्दु से उतने ही इधर होते हैं।"

ऐसा अद्‌भुत आर्थिक विचार आज तक कमिश्नर साहब ने न सुना था। प्रभाकर का मतलब वह कुछ भी न समझ सके। आश्चर्य की बढ़ी हुई मात्रा में, एक यथार्थ जिज्ञासु की तरह, पूछा, "किस तरह ?"

"यह तो बहुत साधारण विचार है।" प्रभाकर बोले, "मुझे जो अर्थ मिलता है, उसकी आमदनी का कारण भी मैं देख लूँ, मेरा फर्ज है। देश की समष्टि-रूप आमदनी का हिसाब 'एक' से लगाइए। आप जानते हैं, यह संख्या उसी दिन दूसरे के साथ गयी, जिस दिन देश दूसरे के हाथ गया। इस 'एक' की प्राप्ति जब तक नहीं होती, तब तक आमदनीवाला रुख भी 'एक' से उधर नहीं हो सकता। देश को अपने हाथ रखनेवालों ने संन्यास नहीं लिया, संन्यास वास्तव में देशवालों के साथ है, जो दिया हुआ पाते हैं। दान भी कैसा कि देश के संन्यासियों को पुश्त-दर-पुश्त उसका ब्याज भी देना पड़ता है। बात यह कि देश की आमदनी से देश का खर्च नहीं चलता, इसलिए यहाँ के 'एक' को हाथ में रखनेवाले, 'एक' की सहायता से दो, तीन, चार करते हुए, सम्पत्ति बढ़ाकर, माल तैयार कर, बेचकर, मुनाफा लेकर भी तुष्ट नहीं होते, वही मुनाफा देश की रक्षा के लिए कर्ज देकर अचल रुपये से चल ब्याज भी वसूल करते हैं। अब शायद आप समझ गये कि किस तरह देश की आमदनी दशमिक विन्दु से इधर है। एक बात और कहूँ, जब पाट बेचनेवाला देश पाटाम्बर पहनेगा, तब आमदनी निस्सन्देह दाहिनी तरफ बढ़ेगी, और वैसे पाटाम्बर पहनकर पूजार्चा करने पर इष्टदेव भी भक्तों को बेवकूफ ही समझते हैं। जब तहसील रुपयों में बाँध दी गयी, और पैदा हुई रकम में बराबर घट-बढ़ लगी रही, बल्कि पैदावार घटती ही रही, और बाजार तत्काल रुपयों में लगान देनेवाले किसानों के हाथ न रहा, तब समझ लेना आसान है कि आमदनीवाला किस तरफ का पलड़ा उठा हुआ है।"

डिप्टी-कमिश्नर साहब निर्वात मरुस्थल की तरह स्तब्ध, निस्तृण-तरु शिला-खण्ड-जैसे शून्य-मन बैठे रहे। जैसा ज्ञान उनका अन्त:क्रियाओं से पैदा हुआ, हृदय ने वैसी ही सलाह भी दी—'तुम सरकारी अफसर हो, तुम्हें अपना ही धर्म पालन करना चाहिए। तुम सरकार का नमक खाते हो।' प्रभाकर के निकट इन विचारों को दूसरा ही रूप मिलता। नमकवाली उसकी व्याख्या सुनने लायक होती। पर कमिश्नर साहब के मनोभाव उन्हीं तक परिमित रहे।

बनावटी सारल्य में स्वर को रँगकर प्रभाकर से उन्होंने कहा, "देखिए, हम लोग आपके साथ नहीं, ऐसी बात नहीं; पर कोई काम एक दिन में तो होता नहीं। अभी कई सदियाँ हमें दूसरे देशवालों के मुकाबले सर उठाने में लग जायँगी। तब तक न आप रहेंगे न हम। अगर कुछ भी सुख देश की स्वतन्त्रता का न भोग पाये, तो हाथ-पैर मारना वाहियात ही तो हुआ?"

प्रभाकर फिर मुस्किराया। कहा, "आप बुजुर्ग हैं। मैं आपको उपदेश देनेवाली नीयत से तो कुछ कह नहीं रहा, केवल अपने विचार आपसे जाहिर कर रहा हूँ। जब हम अपने सामने और अपने ही लिए भोग-सुख प्राप्त करना चाहते हैं, तब स्वार्थ की ही वह बढ़ी हुई मात्रा है। देश के लिए ऐसा विचार समीचीन कदापि नहीं। भोग कोई भी करे हमें कार्य करना चाहिए। सुख और पूरी स्वतन्त्रतावाला सुख हमें कार्य में अवश्य प्राप्त होगा, ऐसा मनोवैज्ञानिक नियम है। जब विशद भावों की जल-राशि पीछे से ढकेलती है, तब स्वच्छ तोय-तरंगों की गति में भी मुक्ति का आनन्द है, चाहे वह समुद्र से न भी मिले, या उसके कुछ सीकर ग्रीष्म से तपकर शून्य में लीन हो जायें। इसी सरिता की तरह जीवन की ठीक-ठीक प्रगति में मुक्ति का चिदानन्द प्राप्त होता रहता है। आप देखेंगे, संसार में अणु-अणु इसी मुक्ति की ओर अग्रसर है। यही सृष्टि का अन्तरतम रहस्य भी है। फूल कितना कोमल होता है, पर वह काठ की काया के भीतर से निकलता, कितना अँधेरा पार कर वह प्रकाश के लोक में क्षण-भर को हँसकर मुक्त होने के लिए आता है। इसी प्रकार मुक्ति के यज्ञ में भी मनुष्य अपना मन्त्र पढ़कर भाग लेकर ही रहता है। यही उसका चिरन्तन रहस्य है।"

एक बार इधर-उधर चल दृष्टि कमिश्नर साहब ने देखा, फिर मुस्किराते हुए कहा, "आप दिल के सच्चे हैं। मैं आपको समझाता हूँ। जिन लोगों को वकालत और दूसरे-दूसरे पेशों से नाम मिल चुका है, वे चाहते हैं, लोगों को अपने हाथ की पुतली बना रक्खें, और इस तरह सरकार पर रोब जमायें। आप उनकी बर-गलानेवाली बातों में न आइए। यह देखिए कि वे क्या-क्या कर चुके हैं, और अब क्या-क्या कहते हैं। बस, आपकी आँख खुल जायगी। जब काफी रुपया हो जाता है, तब मामूली लोगों को उभाड़कर, बग़ैर दूर तक समझे और समझाये हुए, एक नयी राह निकालकर जिस पर कि एक कदम उठाना भी मुश्किल हो, लोग लोगों की आँखों के तारे बनना चाहते हैं और साहबों के बराबर चलना। अगर आपको उन्हीं का रास्ता पसन्द है, तो आप उनकी पहली राह से होकर गुजर आइए, मैं तो ऐसा ही कहूँगा।"

"आप दुरुस्त फर्माते हैं। कोई नेता ऐसा नहीं, जिसके पीछे, पूँछ में, नाम की

वला गोबर की तरह न लगी हो। पर मैं उनके उतने ही त्याग को देखता हूँ, जितना उन्होंने देश के लिए किया है। उनके अलावा इस देश के तथा दूसरे देश के सच्चे आदमियों को भी मैं अपना आदर्श समझता हूँ। एक सच्चा आदमी संसार-भर के लिए आदर्श है।"

"फिर मैं कहता हूँ, आदर्श को देखने से पेट नहीं भरता। सरकार ने पेटवाली जो मार हिन्दोस्तान को दी है, अभी सदियों तक लोग पेट पकड़े रहेंगे। अगर आप उन्हीं के भरोसे पर पेट पालते रहें, तो यह कौन-सी बड़ी बात हुई? बल्कि खुद कुछ पैदा कर उनकी झोली में डाल सकें, तो आपका यह काम बेहतर होगा।"

प्रभाकर चुप हो गया। सोचा, किसानों के साथ त्यागियों के सहयोग से ज्ञान और अर्थ का सहयोग होता है, और इसी तरह देश की उभय प्रकार की दशा सुधर सकती है, यद्यपि अभी किसानों में कड़े पैर खड़े होने की हिम्मत नहीं हुई, न देश में त्यागियों का इधर रुख हुआ है, पर यह सब इनसे कहने से फल क्या, यह अपने भाव की वह सूखी लकड़ी हैं, जो दूसरी तरफ झुक नहीं सकते या झुकाने पर टूट जायँगे। प्रभाकर को चुपचाप देखकर कमिश्नर साहब ने सोचा कि बात चोट कर गयी। रंग और गहरा कर देने के विचार से कहा, "चलिए, आज हमारे यहाँ भोजन कर लीजिए।"

रास्ते में कमिश्नर साहब बोले नहीं। सोचा, चारे पर आयी हुई मछली बात-चीत से भडककर निकल जायगी। इसलिए उपदेश की बंसी पकड़े हुए एकटक चारा खाती हुई मछली पर ध्यान लगा रक्खा। नहीं समझे कि कभी काँटे में न फँसनेवाली, बगल से छोटी मछली के चारा खाने के कारण तरेरा हिल रहा है। अपनी-अपनी मौन कल्पना के भीतर दोनों अपने-अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहे थे।

अलका सामनेवाले कमरे में बैठी, तस्वीरों की एक किताब लिये हुए उलट-उलटकर अपनी पसन्द के चित्र देख रही थी। इसी समय कमिश्नर साहब बँगले पहुँचे, और बैठक में प्रभाकर को बैठने के लिए कहकर खुद कुछ देर के लिए भीतर गये। बड़े गौर से अलका ने प्रभाकर को देखा। उसे जान पड़ा, आज लड़ाई में कमिश्नर साहब की विजय हुई, क्योंकि प्रभाकर के मुख की प्रभा क्षीण थी। लखनऊ के राजनीतिक आकाश में इधर 6 महीने से प्रभाकर खूब तप रहा है, और वह गरमी कर्मचारियों को असह्य है, यह खबर अलका को मालूम थी। प्रभाकर को अच्छी नौकरी में बाँध लेने की उद्भावना सविचार ज्ञानप्रकाश को स्नेहशंकर से मिली थी। अलका अपने पिता से यह सलाह देने के कारण नाराज हो गयी थी। तब गूढ़-मर्म-वेत्ता पिता ने कहा था, "जो गिरना नहीं चाहता, उसे कोई गिरा नहीं सकता; बल्कि गिराने के प्रयत्न से उसे और बल देना होता है।"

प्रभाकर को उपदेश दिये बिना अलका से न रहा गया, पर बिना बातचीत के कुछ कैसे कहे। प्रभाकर सर झुकाये हुए चुपचाप बैठा था। अलका अधीर होकर स्वगत कहने लगी—'पिंजड़े में रहना बड़ा अच्छा, चारा आप मिलता है, बेचारा तोता बाजू फटकारने की मिहनत से बच जाता है!' कहकर ग्रीवाभगिमा कर विषम आँखों से देखकर कुछ द्रुत दूसरे कमरे में चली गयी। प्रभाकर को मतलब समझते हुए देर न लगी। इस युवती कुमारी के प्रति उसकी दृष्टि सम्मान के भाव

से झुक गयी, यद्यपि तब भी वह प्रभाकर ही था।

इसी समय कमिश्नर साहब भी आये। अलका न थी। एक बार इधर-उधर देखकर बैठ गये। सामने की गोल मेज पर प्रभाकर के लिए भोजन का प्रबन्ध किया जाने लगा।

प्रभाकर भोजन कर रहा था, कमिश्नर साहब एक दृष्टि अद्भुत मनुष्य को सकौतुक देख रहे थे, और उसे फाँस लाने के सुख में लीन थे, "आप ग्रेजुएट अवश्य होंगे ?" कमिश्नर साहब ने पूछा।

"जी हाँ।" प्रभाकर ने उत्तर दिया।

"माफ कीजिएगा, आपके नाम के साथ संवाद-पत्रों में आपकी डिगरी नहीं छपती, इसलिए पूछा।"

प्रभाकर कुछ न बोला। इस पर कोई प्रश्नोत्तर हो भी नहीं सकते थे। प्रभाकर सोच रहा था, अब बहुत जल्द जेलखाने की नौबत आ रही है।

भोजन समाप्त कर चुका। हाथ-मुँह नौकर ने धुला दिये। पान खाकर डिप्टी-कमिश्नर साहब से बिदा होने लगा। स्वभावतः कमिश्नर साहब ने पूछा, "तो अब क्या विचार है ?"

"कल कुलियों की हड़ताल का फैसला देखना है कि मालिक लोग क्या करते हैं," कहकर एक छोटा-सा नमस्कार कर बाहर चला गया। फाटक के पास तक गया, तो पीछे से कोमल स्त्री-कण्ठ की पुकार सुन पड़ी, "ठहरिएगा जरा।"

अलका तेज कदम प्रसन्न बढ़ती आ रही है। आती हुई बोली, "मैं आपके विचारों से सहमत हूँ, आपको बधाई देती हूँ।"

"आपकी कृपा" कहकर, सविनय सर झुकाकर प्रभाकर बढ़ने को हुआ कि अलका ने उत्कण्ठा से कहा, "आप 'स्नेह-भवन' ऐबट रोड अवश्य आइएगा और आपका पता ?"

प्रभाकर ने बतला दिया।

बीस

अजित ने अपने मित्रों में व्रजकिशोर को परिचित कर दिया। बहुत-से उनमें व्यवसायी थे। उन्होंने बाजार में व्रजकिशोर की दलाली चलवा देने का वचन दिया, और पूरा भरोसा भी कि दो-तीन आदमियों के गुजर को वह महीने-भर में कमा लिया करेगा। वहीं अजित को मालूम हुआ कि कई बार उसके यहाँ से खोजने के लिए कानपुर लोग आ चुके, एकाएक उसके पिता को लकवा मार गया है। अजित के चित्त की स्थिति इस संवाद से चिन्ताजनक हो गयी। वह अब के लौट-कर वीणा को आपदों से मुक्त देख सुखी होकर, दूने उत्साह से शोभा की तलाश

तथा तअल्लुकेदार साहब का मुकाबला करना चाहता था। पर लाचार हो गया। व्रजकिशोर तथा वीणा से पिता की बीमारी का हाल कहकर घर जाने के लिए विदा माँगी।

वीणा मौन, पलकें झुकाये, खड़ी रही। हृदय से बार-बार मिलते रहने की प्रार्थना कर रही थी।

व्रजकिशोर ने घर तथा पिताजी के समाचार भेजते रहने को अनुरोध किया। अजित ने भी आश्वासन दिया कि वह उनकी ओर सविशेष ध्यान रक्खेगा।

घर जाने पर अजित को संसार के प्रेम का एक शिक्षाप्रद रहस्यमय दृश्य दिखलायी पड़ा। उसके पिता धनी थे, इसलिए कुटुम्बवाले स्वयंसेवक चारो ओर से टूट पड़े, और बड़े आग्रह से सेवा करने लगे। अजित की माता इसी संसार की यथेष्ट अनुभव रखनेवाली महिला थीं। उन्हें समझने में देर न हुई कि अजित के चाल-चलन से नाराज उसे परित्याग करनेवाले उसके पिता की इतनी सेवा क्यों हो रही है। हर स्वयंसेवक एक ही उद्देश लेकर घर से चला था। यहाँ ऐसे बहुत-से एक ही भाववाले एकत्र हो गये, तब सेवा में सुविधा के स्थान पर असुविधा होने लगी। अजित की माता ने पति को सेवकों का मर्म समझाकर अजित को बुलाने की आज्ञा माँगी। रोग-ग्रस्त पिता को भी अन्तिम बार के लिए पुत्र को स्नेहाशीर्वाद दे जाने की इच्छा हुई, और अजित को बुलाने की उन्होंने आज्ञा दे दी।

पहले कई बार वह कानपुर में नहीं मिला। उद्देश से असफल हो जब-जब आदमी लौटे, कुटुम्ब के लोगों ने तब-तब उसके सम्बन्ध में अद्भुत-अद्भुत खबरें उसके पिता को सुनायीं। किसी ने कहीं अखबार में पढ़ा था कि वह बंगाल के बागियों में मिला है, और जो इधर यहाँ डकैती हो गयी है, उसमें एक मुखबिर बन गया, और उसने अजित का भी नाम लिया है।

किसी ने कहा, "तब से अजित चम्बल के किनारे खोहों में पड़ा रहता है—एक बदमाश वहाँ से छूटकर आया है, वह बतलाता था।"

किसी ने कहा, "पुलिस तीन बार उस पर हमला कर चुकी, पर वह पकड़ में न आया, दोनों हाथ दनादन गोलियाँ चलाता हुआ निकल गया।" आदि-आदि।

इससे पिता की व्याधि में कैसी सेवा हुई, सहज ही अनुमेय है। माता ने निकालने की कोशिश की, पर असफल हुईं। सब निकट-सम्बन्धी थे। कुछ लोगों ने खुलकर कह भी दिया कि हमारा घर है, आपको तो सिर्फ भोजन-वस्त्र पर अधिकार है। माता रोकर आँसू पोंछ लेती थीं। पुत्र का संवाद बिलकुल झूठ है, ऐसा वह नहीं सोच सकती थीं, जबकि उसके ऐसे ही चरित्र का एक प्रमाण उन्हें मिल चुका था।

जब स्वयंसेवक लोग रोगी के शीघ्र मरने की प्रतीक्षा में थे, और माता डरी हुई गृहस्वामी की सतर्क सेवा में, उसी समय अजित ने दरवाजे पर अम्मा-अम्मा कहकर आवाज दी। माता ने पुत्र को दुखी हृदय से लगा लिया, और विपत्ति की कथा एकान्त में ले जाकर सुनायी। दूसरे दिन से स्वयंसेवकगण मकान खाली कर-कर अपना रास्ता पकड़ने लगे। इतना एहसान अजित पर रखते गये

कि उसके पिता की सेवा के लिए कोई नहीं था, अपना बनता काम बिगाड़कर वे आते थे।

बहुत दिनों तक, पूरे दो वर्ष अजित को पिता की सेवा करनी पड़ी। अच्छे-अच्छे डॉक्टर बुलाकर उसने इलाज कराया, पर कोई फल न हुआ। धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य टूटता गया। बहुत पहले ही देहान्त हो चुका होता, अजित की तन्मय सेवा के कारण इतने दिन झेलते रहे। क्षीण से क्षीणतर होती हुई एक दिन सदा के लिए साँस रुक गयी। यथारीति अजित ने क्रिया-कर्म किया।

पिता की बीमारी के समय दवा के लिए अजित को प्रायः कुछ-कुछ रोज बाद कानपुर जाना पड़ता, वीणा से मिलने को प्राण व्याकुल, उद्ग्रीव रहते थे। रोगी की सेवा से थका अजित वीणा से मिलने पर पूर्ण स्वास्थ्य का अनुभव करता, जैसे प्राणों के अन्तःप्रदेश से एक नयी विद्युत स्फुरित होकर नस-नस को शक्त, तेज कर देती हो, फिर दूने उत्साह से सेवा करने को तत्पर हो जाता। स्टेशन पर उतरकर जीवन की हवा पर उड़ती हुई वीणा के हाथ की पतंग की तरह अपूर्व प्रेम से खिंचता हुआ सीधे उसी के घर जाता; व्रजकिशोर बाजार चला गया होता था, अकेली वीणा उच्छ्वसित हो, हँसती आँखों द्वार खोलकर स्वागत करती, घर का हाल पूछती, और पलँग पर बैठाल खुद पास जमीन पर बैठकर उसके प्रश्नों की सहृदय झंकार से मधुर-मधुर बजती रहती। दोनो एक साथ हँसते, एक बात पर रो देते। अजित को मालूम हो चला, वीणा उसी की, उसी के हाथ की है, वीणा का हृदय कहने लगा—वह अजित के साथ की, उसी के स्वर से ठीक-ठीक मिली हुई है। अजित चला जाता, भाई के आने पर वीणा अजित के आने की खबर देती, उसके घर के समाचार कहती। व्रजकिशोर को भी मालूम होने लगा, दोनों एक-दूसरे को प्यार करते हैं। नवीन उसके जैसे खयालात बँध रहे थे, नयी जो रोशनी उसे मिल चुकी थी, उसमें दो खिले फूलों का गले-गले मिलकर, एक ही हवा में, एक ही डाल पर झूमते रहना वह देखना चाहता था। उसे विश्वास था, इस रोशनी से खुला हुआ अजित अपने पासवाली दूसरी कली को भी एक ही प्रकाश दिखा चुका है। इसलिए कभी कुछ कहकर उसने बहन का चित्त नहीं दुखाया।

एक रोज, पिता के स्वर्गवास के पश्चात्, अपने पथ के पूरे निश्चय से अजित वीणा के यहाँ गया। वीणा उसी के ध्यान में तन्मय थी।

"तुमसे एक बात पूछूँ ?" आसन ग्रहण कर अजित ने प्रश्न किया।

सरल आग्रह से वीणा प्रश्न सुनने को एकटक देखती रही।

"मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ, और आज तुम्हारे भैयाजी के सामने प्रस्ताव रखूँगा।"

वीणा खिलकर लज्जा से जमीन की तरफ देखने लगी।

"क्या तुम्हारी सम्मति मैं जान सकता हूँ ?"

वीणा ने धीरे से सिर हिला दिया।

अजित ने हाथ पकड़कर उठाया। वीणा खड़ी हो गयी। अजित की आँखों को विश्वास की दृष्टि से देखती रही।

उसके हाथ अपने हाथों में लिये हुए अजित ने पूछा, "अगर तुम्हारे भैयाजी ने

आज्ञा न दी, तो क्या मैं आशा करूँ कि तुम मेरे साथ चलने को तैयार हो ?"

"भैयाजी आज्ञा दे देंगे," वीणा धीमे स्वर, आँखें झुकाकर बोली।

"वीणा !" प्रिया की आत्मा तक पहुँचकर अजित ने कहा, "ईश्वर और तुम्हारी आत्मा को साक्षी मानकर मैंने एक हाथ से नहीं, दोनो हाथों तुम्हारे दोनों हाथ पकड़े हैं, क्या इससे बड़े दूसरे विवाह पर भी तुम्हें विश्वास है ?

"मैं केवल आपको जानती हूँ।"

"अभी कुछ दिनों के लिए मैं देहात जाता हूँ। तुम मेरे और विजय के बीच की सब बातें सुन चुकी हो। साल-भर से अधिक हुआ, मुझे उसका संवाद नहीं मिल रहा। उसका पता मालूम करने जाता हूँ। शोभा अब शायद न मिलेगी। मैंने वहाँ उसे बहुत खोजा है। तुम सुन चुकी हो, पर वह जैसे पर मारकर कहीं उड़ गयी।"

दोनो कुछ देर तक चिन्ता में मौन खड़े रहे।

अजित ने कहा, "अब एक इच्छा पूरी कर लेनी है। जिसने तुम्हारी एक अज्ञात बहन को संसार से लुप्त कर दिया, तुम्हें भी नीच दृष्टि से देखा, जो न-जाने कितनी स्त्रियों की आबरू ले चुका है, उस मुरलीधर को अब के मैं देखना चाहता हूँ। मेरे साथ तुम्हारे रहने की जरूरत हुई, तो तुम्हें चलना स्वीकार होगा ?"

वीण ने अब के भी धीरे से सर हिला दिया।

उसके दोनो हाथ अजित ने हृदय से लगा लिये। मुस्किराकर कहा, "लेकिन तुम्हें यह वेश बदलना होगा।"

लजाकर सर झुका वीणा हँसने लगी।

उज्ज्वल सौन्दर्य का यह लावण्य-भार एक बार, दो बार, अनेक बार देखकर देखने की न-भरी आशा भरकर अजित वीणा से बिदा हुआ।

इक्कीस

अजित विजय की खोज में गाँव पहुँचा। उसके आने की खबर से गाँव में हलचल मच गयी। पहलेवाले स्वागत से इस स्वागत में फर्क था। तब लोगों की समझ में केवल स्वार्थ की सिद्धि सुराज का मूल मतलब था, अब वह भाव बदलकर स्वार्थ का बलिदान बन गया था। विजय को जेल होने के बाद लोगों की हृदयवाली आँखें खुलीं, उनके सामने स्वार्थ-त्याग का सच्चा दृश्य आया, तब तक वैसे चरित्र की, जो निर्दोष होकर, तमाम दोषों को मौन नत दृष्टि से क्षमा कर फिर जगकर अपने भीतर के अँधेरे को दूर करने के लिए प्रयत्नपर होने को आत्मा में प्रोत्साहन देता हुआ कारावास वरण कर लेता है—गाँववालों में कल्पना करने की भी शक्ति न

थी। बुधुआ तथा और-और लोग उसके विरुद्ध गवाही देकर जब लौटे, तब जमींदार तथा गाँववालों की तरफ लज्जा से देख भी न सके; न जाने कहाँ के प्रायश्चित्त का भार उनके सर पर लद गया; सब सोचने लगे, यदि हमें सजा हो जाती!—कौन से पाप हमारे पहले के थे, जो हम सजा के नाम से इतने घबराये कि हमें ईश्वर के न्याय का भी ध्यान न रहा, और अपने, एक सच्चे हितकारी, देवता-जैसे मनुष्य महात्मा के खिलाफ गवाही दे आये।

केवल इस पश्चात्ताप से ही इति न हुई। अपनी अक्ल के रस्से से हर गाँव के जमींदार बोझ की तरह कसकर सबको बाँधने लगे। जितना रुपया बाकी था, ब्याज और दर-ब्याज-समेत, बुरे तरीके से वसूल करने लगे। पुलिस उनके साथ थी। अदालत में उनकी बही चित्रगुप्त का खाता था, जिसमें अन्याय कभी लिखा नहीं जा सकता था, फिर सब असामियों के उस लिखी रकम के नीचे निशान अँगूठा लगा हुआ था। 10 की जगह 25 लिखा है, इसकी जाँच की असामियों को तमीज न थी। डिगरियाँ हुईं। माल नीलाम किया गया। हली, भूसा आदि रकम सिवा तिगुनी ली गयी। किसान हैरान हो गये। जब मुसीबत-पर-मुसीबतें टूटने लगीं, कोई उपाय बचने का न रहा, और सबने देखा कि जब जरूरत पड़ती है, बैल की तरह जमींदार के हल में नह दिये जाते हैं, तब लोगों की समझ में आया, जेल जाना इससे बहुत अच्छा था; सोचा, स्वामीजी ने जो अदालत तक गिरफ्तार होकर जाने की सलाह दी थी, वहुत ठीक थी, मुमकिन, हाकिम हमारी दशा पर ध्यान देता।

विजय से सहयोग करनेवाले जितने आदमी आसपास के गाँवों में मुख्य थे, सब-के-सब परेशान कर दिये गये। अब आगे कभी सर उठाने की हिम्मत न रहे, इस सूत्र की प्रचलित प्रथा के अनुसार। लड़के कुछ पढ़ गये थे। चिट्ठी लिखने की तमीज रखनेवाले वहाँ के हर गाँव में किसानों के कुछ-कुछ लड़के तैयार हो चुके थे। वे खेतों, ऊसरों और बाग में काम करते, ढोर चराते और खेलते हुए बड़ी सहानुभूति से अपने मित्रों में मिलकर स्वामीजी की याद करते। जेल होने के साल-भर तक वे लोग स्वामीजी के लिए दिन गिनते रहे। वह कहाँ, किस जेल में हैं, किसी को पता न था। पता लगाया जा सकता है, मालूम न था। स्वामीजी की आशा में एक साल पूरा हो गया। जब वह एक महीने, दो महीने, तीन-चार महीने, कई महीने तक न आये, तब बालक उदास हो, हताश हो, एक-दूसरे से कहने लगे, "अब स्वामीजी हमारे यहाँ न आयेंगे!"

बीरन पासी भी इस समय जेल में है। कृपानाथ ने शराब बनाते हुए उसे पकड़वा दिया है। जो मास्टर लोग पढ़ाते थे, वे भी अब तक नहीं लौटे। कोई कानपुर में खोंचा लगाता है, कोई कलकत्ते में बनियान और रूमालों की फेरी करता है, कोई किसी ऑफिस का चिट्ठीरसा हो गया है।

अजित को सब हाल मालूम हुए। विजय को सजा हो गयी थी, इसीलिए उसके स्वीमीजी के नामवाले पत्र वापस हो जाते थे। अब वह छूट चुका होगा, पर मालूम नहीं, कहाँ है। सम्भव है, उसे ढूँढ़कर, न पाकर, कोई दूसरा रास्ता पकड़ा हो। गाँववालों की हालत तथा विजय पर विचार करते हुए रात-भर उसकी आँख न लगी। स्वामीजी के मित्र आये हैं, सुनकर गाँव के लड़कों ने आकर घेर लिया, और

अपने स्वामीजी से फिर मिलने के लिए अबाध आग्रह करने लगे, मिला देने की बार-बार प्रार्थना करने लगे। विश्वास देते रहे कि अब वे स्वामीजी को पूरा साथ देंगे, क्योंकि अब वे निरे बच्चे नहीं हैं, अपने हाथ हल जोत लिया करते हैं, और स्वामीजी जहाँ कहेंगे, वे उनके साथ चलने को तैयार हैं।

बड़े कष्ट से आँसुओं को रोके हुए अजित सुनता रहा। अजित जहाँ था, वहीं खुली जमीन पर लड़के भी लेट गये। अजित ने घर जाकर सोने के लिए कहा, तो लड़कों ने जवाब दिया कि आमों के वक्त वे रात-रात-भर कुएँ की पैंड़ी पर पड़े रहते हैं।

सुबह को अजित चलने लगा, तब गाँव के लड़के रोने लगे। लोगों के रूखे कपोलों से आँसुओं की धारा बह चली। लोगों ने कहा, "महाराज, हम लोग मूरख हैं, गँवार हैं, हमने अपने स्वार्थ का विचार किया, ऐसे महात्मा को सजा करा दी; पर वह मिलें, तो हम लोगों की कर-जोड़ दण्डवत् कहिएगा, और कहिएगा कि मूर्खों को माफ कर आप ही उन्हें राह सुझा सकते है, आप अपनी दया दिखाने से मुँह न फेरें, नहीं तो उन मरों हुओं का कोई भी सहारा न रहेगा!" लोग अपनी-अपनी बात, खास तौर से बुधुआ आदि गवाह जो थे, कहते जाते थे, और रोते जाते थे।

सामने खलिहान मिला। पटवारी लाला मातेश्वरी परसाद बैठे हुए पैदावार लिख रहे थे। जमींदार के सिपाही भी थे। लोग नहीं डरे। बुधुआ ने कहा, "अब हम तुरुक से भुरुक न बनेंगे, बिगड़ चुका, जहाँ तक हमें बिगड़ना था।"

एक लड़के ने कहा, "वह गृद्धराज देख रहे हैं।"

लड़के पटवारी को गृद्धराज कहते हैं।

दूसरे लड़के ने कहा, "रघुआ की पाटी में तीन मन कुल गेहूँ हुआ है, जिसके तेरह मन इसने, बीघे-भर के, लिक्खे हैं, कल खड़ा-खड़ा मैं देख रहा था।"

गाँव के किनारे शून्य साँस भरकर अजित को लोगों ने बिदा किया। अजित ने विश्वास दिया, "अगर जल्द स्वामीजी का पता वह न लगा सका, तो खुद आकर उनका छोड़ा हुआ काम सँभालेगा।"

तीन साल हुए, राधा के गाँव में खबर फैली, जो महातमाजी आये थे, वह फिर आये हैं। तीन ही साल में इस गाँव में भी एक युग बदल चुका था। स्वामीजी के भक्तों में बहुत-से स्वर्ग सिधार चुके थे, जो पुराने बड़े-बूढ़े थे। नवीनों में सनातन धर्म पर, बहुत-सी घटनाओं के कारण विश्वास सुदृढ़ हो रहा था। नयी सुनी घटनाओं में पुत्रवाली कई थीं, जो स्वामीजी के प्रसाद के कारण फलवती हुईं, ऐसी प्रसिद्धि पा चुकी थीं। स्त्रियाँ कहती थीं, भभूत देने को क्षण-भर भी पूरा नहीं हुआ कि बच्चा पेट में आया। ऐसी बच्चेवाली ज्यादातर वे ही थीं, जिनके सोलहवें साल लड़का न होने पर घरवाले बाँझ कहने लगे थे, और जिनके पतिदेव तब तक चौदहवाँ साल पार कर रहे थे, और सहवास घरवालों की पवित्र धर्म-रुचि की ताड़ना से, रोज करना पड़ता था। अस्तु, स्वामीजी की उस गाँव में कहाँ तक इज्जत हो सकती थी, आप स्वयं अन्दाजा लगा लीजिए। उनकी प्रसिद्धि उस समय केवल उसी गाँव की दिशाओं में न बँधी थी। स्त्रियों के व्यक्तिगत व्यवहार ने, स्त्रियों के ही प्रमुख, नजदीक-नजदीक, करीब सभी गाँवों में विकीर्ण कर दी थी।

सेवा के उद्योग में झुके हुए लोगों से वार्तालाप करते-करते अजित के होंठ जल गये। प्राणों में उस आग की लपटें उठने लगीं, जो अपने प्रकाश में इस भारतीयता के कुबड़े रूप को देखती हैं। अनिच्छापूर्वक दूसरों की इच्छा से सहयोग करनेवाले स्वामीजी अब के प्रभाव डालनेवाले पहले रूप में न थे, थे प्रभावितों की श्रद्धा बिगड़ी हुई सूरत देखनेवाले रूप में।

एक मेला लग गया। शाम को स्त्रियों का झुण्ड उमड़ा। पूर्ववत् भभूत देना बराबर जारी रहा। सन्ध्या पार हो गयी। एक पहर रात बीती, धीरे-धीरे दर्शक और प्रार्थियों का आना-जाना बन्द पड़ा। डेढ़ पहर तक बिलकुल बन्द हो गया। एक चित्त से स्वामीजी राधा को ध्यान कर रहे थे। इतने आदमी आये-गये, इनमें अपना एक न था, वे सब अपने थे। एक राधा थी, जो दूसरे के लिए होकर सबकी थी, इसलिए महात्मा का सुन्दर अर्थ से निकटतम सम्बन्ध था।

पहली ही तरह वैसी ही काली मूर्ति फिर मुस्किराती हुई स्वामीजी के सामने खड़ी हो गयी। उसकी भी गोद में एक बच्चा था। स्त्रियों के बाजार में स्वामीजी की इज्जत बढ़ा रखने की नीयत से, स्वामीजी की ही भभूत से बच्चा हुआ, इस प्रकार वह भी वहाँ की स्त्रियों में एक मुख्य नायिका थी।

मा ने पहले बच्चे का सर स्वामीजी के पैरों पर रक्खा --काला-काला, तगड़ा-तगड़ा, सुन्दर बच्चा देखकर स्वामीजी ने गोद में उठा लिया, तब खुद प्रणाम किया।

बच्चे को मा की गोद में देकर संक्षेप में, अपनी विपत्ति की कथा, विजय का कैद होना, अब तक छूटने की सम्भावना आदि स्वामीजी सुना गये। राधा विस्मय, दुःख और सहानुभूति से, कभी रोकर, कभी ढाढ़स बँधाती हुई सुनती रही। फिर उसका और वहाँ का हाल स्वामीजी ने पूछा। राधा ने कहा, "जब वह गये, उसके कुछ ही दिनों बाद वह भी कानपुर चली गयी थी, तब से कई बार आ चुकी और उनकी राह देख चुकी है, अब के बच्चे का यहीं मूडन करवाने के विचार से आयी है। गाँव के महादेव जिलेदार को सदर बुलावा आया था, इसलिए गया हुआ है। वहाँ से कहीं भेज दिया गया है, कब लौटेगा, क्या बात है, वह नहीं जानती। पर इतना वह कह सकती है कि कहीं कुछ दाल में काला है, तभी उसने कई रोज से मुँह नहीं दिखाया। यहाँ उसकी और मालिक की काफी बदनामी फैल चुकी है। अब सब लोग जान गये हैं।" राधा ने यह भी कहा कि मालिक अब राजा हो गये हैं। अजित ने पूछा, "राधा कब तक यहाँ रहेगी, और कानपुर कब जायगी और कानपुर में, कहाँ, किस मुहल्ले में वह रहती है, उसका क्या पता है।" राधा ने बतलाया, अजित ने एक कागज पर लिख लिया। फिर पूछा, "गाँव के मालिक इस वक्त कहाँ हैं।" राधा ने कहा, "वह नहीं कह सकती; पर उनकी 'लखनऊ और सदर', 'लखनऊ और सदर' यही रफ्तार रहती है।"

मिलकर, खूब बातें कर, लड़के से दण्डवत् करा, खुद चरण छूकर, फिर मिलने की अपनी आशा की याद दिला, राधा अजित से बिदा हुई।

मुरलीधर का इस समयवाला पक्का पता मालूम कर अजित कानपुर आया। वीणा के घर आ कई रोज की थकावट दूर करने के लिए स्नान-भोजन कर

आराम करने लगा। ब्रजकिशोर अपने काम पर गया था। द्वार बन्द कर वीणा पंखा लेकर बैठी। अजित पंखे की हवा में सो गया।

जब जागा, तब ब्रजकिशोर आ चुका था। उठकर, वीणा से चाय बनवाकर, पीकर, ब्रजकिशोर को साथ बाहर बातचीत करने के लिए बगीचे की तरफ ले गया, और वहाँ निश्चिन्त एकान्त में वीणा के साथ अपने विवाह की आज्ञा माँगी, और शीघ्र एक ऐसे ही विवाह के लिए तैयार होने को कहा। ब्रजकिशोर लजाकर बोला, "इसके लिए मेरी राय की क्या जरूरत थी, आप स्वयं उससे विवाह कर ले सकते थे, और इससे बड़ा सौभाग्य वीणा का और क्या होगा ?"

निश्चय के अनुसार, अजित वीणा को साथ लखनऊ ले आ, कुछ दिन तक होटल में, फिर मुरलीधर के निवास-स्थल से करीब, एक अच्छा-सा खाली मकान किराये पर लेकर, रहने लगा। यहाँ वीणा का नाम शान्ति बदल दिया। कुछ ही समय में अनेक लोगों से पहचान कर ली। स्नेहशंकर की तारीफ शोभा को खोजते हुए पहले सुन चुका था। देखा, उसके मकान से स्नेहशंकर की कोठी भी नजदीक पड़ती है। देखा, मुरलीधर एक किराये की कोठी में रहते हैं, और स्नेहशकर के यहाँ एक सुन्दरी कुमारी भी है।

बाईस

कुछ दिनों से राजा मुरलीधर पं. स्नेहशंकरजी की बगल में एक किराये की कोठी लेकर रहते हैं। जिस उर्वशी को पहले एक दिन थिएटर-हाल में उन्होंने देखा था, उसे पाने की आशा से सरकारी अफसरों के असुर और देवताओं को एकत्र कर समुद्र-मन्थन शुरू कर दिया। पर असुरों की तरह रज्जु-रूप शेष के फणों की ओर नहीं पकड़ा। सोचते थे, नाराज होकर शेषजी ने कहीं चोट की, तो उर्वशी के उठने से पहले मैं ही उठ जाऊँगा। अतः बराबर पूछ की ओर पकड़ने का ध्यान रखते थे। पर एक गलती उन्होंने की। केवल रत्न-प्रभा की आशा रक्खी, जहर के उठाने की सोची ही नहीं।

स्नेहशंकरजी के मकान के दो-तीन इकमंजिले मकानों के बाद राजा साहब की कोठी है। यहाँ-वहाँ के दूसरी मंजिलवाले मजे में दृष्टि द्वारा आदान-प्रदान कर सकते हैं। राजा साहब के पड़ोस में आने पर स्नेहशंकरजी को मतलब मालूम हो गया। उन्होंने एक दिन अलका को पास बुलाया, और स्नेह से कहने लगे, "वह जो कोठी है, उसमें मुरलीधर अब आकर टिके हैं। यह उनका मकान नहीं। यह वही मुरलीधर हैं, जिनके कारण तुम्हें घर छोड़कर एक दिन निकलना पड़ा था। इनका मतलब यहाँ आने का अच्छा अवश्य नहीं, और हो-न-हो लक्ष्य तुम्हीं हो।"

अलका अब वह अलका नहीं। यद्यपि अभी उसे कुछ दिन पिता के पास और

पढ़ना है, पर उसे अपने विचारों पर निश्चय होने लगा है, और पिता भी घूमने-फिरने और मिलने-जुलने में पहले से उसे अधिक स्वातन्त्र्य दे चले हैं।

"जैसा आप कहें, करूँ," नम्र-निश्चल पलकों से पिता को देखकर पूछा।

"सिर्फ, कुछ सावधान घूमने-फिरने के समय रहना, और इसके मर्ज की दवा कोई कर ही देगा।"

"किसी दूसरे का भरोसा रखना कमजोरी है। जो ऐसे-ऐसे पापों को हाथ बढ़ाते हुए संकोच नहीं करता, पिता किसी भी समझदार को चाहिए कि उसके हाथ उसी समय काट ले।"

"तुम अधीर होती हो। अपने पापों का फल तत्काल नहीं समझ में आता। उसका जहर अवस्था की तरह ठीक अपने समय पर चढ़ता है। तुम जानती हो, संस्कारों के कारण शरीर का अस्तित्व है। नवीन संस्कारों का शरीर बाल्य और शैशव में बीज-रूप जब तक रहता है, उसका यथार्थ जीवन समझ में नहीं आता। पर वे बुरे भावनाओं के पुंजीकृत संस्कार यौवन की पूर्णता में बदलकर प्रत्यक्ष होते ही, गेंद की तरह, मनुष्यों के पद-पद की ठोकरें खाते हैं, उन संस्कारों के उस मनुष्य को ठोकर मारकर ही दूसरे सुखी होते और अपना उत्तरदायित्व निभाते हैं—विना मारे रह नहीं सकते—न मारें, तो जीवन के खेल में गोल खाकर हार जायँ।"

"परन्तु—"

"परन्तु कुछ नहीं, तुम केवल अपनी रक्षा करती रहो, दूसरे पर प्रहार करो, ऐसा अधिकार तुम्हें नहीं अलका। स्पर्धा करो, ऐसा भी नहीं। उसके दौरात्म्य की चोट सहकर, उसे क्षमा कर तुम अधिक शक्ति धारण कर रही हो। इसलिए वही तुम्हारे चारो ओर चक्कर खा रहा है। यदि अब उसी के किसी ताड़ित केन्द्र से पृथ्वी की तरह सक्षम होने की रस्सा-कशी करो, तो तुम्हारे ही हृदय के किसी सत्य-हार का सूत्र इस संघर्ष से टूटेगा।"

"मगर ऐसा होना भी तो प्राकृतिक सत्य है पिता।"

"है। इसीलिए मैं प्रकृति से कहता हूँ, अपने सत्य की रक्षा करो, यह तुम्हारे हृदय से अपना महत्त्व लेकर निकल न जाय।"

अलका नीरज-नेत्रों से पिता के ज्ञानोज्ज्वल उत्पल पलक देखती रही। 'अच्छा जाओ, तुम्हें सावधान कर देने के लिए बुलाया था', कहकर स्नेहशंकर एक पुस्तक देखने लगे। अलका अपने कक्ष में चली गयी। वहाँ से वह कोठी साफ देख पड़ती है।

एक दिन अलका ने एक आदमी को उसी मकान से बड़े गौर से देखते हुए देखा। अनुमान से निश्चय किया कि वह मुरलीधर ही होगा। संयत हो अपने पलँग पर बैठ गयी। खिड़की खुली रही। मुरलीधर घण्टों तक उस सौन्दर्य की शोभा को देखते रहे। अलका सावित्री की लिखी हाल ही की प्रकाशित 'पत्रिका' नाम की उपन्यास-पुस्तिका, जो उसी रोज मिली थी, पढ़ रही थी। पुस्तक की असमाप्त कला अलका को बहुत पसन्द आयी। जब आँख उठाकर देखा, वह मनुष्य उसे देख रहा था।

अलका उसकी दृष्टि के ताप से ऐसी जली कि उस दिन से आँचल-वाल आदि का जान-बूझकर सँभाल न रखने लगी। फिर उस तरफ जहाँ तक हो सका, ज्ञान-पूर्वक नहीं देखा।

इसी के कुछ दिन बाद एक नये परिवार से अलका की घनिष्ठता बढ़ने लगी। अजित और उनकी स्त्री शान्ति एक दिन पं. स्नेहशंकरजी से मिलने आये। बातचीत से स्नेहशंकरजी बहुत खुश हुए। अजित ने अपना नाम, ग्राम, सब ठीक-ठीक बतलाया, सिर्फ मुरलीधर की मुरली छीनकर बेसुरे राग की सजा देनेवाला मतलब छिपा रक्खा।

शान्ति कभी-कभी अलका के पास जाने लगी। दोनों के सखित्व की शाखा में स्नेह के वसन्त-पल्लव फूटने लगे।

तेईस

प्रभाकर को देखने के बाद अलका के हृदय-पुष्प की अक्षय सुरभि मन के मारुत-झकोरों से पुनः-पुनः उसी ओर बहने लगी। अलका इस सुखकर प्रवाह में स्वयं बह जायगी, ऐसी कल्पना न कर सकी। वह अपने सूक्ष्म तत्त्व में सुरभि के सिवा और कुछ नहीं, यह वह जानती है, पिता के पास ऐसे सिद्धान्तों की पुनः-पुनः आवृत्ति सुन चुकी है, साथ ही वह कह चुके हैं, यथार्थ प्यार जीवों को देने पर वृत्तियों का खिचाव नहीं रहता, तभी स्वतन्त्र रूप से दूसरों को प्यार किया जा सकता है, स्वार्थ लेश-मात्र में रहते ऐसा सम्भव नहीं। अलका के हृदय को विश्वास है, वह किसी प्रलोभन या स्वार्थ से प्रभाकर की ओर नहीं खिंच रही। वह उससे कुछ भी नहीं चाहती। वह एक सच्चा युवक है, वीर है, त्यागी है, इसीलिए उससे मिलकर बातचीत करने, उसकी बातचीत सुनने को जी चाहता है। पंकिल प्रेम से मनुष्य की आकृति कैसी बन जाती है, वह तेज बाबू में अच्छी तरह दीख पड़ती है। पड़ोस में भी एक उदाहरण है। ये लोग प्राणों तक पहुँचकर नहीं, किसी स्वार्थ का परिणाम सोचकर, मतलब गाँठकर चाहते हैं, इसीलिए इनकी चाह चर्म-चक्षुओं की पहुँच तक परिमित और चर्म-देह के सौन्दर्य तक सीमित है। पर प्रभाकर ने तो अच्छी तरह उसे देखा भी नहीं, आँखें झुकाये हुए आँखों के दर्शन को पहले ही दृष्टि के तत्त्व से बेदखल कर चुका है। चुपचाप अपनी आत्मा से मानकर, और समझ-दार को मनाकर चला गया। क्या अलका ऐसी ही समझदार नहीं? वह जरूर है, उसके प्राणों से आवाज आयी।

हाय! इतने तत्त्वों के मार्जित ज्ञान के भीतर, इतनी पति-तपस्या के कारण का क्या यही कार्य है कि एक अपरिचित तपस्वी सबसे प्रिय वस्तु छीनकर चला जाय, और लुटी हुई की किसी तरह भी समझ में न आये कि यह उसी की दुर्बलता

का प्रबल प्रमाण है ? दूसरे दिन पिता से अलका ने प्रभाकर की बातचीत में प्रशंसा कर कहा कि ऐसा एकनिष्ठ एक भी मनुष्य उसने बाहरी दुनिया में नहीं देखा, और आज वह उसके डेरे पर उससे मिलने जायगी, पिता आज्ञा दें। स्नेहशंकर ने आज्ञा दे दी।

अलका ताँगा बुलवाकर चल दी। स्नेहशंकर मुस्किराये---साम्य भाव की इच्छा और उसकी पूर्ति जीवन की सबसे पुष्ट खूराक है, यह नहीं मिलती, तो वैषम्य के संसार में शान्ति दुर्लभ है।

पूछकर ताँगेवाले ने प्रभाकर के मकान के सामने रोका। अलका उतर गयी। प्रभाकर बैठा था। आज तक ऐसा आश्चर्य जीवन में उसे दूसरा नहीं देख पड़ा। ससम्भ्रम जबान से केवल निकला, "आप !"

"हाँ, आप मुझे देखकर आश्चर्य में हैं, पर शायद उन स्त्रियों के लिए, जो राह पर भीख माँगती हैं, आपको आश्चर्य न होगा। आपने सोचा होगा, आश्चर्य भी हमारी पराधीनता के मुख्य कारणों में से है।"

इज्जत के साथ प्रभाकर ने कुर्सी खींचकर बैठने को दिया। फिर विनयपूर्वक पूछा, "आपका नाम ?"

मुस्किराकर अलका ने जवाब दिया, "मुझे अलका कहते हैं। उस रोज वहाँ आपने बहुत अच्छा उत्तर दिया !"

"कमिश्नर साहब आपके कोई होते हैं ?"

"ऐसे कोई नहीं होते, मेरे पिताजी के मित्र हैं, और उनसे कहकर मुझे कन्या-रूप ग्रहण किया है। पर अभी मैं अपने पिताजी की ही मातहत हूँ। उनसे पढ़ती हूँ। आप क्या मेरे पिताजी से एक बार मिल लेंगे ? उन्हें देखने पर आपको हर्ष होगा।"

"यह मैं आपकी ही सदाशयता से मालूम कर रहा हूँ। आपके पिताजी का शुभ नाम ?"

"पण्डित स्नेहशंकर।"

"स्नेहशंकर ? जिन्होंने अँगरेजी में 'धर्म और विज्ञान' नाम की पुस्तक लिखी है ?"

"जी हाँ, उनकी कई और भी किताबें हैं।"

"मैं अवश्य उनके दर्शन करूँगा। मेरा सौभाग्य है, जो उनकी कन्या मुझे दर्शन देकर यहाँ कृतार्थ करने पधारीं। मैंने उनकी एक ही पुस्तक पढ़ी है, और ऐसे मार्जित विचार की दूसरी पुस्तक नहीं देखी।"

अलका प्रसन्न है। कपोलों पर रह-रहकर मुस्किराहट आ आती है।

"आप-जैसी सहृदया विदुषियों को भारत की अशिक्षा से ठुकरायी हुई, समाज की उपेक्षित स्त्रियाँ करुणा-कण्ठ से प्रतिक्षण अशब्द आमन्त्रण दे रही हैं," व्यथा से भरी भारी आवाज में प्रभाकर ने कहा।

"क्या आपको मेरी सेवा की ऐसे समय जरूरत होगी ? कभी हो, आप मुझे आज्ञा देने में संकोच बिलकुल न करें। मुझे आपकी आज्ञानुवर्तिता से सुख होगा—" आँखें झुका प्राणों के पूर्ण दानवाले शान्त संयत स्वर से अलका ने उत्तर दिया।

प्रभाकर को जान पड़ा, यह प्रभा स्वर-मात्र से उसे स्वर्गीय कर दे रही है। नारी-चरित्र का जो चित्र आँखों के सामने आया, चिरकाल तक प्रोज्ज्वल कर रखनेवाली पवित्र शक्ति प्राणों के समीर-कोष में भर गया, जैसी सभी तत्त्वों के एक बीज-मन्त्र ने अपनी विभूति का क्षणिक संसार समझा दिया हो, और वह ऐश्वर्य से एकमात्र सत्य में बदलकर स्थायी हो गया हो।

प्रभाकर बोला, "मैं आपकी इतनी उक्ति-मात्र से आपका दासानुदास बन गया हूँ।"

अलका हँस पड़ी। बोली, "ज्यादा भक्ति अच्छी नहीं होती। पिताजी कहते हैं, यदि मनुष्य के रूप में होंगे, तो इष्टदेव में भी भक्त को दोष दिखलायी पड़ेंगे। इसलिए फिर एक रोज मेरे किसी दोष पर आपको मुझसे ऐसी ही घृणा हो जायगी। आप देश-भक्त हैं, इसलिए भावुकता की मात्रा आपमें कुछ अधिक है।"

प्रभाकर ने भी रसिकता की, "झुकी हुई नजर उठती ही है, आप ठीक कह रही हैं, पर उसका अर्थ भी बुरा नहीं लगाया गया। दोष को व्यापक विचार से देखने पर मृत्यु के जीवन की तरह वह गुण हो जाता है।"

"आप तो बड़े पक्के दार्शनिक जान पड़ते हैं।"

"चूँकि बिना दर्शन के पग-पग पर चोट खाने का डर है।"

"पर जहाँ पग रखनेवाली गुंजाइश न हो?"

"वहाँ रास्ता बताने के लिए आप लोग हैं।"

अलका लज्जित हो गयी। प्रभाकर भर गया। आनन्द में निश्चल कुछ देर तक अपने में लीन बैठा रहा। फिर कहा, "आपकी मुझे जरूरत है। मैं यहाँ के कुलियों की स्त्रियों के लिए एक नैश पाठशाला उनकी खोलियों के पास खोलना चाहता हूँ। आप केवल दो घण्टे, शाम सात बजे से नौ बजे तक, दीजिए। पर आप इतना कष्ट..."

"हाँ, स्वीकार कर सकूँगी। मेरी दीदी तो ऐसा ही करती हैं, और इस काम में उन्हें बड़ा आनन्द मिलता है। मेरे पिताजी ने मेरी शिक्षा का श्रीगणेश इसी विचार से किया था। उनसे कहकर मैं आज्ञा ले लूँगी।"

"पर मुझे अगर सजा हो जाय, तो आपका काम—"

"आपको सजा न हो, मैं इसके लिए कमिश्नर साहब से कोशिश करूँगी।"

प्रभाकर लज्जित हो गया। जैसे उसका सिर उठा रखनेवाली सारी शक्ति इस एक बात में सीता की तरह अपमान के भार से पाताल समा गयी। बोला, "मैं आपसे सबसे पहले यही विनय करता हूँ कि आप मुझे बचाने के लिए एक बात भी कमिश्नर साहब से न कहें। देश के इस उद्देश में आपके भाग लेने पर कमिश्नर साहब समझाने की अपेक्षा ज्यादा समझेंगे, और इस समझ से, मेरे जेल जाने पर काम करते रहने की अपेक्षा अधिक फल होगा, और उन लोगों को भी, जो मुझसे कुछ सीखते हैं, अब से एक गहरी सीख मिलेगी।"

शान्त शिखा-जैसी बैठी हुई प्रभाकर की प्रभाव छोड़नेवाली शब्दावली अलका सुनती रही। इस पर कुछ कहनेवाली कायदे की बात थी ही नहीं। सुनकर श्रद्धा की आँखों एक बार देखा, और पलकें झुका लीं।

भाव के भार से ससम्भ्रम अलका को उभाड़कर हल्के वातावरण में ले आने के विचार से प्रभाकर ने कहा, "आप मुझे मिलीं, यह जेल जाने के फल से ज्यादा मिला। साधना में इससे सिद्धि मैं नहीं चाहता, मुझे उस पर विश्वास भी नहीं।"

हल्की हँसी से अलका के होंठ रँग गये। कहा, "साधक से यदि अधिक साधना लेने की मेरी इच्छा हो, तो साधक अपनी तरफ से अवश्य कुछ नहीं कह सकता।"

"नहीं कह सकता; अवश्य साधना के खण्डित हो जाने का भय न हो।"

"सिद्धि पाये हुए साधक की साधना विघ्नों से भी निर्विघ्न रहती है।"

कहकर अलका उठकर खड़ी हो गयी।

"क्या आप अब जाना चाहती हैं?" प्रभाकर ने भी उठकर पूछा।

"हाँ," सभक्ति, सहास नम्र अलका ने कहा।

"अच्छा, तो आज्ञा दीजिए कि गणों के साधक को गणेश की सिद्धि के दर्शन होंगे," प्रभाकर ने प्रार्थना की।

"मैं कल भी इसी समय यहाँ आऊँगी, अगर आपको कोई दिक्कत न हो।"

"नहीं, मुझे कोई दिक्कत न होगी, बल्कि मैं कृत-कल्प हूँगा। हाँ, समय तो नहीं है, पर क्या आपको आपके घर तक छोड़ आऊँ?"

"हाँ, मैं ले चलने के लिए ही आयी थी, मेरे पिताजी को देखिए।" दोनो ताँगे पर बैठकर चले।

चौबीस

"अलका दीदी मुझे बड़ी अच्छी लगती हैं, मुझे खूब प्यार करती हैं।" वीणा ने वीणा कण्ठ से अजित से कहा।

"यह तारीफ तो बहुत बार कर चुकी हो।" कुछ सोचते हुए कुछ रुखाई से जैसे अजित ने कहा।

"एक तेज बाबू हैं, वह इन्हें बहुत चाहते हैं।"

"हूँ।" अजित सोचता रहा।

"पर यह ऐसा बेवक़ूफ बनाती हैं कि समझकर भी नहीं समझता।"

"हूँ।" अजित पेंसिल-कागज लेकर एक नक्शा बनाने लगा।

"पर एक नेता प्रभाकर हैं, उन्हें यह चाहती हैं।"

अजित ने एक त्रिकोण बनाया, और हर कोण में एक बात लिखकर उसकी चाल दूसरे कोण की तरफ की।

"वह आये थे। पिताजी से बड़ी देर तक बातचीत हुई। अलका दीदी कहती थीं।"

अजित ने कहा, "हम लोग बहुत दिनों तक यहाँ नहीं रह सकते। हमें जल्द

अपना काम ठीक कर लेना है।"

"तो मेरी बात तुमने नहीं सुनी?"

"पहले तुम मेरी बात तो सुन लो, फिर तो मुझे तुम्हारी ही बातें जिन्दगी-भर सुननी हैं।"

वीणा मन से नाराज हो खुश हो गयी। अजित ने कहा, "यह देखो, यह नयी साड़ी, शमीज, लेडी मोजे और जूते तुम्हारे लिए कीमती देखकर ले आया हूँ। पाउडर, सेण्ट वगैरा तो होंगे ही। अपने लिए भी अच्छा अँगरेजी सूट खरीद लिया है। आज चलकर जरा राजा साहब से मिलना है। जितनी अँगरेजी जानती हो, बीच-बीच लड़ा देना।"

वीणा आनन्द से छलकती, तान मुरकी-सी आशिरश्चरण काँप उठी। पुलकित प्रवालोज्ज्वल आँख से प्रिय को देखती हुई बोली, "मुझसे न होगा।"

"होगा क्यों नहीं, होना ही होगा। और कभी-कभी अपनी उसी सुरक्षित ब्रह्मशिरा-शक्ति का आँख से उपयोग अर्थात् कसकर प्रहार कर दिया करना।"

अजित ने तमाम अंगों से उसे गुदगुदा दिया। खिलकर अजित को पकड़कर हिलती हुई बोली, "मुझसे हरगिज ऐसा न होगा, अभी से बतला देती हूँ, उसके यहाँ मैं नहीं जाती।"

"देखो," अजित ने गम्भीर होकर कहा, "वक्त पर गधे को बाप कहा जाता है।"

"तो आप बाप कहिए, मुझसे न होगा।"

"देखो, धोबी के साथ चाहे कुछ बगावत करें, पर धोबिन के हाथ गधे बराबर सधे रहते हैं, यानी इतने समझदार होते हैं। किसकी बात पर कान-पूंछ न हिलाना चाहिए, इतना वे भी जानते हैं।"

"तभी तो कहती हूँ, तुम मेरी बात मान जाओ।" हँसकर वीणा दूसरी तरफ चल दी। अजित कुछ अप्रतिभ होकर सँभल गया। कहा, "तुम व्यर्थ के लिए इतना चौंकती हो। तुम लोगों का यथार्थ तत्त्व योरपवाले समझते हैं। वे तुम्हारे मुखों को महत्त्व में हुक्का मानते हैं, जो सहस्रों मुखों से चुम्बित होकर भी चिर पवित्र रहता है।"

"अर्थात्?" कुछ रुखाई से वीणा बोली।

"अर्थात् वंशी का फूंकवाला छेद जिस तरह होंठ-होंठ से लगने पर भी अपवित्र नहीं माना जाता, उसी तरह स्त्री का मुख है। कृष्णजी की वंशी में यही रूपक है। वह सोलह हजार गोपियों के मुख इसीलिए चूम सकते थे, और चूमकर पवित्र कर देते थे, क्योंकि उन्हें वंशीवाला तत्त्व मालूम था।"

कुछ अप्रतिभ-सी होकर वीणा रोने लगी। अजित आँसू पोंछने लगा। कहा, "तुम नाराज हो गयीं। मैं जरा नास्तिक हूँ, इसके लिए तुम्हें बराबर क्षमा करते ही रहना होगा। पर तुम्हारा धर्म तो यही है—जहाँ पति हो, वहाँ सती भी हो। इसलिए अब साथ चलकर इस यज्ञ में अपना आधा काम पूरा करो। आज्ञा हो, तो मैं ही वेशकारी बनकर देवी को सजा दूं।" कहकर आँचल का एक भाग धीरे से खींचा।

पकड़कर कुछ प्रसन्न होकर, वीणा ने कहा, "मैं पहन लेती हूँ।"

"तुम व्यर्थ नाराज हो गयीं," अजित ने कहा, "स्वभाव में जितने भाव हैं, सब रहते हैं। समय पर उनका उपयोग करना किसी पाप में दाखिल है, यह मेरी समझ में नहीं आया, शायद कभी आयेगा भी नहीं। फिर यह नाटक ऐसा है, जिसकी तुम्हीं प्रधान अभिनेत्री बन सकती हो। अब कहो कि मेरा कौन-सा कसूर था ?"

वीणा मोजे पहन रही थी। आँखों में चपल मुस्किरायी।

अजित ने कहा, "बहादुरी तो बहुत पहले से स्त्रियों को ही मिली हुई है। 'साहसं षड्गुणञ्चैव' छगुनी हिम्मत स्त्रियों में पुरुषों से ज्यादा है, अवश्य 'लज्जा-चापि चतुर्गुणा' यह भी कहा गया है, पर हिम्मत में लाज से ड्योढ़ा बल ज्यादा है, इसलिए जब चाहें, स्त्रियाँ हिम्मत से लाज को दबा सकती हैं।"

वीणा जूते पहनकर, कपड़े बदलने और राग कर लेने के लिए दूसरे कमरे में चली गयी।

अजित बैठा सोच रहा था कि स्कीम किस तरह पूरी हो।

खूब सजकर वीणा बाहर निकली। एक बार जी-भरकर अजित देखने लगा। मुस्किराकर वीणा ने पूछा, "कहीं कोई त्रुटि तो नहीं रही ?"

उठकर अजित ने सिर की साडी एक बगल कर पिन लगा दी। मनीबैग दे दिया। ताँगा बाहर खड़ा था, दोनों बैठ गये।

अजित रॉयल होटल के पते से एक पत्र अँगरेजी में नीरजा के नाम से लिखकर पिछले दिन पोस्ट कर चुका था, और एक कमरा किराये पर लेकर, ईंटें भरकर दो-तीन कीमती केस और बॉक्स, कुछ नये कपडे बाहर से हिफाजत से लपेटकर रखकर वक्त पर भोजन कर, कुछ देर तक अपने अस्तित्व के प्रमाण मजबूत कर चला आया था।

राजा मुरलीधर समय देखकर नीरजादेवी की प्रतीक्षा में बैठे थे कि आगे-आगे नीरजादेवी और पीछे-पीछे उनके सिकत्तर साहब आते हुए देख पड़े। बेयरा ने खबर दी। आधुनिक कायदे से महिलाओं को सम्मान देनेवाले राजा साहब ने कुछ कदम बढ़कर स्वागत किया।

राजा साहब के साथ मोहनलाल भी थे। अजित ने अँगरेजी में पूछा, "क्या मैं मिस जस्टिस लेले से आपको राजा मुरलीधर साहब के नाम से परिचित करूँ ?"

"कीजिए।"

अजित ने वीणा से अँगरेजी में परिचय कह दिया। वीणा कुछ समझी नहीं, सिर्फ सर हिला दिया, और मिलाने को बढ़े हुए राजा साहब के हाथ से हाथ मिलाया।

तमाम बातें अजित ही कहने लगा, मिस साहबा अभी दो महीने हुए विलायत से लौटी हैं। वहाँ पढ़ती थीं। लखनऊ घूमने आयी हुई हैं। अच्छी मोटर यहाँ किराये पर नहीं मिलती। यहाँ के गेट्स् इन्हें बहुत पसन्द हैं। सड़कें बड़ी अच्छी हैं। काफी सफाई रहती है। पार्क खूब बड़े-बड़े हैं। जस्टिस लेले ने लखनऊ के राजा

और तअल्लुकदारों में आपकी बड़ी तारीफ अपनी पुत्री से की है। पहले एक बार वह आये थे, तब राजा साहब के पिता थे, उन्होंने जस्टिस साहब की बड़ी मेहमान-दारी की थी।

राजा साहब ने स्वभावत: वैसी खातिर करने का वचन दिया।

मौका देखकर अजित ने एक बार सबूट पद धीरे से पटक दिया। सुनकर सिखलाई वीणा ने कहा, "थैंक्स।"

जो दृष्टि कहने का प्रयत्न करती है, पर हृदय से स्वत: उठे हुए शब्दों की तरह नहीं कहती, उसी व्यवहारवाली सकाम दृष्टि से राजा साहब कह रहे थे, 'मैं तुम्हारा हूँ,' और जो दृष्टि छल कर अपने मार्ग से धारा की तरह बह जाती है, उससे वीणा ने उत्तर दिया, 'मैं तुम्हारी हूँ।'

काम मनुष्य को स्थिति से स्खलित कर बहा ले जाता है, जहाँ से उसे एक रोज उसी जगह लौटना पड़ता है, जहाँ से वह चला था, यदि कभी जीवन में सुअवसर प्राप्त हुआ; नहीं तो एक जीवन के लिए इसी तरह मनुष्य पथ-भ्रष्ट होकर नष्ट हो जाता है।

बातचीत कर चलते समय अजित ने राजा साहब से कहा, "रात आठ बजे मिस नीरजा साहबा आपको आने के लिए आमन्त्रित करती हैं।" राजा साहब ने सविनय प्रस्ताव स्वीकृत किया। अभिवादन आदि करके वीणा और अजित ताँगे पर बैठे।

राजा साहब ने अर्थ लगाया, योरप में रही है, पूरी छटी है, पर सभ्यता से चुपचाप बैठी रही।

मोहनलाल ने कहा, "जाइए, मिस साहबा का न्यौता है।" कहकर मुस्किराया।

होटल में सिर्फ अजित का नाम विक्रम लिखा था।

अच्छी पार्टी हुई। राजा साहब को खूब खिला-पिलाकर कुमारी नीरजा ने बिदा किया। ड्राइवर और अर्दली सँभालकर राजा साहब को ले गये। प्रात:काल उन्हें पता चला, उनके कोट की जेब खाली है। होटल में पता लगाया, वहाँ कोई न था। पिस्तौल और गोलियाँ चुरा गयीं।

पच्चीस

इधर कुछ दिनों से प्रभाकर के प्रस्ताव के अनुसार रोज दो घण्टे के लिए कुलियों की खोलियों में उनकी स्त्रियों को पढ़ाने के लिए अलका जाया करती है। कन्या का रुख देखकर स्नेहशंकरजी ने आज्ञा दे दी है। कमिश्नर साहब को मालूम होने पर कुछ नाराज हुए और डरे भी। अलका ने कह दिया है, यदि आप ऐसी पुत्री

की तलाश में हों, जो पुन्नाम नरक में आपके लिए स्थायी वास-स्थल तैयार कर सके, तो मुझसे उस प्रयोजन की आशा न रक्खें। तब से कमिश्नर साहब कभी-कभी वैदिक सम्पत्ति की रक्षा के लिए भी सोचते हैं।

राजा मुरलीधर बहुत दिनों तक अलका की आशा में रहे। आशा की नाव के खेनेवाले मल्लाह उन्हें पार कर स्वयं पैसे से निराश नहीं होना चाहते थे, इसलिए अपार सागर में वे केवल खेते थे, और मास्टर मोहनलाल भी आज तक दस देकर बीस लिखते आये थे, उन्हें देर के लिए दिक्कत न थी, जबकि तअल्लुके की आमदनी सत्य के अस्तित्व की तरह चिरन्तन थी, और नौकरी बालू की भीत। दीर्घकाल तक जब कोई उपाय न मिला, केवल उपाय करनेवालों की संख्या बढ़ती रही, तब आप-ही-आप राजा साहब ने एक दिन महादेवप्रसाद को याद किया। आने पर खुद अपना मतलब समझाया, और अपने कमरे से अलका को पहचान लेने के लिए दिखाया। यह भी कह दिया कि यह असिस्टेण्ट डिप्टी-कमिश्नर साहब के यहाँ अक्सर जाया करती है। महादेव ने अच्छी तरह देखा, फिर राजा साहब की दूर-बीन उठाकर देखा, देखकर दंग रह गया।

"कुछ तअज्जुब में हो," राजा साहब ने कहा, "तअज्जुब की चीज ही है।"

"हुजूर!" महादेवप्रसाद ने एक बार फिर दूरबीन से देखकर कहा, "यह तो वही शोभा है, जो भग गयी थी।"

"ऐं! वह है?" राजा साहब आश्वस्त होकर बोले। जिस स्वर में दूसरी यह ध्वनि होती है कि हमारी रियाया है, हम जब चाहें, भोग कर सकते हैं।"

"हाँ सरकार, वही है, फर्क कहीं जरा-सा नहीं दिख रहा। क्या हुजूर जानते हैं, यह मकान किसका है?"

"उसी स्नेहशंकरा का है।"

"हुजूर वही है यह। स्नेहशंकर हमारे यहाँ से कुछ ही फासले पर तो रहते हैं। जरूर इन्होंने इसे भगाया होगा। एक साबित्री सावित्री कहकर इनके यहाँ है, वह भी भगायी हुई है, लोग कहते हैं। इसको ले आना कौन बड़ी बात है?"

कोई बड़ी बात नहीं, राजा मुरलीधर के हृदय में प्रतिध्वनि हुई। अलका अब पढ़ाने के लिए रात को रोज जाती है, यह ताड़कर महादेव ने कहा, "मोटर पर आप बैठ लीजिए, कुलियों की खोली के उधरवाला रास्ता आठ-नौ बजे तक एक तरह बन्द हो जाता है, ताँगेवाले को मैंने साधकर मुट्ठी में कर लिया है, वह भी मदद करेगा, दो सिपाही ले चलें, बस, पकड़कर मोटर पर बैठाल लेंगे, और सदर लेते चले चलेंगे; फिर वह तो वह, उसके देवता अपने काबू में हैं।" मुरलीधर को बात जँच गयी। आज की रात का निश्चय हो गया।

नौ बजे अलका लौटी। अलका के चल चुकने के बाद प्रभाकर चला। कुछ दूर तक एक ही रास्ता चलकर प्रभाकर को घूमना पड़ता था। अलका ताँगे पर आती-जाती थी। प्रभाकर पैदल।

ठीक स्थल पर ताँगा रुका। राह निर्जन हो रही थी। दो आदमी आये, और एक-एक हाथ पकड़ लिया। अलका पहले से जानती थी कि उस पर अत्याचार होगा, इसलिए बहुत ज्यादा नहीं चौंकी। एक बार मुँह देख लिया। लोगों ने

खींचा। वह चली गयी। मोटर पर लोगों ने बैठाल दिया। मोटर चली, तो हाथ ढीले कर दिये। मालिक की नमक-हलाली के प्रमाण-स्वरूप मालिक की बगल में ही उसे ला बैठाला था। मालिक ने मुस्किराकर कहा, "बड़ी मिहनत ली। अब के दोबारा तुम्हें पाने की तैयारी की।"

"बड़ी मिहनत ली, अब के दोबारा तुझे पाने की तैयारी की।" कहकर जेब से निकाल ठीक छाती पर पिस्तौल दाग दी।

धड़ाका, खून का फव्वारा, ड्राइवर और सिपाहियों का वेहोश होना और सामने के एक पेड़ से टकराकर मोटर का टूटना जैसे एक साथ हुआ। अलका पूरी शक्ति से सचेत और सक्रिय थी। मोटर टकराने और मुरलीधर की चीख के साथ पिस्तौल वहीं फेंककर, कूदकर जमीन पर आ गयी। जल्द चलना चाहा। कुछ कदम चली, तो शक्ति की अधिकता से पैर और तमाम देह बिजली से जैस बँध गये। काँपकर गिर गयी।

रात के सन्नाटे में गोली की आवाज और चीख आते हुए प्रभाकर को सुन पड़ी। निकट जानकर वह उसी तरफ मुड़ा। कुछ दूर चलकर देखा, अलका बेहोश पड़ी थी। सब अंगों से सन्न हो गया। मोटर एक पेड़ से भिड़ी पड़ी थी। पड़े हुए लोगों का चित्र देखकर उसे कारण तक पहुँचने में देर न हुई, यद्यपि गोलीवाली बात उसकी समझ में नहीं आयी। अलका को घटना के फैलने और लोगों के आने तक निरापद कर देने के विचार से अकेला सँभालकर कुलियों की खोली की ओर उठाकर ले चला। अलका भी मूर्च्छित हो गयी थी। प्रभाकर लिये जा रहा था, इसी समय अलका को होश हुआ।

"छोड़ दो।" झिड़ककर तेजी से कहा।

"आप अभी स्वस्थ नहीं हैं।"

"मुझे खड़ी कर दीजिए, मैं इस तरह नहीं जाना चाहती।" प्रभाकर सँभालकर खड़ी करने लगा, पर पैर काँप रहे थे।

उसे फिर गिरने से पहले पकड़ लिया। कहा, "आप मुझे क्षमा करें, आप स्वयं नहीं चल सकतीं।"

"मुझे यहीं लेटा दीजिए, और कोई ताँगा ले आइए।" रूखे भाव से अलका ने कहा।

प्रभाकर लाचार हो गया। वहीं अपने कुर्ते पर लेटाकर कुलियों की खोली की तरफ गया। घटना-स्थल से काफी दूर आ चुका था। एक कुली को रास्ते पर पीपल के पेड़ के पास जल्द ताँगा ले आने के लिए कहकर लौट आया।

अलका की हालत सुधर रही थी। प्रभाकर धोती के छोर से हवा कर रहा था। इसी समय ताँगा लेकर कुली आया। ताँगे पर सँभालकर प्रभाकर अलका को घर ले आया, और जैसा देखा था, स्नेहशंकर से बयान किया। उस समय स्नेहशंकर ने प्रसंग पर कुछ भी न कहा, सिर्फ उस रात को रहकर अलका की सेवा के लिए प्रभाकर से अनुरोध किया।

रात-भर जगकर प्रभाकर ने अलका की सेवा की। प्रातःकाल शान्ति उदास होकर सामने आ खड़ी हुई। कहा, "दीदी, पिस्तौल दे दो, वह इसके लिए मुझसे

नाराज हैं।"

"पिस्तौल का काम मैंने पूरा कर दिया है।" धीरे से अलका ने कहा।

शान्ति को लेकर आज अजित कानपुर जानेवाला था। पिस्तौल लेने के लिए उसे भेजकर पीछे-पीछे खुद भी आया। स्नेहशंकर भी अलका के पास आकर बैठे थे।

प्रभाकर गुलाब की पट्टी बदल रहा था। उसी समय अजित आया।

देश, काल और पात्र का कुछ भी विचार प्रभाकर को देखकर उसे न रहा, 'विजय! तुम कहाँ रहे भाई?' कहकर उच्छ्वसित बाँहों में भर, झर-झर-झर-झर बहते आँसुओं के निर्झर से अपने चिर वियोग के दाह को शीतल करने लगा। अलका उठकर बैठ गयी। स्नेहशंकर सविस्मय खड़े हो गये।

"तुम्हें वही किसान फिर बुला रहे हैं भाई! क्षमा माँगी है, और क्या कहूँ, कितने प्रयत्न किये, पर शोभा शायद सदा के लिए चली गयी!"

छब्बीस

अदालत में साबित हुआ कि शराब के नशे में राजा मुरलीधर ने खुदकुशी की है; पिस्तौल और गोली उन्हीं की है।

०००

प्रभावती

समर्पण

प्रिय बीबी,

बहुत दिन हुए—अट्ठारह वर्ष,—पन्द्रह वर्ष की तुम नववधू होकर घर आयी हुई थीं, जहाँ बिना माँ के दो शिशुओं की सेवा में तुम्हें श्रृंगार की साधना का समय नहीं मिला; तुम्हारे ऐसे हस्त संसार के किसी भी चमत्कार से पुरस्कृत नहीं किये जा सकते; मैं केवल अपनी प्रीति के लिए वहाँ यह पुस्तक न्यस्त करता हूँ; जानता हूँ, कालिदास भी तुम्हें 'वीणा-पुस्तक-रञ्जित-हस्ते' नहीं कर सकते, क्योंकि तुम तब से आज तक 'शिशु-कर-कृत-कपोल-कज्जला' हो।

सस्नेह

—'निराला'

लखनऊ

1.3.1936

प्रथम संस्करण की भूमिका

निवेदन

ईश्वरेच्छा से **प्रभावती** सहृदय पाठकों के सम्मुख समुपस्थित है। ध्वंसावशेषों पर कुछ सत्य और कुछ कल्पना का आश्रय लिया गया है, जैसा ऐन्हिासिक रोमांस के लिए प्रचलित है। भाषा खड़ी बोली, खिचड़ी-शैली में होने पर भी, कुछ अधिक मार्जित है, प्राचीनता का वातावरण रखने के लिए। अपढ़ लोगों के वार्तालाप में अवधी मिली है। उस समय की भाषा का प्रयोग वर्तमान साहित्य में नहीं किया जा सकता। प्रधान नायक-नायिकाएँ, उस समय के दो वडे राज्यों—कान्य-कुब्ज और दिल्ली—के आश्रित होकर, बड़े पेड़ों की छाँह में न उभड़ पाते हुए पौधे की ही तरह रह गये हैं या विशेषता प्राप्त कर सके हैं, पाठक स्वयं निर्णय करेंगे। मैं अपनी तरफ से अन्य पुस्तकों के नायक-नायिकाओं के मुकाबिले यमुना को देता हूँ—सुधी आलोचक देखेंगे। 47वें पृष्ठ की 12वीं पंक्ति [पाँचवें परिच्छेद के अन्तिम अनुच्छेद के पहलेवाला अनुच्छेद—सं.] में 'दिन भर' की जगह 'रात भर' होगा; इससे भाव और साफ हो जायगा। ऐसी दो-चार तथा अन्य प्रकार की त्रटियों के लिए पाठक क्षमा करेंगे।

—**'निराला'**

द्वितीय संस्करण की भूमिका

निवेदन

'प्रभावती' रोमैण्टिक उपन्यास है। कथा भाग जयचन्द कान्यकुब्जेश्वर सम्राट् के समय का। उस वक्त के किले बहुत हैं, अब ध्वंसावशेष। कुछ के बयान चरित-नायकों के साथ आये हैं। प्रभावती और यमुना ऐसे ही

किलेदार की कुमारियाँ हैं। राजनीति, समाज और धर्म कथा के साथ जिस रूप में आया है, पाठक स्वयं विवेचन कर लेंगे। हिन्दी में इस उपन्यास की तारीफ हुई है। अभी उस रोज भी डाक्टर रामविलास के लेख में इसके उद्धरण आये हैं। भाषा और भाव की दृष्टि से पुस्तक मध्यम या उच्च कक्षाओं में रखने योग्य है। यदि अधिकारी ध्यान दें तो हिन्दी के साथ सहयोग और सराहनीय हो। इति।

दारागंज

13.3.45

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

एक

लवणा एक छोटी बरसाती नदी है। उन्नाव के पास ऊसर से निकली, खजुरगाँव से कुछ दूर गंगा में मिली है। उपनिषदों की तरह सैकड़ों नाले इससे आकर मिले हैं। बरसात की शोभा देखते ही बनती है। बस्ती और ऊसरों का तमाम पानी इससे होकर गंगा में जाता है। पहले इसके तटों पर नमक बनता था। लवणा इसका शुद्ध नाम है, यों इसे लोना कहते हैं। इसके सम्बन्ध में एक दन्त-कथा भी प्रचलित है। पर वह केवल कपोल-कल्पित है। वर्त्तमान युग के मनुष्यों को मालूम होना चाहिए कि गंगा की उत्पत्ति में-जैसे इसमें भगीरथ-प्रयत्न न रहने पर भी, खेत काटती हुई, पुत्रों को देखकर भगी, लज्जिता, नग्न लोना चमारिन के गंगा-गर्भ में चिराश्रय लेने की पद-रेखारूप बनी यह नदी वैसी ही आख्या रखती है; यदि बरसाती नदी न होकर बारहमासी होती, तो शायद भगीरथ के रथ के पीछे जैसे, लोना चमारिन के पीछे भी लज्जाकलंक-क्षालनार्थ प्रबल वेग से जलधारा बहती होती। इस समय इस प्रान्त की आबादी बहुत बढ़ गयी है, फिर भी कहीं-कहीं लवणा के तट काफी भयावने, हिरन, भेड़िये और जंगली सूअर आदि के अड्डे हो रहे हैं। तब, जब कान्यकुब्ज का दोपहर का प्रताप-सूर्य पूर्ण स्नेह की दृष्टि से अपनी पृथ्वी को देख रहा था, इसके तट इतर वृक्षों तथा झाड़ियों से पूर्ण, अन्धकार से ढँके रहते थे। स्थानीय राजकुमार तथा वीर क्षत्रियों का यह प्रिय मृगयास्थल था।

लवणा उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर प्रवाहित है। इसके प्रायः पाँच सौ वर्ग मील फैले दोनों ओर के हरे छोरों के भीतर भारतीय संस्कृति तथा उदार प्राचीन शिक्षा के अमृतोपम पय को धारण करनेवाले कान्यकुब्ज सभ्यता के युगल सरोज झलक रहे हैं। दाहिने—दक्षिण ओर, शुभ्र स्वच्छतोया जाह्नवी; मध्यभाग में लवणा, अपने जीवन-प्रवाह को पूर्ण करती हुई; उत्तर—बायीं ओर, मन्दगामिनी सई।

आज इसी भाग का नाम बैसवाड़ा है। इस समय बैस राजाओं तथा ताल्लुकेदारों की छोटी-छोटी रियासतें यहाँ से अवध तक दूर-दूर फैली हुई हैं; और कई जिलों में भाषा-साम्य भी प्राप्त होता है, फिर भी बैसों की मुख्य राजधानी यही उल्लिखित पवित्र कान्यकुब्ज भूमि है। आज आमों के विशालकाय उपवन एक-दूसरे से सटे कोसों तक फैलते चले गये हैं। यदि इस विस्तृत भूखण्ड को शतयोजनायत एक रम्य कानन कहें, तो अत्युक्ति नहीं होती। उपवन तथा जनाकीर्ण जनपद मुसलमानों के राज्यकाल में भी समृद्ध थे, देखने पर मालूम हो जाता है। गंगा की

उपजाऊ तट-भूमि, धौत-धवल मन्दर-तुल्य मन्दिर, कारुकार्य-खचित द्वार, दिव्य भवन, देववाणी तथा देवसरि का आर्य भावानुसार सहयोग, खुली गोचर-भूमि, सुख-स्पर्श मन्द-मन्द पवन-प्रवाह, अनिन्द्य हिन्दी के मंजे कण्ठ से निकले ग्राम-गीत किसी भी दर्शक भ्रमणकारी को तत्काल मुग्ध कर लेंगे। पर उस समय जब कि आर्य-संस्कृति का पावन प्रकाश यहाँ के निरभ्र आकाश में फैला था, यहाँ की और ही शोभा थी। कमल की सुगन्ध की तरह लोकोत्तर माधुर्य का वह विकास, वह श्री अपने आधार को छोड़कर इतनी दूर तक चली गयी थी कि उसकी वर्णना नहीं हो सकती। आज वह उपभोग्य नहीं, किसी तरह अनुभव-गम्य है।

वाल्मीकि की सीता, कालिदास की शकुन्तला, श्री हर्ष की दमयन्ती प्रति गृह को अपनी दिव्य ज्योति से आलोकित कर रही थी; बल्कि बाहर से होनेवाले आक्रमणों ने इन भारतीय महिलाओं, विशेषकर क्षत्रिय-कुमारियों को आत्म-रक्षा के लिए सजग कर एक दूसरे ही भाव-रूप में बदल जाने को बाध्य कर दिया था। क्षत्रिय-वीरांगनाएँ अश्वारोहण और शस्त्र-प्रयोग में भी पटुत्व प्राप्त कर रही थीं। एक ओर मुख की जैसी स्निग्ध चन्द्राभा सौन्दर्य के अपार समुद्र को ज्वार से उच्छ्वसित कर रही थी, दूसरी ओर अविचल अपांगों की दृप्त द्युति में पति-प्रेम की वैसी ही कठोरतम तपस्या आत्म-रक्षा के उज्ज्वल गर्व से चिरजाग्रत थी। क्षत्रियों के औद्धत्य के साथ-साथ वामादर्प भी देश के बल के उपमान के रूप से मस्तक उठाये हुए था। बौद्धों का प्राबल्य शरत्काल की क्षुद्र जल-धारा की तरह भारत की धरा से लुप्त हो चला था। पौराणिक सभ्यता की प्रबल शाखाएँ उज्जयिनी के वासन्तिक विकास से पल्लवित होती हुई अ कुसुमित तथा फलित हो रही थीं। इस समय कान्यकुब्जेश्वर भारत के श्रेष्ठ शक्तिधर, कला और कौशल के सर्वोत्तम आधार-स्तम्भ थे; पर महाराज पृथ्वीराज की लोकप्रियता प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी, गोराधिपति मुहम्मद कई बार परास्त हो चुका था; अपने उदार क्षात्रधर्म के अनुसार उस जीवनाकांक्षी को कई बार वे प्राणों का दान दे चुके थे। निकट सम्बन्ध, अप्राप्त राज्याधिकार तथा पिथौरा की बढ़ती हुई शक्ति जैसे राजनीतिक अनेक कारणों से हुआ दिल्लीपति तथा कान्यकुब्जेश का वैमनस्य प्रजावर्ग को बहुत दिनों से ज्ञात था। उल्लिखित यह समस्त कान्यकुब्जभूमि महाराज जयचन्द्र के शासनाधिकार में थी।

इस समय लालगढ़* पूर्ण यौवन में ओत-प्रोत, सौन्दर्य की उद्दाम वासनाओं से

* गंगा से प्राय: ग्यारह कोस उत्तर लालडीह नाम का ऊँचा विस्तृत-स्तूप रूप में परिणत एक स्थान अनेक प्रकार की जनश्रुतियों के आधार धारण किये प्रत्यक्ष सत्य में विराजमान है। इससे एक मील उत्तर पुरवा नाम का, उन्नाव जिले का सबसे बड़ा कस्बा, मुसलमान राज्यकाल का समृद्ध शहर—एक कमिश्नरी, अपने मन्द प्रकाश में भी गत महत्ता का स्पष्ट इतिहास सूचित कर रहा है। इस समय भी यह उन्नाव का एक सबडिवीजन है। लालडीह अब भी पुरवा की सीमा के अन्दर है। यह पुरवा कस्बा, पहले अपूर्व नगरी के रूप से, इसी लालडीह के प्राचीन नाम लालगढ़ के ठीक उत्तर, मिला बसा हुआ था; गढ़ के नष्ट होने के बाद पतित से घृणा करनेवाली कमला की तरह हटता हुआ अपभ्रष्ट नाम ग्रहण कर एक मील दूर चला गया है।

चपल हो रहा है। यहाँ के राजा महेन्द्रपाल कान्यकुब्जेश को स्वल्पमात्र कर तथा युद्ध के समय पाँच हजार सेना से सहायता देनेवाले मित्र हैं।

लालगढ़ चारों ओर से जल से भरी चौड़ी खाई से घिरा हुआ है। खाई में विहार के लिए छोटी-छोटी रंगीन, मयूर-पारावत, हंसादि सुन्दर-सुन्दर पक्षियों के आकार की बनी सजी चमकती हुई किश्तियाँ पड़ी हैं। वसन्त से निकलते हुए श्वेत और लाल कमल बीच का गहरा जल छोड़कर दोनों ओर, शरत के अन्त तक खिलते और दिक्कुमारियों की आँखों को शीतल और केशों को सुवासित करते रहते हैं। जल के भीतर की ओर किनारे के ईंटों की मजबूत चारदीवार उठी हुई है जिस पर तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र गड़े हुए, सूर्य की किरणों में लपलपाते रहते हैं। चार-दीवार के बीच-बीच छोटे-छोटे, बड़ी खिड़कियों के तौर पर बने वज्रद्वार हैं जिनसे रानियाँ स्नान तथा जल-विहार के लिए बाहर निकलती हैं। सामने ईंटों के बने, जल में उतरने से सुदृढ़ सोपान, विस्तृत घाट, दोनों ओर मौलसिरी के छायादार विशाल वृक्ष। चारों दिशाओं में अत्युच्च चार फाटक, आठों पहर सशस्त्र सिपाहियों का पहरा लगा हुआ। बाहर जाने के लिए पुष्ट काष्ठ के बने चार रास्ते, जल से बनकर आये हुए ईंटों के पुल से मिले हुए इच्छानुसार खोले जा सकनेवाले, जिससे किला जल से घिरा सुरक्षित रहे। भीतर गगनचुम्बी भवन, रथ, घोड़े और अस्त्र-शस्त्रादि की अलग-अलग शालाएँ, दरबार, रनवास, सेनानिवास आदि। अगरु, चन्दन और कस्तूरी की उठती हुई सुगन्धें। देवार्चना तथा मनोरंजन के उद्यान। जल के हौज। प्रतिगृह की भिन्न-भिन्न निर्माण-कला। भारतीय शिल्प और उज्ज्वल कौशल का यह कमलानिवास नील जलराशि के भीतर आकाश के चन्द्र की तरह शोभित है। उत्तर के फाटक के बाहर साधारण जनों की असाधारण अपूर्व नगरी अपनी अनुपम विभूति से आगन्तुकों को मुग्ध करती हुई। दुर्ग के फाटकों से दूर प्रान्तरों के पार उपवनों की छाया-रेखा।

राजकुमार देव सज्जित घोड़े पर सवार, हाथ में भाला लिये, ढाल-तलवार और तरकस-कमान बाँधे अकेले पूर्व के फाटक से बाहर निकले। प्रकृति की दृष्टि में नया वसन्त फूट चुका है। वन्य वासन्ती, हरी साड़ी पहने प्रिय की अपलक प्रतीक्षा कर रही है। कोई मालिनी उसकी लतायित कवरी में फूल खोंसकर गले में हार पहना चुकी है। कुमार पूर्व की ओर घोड़ा बढ़ाते, प्रकृति की नयी सज्जा देखते हुए चले जा रहे हैं। मालूम न हुआ और घोड़ा आठ कोस भूमि पार कर लवणा के वन में आ पहुँचा। कुमार घोड़ा बढ़ाते हुए लवणा को पार कर गये। यहाँ से दूसरे राज्य की भूमि है। पर प्रकृति की शोभा देखते हुए तन्मय, नवीन यौवन स्वप्न में भूले राजकुमार को यह न मालूम हुआ कि वे शिकार के लिए आये हुए हैं। इसी समय सामने से एक शब्द आता हुआ सुनायी पड़ा। उसी तरफ घोड़ा बढ़ाते गये। जब घटना-स्थल कुछ दूर पर रह गया तब संघटित दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गये—

घोड़े की लगाम डाल से बँधी हुई है, राजवेश से सज्जित एक युवक सुअर का शिकार कर भाला निकाल रहा है। भाला कनपटी से गर्दन को पार कर निकल गया है। निस्पन्द पशु शायद मर चुका है। युवक भाला निकाल रहा है। फलक

बड़ा होने के कारण भाला निकल नहीं रहा।

ऐसी अवस्था में स्वभावत: कुमार के हृदय में कौतूहल हुआ। घोड़ा बढ़ाकर युवक के पास पहुँचे, कुछ पहचाना, पर भ्रम हुआ कि गलत न पहचाना हो; इसलिए सघन वृक्षों का अँधेरा पार कर निश्चय कर लेने के विचार से और अच्छी तरह देखने लगे। यह शिकारी को आत्मसम्मान के खिलाफ जान पड़ा। "क्या देखते हो ?" डाँटकर पूछा।

गले के स्वर से कुमार का रहा भ्रम जाता रहा। बोले, "मुझे संशय था, इसलिए आपका निश्चय करने लगा। क्षमा कीजियेगा।"

"अब तो आपका संशय दूर हो गया?" शिकारी ने पूछा, "आपका परिचय?" शिकारी भाला निकालना छोड़कर शौर्य से तनकर आगन्तुक को देखने लगा।

"मेरा स्थान लालगढ़ है, नाम देव ! शायद इतना परिचय यथेष्ट होगा।" राजकुमार ने मुस्कराती आँखें झुका लीं।

"तो आपका यहाँ कैसे आना हुआ ? यह आपका राज्य नहीं। इस जंगल में शिकार के लिए आना एक दूसरे राजकुमार के लिए अपमानजनक हो सकता है।"

उत्तर तीखा था, पर राजकुमार विचलित न हुए। उन्होंने उसी तरह आँखें झुकाये सरल भाव से कहा, "आपका कहना ठीक है, पर भ्रम तो मनुष्य से ही होता है। नया वेश बदले हुए प्रकृति को देखता हुआ मैं कुछ मुग्ध-सा हो गया। अपन और पराये इलाके का ज्ञान नहीं रहा। घोड़ा अपनी चाल बढ़ाता हुआ नदी पार कर इधर आ गया। एक शब्द हो रहा था, जिसे सुनकर कौतूहलवश मैं यहाँ चला आया, क्षमा कीजियेगा। शिकार करते और भाला निकालते आपको बड़ा श्रम पड़ा है; मुझे अभी कुछ भी मिहनत नहीं पड़ी। आप आज्ञा दें, तो आपका भाला निकालकर अनधिकार प्रवेश का प्रायश्चित्त कर डालूं।"

"आपतो बड़े वाक्पटु मालूम देते हैं।" शिकारी ने कहा, "अच्छा, आप मेरा भाला निकालिए तो सही।"

पैरों से मृत सुअर को दबाकर राजकुमार भाला निकालने लगे। पहला जोर खाली गया। शिकारी की हँसी स निर्जन वन-भूमि गूंज उठी। लज्जित होकर राजकुमार ने दूसरा जोर लगाया। पहले जोर के वक्त राजकुमार की दृष्टि शिकारी की आँखों से लिपटी हुई थी—सारा बल जैसे उन्हीं में प्रवेश करता जा रहा था—वे देख रहे थे—

एक दूसरी वसन्त-रश्मि उन आँखों में फूट रही है। प्राणों का प्रति पत्र उसके पात से भिन्न-भिन्न रंगों से चमकता जा रहा है। यह जिस दृष्टि की रश्मि है, उसके साकार तत्त्व में केवल देह को पल्लवित करनेवाला वसन्त ही नहीं; श्रम का ताप—ग्रीष्म, मस्तक पर कुण्डलायित बँधे विपुल केशों के बादल—नीचे ललाट पर श्रम-कण—वर्षा के जल-बिन्दु, मुख पर नवजीवन से स्नात शारद अमन्द द्युति, अंगों में यौवनांग का पुष्टि हेमन्त, व्यवहार में रुक्ष शिशिर—धनुष-तीर आदि की निष्पत्र डालों का पतझड़, सभी ऋतुओं की शोभा वर्त्तमान है। कैसी आँखें ! संयत आयत कैसी अचल दृष्टि !—समस्त विश्व के दर्प को जैसे दबाकर वश कर रही है। पृथ्वी के हरे तरंगित वृक्षों की सब्ज जल-राशि के भीतर

यह कमला-सी खुली स्वरूपा कुमारी, अक्षत अज्ञात भी कैसे मौन इंगित से, प्रतिक्षण आमन्त्रण दे रही है ! नयनों की मौन महिमा में भी असंख्य गहरे अर्थ छिपे हुए हैं ! बिना शब्द के, सौन्दर्य की कैसी कर्मवेधिनी व्याख्या है ! कोमल पद, पीनोरु—दीर्घ मध्य को धारण किये, क्षीण कटि, समुन्नत विशाल वक्ष—वर्म को भेदकर पुष्प मांसलता स्पष्ट होती हुई, लम्बित भुजाएँ, कपोत-ग्रीवा, पश्मल रहस्यमयी बड़ी-बड़ी तिर्यक आँखें, चितवन बहुत दूर आकाश की ज्योत्स्ना की तरह किसी के तृषित हृदय-चकोर के लिए उतर रही है ! यह वीरवेश इस विजयिनी छवि के रक्षक की तरह।

पहले सुन्दर आँखों से दृष्टि बँध जाने के कारण, जोर खाली गया—मन और इन्द्रिय दूसरे के अर्थ को छोड़कर स्वार्थ में लगे थे—आँखें और कल्पना अन्यत्र होने के कारण कार्य-शक्ति शून्य-रूप रह गयी थी—हाथ फिसल गया था। इस बार कुमार ने पूरा जोर लगाया। इतनी शक्ति उन्होंने कभी खर्च नहीं की। इतनी शक्ति उन्हें कभी मिली भी नहीं। मालूम न हुआ कि वह भाला निकालने की शक्ति इच्छानुसार आत्मा से कैसे निकालते गये। चर्र-चर्र करती शरीर को चीरती हुई भाले की उल्टी नोकें बाहर निकल आयीं। राजकुमार की आँखों में अँधेरा छा गया। एकाएक जोर ज्यादा लग जाने से ताव आ गया। भाले के सहारे जरा देर ठहर गये, बड़े धैर्य से उभड़ी हुई कमजोरी को दबाया, फिर अपरिचिता कुमारी की ओर बढ़े। अभिप्राय समझकर कुछ कदम कुमारी आगे बढ़ आयी और बढ़ाया हुआ भाला हाथ बढ़ाकर थाम लिया। धन्यवाद देने की इच्छा की; पर मुख से शब्द न निकला। गले में अज्ञात कहीं की जड़ता जैसे आकर लिपट गयी। झुकी पलकें भाला लिये खड़ी रहीं, जैसे राजकुमार के शौर्य की स्वयं पुरस्कृत प्रतिमा हो। खून से रँगे विशाल भाले के नीचे झुकी आयत आँखों को वसन्त की खुली पहली दृष्टि से राजकुमार देर तक देखते रहे।

कुमार की प्रिय मुग्ध दृष्टि से कुमारी के हृदय में विजय का गर्व चपल हो उठा। पर संयम की शक्ति से उसे अपनी ही सीमा में उसने बाँध रखा; केवल आँखों की ताराओं से उल्लास की ज्योति विच्छुरित होने लगी। यही राजकुमार को होश में लाने की वजह हुई। सँभलकर नम्रतापूर्वक कुमार ने पूछा, "आपका परिचय मुझे अभी नहीं मालूम हो सका।"

संयमित मधुर चपल उत्तर मिला, "मैं यादव राज-कन्या हूँ, मुझे प्रभावती कहते हैं।"

प्रसन्नता से पलकें झुकाये राजकुमार ने दूसरी आज्ञा माँगी। हँसती देखती हुई प्रभा बोली, "मुझे शिकार उठानेवाले आदमियों के लिए पास के गाँव तक जाना होगा। अगर आप—मैं आपकी सहायता करूँगी—हम दोनों रस्सी से बाँधकर इसे घोड़े पर रख लें। फिर आप—" प्रभा रुक गयी।

राजकुमार ने अनुकूलता की। उत्तर इस प्रकार शब्दों में बँधकर निकला, "आप अकेली हैं। मुमकिन, घोड़े पर शिकार ले जाते आपको कष्ट हो। मैं बाँधकर इसे अपने घोड़े पर रख लेता हूँ। आपको किले के पास तक छोड़कर लौट आऊँगा।"

"बड़ी कृपा होगी।" नम्र प्रभावती कहकर मुस्कराती रही।

राजकुमार ने सुअर को अपनी रस्सी से बाँधा। फिर अकेले उसे अपने घोड़े पर उठाकर रख लिया। सँभालकर जीन के कड़ों से बाँध, प्रभा को सवार होने के लिए कहकर, बैठ गये। प्रभा अपने घोड़े पर बैठ गयी।

दोनों दलमऊ दुर्ग की ओर चले। दिन का तीसरा पहर पार हो रहा था; वन से निकलकर राह पर आते-आते एक भिक्षुक मिला। राजकुमार को राजपुरुष समझकर दीन दृष्टि से देखते हुए क्षीण स्वर से प्रार्थना की। राजकुमार ने उँगली से अँगूठी निकालकर दे दी।

देखती हुई प्रभावती अपनी मोतियों की एक माला उतारकर भिक्षुक से बोली, "बाबा, इसे लो; बदले में अँगूठी हमें दे दो।"

वीर-वेश से सजी कुमारी को खुली प्रसन्नता की दृष्टि से देखते हुए बहुत कुछ मतलब समझकर-जैसे, भिक्षुक ने अँगूठी दे दी और नम्र भाव से मोतियों की यह चमकती हुई माला ले ली। प्रभा घोड़े की लगाम फेर, राजकुमार की तरफ पीठ कर दोनों हाथों अँगूठी ले-लेकर मुग्ध दृष्टि से देखती रही। फिर बीच की उँगली में डालकर मुस्कराती हुई देखने लगी—उसमें राजकुमार का नाम लिखा था।

जिस समय प्रभा अपनी सुखोद्‌भावना में लीन थी, राजकुमार ने भिक्षुक को उँगली के इशारे से पास बुलाया और अपनी एक माला उतारकर देते हुए इशारे से वह माला माँगी। भिक्षुक ने राजकुमार से माला लेकर प्रभावतीवाली दे दी और भरे आशीर्वाद से दोनों को देखता हुआ चला गया। जब प्रभा अपने प्रथम सुहाग के आनन्द से भरकर राजकुमार की तरफ मुड़ी, तब राजकुमार उसकी माला पहन रहे थे। उसे समझते देर न लगी। हृदय की गुदगुदी को दबाकर, जैसे कुछ नहीं समझी, राजकुमार को घोड़ा बढ़ाने के लिए कहा।

इंगित पा प्रभा का घोड़ा राजकुमार के घोड़े से सटकर चलने लगा। दोनों सवार एक अपूर्व आवेश में हैं, आँखों में अनुभून एक सुख-स्पर्श नशा छाया हुआ है, जिससे सन्ध्या अपार श्री धारण किये प्रतीत हो रही है, जैसे सौन्दर्य के स्वर्गलोक के दो प्रणयी प्राणी बँधे चले जा रहे हैं। दोनों मौन हैं; कुछ बोलकर विषय की गम्भीरता को नष्ट करने की किसी की इच्छा नहीं। कभी-कभी एक-दूसरे की जाँघ रगड़ जाती है। पुलकित हो दोनों एक ही परिचय से एक-दूसरे को देख लेते हैं।

घोड़े धीरे-धीरे बढ़ रहे हैं। सूर्यास्त होने को हो गया। सामने मथना नाला आ पड़ा। "कुमार", प्रभा ने आग्रह की दृष्टि से देखते हुए कहा, "यहाँ कुछ देर विश्राम कर लें, कैसी सुखद सन्ध्या है?" प्रभा की इच्छा जानकर कुमार घोड़े से उतर पड़े। सुअर को उतारकर जमीन पर रख दिया, फिर कमर से फेंटा खोलकर प्रभा के लिए बिछा दिया। लज्जित प्रभा कुमार का हाथ पकड़, बैठालकर मुस्कराती, अपने फेंटे से हवा झलने लगी। कुमार ने हाथ पकड़ लिया, "मुझे गरमी नहीं मालूम दे रही।"

"पर हवा तो जाड़े में भी चलती है, आप किसी का धर्म रोक दीजियेगा?

अवश्य इस समय जाड़ा नहीं।"

"हवा दूसरे कारण से बहती है। उससे हवा को बहते हुए कष्ट नहीं होता। पर यहाँ वह बहायी जा रही है। इससे हवा को न हो, पर जिससे वह वाहित है, उसे तो कष्ट हो सकता है?"

'नहीं। डुलानेवाली को भी कोई डुला रहा होगा, जैसे हवा के बहने का आपने कारण बतलाया।"

कुमार चुप हो गये। प्रभा व्यजन करती रही। कुछ सोचकर कुमार बोले, "पर मुझे इसी वक्त लौटना होगा। तुम्हारे दुर्ग में तो मैं जा नहीं सकता?"

"क्या मेरे दुर्ग से तुम निकल भी सकते हो? कुमार, पिताजी के दुर्ग में तुम पहले के वैमनस्य के कारण न जाओ, मैं आग्रह न करूँगी; पर वहाँ नहीं, यहीं से, तुम मेरे अतिथि हो; मैं जिस तरह तुम्हें रक्खूँगी, तुम्हें स्वीकार करते हुए आपत्ति न होनी चाहिए।"

राजकुमार ने प्रभा का व्यजन रोक दिया और स्वस्थ हो लेने के लिए बैठने को कहा। वसन्त के सान्ध्य क्षण, एकान्त प्रान्तर में परिचय के प्रकाश में स्पष्ट एक-दूसरे को देखते हुए मौन, देर तक बैठे रहे।

दो

गंगा के उत्तर-तट पर दलमऊ* महानगर धवल धामों के मसृण दलवाले विशाल पुष्प-जैसा खिला हुआ है। ऊपर वासन्त की दिगन्तव्यापिनी ज्योत्स्ना प्लावित

* दलमऊ या डलमऊ रायबरेली ज़िले का प्रसिद्ध कस्बा है। यह रायबरेली का एक सब डिवीजन भी है। शहर के दाहिनी तरफ गंगा के बिल्कुल किनारे से उठा हुआ, एक छोटी पहाड़ी की तरह के काफी ऊँचे मिट्टी के स्तूप पर चारों ओर से दो मील तक दृढ़ दीवार से घिरा एक प्राचीन दुर्ग है, जो इस समय गत गौरव के समाधि रूप में परिणत है। प्रचलित लोककथाओं के अनुसार इस पर गोप-राजाओं का अधिकार था। ये भी कान्यकुब्जेश्वर के मातहत सरदारों में थे। आज गोप-वंश अपना यादव-क्षत्रिय के रूप से परिचय देता हुआ इस किले को प्राचीन इतिहास का एक केन्द्र मानता है। बाद को यह किला मुसलमानों के अधिकार में आया। पश्चात् अंग्रेजों ने इस पर कब्जा किया। इसकी इमारतें इस समय नष्ट हो चुकी हैं। फिर भी परिचय के लिए यथेष्ट चिह्न वर्तमान हैं। इसके ऊपर से दूर तक फैला हुआ गंगा का दृश्य, उतरकर जल और स्थल से मिला हुआ आकाश बड़ा सुहावना मालूम देता है। किले के यौवन-काल में शहर की बड़ी आबादी थी। गगा के किनारे होने की वजह से व्यवसाय का भी बहुत बड़ा केन्द्र था। पहले रेल तथा अच्छे मार्ग न होने से भारत का अधिकांश व्यवसाय जल-पथों से होता था। इनमें गंगा का पथ सर्वश्रेष्ठ था। प्राचीन उक्ति के अनुसार यह स्थान दालिभ्य-क्षेत्र है। दालिभ्य ऋषि ने वहीं तपस्या की थी। बाद को दालिभ्य का अपभ्रंश शायद दलमऊ हो गया, फिर अंग्रेजी डलमऊ बना।

हो रही है, वैभव के समय साक्षात् लक्ष्मी की स्नेह-दृष्टि जैसी। माता की गोद पर शिशु जैसा शहर सुख की मृदुल छाँह में बाँहें खोले ऊर्ध्व दृग हो रहा है। कलकल-हासिनी स्वच्छ जलवाहिनी जाह्नवी एक ध्वनि के अनेक अर्थों की ओर इंगित करती हुई तरंगित हो रही हैं। इस अर्थ-गौरव को न समझनेवाले साधारण पुरुषों के चरणों पर चढ़ी पुष्पांजलि जैसे अनेक घाट मुक्त हो रहे हैं। अनेक भावों से क्षुब्ध जीवन के प्रवाह में ऐसी ही बहती रहने की मधुर इच्छा लिये हिलते-हल्के हृदयवाली तरुणी कुमारियाँ, प्रवास-पति की प्रिय-मिलनातुरा युवतियाँ, पति-युक्ता-मुक्ता कामिनियाँ और अनुकरणशीला बालिकाएँ घी के दीपक जला-जलाकर गंगा-वक्ष पर प्रवाहित कर रही हैं। नगर के अगणित मन्दिरों से सान्ध्य आरती के मृदंग, मुरज, मंजीरादि दूर प्रान्त तक के हृदय को ध्वनित कर रहा है। व्यवसाय, देव-दर्शन और स्वास्थ्य-लाभादि अनेक कारणों से आयी हुई नावें आरोहियों को लि॰ सन्ध्या की इस अपार शान्ति में लीन हैं। पश्चिम ओर विशाल दुर्ग नगर की रक्षा का भार लिये सक्षम सेनापति जैसा खड़ा है। वहाँ से दूर तक फैली गंगा की विपुल नीलशोभा पार्थिव ऐश्वर्य के प्रिय जड़जाल से जैसे चिरकाल के लिए प्राणों को बाँध लेती है।

शिकार को लिये श्रमित अश्व की मन्द गति से राजकुमारी दुर्ग के द्वार के भीतर गयी। सेवक, देर के कारण विचार में पड़े, देखकर प्रसन्न हो गये। एक ने लगाम थाम ली। प्रभा महल की ओर चल दी।

नीलिमा के हृदय में अंकुरित. प्रेम का पूर्ण चन्द्र जिस दृष्टि से अपने विश्व को देखता है. प्रभा की वही दृष्टि पारिपार्श्विक दृश्यों पर पड़ रही है। स्पर्श से एक जादू जग रहा है। प्रभा के प्राणों की कली दलदल और रंग-रंग से भरकर, पूरी उभरकर खुल चुकी है, जिसके पास भी उसकी सुगन्ध पहुँची, समझकर उसी ने मालूम कर लिया, फिर पास की दूसरी डालों में खिली कलियों के लिए समझना क्या ? वे मौन भले रहें—दूसरी बातों में बहला दें,—कली के पवन-स्पर्श का प्रसंग न छेड़ें, पर वे जानती हैं। उमडती हुई ज्वार को देखकर हर एक समझदार कह देगा कि वह चन्द्रचुम्बित हो रही है। वहाँ ऐसी कई सखियाँ थीं। प्रभा की प्रसन्नता से ऐसा ही निश्चय उन्हें हुआ; पर सभ्यता के विचार से मौन कुमारी-प्रणय का परिचय उन्होंने नहीं पूछना चाहा। वे नगर के प्रतिष्ठित घरों की युवतियाँ थीं जो स्नेहालाप तथा कला-चर्चा के लिए सन्ध्या-समय आया करती थीं। डेढ़-दो घण्टे रहकर चली जाया करती थीं। आँखों की स्निग्ध ज्योति से बहलाकर संयत सभ्य कण्ठ से प्रभा ने कहा, "आप लोग मुझे आज क्षमा करें, आज मैं शिकार के पीछे बहुत थक चुकी हूँ।"

उनमें एक चपला साहित्यिका ने हँसकर पूछा, "तो क्या शिकार हाथ नहीं आया ?"

भरकर, वैसे ही जल्द हँसती हुई प्रभा बोली, "आया है, पर बड़े परिश्रम के बाद।"

कहकर नहाने के लिए चली गयी।

बातों में एक दूसरी को चढ़ाती-उतारती, छोड़ती-बाँधती मुक्ति की ज्योतिः-

स्वरूपा देवियाँ अपने-अपने गृह की ओर चलीं।

एक दासी ने प्रभा के अस्त्र खोलकर वस्त्र बदलवा दिया। उसे यमुना को बुला देने की आज्ञा देकर प्रभा स्नान-कक्ष को गयी।

यमुना प्रभा की अन्तरंग सखी है। दासी होकर भी उसके पूरे मन पर अधिकार कर लिया है, इसका कारण प्यार है। उम्र में वह प्रभा से कई साल बड़ी है, पर स्नेह और सहानुभूति में बिल्कुल बराबर। स्वभाव आकाश की चिड़िया का जैसा है, जिसने प्रभा के रंगों में अपने को बहा दिया है, कलरव और आनन्द जिसके अस्तित्व को पूर्ण किये हुए हैं।

खबर पा यमुना प्रभा के पास गयी। उसके खुले आनन्द का पूरा वेग लगते ही प्रभा की पलकें झुक गयीं, हृदय की बात कहते हृदय संकुचित होने लगा, भीतर की प्रिय छवि को निकालते अंग बाधक हो गये। यमुना के लिए इतना इशारा काफी था। हँसकर बोली, "आज आपकी तबियत अच्छी नहीं मालूम देती। गूँजती मक्खी जैसे फूल के लिए उड़ी पर फूल न मिलने पर उदास लौट आयी।"

प्रभा मुस्करायी। बोली, "और तुम्हारे गालों में तीन पंजे कसे, तब बेचारी को कुछ रस मिला।"

"होगा," यमुना बोली, "कि फूल पर बैठने की वजह गूँज बन्द हो रही है।"

प्रभा पुलकित हो गयी। फिर अज्ञात कहीं के संकोच ने उसे दबा लिया। बदलकर बोली, "वह गाना, उस दिन नया सीखकर सुनाया था, आज फिर सुना, यमुना!"

प्रभा हृदय न खोल सकी। कितनी लाज लगती है? कैसे कहे कि ऐसा-ऐसा हुआ, उन्हें ले आ, कोई कष्ट न हो। कहने में बड़ा स्वार्थ है, उन्हें प्रतीक्षा करते देर हो रही है---शंका भी है, पर कह नहीं सकती।

इतिहास न मालूम हो सका, पर आकार और इंगितों से उसका तत्त्व-रूप यमुना समझ गयी। स्वामिनी सखी के संकोच से हर्षित हुई; पर दूसरे ही क्षण अपने अतीत और वर्त्तमान के चित्रों में तन्मय हो गयी, उनकी स्मृति, दुख की रूखी छाया की तरह, उसके देह और प्राणों को निश्चेष्ट, जड़ीभूत करने लगी। उसी दुख के स्वर में फूटकर वह उसी के आवेश में-जैसे गाने लगी—

"दुख के दिन नयन नवाय रहौं।
बेमन मन को समुझाय कहौं।।
को जानति, जागति पीर कौन,
सखि, इहि समीर में बहति मौन,
राजा की कन्या रहित भौन,
दासी बनि, गुनि गुन, दुसह सहौं।।
बीते बहु दिन जब लगी अगिनि,
धनि, जागि बनी जीवन-जोगिनि;
री रहति तहूँ पिय-धन सो गिनि,
तिय-तन निसिदिन तिन तोरि दहौं।।"

गाने की करुण ध्वनि प्रभा की रग-रग को सजग करने लगी। दुःख की ही शक्ति

सुख के पर्दे के पार जा सकती है। वहाँ धनी और निर्धन, राजकुमारी और सेविका का भाव नहीं; वहाँ हृदय हृदय से बातें करता है। प्रभा की उच्चता उस गाने के भाव में बहकर उसी प्रवाह की जल-समता में आ गयी। हृदय भेद खोलकर हृदय से बराबर हो जाने को उतावला हो चला, दुःख के जो घात संगीत के भीतर से मिले थे, उन्होंने दुःख की भेदात्मिका रुकावटों को तोड़ दिया। प्रभावती उठकर यमुना के गले लिपट गयी। सखी को पास बैठाकर स्नेह-स्वर से प्रेम की कथा सुनाने लगी।

सुनकर यमुना चपल पुतलियों से देखती हुई स्निग्ध किरणों से प्रभा को नहलाकर बोली, "राजकुमार को प्रतीक्षा करते देर हो गयी। मैं उन्हें अच्छी जगह छोड़कर अभी आती हूँ, आगे के प्रबन्ध करूँगी; तब तक वे कुछ आराम कर लेंगे।"

प्रभा की दृष्टि में कुमारी उत्कण्ठा लिखी रह गयी।

बातचीत के अनुसार आवश्यक चीजें यमुना ने ले लीं।

तीन

पण्डित शिवस्वरूप गंगापुत्र चौपाल में चौके के अन्दर चने चबा रहे हैं। दलमऊ का हर गंगापुत्र अपने को दालिभ्य ऋषि का एकमात्र वंशधर मानता है और प्रचार भी करता है, पर शिवस्वरूप महाराज औरों से ज्यादा पुष्ट और आवाज-वाले होने के कारण जातीय श्रेष्ठता में सदा विजय प्राप्त करते हैं। विशेष पढ़े-लिखे नहीं; संकल्प शुद्ध नहीं आता, गुन-गुनाकर दान छुड़वा लेते हैं, पर पण्डितों से बातचीत पड़ने पर दालिभ्य ऋषि के प्रचण्ड पाण्डित्य के माहात्म्य-कीर्तन में मातृ-भाषा के प्रखर स्वर से दूसरों को स्तम्भित करके छोड़ते हैं। गऊ के खुर के प्रमाण से कुछ अधिक जगह शिखा ने घेरी है, लम्बी डेढ़ हाथ, साढ़े तीन पेंच के बाद बँधी हुई दण्ड पर गौरव की ध्वजा की तरह फहराया करती है। ललाट सदा भस्म-मण्डित, उम्र अभी बहुत नहीं; केवल चालीसवाँ साल पहुँचे हैं। पत्नी पच्चीसवें साल परलोक सिधार गयीं, तब से कुलीन-वंशीया कन्या के अभाव के कारण दालिभ्य ऋषि के महोच्च कुल को दोबारा कलंकित नहीं किया। पहली स्त्री भृगुठौरा या भिटौरा (फतहपुर) के पास की, सीधे भृगु के वंश की थीं। घर में माता हैं और स्वयं आप। घाटों में लड़ाई सनातन प्रथा है। इसलिए मारने या मार सह लेने के दृढ़ अभिप्राय से दोनों वक्त कसरत करते हैं।

किसी-किसी युवती की पुरुष-विशेष को चराने की आदत होती है। महाराज शिवस्वरूप किले के नीचे ही एक बगल रहते हैं। यमुना अनेक कार्यों से उधर आती-जाती है, इनसे प्रायः मुलाकात होती है। यमुना नीच है, उसे छूना न

चाहिए, इसकी छाया से उनके ब्रह्मचर्य का फूल कुम्हला जायगा—उन्हें खुले वदन देख ले, तो नजर लग जाने का भय है, आदि अनेक धार्मिक विश्वास अपने भाव और भाषा से जाहिर कर चुके हैं। यमुना त्यों-त्यों इन्हें दबाने की भावना में बदलती गयी। भिन्न-भिन्न आकार, इंगित और ध्वनियों द्वारा वह इन्हें विश्वास दिला चुकी है कि इनकी उच्चता और ब्रह्मचर्य पर उसकी पूरी श्रद्धा है। कुछ दिनों से हँसती-आँखों, झुके-सिर पालागन करके आशीर्वाद भी पाने लगी है। उसे एक दिन शिवस्वरूप महाराज अपना नाम लेकर अभय भी दे चुके हैं कि उनके नाम के प्रताप से, दालिभ्य ऋषि का सच्चा खून जबकि उनके शरीर में है, उसका मनोमल अवश्य धुल जायगा। दोनों की ऐसी ही भावना उत्तरोत्तर दृढ़ होती जा रही है। ऐसे समय यमुना को कार्य की पूर्ति के लिए उनसे मिलने की आवश्यकता हुई।

यमुना जल्दी में है, महाराज शिवस्वरूप चने चबाने में जल्दी नहीं कर सकते।

चौपाल में पहुँचकर महाराज को देखते ही एक साँस में यमुना कह गयी, "बड़े धनी आदमी थे—मन्त्री के लड़के हैं—मैंने कहा ऐसा जजमान अपने महाराज के हाथ क्यों न लगाऊँ, पर आप चने चबा रहे हैं ! जाऊँ रामनाथ महाराज के यहाँ ! अच्छा पायलागी महाराज !" यमुना लौटी कि महाराज शिवस्वरूप उसी वक्त शार्दूल-विक्रीड़ित गति से बढ़े और फौरन यमुना की कलाई पकड़ ली, "अरे, सुन भाई !"

झटके से हाथ छुड़ाकर कुछ पल महाराज को देखती रहकर यमुना बोली, "चने चबाकर न कुल्ला करना, न हाथ धोना : आकर छू लिया !"

अब महाराज शिवस्वरूप को होश हुआ। इधर-उधर देखकर पैर पकड़ लिये। शब्द न निकला।

"अच्छा-अच्छा, न कहूँगी किसी से, पर भूल मत जाना महाराज ?" हटती हुई यमुना बोली। हाथ जोड़कर शिवस्वरूप महाराज गिड़गिड़ाने लगे, "अच्छा सुनो, यह लो अपना दान" स्वर्णमुद्रा देती हुई : महाराज शिवस्वरूप लोलुप दृष्टि से देखकर कई लपेट लगाकर मुर्री में रख लेने के बाद : "और ये कपड़े रखकर मेरे साथ आओ; जजमान नहाने जायँगे तब इन्हें बदलेंगे, फिर इन्हें पहनेंगे; राजसी पोशाक में हैं; अच्छी जगह जल्द रखकर आओ; मैं आकर सब ठीक कर लूँगी।"

महाराज उसी क्षण भीतर जाकर जल्द-जल्द दो शब्दों में माता को समझाकर, कपड़े रखकर लौट आये। उन्हें साथ लेकर यमुना राजकुमार के संकेत-स्थल को चली।

"अच्छा महाराज," रास्ते में सोचते हुए यमुना ने पूछा : महाराज कुछ कदम पीछे, कन्धे पर लट्ठ रक्खे, आगे और कितना क्या-क्या मिल सकता है, इसका हिसाब जोड़ते जा रहे थे, आवाज पाते ही भक्तिभाव से गर्दन बढ़ाये हुए दौड़े; जरा कैंची-निगाह देखकर यमुना मुस्करायी, "हाँ, यह तो बताइए, भुजवे के भुने और हमारे दिये चने में तो छूत नहीं, फिर चबाकर छू जाने में कैसी छूत है ?"

"हे—जमुना ! सब ढोंग है !" यमुना की बायीं बाँह पकड़कर हिलाते हुए, "रामनाथ है, रामनाथ-वामनाथ जितने हैं—सब, किसके घर का नहीं खाते ? बेसन के लड्डू में चना नहीं है ? जजमान परसते हैं, सब खाते हैं और जजमान खाते बखत छू-छूकर परसते हैं !" यमुना के कान के पास मुँह ले जाकर, "हलवाई की बनायी पूड़ी नहीं खाते ? अब छूत कुछ सरग से आती है ? एक लोग-दिखावा है—यह जाँघ खोलो तो लाज, वह जाँघ खोलो तो लाज !"

मुस्कराती, हटने के इरादे से यमुना जल्द-जल्द बढ़ती गयी। वह आज मामूली दासी के रूप में नहीं, सजकर आयी है। राजकुमारी की प्यारी सखी के रूप में राजकुमार से मिलेगी—मिलायेगी। एक बार अपनी सजावट का विचार कर फिर मुस्करायी। फिर महाराज की तरफ मन लगा। बोली, "अच्छा महाराज, बात ही तो है, खुल जाय तो ?"

"तो कोई सिर काट लेगा ? कहेंगे, ढोंगी था !"

यमुना खिलखिलाकर हँसी। बोली, "गऊ-हत्या तो हत्या-हरन से कट भी जाती है !"

"हाँ," गम्भीर होकर शिवस्वरूप महाराज ने कहा, "इसका कोई पराच्छित नहीं है। एक धर्म छोड़ने की बात है !"

यमुना को पूरा विश्वास हो गया कि इससे बड़ा बेवकूफ दूसरा न मिलेगा। बोली, "पैरों पड़नेवाली बात लेकिन खराब है।" महाराज ने भी सोचा कि बहुत बुरा हुआ। यमुना डरकर कि कहीं पकड़ न ले, फिर बोली, "लेकिन मैं किसी से कहती थोड़े ही हूँ ? बराँभन का सराप, कहीं लग जाय !—ऐं महाराज ?"

महाराज उदास स्वरों से बोले, "वंस नास हो जाय, कोढ़ हो जाय, कहीं जलम-जलम जम के दूत नर्क में घसीटें; जो कुछ न हो जाय, थोड़ा है !"

"हाँ महाराज, जो कुछ न हो जाय, थोड़ा !" कहकर यमुना मन-ही-मन आगे के प्रबन्ध पर विचार करने लगी।

स्थान निकट आ गया था। बोली, "महाराज, किसी से इनके आने की बात कहना मत।"

महाराज ने गम्भीर होकर सर हिलाया।

यमुना ने पूछा, "कोई पूछेगा, तो क्या कहोगे ?"

"कि कोई नहीं आया।"

"उनके घोड़ा भी है। पैसे मिलेंगे। आदमी तुम्हें लगाना होगा। कोई पूछे कि यह किसका घोड़ा है, तो क्या कहोगे ?"

"कहेंगे हमारा है, मनवा के राजा ने बाप के सराद में दिया है।"

मन में सोचकर, मुस्कराकर यमुना बोली, "अच्छा, आगे उस पेड़ के नीचे खड़े रहो, मैं उन्हें ले आती हूँ; फिर साथ ले लेना; मैं साथ न जाऊँगी, वहीं मिलूँगी—गली से होकर जल्दी पहुँचूँगी; बड़ी राह से जाना।"

कहकर यमुना चल दी। महाराज शिवस्वरूप पेड़ की छाँह में लाठी के सहारे पंजों के बल बैठे अनिमेष दृष्टि से उधर ही देखते रहे।

जहाँ रामलीला के समय रावण-वध होता है, उसी जगह इकले आम के नीचे

प्रभा ने कहा था; यमुना सीधे उसी तरफ गयी। निश्चय हो गया। घोड़ा खड़ा देख पड़ा। बगल में राजकुमार बैठे थे। एक स्त्री को आते देखकर उठकर खड़े हो गये। छाँह से बाहर पूर्ण ज्योत्स्ना के नीचे, कीमती वस्त्र और अलंकारों से सजी हुई यमुना राजकुमार को देखकर, हृदय में ललित अंजलि बाँध जरा सिर झुकाकर मधुर कविता की लड़ी-सी खड़ी रह गयी। उसे आदाब बजाते समझकर, राजकुमार प्रसन्न पदक्षेप से उसके पास चलकर आये।

मधुर कण्ठ से यमुना बोली, "हमारी कुमारीजी देर तथा श्रम के लिए क्षमा चाहती हुई जल्द बुला रही हैं—आज्ञा हो तो, ले चलूँ।"

राजकुमार के मुड़ते ही द्रुत-पद यमुना घोड़े के पास पहुँची और डाल से लगाम खोलकर हाथ में दे दी। चतुरा सेविका से प्रसन्न होकर, प्रिया की खबर लानेवाली यह सबकी चुनी हुई सेविका होगी—अनुमान कर, पुरस्कृत करने के अभिप्राय से राजकुमार ने अपनी मोतियों की एक माला उतारी और मौन स्नेह से यमुना के गले में डाल दी।

मृदुल खिलखिल से निर्जन प्रान्त गूँज उठा। राजकुमार चकित हो गये। यह आचरण सेविका का नहीं। उसी समय मधुर कण्ठ से पूछा, "कुमार, यमुना की याद है?"

"यमुना!" राजकुमार की ध्वनि और दृष्टि से निकला हुआ वेगपूर्ण आश्चर्य असंयत हो गया। द्रुत-पद बढ़कर वे यमुना के पास आये। पेड़ के नीचे, पल्लवों से छनकर यत्र-तत्र मुख पर चाँदनी पड़ रही थी। अच्छी तरह देखकर पहचानकर सविस्मय ससम्भ्रम बोले, "यमुना देवी!"

यमुना अनेक विगत स्मृतियों से बँधी हुई निश्चल खड़ी रही, पर जिस साहसी हृदय का उसने पहले परिचय दिया था, जिस नैपुण्य से वह अकेली भी विजयिनी थी, उसकी जिस वीरता की बैसवाड़े में घर-घर चर्चा थी, जिसे जीवन के सत्रहवें साल ही अलौकिक कीर्ति प्राप्त हो चुकी थी, जिसे गृह-देवियाँ अपना आदर्श मानकर पूजती थीं, यह वही यमुना है—वे सब भाव संयत हृदय में बँधे हुए हैं, जैसे उनसे भी महत्ता में यह वृहत् और ऊँची है।

"देवी!" ससम्भ्रम राजकुमार बोले, "आप दोनों की बहुत दिनों तक खोज की गयी, पर पता नहीं लगा।"

"हाँ कुमार, उस युद्ध में विजय पाकर तुम्हारे बन्दी सेनापति को छुड़ाकर मैं महोबा गयी थी। मुझे भय था कि यहाँ रहने पर भेद खुल जायगा, मेरे और भी कई उद्देश्य थे।"

"सेनापति क्या यहीं हैं?"

"नहीं।" कुछ सोचकर बात टालने को मुस्कराकर बोली, "श्रृंगार के समय वीर-रस की चर्चा तुम्हें अच्छी लगती है—फिर इस प्रथम समय?" मधुर मुक्त नारी-कण्ठ हँसकर गूँज गया।

राजकुमार सहज सिर झुकाये खड़े रहे। यमुना बोली, "आप मेरे कुल के पति-पद में मुझसे छोटे हैं, यद्यपि पति आपके पिता के अधीन, आपके सेनापति थे; यह पुरस्कार मैं नहीं ले सकती; आगे एक महाराज आपको ले जाने के लिए मिलेंगे,

उन्हें दीजियेगा। कुमार, मेरा भेद प्रभावती से न खोलियेगा, न घर लौटकर किसी दूसरे से। मैंने यह बात अपनी सखी से छिपा रखने के कारण ही सखी के प्राण-प्रिय से प्रकट की है और इसलिए भी कि सखी के प्रिय को, परिचय के पश्चात्, वैमनस्य की जगह किसी प्रकार की शंका न हो—उनके परिचित यहाँ भी हैं।"

"आप यहाँ किस रूप से हैं ?" आँखें झुकाये विनीत कण्ठ से राजकुमार ने पूछा।

"किस रूप से ?" हँसती यमुना बोली, "उसी से, जिससे द्रौपदी को विराट-नगर में रहना पड़ा था।"

"पर आपका नाम यहाँ क्या है ?"

"यही। क्योंकि यह बहुत प्रचलित नाम है। यहीं इस नाम की तरुणी और बालिकाएँ मेरे अलावा और दो सौ होंगी। कुमार, चलिए।"

राजकुमार ने हाथ जोड़कर सम्मान प्रदर्शन किया। बढ़कर, "अच्छा-अच्छा" कहकर आँचल छुड़ाती हुई यमुना बोली, "पर वहाँ इस सम्मान-प्रदर्शन की ओर खास तौर से विचार रखियेगा; क्योंकि, मिलाप गंगा पर होगा, नाव में,—मैं साथ हूँगी, और सखी होकर भी मैं दासी हूँ, काम छोटे-मोटे करने पड़ेंगे। सम्मान की ऐसी जरूरत भी नहीं—सबसे घनिष्ठ सम्बन्ध तो सखीवाला है ?" कहकर यमुना ने कुमार का एक हाथ हिला दिया। फिर बोली, "और वहाँ सेविकाओं-वाली मेरी अपभ्रष्ट भाषा पर हँसियेगा मत।"

"मेरे प्रणाम का एक अर्थ यह भी था कि मैं आपके पैदल चलते घोड़े पर न चलूंगा। आप आगे-आगे चलें मैं पीछे-पीछे चलता हूँ।"

"हाँ जरूरत पड़े, तो मन्त्रीपुत्र कहकर परिचय दीजियेगा, महाराज से, मैंने ऐसा ही कहा है।" आगे चलती हुई यमुना ने कहा, "और दोष भी नहीं; मैं 'पुत्र' का शब्द और धातु से निकला अर्थ लेती हूँ।" राजकुमार हँस दिये।

चार

इस बीच कुमार के स्वागत के कुल प्रबन्ध प्रभावती एक-एक याद करके कराती रही। दासियों को अभी तक यही मालूम था कि चैत की पूनो है, राजकुमारी नौका-विहार के लिए जायँगी। किले की बगल में, घाट पर नाव लाकर लगा दी गयी। दासियों ने नाव के नीचे और छत पर गद्दे बिछा दिये, कामदार चादरें लगा दीं। रेशमी तकिये, गुलाब-पास, इत्रदान, पानदान, सोने के पात्रों में मदिरा, क्षुद्र-मर्मर की पतली प्यालियाँ, हलका आसव, गन्धराज के गजरे, सजी फूलदानियाँ, मृदंग-मंजीरा, वीणा आदि वाद्य, नूपुर-गुच्छ, ढाल-तलवार, तीर-कमान, बल्लम-साँग आदि अस्त्र-शस्त्र तथा अन्यान्य आवश्यक सामान यथास्थान सजा दिये।

पाचक अनेक प्रकार के पक्वान्न, मिष्ठान्न, सामिष-निरामिष भोजन, चबेना अचारादि रख आया। मल्लाहों को खबर कर दी गयी कि नाव खाली बहती हुई जायगी; पतवार दासियाँ सँभालेंगी, ये लोग पिछली रात दूसरी नाव लेकर आठ-दस कोस का रास्ता जल्द तै करें, वहाँ विश्राम होगा, फिर गुन खींचकर ले आवेंगे।

दासियाँ प्रभावती को सजाने लगीं। प्रति अंग नीलमों, हीरों और मोतियों से जगमग हो गया। वसन्ती रंग की, सच्चे कामवाली, रत्नजटित साड़ी तथा आभरणों की झुलसती स्निग्ध द्युति के बीच पृथ्वी की प्रभावती आकाश की शशिकला से अधिक सुन्दरी, अधिक शोभना हो गयी। मस्तक पर अर्द्ध-चन्द्राकृति, सोने के लता-भुजों से आयत, लम्बित चूड़ामणि,—ऊपर श्वेत कोमल पक्ष, मध्य में नीलम, दोनों ओर कन्नियों पन्नों के फूलों में, बड़े से छोटे, क्रमानुसार हीरे; नाक में एक ओर मणि बिन्दु; पद्मराग की कण्ठी; ऊँचे पुष्ट वक्ष पर शुभ्र मुक्ताओं की हारावलि; हाथों में मणि-युक्त विविध भुज-बन्ध, कङ्कणादि, कटि में रिणिन्-कारिका, सप्तावृत्ति, श्लथ किङ्कणी; पदों में नूपुर, पायल आदि; मुक्त केश, वासित; अधरों में ताम्बूल-रक्त राग; आयत सलज्ज आँखों में क्षीण प्रलम्ब कज्जल-रेखाएँ। पुतलियों में चपल रहस्य-हास्य; प्राणों में मृदु-मृदु प्रणय-स्पन्द।

अभ्र की सजी नाव की सहस्रों लता-पुष्पाकृति बत्तियाँ जल गयीं। जल में मुक्त-पुच्छ मयूर लहरों में हिलता सचल दिखने लगा। खिड़कियों के रंगीन रेशमी द्वितीय-बन्धनी-रूप (})-कटे पर्दे चमकने लगे, उनकी जरी की लहरें और सच्ची झालरें चकाचौंध करने लगीं। बीच-बीच मालाकृति मोतियों की लड़ियाँ, तरुणी के वक्ष पर, ज्योतिश्चुम्बिनी, साभरणा सद्यःपरिणीता तरुणी की कलि-मालाएँ बन गयीं। जगह जगह लाल, नीलम और हीरे रंगीन द्युति की रेखाओं से आकाश के तारों से भले लगने लगे।

प्रभा के पिता कान्यकुब्जेश के कार्य से बाहर थे। माता की आज्ञा वह ले चुकी थी। मुकुर देखकर अपने कक्ष में बैठी हुई यमुना के सन्देश का पथ देख रही थी। दो दासियाँ यमुना की सहायता के लिए और दी गयी थीं।

यमुना भी जल्दी कर रही थी। राजकुमार के अस्त्र खोलवाकर वस्त्र बदलवा दिये। घोड़े के लिए प्रबन्ध कर दिया। फिर लाये हुए वासितवसन उत्तरीय, चन्दन कुंकुम और पुष्प-माल्यादि दासी से लिवाकर महाराज को साथ लेकर गंगातट पर गयी। कुमार को सविधि स्नान-पूजन से निवृत्त कर गंगाजी को पुनः माला चढ़ाने की ध्वनि-पूर्ण सलाह दी। साथ-लिया अर्थ महाराज को दान करा वहीं प्रसाद-रूप किंचित जल-पान करा दिया। फिर दासियों को इशारा करके भेज दिया और महाराज को भी, प्रतीक्षा में कष्ट होगा, समझाकर, सरल स्वर से कल तक लौटने की बात सुझा दी,—क्योंकि समागत यजमान को अपर मित्रों से मिलना होगा, सम्भव, वहीं रह जाना हो। फिर अपनी बात की याद दिला दी कि भूलने से भला न होगा। महाराज भक्तिपूर्वक स्वीकार करके, आशीर्वाद देते हुए चले गये।

प्रभावती को खबर मिली कि यमुना तैयार हो चुकी है। इन दो दासियों के साथ अपने मन की तीन और लेकर प्रभावती उतरने के लिए चली।

राजकुमार साधारण पहनावे में थे, पट्टवास और उत्तरीय। चाँदनी में भी रंग

नहीं खुला। प्रभा की इच्छानुसार यमुना उनके लिए भी वासन्ती वस्त्र ले गयी थी, जो नहाकर पहने थे। कुमार खड़े-खड़े एकान्त ज्योत्स्नाकाश के नीचे जाह्नवी की विपुल शोभा देखते हुए देश के पुण्य-श्लोक महात्माओं की शान्त महिमा में लीन हो रहे थे, फिर बाहरी संसार में आ तरणी की लघु मनोहर शोभा देखकर अनेक काल्पनिक छवियों में भूलते हुए वृहत् और लघु के उदार और चपल सौन्दर्य की एक ही निरुपमता एक-एक बार तौलते थे, कभी अपने दुर्ग से द्विगुण उच्च आकाश-चुम्बी इस दुर्ग की दुरारोहता पर सोचने लगते थे। यमुना प्रभावती की प्रतीक्षा कर रही थी। इच्छा थी, इन प्रत्यक्ष सभी सौन्दर्यों से आकर्षक उन्हें दूसरा दृश्य दिखायेगी।

गंगा के ठीक किनारे उच्च दुर्ग ऊपर खुला हुआ है। नीचे से साफ देख पड़ता है। वहीं से गंगा-वक्ष पर उतरने की सीढ़ियाँ हैं। प्रभावती वहीं, सोपानमूल पर, धीरे-धीरे आकर खड़ी हो गयी। रात का पहला पहर बीत चुका है। सारी प्रकृति स्तब्ध हो चली है। कुमार को सोचते हुए समझकर यमुना ने कहा, "कुमार देखो, दुर्ग पर, सखी उतरनेवाली हैं--खड़ी तुम्हारी तरह कुछ सोच रही हैं।"

राजकुमार ने देखा। यह दूसरी छवि थी। सर्वेश्वर्यमयी स्वर्ग की लक्ष्मी भक्त पर प्रसन्न होकर स्वर्ग से उतरना चाहती हैं; मौन हिमाद्रि किरण-विच्छुरितच्छत्रि गौरी को परिचारिकाओं के संग बढ़ाकर आकाश-रूप शंकर को समर्पित करना चाहता है, विश्वप्लाविनी इस मौन ज्योत्स्ना-रागिनी की साकार प्रतिमा अपनी मूर्त झंकारों के साथ निष्पन्द खड़ी जीवन-रहस्य का ध्यान कर रही है।

प्रभा उतरने लगी। अकूल ज्योत्स्ना के शुभ्र समुद्र में आकुल पदों की नूपुर ध्वनि-तरंगें कितने प्रिय अर्थों से दिगन्त के उर में गूँजने लगीं। प्रभा का हृदय अनेक सार्थक कल्पनाओं से द्रवीभूत होने लगा। बार-बार पुलक में पलकों तक डूबती रही। सोपान-सोपान पर सुरंजिता, शिंजिता चरण उतरती हुई, प्रतिपदक्षेत्र-झंकार कम्प-कमल पर, चापलय से लज्जित कमल-सी रुकती रही। उरोजों से गुण-चिह्न-जैसे आये झीने चित्रित समीर-चंचल उत्तरीय को दोनों हाथों से पकड़े उड़ते अंचलों से, प्रिय के लिए स्वर्ग से उतरती अप्सरा हो रही थी।

यमुना मुस्कराती रही। राजकुमार देखते रहे। स्वप्न और जागृति के छाया-लोक में प्रति प्रतिमा पंचेन्द्रियग्राह्य संसार में अत्यन्त निकट होकर भी जिस तरह दूर—बहुत दूर है, उसी तरह परिचिता प्रभा का यह दूर सौन्दर्य प्राणों की दृष्टि में बँधा हुआ निकट—बहुत ही निकट है। उस स्वप्न को वे उतने ही सुन्दर रूप से देख रहे हैं, जितने से संज्ञा के अन्तिम प्रान्त में पहुँचकर भक्त और कवि अपनी दैवी-प्रतिमा को प्रत्यक्ष करते हैं। अल्पदृश्य प्रभावती कितनी विशिष्टता से, प्रति अंग की कितनी कुशलता से, कितनी स्पष्टता से प्रिय कुमार की ईप्सित दृष्टि में उतर रही है!

प्रभा नाव पर बैठ गयी। नाव खोलकर सेविकाएँ चढ़ गयीं। एक ने पतवार सँभाली, दोरंगी बल्लियाँ लेकर बीच की ओर ले चलने का उपक्रम करने लगीं। प्रभा वीणा सँभालकर स्वर मिलाने लगी। इस रूप में साक्षात शारदा को देखकर राजकुमार की भाषा अपनी ही हद में बँधकर रह गयी।

पाँच

कुमार चुपचाप रूप की सुधा पी रहे हैं देखकर यमुना प्रसन्न होकर बोली, "कुमार, हमारी आशा यहाँ से पूरी न होगी। प्रिय से मिलने के लिए कुछ परिश्रम करना होगा, अपनी सखी की तरफ स मैं हूँ। हमें शहर पार करके श्मशान-भूमि मे मिलना होगा। प्राय: कोस-भर पैदल चलना है।"

"आपकी जैसी आज्ञा," कुमार सँभलकर बोले।

"आइए," यमुना आगे-आगे चली। "आगे बस्ती है, आवश्यक बातें उधर कहूँगी।" दोनों मौन चलते गये।

राजकुमार के मन को अनेक प्रकार की धूप-छाँह से युक्त भिन्न-भिन्न रस और अलंकारों की कल्पनाएँ अपने आप उठ-उठकर समावृत करती रहीं। कभी प्रिय को एक ही अश्व पर बैठकर, लड़ते हुए, शत्रु-सैन्य को परास्त कर बढ़ते हुए संसार के राज्य को पार कर जाते हैं; कभी किसी एकान्त वन के सघन लता-भवन में आलिंगित विश्राम करते हैं, कभी निभृत कक्ष के रत्न-दीप प्रकाश में प्रियालाप में बँधे रहते हैं, जैसे इस मधुर स्वर का कभी अन्त न होगा—संसार का समस्त समुद्र स्थिर है, केवल दो बुदबुद अतल से कलरव करते हुए अनन्त ऊर्ध्व को उमड़ रहे हैं, जैसे समस्त पृथ्वी सुप्ति के अन्धकार में डूबी हुई है केवल दो परिचित प्रहरी वार्तालाप करते हुए बैठे हैं सृष्टि से स्नेह-सौन्दर्य की रक्षा के लिए। फिर होश में आते हैं, फिर बिगड़े हुए को बनाने के लिए माया-मरीचिका की सृष्टि करते हैं, भ्रान्त मृग की तरह फिर दूर, दूरतर हो जाते हैं। पैर जैसे अपने आप यमुना का अनुसरण कर रहे हों।

नगर का पथ धीरे-धीरे पार हो गया, यमुना विगत अनेक स्मृतियों को गौरव-स्वरूपी अपनी महिमा को धारण किये, मौन,सहज-पग आगे-आगे चली जा रही थी। नगर पार कर उपवन के पथ को एक जगह रुककर, साथ पार्श्ववर्तिनी हो गयी।

गम्भीर स्वर से बोली, "कुमार, आपके सौभाग्य का यह सबसे बड़ा लक्षण है कि प्रभा ने आपको वरण किया।"

कुमार स्वीकृति की सूचना-जैसे मौन रहे।

यमुना कहती गयी, "इनके पिता की इच्छा बलवन्त से विवाह करने की थी।"

"फिर ?" राजकुमार की सारी वृत्तियाँ एक साथ सचेत हो गयीं।

"प्रभा मेरे प्रसंग से बलवन्त को घृणा करती थी। वह मुझे नहीं जानती, पर मेरा इतिहास जानती है। मेरी इच्छा का बलवन्त ने विरोध किया था। यह स्त्री होने के कारण प्रभा सहन नहीं कर सकी। उसने अपने पिता से खुलकर कुछ कहा नहीं; पर बलवन्त से विवाह का अवसर आ जाने पर वह अवश्य अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता का परिचय देती।"

यमुना कुछ रुक गयी। राजकुमार के सौन्दर्य के नशे पर इसका और प्रभाव पड़ा।

सँभलकर यमुना कहने लगी, "बलवन्त को महीने के लगभग हुआ, कान्यकुब्जेश

की ओर से इधर के अधीन राजाओं से कर लेने तथा यज्ञ में आमन्त्रित के विचार से दलमऊ आये थे। महेश्वरसिंह से बातचीत हुई थी। बलवन्त प्रभावती को देखना चाहते थे, पर सखी अस्वस्थता के बहाने नहीं मिलीं।"

"तो इस विवाह से महेश्वरसिंह अनर्थ कर सकते हैं।"

"पर वीर और वीरांगना को अनर्थ से ही अधिक प्रेम होता है, यदि वह अनर्थ किसी सत्य-प्रेम का विरोध है। आप क्या—"

"जी नहीं, आपका आदर्श मेरा रक्षक है। बलवन्त ने आपको यहाँ देखा था ?"

"पहले मैंने सोचा था कि मैं न जाऊँगी। पर फिर सोचा, अगर न गयी, तो प्रभा को शंका होगी। कड़े कार्यों में वह मुझे ही सामने करती है। उसे विश्वास है। मैं जानती थी, जितने नशों से दृष्टि ढँक जाती है, उन सबसे ऐश्वर्य-बड़प्पन का मद बड़ा है। इससे आदमी की मुखाकृति प्रायः नहीं देख पड़ती, वस्त्र और अलंकार, प्रशंसा और सम्मान परिचय देते हैं। कुमार, बालों को कुछ विशृंखल कर, प्रभा को सलाह देकर कि जब समय होगा, अपने मन की कर लेना, पर अभी से बुद्धि से रहित होना ठीक नहीं—उसे विश्वास दिला दो कि उसके लिए तुम्हें पिता का प्रस्ताव मंजूर है, नहीं तो ऐसा न हो कि कान्यकुब्ज का प्रियपात्र होने के कारण तुम्हारे पिता के इष्ट में अनिष्ट पैदा करे। प्रभा की ओर से मद्य और फल आदि लेकर मैं गयी थी, कुछ बातें भी कीं, कुशल पूछी, पर वह मुझे पहचान नहीं सका। वह उस यमुना को पहचानता था जो राजकुमारी थी, इसे नहीं जो दासी है। अगर कुछ पहचान आयेगी भी, तो वह अपनी आँखों को ही धोखा देते हुए समझेगा। दुष्यन्त ने जो अपनी प्रिया को और असली रूप में नहीं पहचाना वहाँ वास्तव में यही भाव चित्रित है। उसने अँगूठी पहचानी थी।"

कुमार ने सोचते हुए पूछा, "देवी प्रभावती को आपके विगत इतिहास से जो प्रेम है, उसकी कभी आपसे चर्चा करती हैं।"

हँसकर यमुना ने कहा, "कई बार कर चुकी हैं। कहती हैं, विवाह वास्तव में गौरव का वही है। पर, यमुना के पति के साथ निरुद्देश्य होने पर, कभी-कभी दुःख भी करती हैं और तरह-तरह की मनोहर कल्पनाएँ। इच्छा है कि उसी के रूप से विवाह करें। उसी रूप में उन्हें विवाह का आनन्द मिलता है। मैं कहती हूँ कि बेचारी, बहुत सम्भव है, किसी वन में दमयन्ती की तरह पति से छूटकर भटकती-फिरती हो या जानकी जी की तरह किसी रावण के यहाँ पड़ी पति की चिन्ता में गल रही हो, तो बिल्कुल मुरझा जाती हैं, जैसे उन्हीं पर सब बीत रहा है। तब मैं कहती हूँ, हाय, मैं ही वह यमुना क्यों न हुई कि तुम्हारे गले से लिपटकर कहती कि प्रभावती, दुःख न करो बहन, मैं आ गयी। तब नाराज होकर 'चुप रह, तू क्या जाने कि वह क्या और कौन हैं' डाँट देती हैं।"

राजकुमार उच्च स्वर से हँस पड़े।

यमुना कहने लगी, "एक दिन अपने-आप कहा, यमुना, तू उन यमुना देवी को नहीं जानती, इसलिए सीताजी और दमयन्ती की मिसाल दिया करती है; पर तू बेचारी और जानती कितना है—तेरा क्या कुसूर!—वे आज की पूरी क्षत्राणी हैं, किसी किरात से डरनेवाली नहीं। बहुत ऊँचे दरजे की लड़ाई जानती हैं। उनका

कोई अपमान थोड़े कर सकता है ?"

पेड़ों की आड़ से बाहर निकलने पर नाव प्रतीक्षा करती हुई देख पड़ी, प्रभावती वीणा बजा रही थी। यमुना संयत हो गयी। कुछ ही देर में खुले श्मशान-घाट ले जाकर खड़ी हुई। सेविकाओं ने सात रंगों से भिन्न पोरों के तौर पर रंजित तख्ता नीचे से निकालकर डाल दिया। उसी से प्रभावती तट पर उतरी। कुमार और यमुना कुछ दूर-दूर खड़े थे। हाथ जोड़कर कुमार को नमस्कार कर प्रभावती सामने खड़ी रही, प्रति-प्रणाम कर यमुना को देखकर कुमार मन में मुस्कराये। यमुना गम्भीर होकर टल गयी और एक सेविका का नाम लेकर शीघ्र सामान ले आने के लिए कहा।

जल, आरती, फूल-मालाएँ, रोचना, कंकण आदि सजे रक्खे थे। सेविकाएँ एक-एक ले आयीं। प्रभा ने जल से हाथ लगाकर पैर प्रक्षालित कर दिये, फिर अप्सरा के पल्लवोपम उसी उत्तरीय से चरण पोंछे, फिर बायें हाथ से पूजित पदों को दबाकर दाहिने से तीन बार अँगूठों की धूल-जैसे उठाकर नेत्रों में लगा सिर पर रक्खी। फिर आचमन करने लगी।

यमुना संयत है। बार-बार उठते आवेश को सहज भाव से दबाने की कोशिश कर रही है। प्रभा ने पदों पर, फिर मस्तक पर फूल चढ़ाकर रोचना लगाकर गले में गन्धराज की माला डालने लगी कि यमुना का सान्द्र कण्ठ सुन पड़ा, 'साध्वी वीरांगना भव।'

'यमुना और संस्कृत!'—प्रभा का भाव भंग हो गया। माला पहनाकर निगाह फेरकर कुमार के दाहिनी बगल देखा, यमुना निष्पात पलकों से किसी महामहिमा में डूब खड़ी थी—कोई भाव वहाँ न था—वह किसी को भी न देख रही थी। अज्ञात प्रेरणा से संकुचित होकर प्रभावती कुमार के हाथ में कंकण बाँधने लगी। कार्य समाप्त होने पर यमुना प्रकृतिस्थ हुई, कुमार के हाथ में कंकण देखकर आँखों में मृदु मुस्करा दी।

अब प्रभा आरती करने लगी। सबके हृदय में मधुर भाव ओत-प्रोत हो गया। फिर यमुना ध्यान-मग्न हो चली। दासियाँ, श्मशान-भूमि, आकाश, चन्द्र, ज्योत्स्ना, तारे, गंगा और सारी प्रकृति निष्पन्द! पूजिका की भावमयी आँखों और भ्रू-पलकों का वह अनुपम भक्ति-रूप राजकुमार स्तब्ध होकर देख रहे थे। मन से भासित होता था—आरती उसी की आरती कर रही है; 'निःसंशय', स्तब्ध प्रकृति तथा अन्य मौन मन कह रहे थे।

यमुना स्थिर कण्ठ से कहने लगी, "कुमार, वह देवी प्रभावती की सूझ है। उन्होंने श्मशान में आपको वर रूप से वरण किया है। सुन्दर, यह विश्व देवी की दृष्टि में केवल श्मशान है यदि यहाँ उनके साथ आप नहीं। उनकी दृष्टि में आप ही उन्हें लुब्ध करनेवाले सौन्दर्य की एकमात्र सृष्टि हैं। इस श्मशान में आपको शिव मानकर आपके गले में उन्होंने वरमाला डाली है। वे पृथ्वी-रूप से गुण-सुगन्ध-भूषित हो रही हैं। जल-रूप उन्होंने आपके चरण धोकर आपको अन्तःकरण का समस्त रस अर्पित कर दिया है। आपको माला पहनाकर, सुरोचित कर स्पर्श-जन्य अपना समीर अंश दे चुकी हैं। आरती द्वारा तथा नयनों की ज्योति से

आपके वररूप को देखती और पूजती हुई अपना ताप-तत्त्व और अब मौन खड़ी हुई भी मन से आपके स्नेहाभिषेक में मधुर मुखर, आपको अपना आकाशतत्त्व भी दे चुकी हैं। परन्तु यह वह दान है, जो दोनों पक्ष से अपेक्षित है। इनके लिए हुए पंच-तत्त्वों के बदले आप अपने भी पंच-तत्त्व इन्हें दीजिए। तभी इनकी पूर्णता होगी। आपमें पंच-तत्त्व स्वरूपा शक्ति आकर मिली है; आप पंच-तत्त्व-स्वरूप पुरुष को देखकर सम हूजिए। यही आपकी भूमि है, यही रस जल, यही पंच-प्राणों को समीर, यही ज्योतिर्मयी दिव्य-दृष्टि—दर्शन शोभा और यही शब्दों की आकाश रूपा। आप इन्हें रोचित कर माला पहनाकर प्रति-नमस्कार द्वारा प्रीत कीजिए।"

सेविकाएँ अर्घ्य आदि लिये खड़ी थीं। कुमार ने बायें हाथ से मस्तक का पश्चाद्भाग थामकर दाहिने से, सुललित रोचना लगा दी, अक्षत छिड़के और दोनों हाथों से, प्रेम के दिव्य भाव से, प्रिय को माला पहना दी। प्रति-नमस्कार करने लगे, प्रभा ने दोनों हाथों बँधी अंजलि पकड़ ली।

यमुना प्रभा को आगे, पश्चात् कुमार को कर नाव पर ले चली। ललित-पद चलती प्रभा यमुना के भाषण-कौशल पर सोच रही थी। पर यमुना पहले ही सँभल चुकी थी। सुनाकर स्वगत कहने लगी, "आज पण्डित गंगाधर महाराज मिल गये। जब राम की किरपा होती है तब क्या कोई काम बिगड़ता थोड़े है? बाहर निकली नहीं कि महाराज खड़े थे, सगुन देखकर मैं गोड़ों गिरी—'महाराज, भले मिले।' कहने लगे—'क्या है यमुना, खैर तो है?' मैंने कहा—'महाराज एक पण्डित तत्-तत् करते थे, पाँच मिलाकर कहा था, मैंने पान, सुपारी, कत्था, चूना, लौंग याद कर लिया,—कहते थे इन ही से हर जीउ बना है, फिर वह पाँचों तत्-तत् समझा दिया, पर महाराज; मैं वह तो भूल गयी, 'पान-सुपारी-कत्था-चूना-लौंग' याद रह गया है।' महाराज हँसने लगे। बोले—'वे पंच-तत्त्व हैं, तत्-तत् नहीं।' 'वह सब लिख दो, अच्छी तरह।' मैंने कहा। फिर मैंने ब्याहवाली बातें पूछीं, मैंने कहा, सब लिख दो। लिखा लिया। फिर दिन-भर पढ़ती ही तो रही? याद हो गया। फिर नाम बैठाकर अपनी तरह से कह दिया। मैंने कहा, महाराज किसी स्त्री को अगर कहा जाय कि पति को मानों भी और खूब लड़ाका भी हो, तो सन्सकीरत में कैसा कहेंगे? मैंने सोच लिया था कि आखिर कुमारीजी का ब्याह है, कुछ कहे बिना कैसे बनेगा, पुरोहितजी होंगे नहीं। पण्डितजी ने बताया, इसकी सन्सकीरत है—'साध्वी वीरांगना भव'।"

'लड़ाका' के पास राजकुमार फट पड़े—किसी तरह जब्त न कर सके, प्रभा भी खिलखिला दी—'चुप रह, तुझसे कोई कैफियत तलब करता है?' 'नहीं, मैंने कहा सायत' कहकर यमुना चुप हो गयी।

छह

जरा देर में जरा समाँ बदल गया। चारों ओर हँसी-खुशी छा गयी।

राजकुमार चुपचाप देवी यमुना से दबे बैठे हैं, मन-ही-मन उस विजयिनी प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए। राजकुमार को पान के लिए पूछते हुए प्रभावती को संकोच हो रहा है। बैठी माला की लड़ी हाथ में लिये नीची-निगाह देख रही है। मन बार-बार यमुना की सहायता चाहता है। नारी अपनी महिमा नहीं छोड़ सकती, प्रभा को देखते ही यमुना समझ गयी। जो कार्य क्रमशः होते हैं, उनका भी उसे ज्ञान है। सब क्रम प्रभा यमुना को सुना चुकी है। अपने चातुर्य के कारण यमुना प्रभावती का दाहिना हाथ है।

किसी विशिष्ट विषय के बाद, दूसरी बातचीत चलने पर भी मौका देखकर अनुकूल बात की जाती है; यह मर्म छिपी राजकुमारी यमुना कितना समझ सकती है और राजकुमारी प्रभावती को बार-बार समझकर ही अपना सकी थी इसका उल्लेख अनावश्यक है। प्रथम प्रगाढ़ भक्ति-भाव का उसी ने रुख बदला; अब इस प्रतीक्षा में है कि वह उपहासवाला आनन्द भी कुमार-प्रभा तथा सेविकाओं के मन से निकल जाय; प्रतिक्रिया के भरे मुहूर्त में नवीन रचना शुरू करेगी।

यह वही क्षण है।

नाव की छत पर बैठक है। राजकुमार और प्रभावती को यमुना ने सामने-सामने बैठाया था। चार सेविकाएँ चार कोने में बैठी हैं; इन्हीं में यमुना राजकुमारी के दाहिनी बगल। एक पीछे पतवार सँभाले हुए, एक सामने गति-निरीक्षण करती हुई। नाव अपने आप बहाव में बही जा रही है।

यमुना ने एक सेविका से मदिरा, हल्का आसव, घृतपक्व, चबेना और भूना मांस ले आने के लिए कहा। दूसरी, तीसरी और चौथी को राजकुमारीवाली वीणा, मृदंग और नूपुर-मंजीरे ले आने की आज्ञा दी।

सेविकाओं ने वैसा ही किया। यमुना उठकर पूरब को—बहाव की ओर मुंह किये राजकुमार और प्रभावती के बीच, कुछ फासले पर, आ बैठी और दोनों के पान और भोजन सजाकर सामने रख दिये; फिर प्याली में मदिरा ढालकर उठाकर राजकुमार के हाथ में दे दी। देवी की इच्छा समझकर मुस्कराकर, नीची-नजर राजकुमार ने प्याली पकड़ ली। फिर होंठ काटकर मुस्कराती हुई प्रभावती की ओर देखकर उसकी भी रत्न-जटित प्याली आसव से भरकर दी। ढीले हाथ प्रभावती अपनी प्याली लेकर राजकुमार को भरी हँसी की नत दृष्टि से देखने लगी। राजकुमार तब तक लिये ही बठे थे। यमुना ने राजकुमार से कुछ आगे आने के लिए प्रार्थना की। फिर बायें से प्रभावती और दाहिने से कुमार का प्यालीवाला हाथ पकड़कर दोनों की प्यालियाँ मिलाती हुई बोली, "पीने, गाने और विहार न करने में भी अकेली हमारी राजकुमारी आपके साथ होंगी, आप ऐसी जगह कभी इनको छोड़कर न जायँगे, आज के अमृतजल देनेवाली नीचे गंगाजी, ऊपर मयूख-वर्षी चन्द्र, एक दूसरे के लिए प्रेम बहानेवाली आप दोनों और रंगीनी भरनेवाली

सुरा-सुन्दरी गवाह हैं। कुमार, मन में कौल करके पान कीजिए।"

कुमार ने प्याली खाली कर दी। प्रभा ने भी पात्र रिक्त कर दिया। दोनों एक-एक टुकड़ा मांस लेकर खाने लगे। यमुना दूसरे दौर की तैयारी करने लगी।

दोनों की उचित मात्रा हो चुकने पर यमुना ने पूछकर पात्र, प्याली और तश्तरियाँ उठवा दीं। दोनों के मुँह धुलवा दिये। रंगीन दृष्टि से दोनों एक-दूसरे को देखते हुए, यमुना के दिये पान लेकर खाते हुए, एक दूसरे की आत्मा में बैठने लगे। आँखोंवाली लाज दूर हो गयी।

नाव धीरे-धीरे बहती जा रही है। वसन्त ऋतु, शीतल समीर, चाँदनी रात, गंगा-वक्ष ज्योति से झलमल, नाव पर राजकुमार और राजकुमारी पहली रात और इसे वे दोनों शराब की आबदार आँखों से देखें तो कितना सुन्दर होगा?

यमुना ने प्रभावती को वीणा बढ़ा दी। एक दूसरी सेविका से मृदंग की ओर इशारा करके राजकुमार को देने के लिए कहा, स्वयं नूपुर-गुच्छ ले लिये।

वीणा चढ़ी हुई थी, मृदंग लैस किया हुआ था। तारों में पहले तीन-चार बार प्रभावती ने अलाप ली। फिर देश पर त्रिताल की एक गति बजाने लगी। हाथों में नूपुर-गुच्छ लिये-लिये यमुना ताल द्विमात्रा, मात्रा, अर्द्धमात्रा तथा दीर्घ रणन से झंकृत करती रही। कुमार देव सोलह-मात्रा पर मृदंग के बँधे बोल लघु थपकियों से निकालने लगे। गति द्रुत से द्रुततर होती गयी, मृदंग में परन पर परन, छन्द पर छन्द उठते गये। तरुणी तरुणी की ही मुखर रागिनी से जैसे दिशाएँ मधुर-मधुर गूँजती रहीं। सेविकाएँ निश्चल गति-वादन-एकता में डूबीं। व्यथापूर्ण मादक देश की मीड़ें, तान आदि, युगल प्रेमियों के प्राणों में क्या काम करती थीं, वर्णनातीत है। प्राय: आधी घड़ी तक गति बजती रही। ताल पर वीणा बन्द कर, ध्यान में डूबी प्रभावती कुछ काल तक बैठी रही। आसव और राग का रग-रग में मधुर उन्माद भरा था। कुमार क्षीण वीणा-स्वर और नूपुर-निक्वणों से मिले अपने हृदय के ही सान्द्र रव-जैसे मृदंग के जलद-मन्द्र से तृप्त होकर निकले। प्राणों में सुरा का समररंग।

यमुना ने दोनों को फिर पान दिये। कुछ देर तक मौन रहकर प्रभा ने यमुना को गाने के लिए कहा। ध्वनि में संकोच था। आप-ही-आप आज यमुना 'तू' से 'तुम' के आसन पर चढ़ गयी है। आज वह वैसी तुच्छ होकर निकटवर्तिनी नहीं; राजकुमार के दिये सम्मान की मौन प्रेरणा और कार्यों के ममत्व ने उसे उच्च कर दिया है।

यमुना ने प्रभा को ही पहले गाने के लिए कहा। क्योंकि आज की सभा उसी के हाथ है, इसलिए नेतृत्व उसे ही लेना चाहिए, ज्यों-ज्यों यमुना समझती गयी, प्रभा को संकोच जकड़ता गया। राजकुमार कुछ कह नहीं सकते, क्योंकि यमुना को 'आप' कहना पड़ेगा। बार-बार देखकर रह जाते हैं। कभी यमुना का गाना सुना न था, वे गाती भी बहुत अच्छी होंगी, सोच-सोचकर मन से उत्सुक हो रहे थे। जैसे समझकर यमुना बोली, "मेरे नकटे-दादरे पहले हो जायँगे, तो आपकी बहार जो बिगड़ जायेगी, इसके बाद न हो लीपे-पोते में करकट कर लिया जायगा, तब तक दो-चार बढ़िया-बढ़िया ब्याहवाले गीत गाइए। जिसका ब्याह, वही

गावनहार, मुझे बहुत अच्छा लगता है।" राजकुमार सिर गड़ाकर मुस्कराये। प्रभा मुस्करा दी—न रहा गया। जैसे संकोच दूर हो गया। एक स्वतन्त्र आनन्द की धारा बहने लगी। सिमटकर वीणा उठा ली। कुमार ने मृदंग गोद पर रख लिया। प्रभावती स्वर पर झंकारें भरती रही; फिर एक चौताल और एक झप गाया। तीन ताल की भी दो चीजें हुईं। सभ्य सँभले गले पर राजकुमार मुग्ध हो गये। पुनः कुछ देर विश्राम रहा। फिर यमुना को गाने के लिए प्रभा ने कहा। नूपुरों के गुच्छे पास की सेविका को देकर स्थिर होकर यमुना खिची तीन ताल की बागीश्वरी गाने लगी—मृदंग की लहरों पर मात्रा-मात्रा से रागिनी बह-सी चली। प्रभा स्वर भरती रही। सेविका ताल-ताल पर नूपुरों के गुच्छे हिलाती रही—

"किहि तन पिय-मन धारों ?—री कहु
उठत न दृग लखि, पग डगमग, सखि,
किमि निज सुगति सँवारों ?—री कहु
मौन पौन में डसत बिखयधर;
फैलति ज्वाल, होत तन जरजर;
सबद सुनत काँपत हिय थरथर,
किमि सर खर निस्वारों ?—री कहु"

गीत समाप्त कर, देर हुई जान, यमुना ने दोनों से भोजन कर लेने की प्रार्थना की। कुछ विश्राम भी जरूरी है, समझाकर दोनों को नीचे ले गयी। आसनों पर बैठाल भोजन और पान मँगाकर कुछ सुरा दोनों को और पिलायी। भोजन के समय अनेक प्रकार के प्रेमालाप सुनाती रही—आज की रात, कहते हैं, आज पति-पत्नी को सोना न चाहिए—अवश्य सोना सम्भव नहीं, इसलिए कहा गया है, क्योंकि तमाम रात भी बातचीत के लिए पूरी नहीं पड़ती—आदि-आदि। भोजन के पश्चात् दोनों के हाथ धुलवाकर पान खिला दिये। फिर खिड़कियों के दूसरे प" खिंचवाकर अपना तथा दासियों का भोजन छत पर मँगवा लिया।

नाव बहती हुई प्रायः आठ कोस का फासला पार कर गयी। भोजन समाप्त कर अपनी-अपनी बारी से पतवार सँभालने तथा सिरा देखने के लिए यमुना ने दो-दो दासियों का समय नियत कर दिया। छत पर यमुना के इधर-उधर फिस-फिसाती हुई विश्रामवाली सेविकाएँ सो रहीं।

रात का पिछला पहर आ गया। यमुना सचेत पड़ी दूर-दूर की कल्पना में लीन है। कुछ-कुछ ठण्डक पड़ रही हैं। सब गर्म वस्त्र ओढ़े हुए हैं। इसी समय कुछ दूर पर मोह से फिरी बड़ी नाव आती हुई देख पड़ी। सामने और पीछे की दोनों दासियों ने कहा, कोई बड़ी नाव आ रही है। यमुना उठकर बैठ गयी। गौर से देखने लगी। सामनेवाली दासी ने कहा, "सुबह के धोखे में जल्द खोल दी होगी, या मल्लाहों ने सोचा होगा, ठण्डे में गुन खींचकर दलमऊ में आराम करेंगे।"

नाव नजदीक आ चुकी थी। यमुना नीचे उतर गयी। द्वार से 'कुमारजी' कह-कर प्रभा को आवाज दी। प्रभा जग रही थी। राजकुमार भी जगते थे। प्रभा ने बुलाया। उठकर बैठ गयी। राजकुमार भी बैठ गये। यमुना ने कहा, "एक नाव आ रही है। मुझे जान पड़ता है, बलवन्त की नाव है।" प्रभावती निकलकर देखने

लगी। नाव बहुत करीब पहुँच चुकी थी। राजकुमार छत पर चले गये।

"यमुना!" प्रभा यमुना को पकड़कर रो दी।

"छिः! कोई हिम्मत हारता है? मैं समझ गयी, जल्द भारी गहने उतार डालो—नाव दाहिने करो जहाँ तक हो,"—यमुना ने पतवारवाली को आवाज दी—"वे दाहिने से गुन खींचकर आ रहे हैं," प्रभावती को समझाया—"मौका अच्छा न जान पड़े, तो कूदकर तैर जाना, कुमार के लिए चिन्ता नहीं," धीरे-धीरे जल्द-जल्द यमुना कहती गयी—"हाँ, पिताजी साथ होंगे।" प्रभावती जल्द-जल्द गहने उतार रही थी। नाव आ पहुँची—"कौन है?" आवाज आयी। धीरे-से एक खिड़की से प्रभा के गंगा में बैठने का शब्द हुआ। ध्यान लगाये यमुना और दासियों ने सुना। राजकुमार किनारे बिस्तर के नीचे से अस्त्र निकाल रहे थे। नाव भी आनेवाली नाव के काफी बायें हो चुकी थी। पूछने के साथ ही बिना यमुना की सलाह कुमार ने कह दिया, "देव कुमार लालगढ़।" प्रभा डुबकी लगाकर दूर निकली, चित्त होकर जरा साँस लेकर फिर डुबकी लगाती गंगा पार करने लगी।

कुमार ने देखा—बलवन्तसिंह सामने खड़ा है। 'अच्छा दोस्त!' बलवन्त ने ध्वनि में गुस्ताखी की। बलवन्त लालगढ़ के खिलाफ था। कुमार की आँखों में क्रोध आ गया। सजी नाव अपना परिचय दे रही थी—यमुना बलवन्त का इशारा समझ गयी, ऊपर कुमार की बगल से कहा, "और तुम्हारी बहन साथ हैं।"

"बाँदी!"

"नीच कुल-कलंक!" यमुना ने भाला मारा। बलवन्त बैठ गया। पीछे खड़ा सिपाही बिंधकर गिर गया। "खबरदार कुमार, मैं जाती हूँ; पार जाने तक, किसी को बढ़ने न देना। सखी सती होंगी या तुम्हें छुड़ायेंगी। वे पिता से बचने के लिए गयी हैं। लो तीर-कमान," कहती यमुना कूद गयी। 'कुमार ने यमुना पर चलाया भाला रोका।' बात कहती, वार से पहले यमुना कूद गयी थी। 'पकड़ो' बलवन्त ने आवाज दी; पर वह कहीं उभड़ी हुई न देख पड़ी। तैयार कुछ लोग बायीं ओर देखते रहे। कुमार ने आवाज के साथ ही दूनी गरज से कहा, "बलवन्त, यहाँ हम अकेले हैं, पर वीरसिंह को तुम अच्छी तरह जानते हो।"

"मारो।" कई वार एक साथ हुए। कुछ सँभले, कुछ न सँभले। अकेले यमुना देवी को पार जाने तक न बचा सके। कई चोटें खाकर कुमार मूर्च्छित हो गये।

नाव को बलवन्त ने अपने अधिकार में कर लिया। महेश्वरसिंह के सामने दासियों के बयान सुनकर क्षोभ से जल गया। महेश्वरसिंह भी अत्यन्त रुष्ट हुए। पर उपाय न था। नाव अब तक दूर निकल आयी थी। पार जाकर प्रभावती जंगल में छिप गयी होगी, सोचकर चुप हो गये। दिल धड़क रहा था। बलवन्त बड़े गर्व से उन्हें देख रहा था, जैसे उनके अपराध की क्षमा न हो। कुमार देव बन्दी अवस्था में नीचे मूर्च्छित लिटा दिये गये।

यमुना कूदकर, डुबकी लगाकर किनारे की तरफ नहीं गयी। सीधे बलवन्त की नाव की तरफ गयी। बलवन्त की नाव इतनी निकट थी कि वह एक डुबकी से नाव के पीछे पहुँच गयी। यह स्रोत के अनुकूल जाना था। उसने सोच लिया था

कि इतने निकट से कटकर पार के लिए जायगी, तो कुमार बचा न सकेंगे—बलवन्त की नाव के कुछ ही फासले से होकर जाना होगा; मुमकिन है, पकड़ जाय। यह सब क्षणमात्र में सोचकर बलवन्त की नाव की बगल में, पतवार के पास निकली और धीरे से पतवार का सहारा लिये साथ चलती रही। जब कुमार घायल और गिरफ्तार हो चुके, प्रभावती की नाव पास के लट्ठे में बाँध दी गयी, दासियों के बयान हो चुके, तब एक बार सोचा कि कुछ दूर चलकर, नाव छोड़कर सावधानी से दलमऊ की तरफ जाकर, दौड़ती हुई, इस नाव के पहुँचने के पहले पहुँचे और महाराज को बचावे। पर प्रभावती की विवशता की याद आयी; पतवार छोड़कर डूबकर बहती-तैरती हुई उसी किनारे जा चढ़ी।

सात

प्रभावती दूर बहकर लगी। जब किनारे आयी, तब दोनों नावें एक साथ बँध चुकी थीं। राजकुमार उठाकर ले जाये गये थे। यमुना का कोई निशान न था। दासियाँ दूसरी नाव पर थीं। देखकर शंका बढ़ी; किनारे-किनारे, कुछ पीछे रहकर चलने लगी। वस्त्र निचोड़ लिया था, देह के ताप से वह सूख चला था। ठण्डक कुछ थी—नहा जाने पर अधिक हो गयी, पर हृदय और मस्तिष्क में इतनी गरमी थी और स्थिति इतनी अस्वाभाविक कि जाड़े का स्वाभाविक बोध न रहा।

प्रभावती की इच्छा कुमार को छोड़ने की न थी, पर पिता की कल्पना कर वह विचलित हो गयी। पिता के प्रति यदि पुत्री की दृष्टि वह अन्त तक न रख सके, तो एक अनर्थ होगा। पुनः पिता ऐसे पिता नहीं जो अपने राज्यार्थ को पुत्री के स्नेह-स्वार्थ के मुकाबले कमजोर होने देंगे; यदि बलवन्त ऐसी विवाहित अवस्था में भी. कुमार देव को नीचा दिखाने के अभिप्राय से, उसे स्वीकार करना मंजूर करेगा, और यदि पिता इस विवाह को विवाह करार न देकर उसको सम्प्रदान करना चाहेंगे तो उस अवस्था में आत्महत्या या वीर नारी की तरह सती होना ही पथ होगा; पुनः बाहर बचने-बचाने की जितनी आशा है, उतनी बँध जाने पर नहीं; ऐसे अनेक प्रकार से युक्ति, भय और दबाव के कारण वह कुमार को छोड़कर कूदी थी। अब चलती हुई सोच रही थी कि अगर कहीं रह गयी होती, तो कुमार के साथ दुःख में भी रहने का सुख प्राप्त हुआ होता। फिर बिगड़कर बदले के लिए तुलकर सोचने लगी। बलवन्त का बहुत शीघ्र युद्ध के लिए आह्वान न कर सकी, तो सारी शिक्षा व्यर्थ है; जिस तरह इसने दल-बल के साथ एकमात्र का अपमान किया है, इस तरह की कायरता से नहीं,—बराबर की लड़ाई लड़कर ऐसी उधेड़बुन में चली आ रही थी। काफी दूर चली आयी। नाव, कुमार, यमुना और बलवन्त की बातों में भूली थी—पैर आप उठते जा रहे थे; ऐसे समय यमुना

सामने से आती हुई देख पड़ी। किनारे से प्रभा को आते हुए यमुना ने देख लिया था जब वह खुद किनारे लग रही थी, और प्रभा के लिए उसे परिश्रम न करना पड़ा, इससे आश्वस्त भी हुई थी।

यमुना ही इतनी देर तक मनःशक्ति से जल में रह सकी। किनारे चढ़कर कपड़े निचोड़े। अंग जकड़े जा रहे थे। धैर्य से बढ़ती गयी। कुछ चलकर दौड़ने लगी।

आगे प्रभा मिली। "कुमार!" करुण स्वर से पूछकर लिपट गयी।

"संयत होओ!" 'तुम' से प्रभा के प्राणों को यह पहली प्रिय सहानुभूति मिली। इससे उसके बड़प्पनवाला भाव दूर हो गया। राजकुमारी प्रेम के पथ पर उतना ही अधिकार रखती है जितना एक साधारण युवती, इस सम्बोधन की सहृदयता ने उसे समझा दिया और इस ज्ञान से उसकी गति विश्व की सभी गलियों में फैल गयी, उसने यमुना की सहानुभूति में जो विस्तार देखा, वहाँ सबकुछ था—राजकुमार थे, यमुना थी और था छाँह में प्रेम का मधुर आलाप। केवल बड़प्पन न था, और जैसे इस अकृत्रिम सुख का कारण यही हुआ। प्रभा ने पलकें मूँद लीं।

यमुना बोली, "आगे सब बातें कहूँगी; जो कुछ हुआ, वह बड़ी चिन्ता का विषय नहीं। अभी हमें कुछ स्वस्थ हो लेना है। यहाँ से जल्द निकल चलना है, कल यहाँ बहुत गहरी खोज हो सकती है। चलो, कछार के पार बस्ती की ओर चलें।"

दोनों कछार पार करने लगीं।

"अब क्या होना चाहिए?" प्रभा ने पूछा।

"तुम्हारे पास अभी कुछ गहने हैं?"

"हाँ, जल्दी में सब नहीं उतार सकी, इन्हें फेंक दूँ?"

"नहीं, इनका होना अच्छा हुआ, हमें खर्च की जरूरत पड़ेगी। अब इधर का रास्ता तो बन्द ही है। दूसरी जगह से काम होगा। हाँ, आओ, गहने उतारकर साड़ी के एक छोर में, फाडकर, बाँध लूँ, आवश्यक चीजें खरीदनी होंगी और ठिकाने तक पहुँचने का प्रबन्ध करना है।"

"कहाँ चलेंगे?"

"कान्यकुब्ज।"

प्रभा गहने उतारने चली। हारों का कवच उतार डाला था, पर कण्ठी बँधी रह गयी थी। ऐसे ही बाँहों में, नाक-कान और हाथों में गहने रह गये थे। यमुना एक-एक उतारने लगी। नाक का हीरा रहने दिया। कहा, "फिर जरूरत पर उतार डालना।"

"अब तो जी सँभल गया होगा; वहाँ क्या हाल रहा—राजकुमार कहाँ हैं?"

दोनों चलती जा रही हैं। प्रभा आग्रह से भरी हुई। यमुना ने एक गहरी साँस ली।

"नहीं, इस ओर से जाना ठीक नहीं। तुम्हारी साड़ी बहुत भड़कीली है। लोगों को शंका होगी। कल खोज हुई, तो पकड़ जाने की सम्भावना है। फिर इधर साधारण गाँव हैं। सवारियाँ मिलें, न मिलें। यहाँ हीरे भी कैसे बिकेंगे?

थोड़ा-बाड़ा खर्च, मंजिल दो मंजिल का रथ-रब्बे का किराया कैसे दिया जायगा ? हमें उतरकर किनारे से चलना चाहिए। आगे कोस-भर में नाव-घाट होगा। ज्यादा किराये पर नाव करके प्रयाग चलें। रास्ते में एक हीरा बेच लेंगे।"

यमुना लौट पड़ी। प्रभावती के साथ-साथ यन्त्र की तरह, "तू मेरी बात का जवाब नहीं देती।" स्नेह की रुखाई से पूछा।

"देखो, सबेरा होता है। अब ये बातें न करो। कुमार के लिए चिन्ता न करो। कह दिया, वे बन्दी कर लिये गये हैं। हमारा काम है, उन्हें जहाँ तक जल्द हो, छुडावें।"

कुछ देर प्रभावती मौन रही। फिर कहा, "यमुना ! आज तुझे ऐसा देखा कि जितना समझा था, सब बदल गया। पहले तू ऐसा न बोलती थी !"

"तुम्हारी शिक्षा इतनी नहीं हुई कि तुम मुझे पहचान सकतीं ! तुम बड़े घर की थीं, पर छोटे ही घरों के लोगों ने तुम्हें कुछ सिखाया है। जिन्हें बदले में अर्थ देकर अपने को तुमने बड़ा समझा, मन-ही-मन उन्हें दबाया, मैं वैसी ही छोटी हूँ, पर तुमसे अधिक पढ़ी हूँ और अधिक शक्ति रखती हूँ, यही तुम्हें समझना था; मैंने आज समझा भी दिया; तुम्हारी शिक्षा को मुझे पूरा करना है; जैसे कहूँ, करती चलो; मुझे तुम प्राणों से प्रिय पहली सखी मिलीं। जिन देवी यमुना को तुम प्यार करती हो, उन्हें मैं भी करती हूँ। तुमने उन्हें नहीं देखा, मैंने देखा है। हमारे लिए उनकी शिक्षा बड़ी गहन है। मैं तुम्हें बताती रहूँगी। फिलहाल चुप रहो।"

प्रभा पैरों से लिपट गयी, "सखी, मुझे क्षमा करो। मेरा इससे बडा उपकार कौन करेगी ? मेरे लिए तो तुम्हीं यमुना देवी हो। मैं छोटों से घृणा नहीं करती। क्षमा करो स्वभाववश जो कुछ कहा हो।"

यमुना ने प्रभावती को उठा लिया। कहने लगी, "हमारी जाति, धर्म और देश की रक्षा की जो समस्या पुरुषों के सामने है, वही हमारे सामने भी है। आज क्षत्रिय अपने दर्प से आप चूर्ण हो रहे हैं। बार-बार बाहरी घात होते जा रहे हैं, पर उन्हें सँभालकर उलटा जवाब वे नहीं दे सकते। महाराज पृथ्वीराज अवश्य इस प्रतिरोध-वीरता के लिए सक्षम हैं, पर वे भी राजनीतिविशारद नहीं। मेरे गुरुदेव उनका समर्थन नहीं करते। उनमें बहुत बड़ी रुक्षता है। वीर कैमास को मारकर उन्होंने बड़ा ही घृण्य कृत्य किया है। वीर-वरेण्य सिर्सा सरदार मलखान को घेरकर अनुचित रीति से उन्होंने मारा। महोबे के ऊदल और ब्रह्मानन्द आदि वीर उनके इसी अनौचित्य को न सह सकने के कारण, अल्पसंख्या में बड़ी शक्ति का विरोध करके भी, विजय पाते हुए, डरपोक परमाल के भाग जाने से भगी सेना से निस्सहाय होकर मारे गये। यदि पृथ्वी चाहते, तो इन वीरों से स्नेह-सम्बन्ध जोड़ सकते थे। पर सम्पूर्ण दोष उनका भी नहीं। कान्यकुब्ज से पृथ्वी और भीमदेव का बड़ा जटिल सम्बन्ध हो गया है। महोबा कान्यकुब्ज का करद-मित्र था। क्षत्रियों में स्पर्धा से दबाने का जो भाव बढ़ा हुआ है, यह उन्हें ही दबाकर नष्ट कर देगा; यह प्राकृतिक सत्य है; मेरे गुरुदेव कहते थे; मुझे भी वह सत्य जान पड़ता है। वर्णाश्रम-धर्म की प्रतिष्ठा में बौद्धों पर विजय पानेवाले क्षत्रिय कदापि इस धर्म की

रक्षा न कर सकेंगे; क्योंकि साधारण जातियाँ इनके तथा ब्राह्मणों के घृणाभावों से पीड़ित हैं। ये आपस में कटकर क्षीण हो जायँगे। तब जो शक्ति बढ़ी हुई देख पड़ती है, वह विजय प्राप्त करेगी। हमारे यहाँ मुसलमानों के अनेक हमले हो चुके हैं। वे विजयी भी हुए हैं। उनका हौसला बढ़ गया है। आश्चर्य नहीं, हिन्दू संस्कृति पर मुसलमानों की विजय हो। उनमें हमसे अधिक एकता है। फिर हमारे लिए कौन-सा धर्म रह जाता है? क्या हम चुपचाप अपने ऐसे पुरुषों का अनुकरण करती रहें? मैं ऐसा नहीं समझती, यह ठीक है कि हमारी न चलेगी; पर तो भी हमें अपने लिए सचेत होना है। सती-धर्म स्त्री को पवित्र करता है। जिससे प्राणि-मात्र प्रीत हो, गुरुदेव कहते हैं, वही सती ब्राह्मण है; जिससे समस्त जाति प्रीत हो, शक्ति पाये, वह क्षत्राणी। हमें प्रजा की सेवा के लिए अपना सर्वस्व दे देना होगा; मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और स्थूल शरीर से, इस क्षात्रईर्ष्या में अमृत सींचकर प्रजा की प्रीति लेनी है—उन्हें जीवन देकर आदर्श सिखलाना है; फिर ईर्ष्यादग्ध या वीरगति प्राप्त पति की चिता में जलकर पति-ब्रह्म में लीन होना, इस एक उद्देश्य के अनेक कार्य हैं। कुछ सीखकर तुम्हें जीवन में परिणत करना तो है।"

हृदय में एक प्रकार बल पाती हुई प्रभा साश्चर्य यमुना को देखती विचार करती चली। धूप फैलने लगी। कुछ दूर पर नाव-घाट देख पड़ने लगा।

आठ

वह और ही युग था। एक ओर गाँव में गरीब किसान छप्परों के नीचे, दूसरी ओर दुर्ग में महाराज धन-धान्य और हीरे-मोतियों से भरे प्रासादों में, फिर भी उन्हीं के पास फैसले के लिए—न्याय के लिए जाना और उन्हें भगवान् का रूप मानना पड़ता था।

ब्राह्मणों ने यह शिक्षा दी। यदि राजा दरिद्र को भगवान् का रूप न मानता—उसके लिए अपना सर्वस्व न देता, तो कौन-सी हानि होती मालूम नहीं, पर अधीन दरिद्र की ओर से हुई त्रुटि का फल मालूम है—राजा अपनी अपूर्व भगवद्भक्ति के प्रमाण के रूप में उसे साकार से निराकार तत्त्व में लीन कर देता था।

इससे वेतन पाने न पानेवाले दरिद्र सभी देशवासी उसके सिपाही थे। राज-भक्ति के प्रदर्शन में उन्हें लड़ना पड़ता था। उधर जरा-जरा-सी बात पर लड़ाई क्षत्रियत्व की सूचना थी। देशवासियों को, यहाँ तक कि किसानों को भी हल की मूठ छोड़कर भगवद्धर्म का पालन करना पड़ता था।

गाँवों में वर्णाश्रम धर्म की धाक थी। राजवंश के क्षत्रियों को छोड़कर और सभी जातियों को चाहे वृद्ध की बगल से बच्चा आ निकले, यदि ब्राह्मणवंश का

हो, चारपाई छोड़कर उठना पड़ता था, गाँवों में दिन-भर यह कसरत जारी रहती थी।

राजनीति सब समय एक-सी है। राजा या राज्य की ऐश्वर्य-सत्ता का भोग करनेवाले कभी वृहत् अंश साधारण की भलाई के लिए नहीं छोड़ सकते। यह भोग अपनी सार्वकालिका महिमा में एक-रूप है, परिवर्तन भोग के उपायों में हुए हैं। यहाँ व्यक्तिवाद भी है। शक्ति का विकास होने पर दूसरे अशक्तों से मनुष्य भिन्न हो जाता है। यह भिन्नता समाज, शासन और अध्यात्म में सब जगह, बड़े-बड़े मनुष्यों में प्रत्यक्ष होती है। पर किसी समय यह कुछ दूर तक सह्य होती है, किसी समय सम्पूर्ण असह्य। उस समय भारत जिस भिन्नता में था, वह साधारण जनों को आत्मा से असह्य थी। जिस तरह वनों के प्राण शून्य में प्यासी पुकार भरते हुए वारिवर्षण कराते हैं, उसी तरह भारत की जनता की मौन करुणा-ध्वनि ने दूसरी-दूसरी सत्ताओं को शासन के लिए बुलाया। संसार के सभी अधिकार उच्च-से-उच्च होकर बुराइयों से भरकर चूर्ण-विचूर्ण हो गये हैं। क्षात्र-शक्ति के लिए यह जरूरी हो रहा था। चिरकाल से क्षत्रियों की युद्ध-ज्वाला भारत को दग्ध कर रही थी। कृषि, जनपद तथा जीवन अकारण युद्ध के कारण नष्ट हो रहे थे। साधारण जनों के दृश्य बड़े करुणोत्पादक थे। उन दृश्यों की छाया आज भी है, पर आज पतितों के उन्नत होने की माया महत्त्व रखती है। इसी तरह एक महत्त्व के बिना किसी शासन की प्रतिष्ठा नहीं होती—यही, दोनों के प्राणों की पुकार के अनुकूल मिला आश्वासन या खाद्य है।

समान धर्मवालों का मैत्री-सम्बन्ध में बँधना स्वाभाविक नियम है। कान्य-कुब्जेश्वर के सरदार भी एक-एक गोष्ठी में बँधे थे। प्रायः पास-पड़ोस के रहनेवाले, एक-एक दो-दो दुर्गों के मालिक आपस में मिले रहते थे। इनकी तकरार भी इन्हीं में होती थी। तब इनमें भी दो दल हो जाते थे या दो दलों में वैमनस्य चलता था, कुछ तटस्थ रहते थे। मार-पीट, लड़ाई-दंगे यहाँ तक कि युद्ध भी होते थे। न बड़े राजाओं को युद्ध से फुरसत थी, न इन्हें। ऐसा ही गाँव-गाँव तथा टोले-टोले में था। खासतौर से सुनायी भी न होती थी। महाराज अपने लड़े हुए सरदारों की इसलिए न सुनते थे कि उन्हें कर तथा सम्मान, दोनों ओर से मिलता रहता था। उनके स्वार्थ में बाधा न लगती थी, फलतः ऐसे झगड़ों का आपस में फैसला होता था, या पुश्त-दर-पुश्त शत्रुता चलती थी, या महाराज के कान भरकर बदला चुकाने की सोची जाती थी। कोई बड़ी बात हो जाने पर अधिक सरदारों के रुख देखकर महाराज साधारण न्याय करते थे। दलमऊ और लालगढ़ का वैमनस्य ऐसा ही बहुत साधारण था। दलमऊ के सरदार ने कान्यकुब्जेश्वर के यहाँ बलवन्तसिंह की पृष्ठपोषकता की थी—लालगढ़ेश के विरुद्ध गवाही दी थी, यमुना और वीरसिंह के मामले में, बलवन्तसिंह से मैत्री-सूत्र सुदृढ़ करने के लिए और अपनी तरफ लालगढ़ के सीमान्त के एक दूसरे सरदार को लेकर पक्ष पुष्ट करने के लिए। बलवन्तसिंह का बढ़ता राज-सम्मान भी पक्ष-ग्रहण का एक कारण था। इस प्रकार लालगढ़ के दो सीमान्त में दो शत्रु थे। प्रभावती का बलवन्त से विवाह करके महेश्वरसिंह चाहते थे कि साधारण-सा कारण भी मिले, तो सम्मिलित शक्ति से बदला चुका लें। इसी

बीच यह वैवाहिक अनर्थ हुआ। बलवन्तसिंह कुमार देव पर अधिक अत्याचार न कर सकता था, कारण लालगढ़ से उसका पहला वैमनस्य साबित था। उसने सोचा कि देवसिंह को कैद में रखकर महेश्वरसिंह से ऐसा साक्ष्य दिलवाये कि वे अपनी कन्या प्रभावती का उसी से विवाह करना चाहते थे, देवसिंह को पता चला तो उसने महेश्वरसिंह तथा बलवन्तसिंह को पहले के वैमनस्य के कारण नीचा दिखाने के लिए बलात् प्रभावती से विवाह कर लिया। इस विवाह से दो सरदारों की इज्जत इसने धूल में मिलायी; देखकर, मूछों पर ताव देता हुआ चलेगा, तो यह एक बराबरवाले के लिए कैसे बरदाश्त कर जाने की बात होगी —ऐसी और-और बातें भी सोचीं, ताकि फैसले में लालगढ़ की जो बेइज्जती हो, थोड़ी, और मार-पीट हमलेवाली बात दब जाय, बल्कि देव का ही चढ़ जाना साबित हो। यह निश्चय कर देव को अपने यहाँ स्थल-मार्ग से ले जाने का निश्चय किया।

नाव पर विवाह के साक्ष्य मिल चुके थे, दासियों ने जो-जो कुछ देखा था कह दिया था; यह मालूम हो चुका था कि प्रभावती बचने के विचार से नाव से कूदी थी। ऐसी बही हुई लड़की का बह जाना अच्छा—घृणापूर्वक सोचकर महेश्वरसिंह ने बड़े मित्र-भाव से बलवन्तसिंह से उसके सम्बन्ध में आगे का कार्यक्रम पूछा। बलवन्तसिंह ने यह सलाह दी कि पिता की आज्ञा न माननेवाली लडकी को मनुष्य द्वारा कोई सजा नहीं हो सकती, पिता के लिए यह उचित है कि उसकी सदा उपेक्षा करे, कभी भी आश्रय न दे।

कुमार देव काफी जख़्मी हो चुके थे। कई सिपाहियों के पहरे में बन्दी थे। बार-बार होश में आकर बेहोश हो रहे थे। रक्त-स्राव अभी तक बन्द न हुआ था। कोई मरहम-पट्टी भी न हुई थी।

एक दिन पहर होने से पहले ही सब लोग दुर्ग पहुँच चुके थे। बलवन्त का जोरदार आतिथ्य हो रहा था। नाव के सब लोग गत प्रसङ्ग से मौन थे। अभी शहर में अच्छी तरह खबर न फैली थी। महाराज शिवस्वरूप प्रातःकृत्य से निवृत्त होकर कसरत में जुटे थे जब महेश्वरसिंह वगैरह आये थे; उन्हें नाली में दण्ड करते हुए पचास-पचास के बाद कितनी गोटें सरकायीं, यह भी न मालूम था। इसी समय दुर्ग के भव्य कक्ष में बलवन्त के पास बैठे हुए महेश्वरसिंह को दासियों की बतायी महाराज शिवस्वरूप की बात याद आयी। अपने खवास को कुछ प्रश्न पूछ आने के लिए भेजा। यह भी बलवन्त को खुश करने की एक उद्भावना थी। आत्मप्रसाद पा बलवन्त ने सीना कुछ तानकर गर्दन उठायी।

खवास ने दरवाजे पर 'शिवस्वरूप महाराज हो' की आवाज लगायी। महाराज दूसरों की निगाह से बचकर दहलीज में दण्ड कर रहे थे। यजमान आया जानकर गर्व से एक उँगली से माथे का पसीना काँछते हुए बाहर आये। घोड़ा बाहर ही बँधा हुआ था। खवास को देख कुछ खिचे।

खवास ने गर्व से पूछा, "रावजी पूछते हैं, कल कौन तुम्हारे यहाँ आया ?"

"हमारे यहाँ कल पच्चीसों यजमान आये, कुछ गाँव के, कुछ जात्री।"

"शाम को भी कोई आया था ?"

"दुपहर लौटे हम निकले तो गेगासों से पहर रात गये घर आये।"

"यह घोड़ा किसका है ?"

"हमारा; मनवा के राजा ने बाप की बैंतरनी में दिया है।"

खवास मुस्कराता लौट गया। महाराज को शंका हो गयी। दौड़े किनारे गये। संक्षेप में हाल मिल गया।

फाटक से होता हुआ खवास महेश्वरसिंह के सामने आकर खड़ा हुआ। उस समय एक दूसरी बातचीत चल रही थी। खत्म होने पर महेश्वरसिंह ने पूछा। नौकर यथाक्रम प्रश्नोत्तर कहता गया। महेश्वरसिंह और बलवन्तसिंह का क्रोध बढ़ता गया। अन्त में बड़े कष्ट से हँसी को रोककर खवास ने घोड़े के मिलने का कारण कहा। बलवन्त के बदन में आग लग गयी। मनवा के राजा का इससे बढ़कर अपमान न हो सकता था। महाराज शिवस्वरूप को सिर्फ मनवा का नाम मालूम था, वहाँ बलवन्त राज कर रहे हैं या ज्ञानवन्त, वे न जानते थे; उन्होंने अपनी समझ से काफी दूर के राजा का नाम बताया था। महेश्वरसिंह तथा कुछ सिपाहियों को साथ लेकर गुस्ताख को सजा देने के लिए बलवन्त महाराज के मकान को चले। मन में सोच रहे थे कि ब्राह्मण अवध्य है, उसे क्या दण्ड दिया जाना चाहिए। दान लेनेवाले ब्राह्मण की यह तेजी महेश्वरसिंह को भी अक्षम्य जान पड़ी। यह उनका भी अपमान था। खवास रास्ता दिखाता हुआ लिये जा रहा था। दरवाजे पर पहुँचकर देखा, द्वार बन्द थे, वहाँ कोई न था।

माता को किनारे से होकर (यजमानों के) गाँव रहने की सलाह देकर उसी वक्त घोड़ा साजकर पाई-पूंजी-समेत महाराज लम्बे पड़े थे।

नौ

जहाँ भारत के राजा पारस्परिक विरोध में पागल थे, वहीं कमजोरियों को समझने के लिए मुहम्मद गोरी तत्पर हो रहा था। सारे देश में उसने डेरे डाल रक्खे थे। गुप्तचरों का जाल बिछा रहा था। कोई खंजर बेचता हुआ खबर पहुँचा रहा था, कोई दूसरी तरह खरीद-फरोख्त करता हुआ, कोई ऊँट और कोई घोड़े बेचता हुआ—जो शाहवाले घोड़ों से कमजोर नस्ल के होते थे, कोई केसर लिये हुए, कोई कच्ची तलवारें, तथा अन्यान्य वस्तुएँ। किसकी कितनी सेना है, युद्ध कौशल कैसे हैं, किस-किस राजा की आपस में मैत्री है, आचार-व्यवहार कैसे हैं, जनता के लिए राजा क्या-क्या भाव रखते हैं, प्रजा प्रसन्न है या पीड़ित, पूरे ब्योरे के साथ ये खबरें शहाबुद्दीन के पास पहुँच रही थीं। कई बार हार खाकर भी वह ज्यों-ज्यों यहाँ की बिगड़ी राजनीति का अध्ययन करता जा रहा था, उसे विजय की आशा बँधती जा रही थी। पंजाब से सिन्ध तक उसका राज्यविस्तार हो गया था। पर भारत के किसी भी दूसरे प्रदेश के राजा को यह बुरा नहीं लगा, किसी ने इसके लिए

मुहम्मद के विरोध की चर्चा नहीं की। सब अपनी ही सीमा को स्वाधीनता की हद मानते थे, धर्म का भी बुरा हाल था। मुहम्मद ज्यों-ज्यों सोचता था, उसकी दृष्टि में आशा के रंगीन फूल त्यों-त्यों खिलते जाते थे--हृदय का रुद्ध प्रवाह वेग से भारतधरा को प्लावित करने के लिए बह चलता था—इस्लाम की दूर-दूर तक फैली महाशक्ति का विश्वास उसे बार-बार नये जीवन से बाँधकर भर देता था; उसके प्रयत्न पहले से और क्षिप्र गति धारण कर लेते थे; अर्थ-संग्रह और सैन्य-शिक्षा के लिए और दत्तचित्त हो जाता था।

इसी समय, कान्यकुब्ज से कुछ दूर, एक सुन्दर निर्जन स्थान पर, धीरसिंह धूनी रमाये बैठे हैं। पीपल की छाँह, इधर-उधर कुछ और वृक्षावली, सामने पक्का कुआँ—किसी धनी ने पथिकों के उपकार के लिए बनवाया है, दिन का तीसरा पहर, सुनहली धूप छनकर आती हुई, जैसे वृक्षाकृति तरुणियाँ नये कोपलों की वासन्ती, गुलाबी और लाल साड़ियाँ पहने रंग खेलने के लिए तैयार हों और प्रिय सूर्य की पिचकारियों से स्वर्ण मिश्रित, साड़ी के अनुरूप ही रंग, उन पर चल रहा हो—उनकी साड़ियाँ और चमक रही हों, और गलती-स्वर्ण-रेणुओं में हँसती, पलकें झुकाये, प्रेम की सुखद-मन्द समीर में अल्प-अल्प डोल रही हों। सामने सजा एक घोड़ा बँधा है। राजपरिच्छदधारी, शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित, राज-पुरुष के तौर पर एक पच्चीस-छब्बीस साल का युवा स्वामीजी के सामने बैठा वार्तालाप कर रहा है। स्वामीजी की उम्र पैंतीस साल के लगभग होगी। सामने गीता की पुस्तक खुली रक्खी है। नक्शा हाथ में लिये देखते और उत्तर देते जा रहे हैं।

"फिर कहाँ जाना होगा, धीरसिंह ?" राजपरिच्छदधारी युवा ने स्वामीजी से पूछा।

"अभी कहीं नहीं।" गम्भीर दृष्टि से नक्शा देखते हुए धीरसिंह ने कहा।

"क्यों ?"

"उस पाख की तीजवाली जो चिट्ठी गुजरात और कान्यकुब्ज के रास्ते पकड़ी थी, वह हमारे महाराज के हक में बुरी थी। हालाँकि हमें तुम्हें भी कुछ न बताना चाहिए, पर तुम्हें सब राहें सुझा देना हमारा धर्म है जबकि तुम छोटे भाई की तरह सच्चे दिल से मिले। महाराज की तरफ से उस चिट्ठी का उत्तर हमें यहाँ मिलेगा। उत्तर मिलने की तिथि लिख दी है।"

"धीरसिंह, तुम्हारे साथ कितनी बातें मालूम हुई। अब मुझे हरएक मुसलमान व्यापारी पर शंका होती है। तुमने कितनों को मौत के घाट उतारा ? अच्छा किया, नहीं तो भेद न खुलता। हमारा मतलब समझने के लिए कितने भेदिये लगे हैं ?"

"हाँ, बहुत-सी खराबियाँ हममें पैठ गयी हैं;—खैर तुम पढ़ते जाओ, धीरे-धीरे समझोगे; हाँ, देखो, रामसिंह," धीरसिंह ने नक्शा एक बगल किया, रामसिंह झुककर देखने लगा, "यही वह मुकाम है। जिस तिथि तक भीमदेव ने उत्तर पाने के लिए लिखा था—उत्तर अवश्य नहीं पहुँच सकता—उसके बाद वह दूसरा दूत रवाना करेगा, सम्भव है, दूसरे रास्ते से करे; यह भी कि अलग-अलग राहों से दो-तीन भेजे, पर,—पर अब हमें पीछे न पड़ना चाहिए; पहली खबर तो मिल ही

चुकी है, बादवाली रोकी नहीं जा सकती; कुछ फायदा भी नहीं। अगर रोकने के लिए महाराज लिखेंगे तो, चला जायगा; कान्यकुब्ज के और और लोगों को भी साथ ले लेंगे।"

"अच्छा धीरसिंह!" धीरसिंह के मुखातिब होने पर रामसिंह ने कहा, "इस नक्शे के साथ तुम पकड़ जाओ तो ?"

"तो क्या होगा ? कहेंगे कि देश का मानचित्र साधुओं को रखना पड़ता है; इससे घूमने की सुगमता रहती है, और विद्यार्थियों को भिन्न देशों की ज्ञानप्राप्ति की सहूलियत होती है।"

"धीरसिंह!" शंका के स्वर से रामसिंह ने कहा, "वह एक सवार आ रहा है।" दोनों निगाह उठाकर देखने लगे।

"तुम तैयार हो जाओ," धीरसिंह ने कहा, "इस रास्ते के आनेवाला हमारा अपना आदमी नहीं हो सकता। या तो गुप्तचर होगा या संवादवाहक। फन्दा ठीक कर लो। न उतरा तो पीछे लगकर अवश्य पकड़ना।"

"कोई भला आदमी न हो!"

"भला आदमी हुआ, तो कुछ छीनकर छोड़ देना। समझेगा, डाकू थे। हरकारा हुआ, तो खबर मालूम होगी।"

"फिर यह जगह छोड़नी होगी, महाराज का हाल कैसे मालूम करोगे ?"

"तर्क मत करो। रास्ता नहीं बन्द होता।"

रामसिंह तैयार हो गया। घोड़ा सजा था। बैठकर आगे के रास्ते धीरे-धीरे बढ़ाया। अगर आता सवार उतरकर स्वामीजी से बातें करता, तो स्वामीजी उससे समझते, बढ़ने पर आगे वह था।

सवार तेजी से बढ़ता हुआ स्वामीजी को पार कर निकल गया। रामसिंह की बगल से निकला तो फन्दा डालकर फाँस लिया। घोड़े की चाल तेज होने के कारण वह गिर गया। घोड़ा कुछ कदम बढ़कर खड़ा हो गया। साधारण सिपाही था। घबराकर मिन्नतें करने लगा। रामसिंह ने परिचय पूछा। उसने प्रभावतीवाला हाल बतलाया और कहा कि बलवन्त और महेश्वरसिंह के पत्र कान्यकुब्जेश्वर के पास लिये जा रहा था। तब तक रामसिंह ने देखा कि उसी रास्ते में आगे धूल उड़ रही है। कोई आता है जानकर उससे पत्र लेकर कहा, "उस दूसरी राह से सीधे वापस चले जाओ। घोड़ा बेचकर अपने मालिक से कहना कि डाकुओं ने लूट लिया है। रास्ते में चिट्ठियों का हाल किसी से कहा तो खैर न समझना।"

यह कहकर रामसिंह कन्नौज के रास्ते हवा हो गया।

दस

कुछ रत्न वहीं गंगा के किनारे एक पेड़ के नीचे यमुना ने गाड़ दिये थे। लुट जाने पर फिर सम्पन्न होने के विचार से। कुछ साथ लेकर चली थी। प्रयाग पहुँचकर सन्ध्या समय फिर ऐसा ही किया। कुछ ही रत्न खर्च के लिए लिये। एक पण्डा के यहाँ ठहरी।

प्रभा के हृदय में तीव्र व्याकुलता थी। दिन-रात राजकुमार पर मन रक्खा रहता था। एकान्त में यमुना समझाकर शान्त कर देती थी।

प्रभा को पण्डाजी के यहाँ छोड़कर यमुना राज-परिच्छद, अस्त्र-शस्त्र तथा दो घोड़े खरीदने के लिए बाजार गयी। एक नौकर प्रयाग में कर लिया था, वह साथ था। घूम-घूमकर घोड़ों का बाजार देखने लगी। इसी समय एक अजाने आदमी को कुमार देव के जैसे घोड़े को लिये खड़ा देखा। चकित होकर इधर-उधर देखने लगी। कुछ दूर, राजकुमार की शिकारवाली पोशाक पहने महाराज शिवस्वरूप को खड़ा देखा। आश्चर्य बिल्कुल नहीं, हर्ष अत्यधिक हुआ। कारण समझने की उसे देर न हुई। महाराज के बच जाने और दूसरी जगह विदेश में काम निकालने की बात सोचकर बड़ी खुश हुई। पहले महाराज को अपना नौकर भेजकर डरवाना चाहा, पर बात फैल जाने की शंका कर खुद चली। महाराज कभी अपनी पोशाक देखते थे, कभी गर्व के साथ आकाश। इसी आकाशदर्शन के समय यमुना ने खोद-कर कहा, "क्या देखते हो?"

चौंककर महाराज एक चौक उछल गये। ऐसे घबराये, जैसे पकड़ गये हों। उसी निगाह से देखा। फिर यमुना को पहचानकर वैसे ही खुश भी हुए। उँगली के इशारे बोलने को मनाकर यमुना उन्हें एकान्त में ले गयी। आने का कारण पूछा। महाराज ने भगने का किस्सा बयान कर प्रयाग में रिश्तेदार के यहाँ बचने के इरादे से आये हुए हैं, कहा। यमुना ने सोचा, इस रूप में प्रभा के सामने पिछौड़ा खड़ा कर दूं। सोचकर मुस्करायी। फिर समय को देखकर अनुचित होगा, सोचकर आवाज में झिड़की देती हुई बोली, "तुम यहाँ शिकार की पोशाक बाजार में पहनकर आये हो; लोगों को समझते हुए देर भी न होगी कि तुम चोर हो?"

महाराज घबरा गये। "अरे भाई" कहा, "हम तो रुआब में बचने के लिए आये थे।"

"लेकिन बच भी गये, तो कहाँ जाओगे?"

"अब तो तेरा ही सहारा है।" कहकर देखने लगे।

"अच्छा तो घबराओ मत; राजकुमारी यहाँ हैं। हमारे साथ रहो, भोजन पकाया करना।"

महाराज खुश हो गये। यमुना ने घोड़ा बेचने को मना कर दिया। फिर उन्हें साथ लेकर दो अच्छे घोड़े और शस्त्र-परिच्छद आदि, साधारण तथा राजसी, प्रभा के लिए कुछ तरह के, खरीद लिये। फिर उन्हें प्रभा के पास ले गयी।

उनका हाल मालूम कर, उन्हें देखकर प्रभा मुस्करा दी।

पूछने पर, जैसा सिखलाया गया था, महाराज ने यमुना के पण्डाजी को अपने पूरे परिचय के साथ अपने यजमानों का अधूरा परिचय बतलाया, और अपने रिश्तेदार को वैसा ही समझाकर, प्रभा के पास आ गये।

शाम को यमुना गाड़ी रकम उखाड़कर नौकर तथा पण्डाजी को पारिश्रमिक, दान, पुरस्कार आदि देकर, तैयार हो गयी। राजकुमार का घोड़ा और परिच्छद-वर्म आदि प्रभा के लिए महाराज से खरीद लिया, प्रभा ने वही पोशाक पहनी और उसी घोड़े पर सवार हुई। खरीदे हुए अनुरूप परिच्छद महाराज और यमुना ने पहिने और अपने-अपने घोड़े पर सवार हुए। सुबह होते-होते एक-साथ प्रस्थान किया।

एक जगह रात को स्वल्पमात्र आराम कर तेज घोड़े बढ़ाते हुए यमुना के इच्छित मार्ग से जा रहे थे। सबसे पीछे होकर, धीरे-धीरे घोड़ा बढ़ाते हुए बायीं कलाई के पेंचदार पोले कंकण का मुँह खोलकर यमुना ने एक चिट्ठी निकाली, और पढ़कर, उसी तरह रखकर फिर घोड़ा बढ़ाया। इधर-उधर देखती, कुछ समझने की कोशिश करती जा रही थी। दूर से कुआँ, पेड़ और परिस्थिति देखकर सवारों को वहीं रुकने के लिए आवाज दी। पास पहुँचकर प्रभा तथा महाराज से बोली, "ठिकाने पर पहुँचने से पहले महात्मा के दर्शन हुए, यह शुभ लच्छन है। हमें कुछ देर यहाँ ठहरकर चलना चाहिए।"

भाषा पर प्रभा मुस्कराकर घोड़े की चाल धीमी करने लगी। महाराज गम्भीर होकर बोले, "तू ठीक कहती है। अब सब सिद्ध है।"

स्वामी धीरानन्द की धूनी करीब आ गयी। सवारों ने घोड़ों को रोक दिया। उतर पड़े। यमुना ने अपने घोड़े की लगाम डाल से बाँधकर थामे खड़ी प्रभा के घोड़े को भी लगभग बाँध दी। महाराज भी निवृत्त होकर यमुना की बगल में हाथ जोड़कर खड़े भक्तिभाव से स्वामीजी को देखने लगे। स्वामीजी एकाएक यमुना को देख रहे थे। आवेश में जैसे उठकर खड़े हो गये। यमुना भी आवेश में थी। प्रणाम की याद न रही। प्रभा यमुना का अनुगमन करने के विचार से मौन, पक्ष्मल आँखें झुकाये खड़ी रही।

होश में आ यमुना बोली, "सखी, स्वामी को माथा टेककर परनाम करो और मन चाहे हुए वर की कामना करो।" उसी वक्त महाराज से कहा, "महाराज, इस भेष की महिमा है; आओ, हम लोग भी स्वामीजी को दण्डवत् करें,—दुखिया हैं, महात्माजी की किरपा का सहारा है।" यमुना ने सिर टेककर प्रणाम किया। सिर में धूल लगी रह गयी। महाराज दोनों हाथ फैलाकर पेट के बल लम्बे हो दण्डवत् करने लगे।

फिर उठकर धूल झाड़ने लगे, देख-देखकर स्वामी मुस्कराते रहे। तीनों धूनी के सामने बैठ गये।

रामसिंह कुछ दूर आगे बढ़कर आते हुए सवारों के निकल जाने की प्रतीक्षा करने लगा। पर बड़ी देर हो गयी, वे न निकले। कई थे। स्वामीजी अकेले। शंका की कोई खास बात न होने पर भी, क्योंकि विरोधी शक्ति को प्रबल देखने पर स्वामीजी, स्वामीजी बने रहेंगे और उधर से उपद्रव की सम्भावना भी नहीं सोच-

कर रामसिंह से लौटे बिना रहा न गया। वे पत्र भी स्वामीजी को दिखाने थे यद्यपि उनमें अपने काम की कोई बात न थी।

प्रभा, यमुना और महाराज से कुछ परिचय पूछे बिना स्वामीजी लगातार भगवद्धर्म और भागवत का व्याख्यान करते जा रहे थे। महाराज मुँह फैलाये स्वयं अवाङ्मनसोगोचरम् हो रहे थे; यमुना स्वामीजी की भगवद्धर्म व्याख्या की खाली जगह रहस्यमयी 'हाँ' द्वारा भर देती थी, प्रभा प्रसन्नचित्त पद्मासन से शान्त बैठी हुई सुन रही थी। इसी समय रामसिंह भी आ गया और एक तरफ घोड़ा बाँधकर, स्वामीजी को देखकर मुस्कराते हुए—समझकर दण्डवत् करके एक बगल में बैठ गया।

स्वामीजी की व्याख्या समाप्त हुई तब मौका देखकर बोला, "स्वामीजी मुझ पर बड़ी विपत्ति है। घर से ये चिट्ठियाँ आयी हैं। आपके आशीर्वाद से मेरा दुःख दूर हो जायगा। देखिए, मुझ पर बिना मेघ के ही वज्रपात हो गया है।" कहकर छीनी हुई चिट्ठियाँ बढ़ा दीं। मुहरें उसने तोड़ डाली थीं। लिखावट एक ही तरफ थी। सामने बैठे हुए न देख सकते थे। स्वामीजी चिट्ठी लेकर पढ़ने लगे। यमुना गौर से आगन्तुक को देखती रही। पढ़कर स्वामी ने समझ की दृष्टि से यमुना को देखा, फिर रामसिंह को चिट्ठियाँ देते हुए कहा, "हाँ, विपत्ति तुम पर बहुत है, पर धैर्य रक्खो; वज्र नहीं गिरा सिर्फ बादल घिरे हैं, हवा से कट-छँट जायँगे; हवा ईश्वर की कृपा से बहनेवाली है; मैं दिव्य दृष्टि से देख रहा हूँ।"

चिट्ठियों को फेंटे में रखकर रामसिंह ने प्रणाम किया। कहा, "महाराज, आज्ञा हो तो अब चलूँ।"

"अभी रुको," संन्यासी बोले, "ये आगन्तुक जान पड़ते हैं। क्यों?" यमुना की ओर देखा।

"हाँ स्वामीजी, हम इस रास्ते से कभी नहीं आये," उसी वक्त यमुना ने जवाब दिया।

"इन्हें पहले अच्छी जगह छोड़ दो; यह उपकार तुम्हारे लिए भी उपकार होगा।"

रामसिंह मतलब अच्छी तरह समझ न सका। बैठ गया। इसी बीच और इससे पहले और भी इक्के-दुक्के पथिक, ग्रामीण, व्यापारी तथा सिपाही आये और दण्डवत् करके चले गये थे।

प्रभा ने यमुना की तरफ देखा। यमुना ने बैठी रहने का संकेत किया। शाम हो रही थी। गो-धूलि को कुछ ही समय रह गया था। यमुना ने नेत्रपल्लवी द्वारा स्वामीजी से पूछा कि वह दूसरा मनुष्य यदि परिचित है तो नेत्रपल्लवी जानता है या नहीं। उसी तरह स्वामीजी ने उत्तर दिया कि नहीं जानता। यमुना ने फिर पूछा कि एकान्त में बातें करने की फुर्सत होगी या नहीं। उत्तर मिला, कुछ और ठहरो, चिन्ता न करो।

फिर स्वामीजी ने रामसिंह से कहा, "कष्ट तो होगा, पर सज्जन ही सज्जनों का उपकार करते हैं। साधु का दिया भोजन-पानी इनके लिए उचित नहीं जब तक इन्हीं के धन का प्रसाद न हो। इनसे दाम लेकर इस ओर तीन कोस पर बाजार

है, मिष्ठान्न ले आओ।"

भोजन कुछ बँधा था। पर यमुना ने टोका नहीं। दाम निकालकर दे दिया। रामसिंह घोड़े पर चढ़कर तरह-तरह के विचार लड़ाता हुआ चला गया।

ग्यारह

सन्ध्या हो गयी। एकान्त में आवश्यक बातें करने की यमुना की प्रार्थना स्वामीजी ने मंजूर कर ली। महाराज शिवस्वरूप, किसी आध्यात्मिक विषय पर परामर्श होगा सोचकर गम्भीर हो गये। प्रभा ने यमुना के एकान्त आलाप को अपने अभीष्ट का कारण समझा।

अन्धकार ने दिशाओं को ढंक लिया। यह वैसा ही अँधेरा है जिसमें यमुना देवी और वीरसिंह जनता की दृष्टि से छिपे हुए हैं, जिसमें सच्चे वीरों का इतिहास—सैनिकों की कीर्ति सेनापति और राजा के अधिकार में चली जाती है—इर्द-गिर्द की जनता कुछ दिन नाम जपकर भूल जाती है।

इसी अँधेरे में हृष्ट-पुष्ट, सचेत, विजयी युवा वीरसिंह और यमुना साथ-साथ दूर एकान्त के लिए चले जा रहे हैं। इसी तरह दूर एकान्त में चले आये हैं, और कार्य-बन्धनों में पड़े दूर एकान्त में रहते हैं। फिर भी किसी को एकान्त का दुःख नहीं। प्राणों में मिलकर एक हैं। हाय रे देश ! कितने फूल इस प्रकार सामयिक प्रवाह में चढ़कर दृष्टि से दूर अँधेरे में बहते हुए अदृश्य हो गये, पर किसी ने तत्त्व-रूप को न देखा, सब बाहरी चहल-पहल में भूले रहे, इतिहासवेत्ताओं के सत्य के भुलावे में आश्वस्त।

यह अँधेरा चिरन्तन है। दोनों इसका मर्म समझते हैं। दोनों ने इसे प्यार किया है; इसलिए दोनों असाधारण होकर साधारण हैं। देश अँधेरे में है, प्रकाश देख नहीं पाता, वे स्व-प्रकाश दोनों इसीलिए अँधेरे में रहकर देश को प्रकाशित करना चाहते हैं जहाँ तक सम्भाव्यता उनके द्वारा पहुँचे।

ऐसे ही अँधेरे में वीरसिंह नियत समय पर दलमऊ जाकर यमुना से मिलते रहे। ऐसे ही अँधेरे में दोनों ने सूर्य से भी प्रखर आलोक में एक-दूसरे को देखा, आज ऐसे ही अँधेरे में दोनों फिर एक-दूसरे के साथी हैं। अँधेरे का मित्र कितना दुर्लभ है—अँधेरे का मित्र कितना महान् !

दोनों दूर निकल आये। दोनों मौन हैं। सामने खेतों के बीच पेड़ों की छाया में संन्यासी-रूप महावीर वीरसिंह खड़े हो गये। उसी छाया में प्रलम्ब, पुष्ट, शोभना, श्याम, यमुना ने भुजों में भरकर, केवल एक सम्बोधन किया। वीरसिंह नीरव, स्वर के अविनश्वर आवेश में बँधे, वैसे ही बाँधकर खड़े हो गये। देह की शिरा-शिरा श्लथ हो चली। आप-ही-आप दोनों एक ही इच्छा से जैसे बैठ गये। यमुना

के हाथ को आप-ही-आप वीरसिंह के हाथ ने ले लिया। भाषा इस भाव के प्रकाशन में अक्षम, तिरोहित हो गयी। कुछ काल ऐसा ही बीता।

"यह दूसरी कौन है?—बल्कि हाल मालूम हो चुका है।" सँभलकर वीरसिंह ने पूछा, हाथ में हाथ लिये रहे।

"देवी प्रभावती, दलमऊ की राजकन्या, कुमार देव की परिणीता धर्मपत्नी, क्या हाल मालूम हुआ?"

"वह रामसिंह अपना आदमी है। दो पत्र अभी उसने हरकारे से छीने हैं। बलवन्तसिंह और महेश्वरसिंह के नामाक्षर हैं। देव पर दोषारोप है कि गान्धर्व विवाह प्रभावती को बलात् किया, महेश्वर और बलवन्त को पिछली शत्रुता के कारण नीचा दिखाने के अभिप्राय से। प्रभावती विवाहिता हो जाने की वजह पति के विरोध में साक्ष्य न देगी। महेश्वरसिंह कन्या का बलवन्त से विवाह करना चाहते थे, यह सूचना प्रसिद्ध हो चुकी थी। बलवन्त ने देव को नाव पर बन्दी किया। अब अपने साथ ले जा रहे हैं। उधर के सरदारों से कर लेकर जल्द राज-राजेश्वर की सेवा में उपस्थित होंगे।"

"हूँ!" यमुना कुछ देर सोचती रही, फिर बोली, "हम लोग गंगा तैरकर बचे। घोड़ा महाराज के यहाँ था—वे महाराज, शिवस्वरूप गंगापुत्र हैं; दासियों से साक्ष्य मिल चुका था; दूसरे दिन पूछताछ की गयी; अवसर पा महाराज घोड़े पर चढ़कर भागे; प्रयाग में सम्बन्धी थे—वहाँ गये; हम लोग वहीं थे; वहीं से आवश्यक पूर्ति करके चलना सोचा था; उनसे मुलाकात हुई, साथ ले लिया। कुमार को बचाना है।"

"तुम्हारे द्वारा असम्भव, मुझसे सम्भव होगा?"

"नहीं, सहायता के लिए कहा।"

"युद्ध करने का विचार है?"

"युद्ध उचित नहीं अगर सीधे काम हो जाय।"

"तो समय के लिए शक्ति-संचय करना है?"

"हाँ।"

"अच्छा, जैसी आज्ञा होगी।"

अँधेरे में मुस्कराकर यमुना ने प्रिय का हाथ खींचा, "समय की स्थिति कैसी है?"

"अत्यन्त चिन्ताजनक।"

"गुरुदेव ने बहुत पहले कहा था, ये विचार बदल नहीं सकते और पूरा परिवर्तन मन-सम्भूत, जाति का ही पूरा परिवर्तन है; इसलिए समय-सापेक्ष।"

वीरसिंह मौन सुनते रहे।

"क्या कुछ आशा भी है?" यमुना ने पूछा।

"देखा, केवल प्राण-पण पर विश्वास है और कुछ नहीं। विरोध की वायु से देश समाच्छन्न है। पृथ्वीराज की वीरता पर बड़े राज्य की हर राजकुमारी मुग्ध होती है; जामवन्ती के बाद, इच्छन कुमारी, शशिवृता, इन्द्रावती, हंसावती आदि का यही भाव रहा; अब कान्यकुब्ज राजकुमारी संयोगिता ने भी उन्हीं की कामना

की है। तुम जानती हो, इन विवाहों के कारण किस प्रकार विरोध बढ़ा। इस बार दोनों शक्तियों के नष्ट होने की सम्भावना है।"

"वीर-पूजा में भी बड़प्पन का अभिमान भर गया है। मुझे पद्मावती का चरित्र महाभारत-भर में इसलिए अच्छा लगता है कि उन्होंने कर्ण को केवल वीर समझकर वरा। कितनी विशालता उनके हृदय में थी! आज वीरत्व के कमल पर पड़ती हुई चन्द्रकला-रूपा कुमारियाँ उसे विकसित नहीं और संकुचित करती जा रही हैं, कीर्ति-लोलुपता के कारण वे समझ नहीं पातीं। आज वीरत्व की पहचान नहीं, दम्भ का परिचय है—केवल राज-सत्ता का अभिमान, इसलिए प्रेम का मूल स्रोत खो गया है, ये वरे हुए वीर को वरकर कीर्ति को वरती हैं, जो स्त्री है।"

यमुना का मर्म समझकर वीरसिंह नत-मस्तक, अँधेरे में बैठे रहे। फिर स्थान आदि के सम्बन्ध में यमुना ने राय ली, वीरसिंह बतलाते रहे। यह भी कहा कि लालगढ़-नरेश कान्यकुब्ज में थे। कुछ अपर अलाप हुए। आवेश को सँभालकर यमुना ने मिलते रहने की प्रार्थना की। स्थिर होकर वीरसिंह प्रिया का हाथ लेकर खड़े हो गये; यमुना भी खड़ी हो गयी। उसी तरह चलते-चलते वीरसिंह ने कहा, "तुम्हारे प्रिय ऋण को!"

"ऋण क्या है?"

"क्या कहूँ!"

"तुम दुखी होते हो?"

"मैं दुखी तो था ही, पर तुम—?"

"इससे बड़ा सुख मैं नहीं चाहती। पति के पास भारत की किसी भी बड़ी राजकुमारी का मुझसे ऊँचा आसन नहीं।"

फिर धीरे-धीरे, बँधी चलती हुई बोली, "संयोगिता की बड़ी प्रशंसा सुनी है, इच्छा है—देखें, वीरा हैं।"

स्थल कुछ दूर रह गया। दोनों अलग हो गये। जब पहुंचे तब रामसिंह न आया था। आने पर जल-पान करा, अपनी ही जगह पर छोड़ आने के लिए स्वामीजी ने आज्ञा दी। प्रभावती को अच्छी तरह देख लिया।

बारह

गोमती की उपनदी सरायन के तट पर प्रसिद्ध दुर्ग मणिपुर अवस्थित है। इसे अब मनवा कहते हैं। इसके राजा बलवन्तसिंह अपनी कार्यदक्षता के कारण पूर्वी प्रदेशों के लिए कान्यकुब्जेश के दक्षिण हस्त हो रहे हैं। इधर की राजकीय व्यवस्था के यही सबसे बड़े अधिकारी, इसलिए सम्मान्य हैं।

मनवा चारों ओर से ऊँची चारदीवार द्वारा घिरा हुआ है। बीच की प्रशस्त

भूमि में पृथक्-पृथक् आवास तथा प्रासाद शोभन क्यारियों के रूप में निर्मित हैं। यहाँ की कारीगरी में गुम्बदों की अधिकता है। सूर्य और चन्द्र की रश्मियों में सैकड़ों सुवर्ण-कलश, एक-एक श्रेणी में एक-एक पत्र और मध्य में छः दलों के फूल की आकृति लिये, आकाश में पूर्ण पारिजात की तरह झलमला रहे हैं; ऊपर हल्के-पद खड़ी, कभी रवि और कभी शशि का एक बगल बालों में हीरा लगाये, नीलिमा बिना शब्द के जैसे पथिक को अपने शुभ्र विकास का परिचय दे रही हो। विलास की सहस्रों तरंगें दुर्ग से दूर-दूर तक ग्रामीणों को आश्चर्य की शक्ति से प्लावित कर रही हैं। ऐश्वर्य के मधुर आतंक में नत-मस्तक सभी जैसे हृदय से उसे वरण कर रहे हों। उसके विरोध में आने की शक्ति उनमें नहीं, जैसे स्वीकार कर रहे हों वे भी यही चाहते हैं; ईश्वर, धर्म और पूजार्चन में जैसे यहीं कांक्षित स्वर्ग उनके हृदय में छिपा हुआ हो।

सन्ध्या हो रही है। आकाश में पीली किरणें पीलू गा रही हैं। संसार की परिवर्तनशीलता की प्रमाणस्वरूपा सरायन ताल-ताल पर मन्द नृत्य करती बहती जा रही है। राजकुमारी रत्नावली सोपान पर मखमल के बिछे सुकोमल आसन पर बैठी तन्मय हो रही है, अंगों से प्रिय-करुणावेश अज्ञात अपरिचित प्रिय की ओर प्रवाहित है—साक्षात् कमलिनी जैसे ध्यान कर रही हो।

राजकुमारी की वही उम्र है जब प्रिय की तलाश में दृष्टि एक दूसरा रूप, एक नया आलोक पाती है। प्रति अंग की कला आप विकसित हो अपनी आकुलता प्रदर्शित करती है। यौवन त्रिभुवन पर विजय प्राप्त करने को समुद्यत होता है। वाणी शब्द-शब्द पर वीणा-झङ्कार करती है। चमत्कार अपना पूर्व प्रसार पाता है। छल और कौशल चपल हो उठते हैं। लावण्य बँधकर रह जाता है।

दासियाँ यत्र-तत्र आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ी हैं। एक बाहर से भीतर, घाट पर, आयी और हाथ जोड़कर बोली, "कुमारीजी, एक भिक्षुक दर्शन कर कुछ निवेदन करना चाहता है।"

वैसे ही ध्यान-नेत्रों से दासी को देखती हुई रत्नावली ने भिक्षुक को ले आने की आज्ञा दी।

यह वही भिक्षुक है जिसे राजकुमार देव ने अपनी माला देकर प्रभावाली बदली थी। भीख माँगता हुआ यहाँ पहुँचा है। कई अच्छे घर रास्ते में मिले पर डरकर मालावाली बात नहीं कही। मालिकों से कुछ मिलने के बदले माला के छिन जाने का डर अधिक था। यह सोच रहा था कि कोई सहृदया बड़े घर की युवती या तरुणी मिले तो उसके गले में पुरस्कार-स्वरूप डालकर मुद्राओं से उचित विनिमय की प्रार्थना करे, अधिक मुद्राएँ हुईं तो अधिकांश वहीं रखकर धीरे-धीरे लेता रहे। इस योग्य उसे कोई नहीं मिली। यहाँ की रत्नावली पर विश्वास है। बड़ी देर से बाहर खड़ा हुआ था। एक दासी से पूछकर, रत्नावली की परिचारिका जान, पैरों पड़कर कुबूल करा लिया है कि वह राजकुमारी के पास पहुँचा देगी। राजकुमारी के पास जाने का कारण नहीं कहा। रत्नावली की आज्ञा पाकर दासी भिक्षुक को सरायन के घाट पर ले गयी। घाट पर बैठी राजकुमारी को देखकर भिक्षुक ने पहले हाथ जोड़कर कुछ विनय-शब्द कहे, फिर झोली से माला निकाल-

कर दीनता से मुस्कराते हुए गले में डाल दी, और भिक्षुक के पास उसकी कोई शोभा नहीं, बल्कि उससे असहाय प्राणों का भय है, राजकुमारी ही उसकी योग्यता रखती हैं, बदले में थोड़ा-थोड़ा-सा धन समय-असमय ले-लेकर अपने बुढ़ापे के दिन भगवद्‌भजन में बितायेगा, इस आशा से आया हुआ है, समझा दिया। भावनामयी कुमारी दया के पुष्प-सी खुली रहती हैं। भिक्षुक को जीवन-पर्यन्त के लिए अभय मिला। कुछ धन उसी समय लाकर देने के लिए उसने सदय आज्ञा की। सफल-मनोरथ हो भिक्षुक 'मनोवाञ्छाएँ पूर्ण हों'—आशीर्वाद देकर बाहर गया।

सन्ध्या होते-होते बन्दी कुमार देव को लिये हुए बलवन्त की वाहिनी पहुँची। दुर्ग में सन्नाटा छा गया। अपने जो-जो रक्षक थे, उन्हें बलवन्त ने देव का सच्चा वृत्तान्त न कहने की पहले आज्ञा कर दी थी। रथ की चाल से, हिलने के कारण देव के घावों का रूप और भयानक हो गया था। दुर्ग के एक अच्छे प्रासाद में उन्हें स्थान दिया गया। सेवक तथा रक्षक नियुक्त कर दिये गये। फाटक में आज्ञा कर दी गयी कि कुमार देव पर सदा दृष्टि रक्खी जाय, वे किसी कारण बन्दी हैं। चिकित्सा के लिए भी राजवैद्यों द्वारा प्रबन्ध करा दिया गया है। खजाना जमा हो गया। सिपाही हथियार खोलकर विश्राम करने लगे। कुछ देर में खबर हुई, कल फिर महाराज के साथ कर-ग्रहण के लिए बाहर जाना होगा।

बलवन्तसिंह ने रनवास में विश्राम करते, अपने प्रबन्ध पर सोचते, राज्य के इधर के समाचार मालूम करते हुए यह निश्चय किया कि यद्यपि दलमऊ से कान्यकुब्जेश को सूचना दी जा चुकी है, फिर भी यह और अच्छा होगा कि वहाँ से भी उन्हें एक उससे भी पुष्ट, रचनात्मक, प्रमाण के तौर पर सूचना दे दी जाय, और उनकी मनःतुष्टि के लिए लाये हुए धन का भी अधिकांश भेज दिया जाय; इस तरह कुमार देव के घायल होने और बन्दी करने का अपराध पूरी तरह से जाता रहेगा, उल्टे दोषारोपण दृढ़ होगा।

इस विचार से वही वृत्तान्त उन्होंने बड़े नम्र भाव से महाराजाधिराज जयचन्द को लिखा। राज-कार्य से वे स्वयं सेवा में उपस्थित होकर निवेदन नहीं कर सके—बार-बार स्मरण दिलाया; अपना भविष्य कार्यक्रम लिखा और इस समय कुमार देव की चिकित्सा करा रहे हैं, इस दयालुता का भी दबे शब्दों में उल्लेख किया।

रानियों के पूछने पर कुमार देव का यथार्थ हाल उन्होंने न बताया। उस सम्बन्ध में दूसरा प्रबन्ध बाँधकर बहला दिया। फिर गर्व से पहले के अपमान की याद दिलायी। रानियाँ चुप हो गयीं। आराम करते हुए राजकार्य में शीघ्र फुर्सत पाकर बलवन्त कन्नौज जाने की सोचने लगे। यदि इस बार वार पूरा बैठ गया, तो मुमकिन है, महेन्द्रपाल अधिकार के स्वत्व से वंचित किये जायँ— तब राज्य का आस-पास के सरदारों में किस प्रकार विभाजन होगा आदि-आदि प्रासंगिक बातें सोचते रहे। प्रातःकाल पत्र और कोष बहुत-सा रक्षकों के साथ भेजकर अपना दल लेकर कर के लिए बाहर प्रस्थान कर गये।

रत्नावली पर यमुना देवी का सबसे अधिक प्रभाव था। सत्य और तपस्या की

ओर से वह उसी का छोर पकड़े हुए थी। जब देवी यमुना की घटना हुई थी, तब वह एक बालिका थी, पर ऐसी जिसे सारी स्मृतियाँ याद हों। वहाँ और कोई भी नशा ऐसा न था जो उसके हृदय को किसी दिव्य शक्ति से स्पन्दित करता। राजकुमार देव वहाँ के हैं जहाँ के वीरसिंह थे। एक साथ रत्नावली का हृदय सुहृत्-कल्पनाओं से उच्छ्वासित हो उठा—कितने स्वप्न एक साथ खुलकर राजकुमार से लिपटने लगे। कोई भी संसार में प्यार करने के लिए है, तो वह वही है। आज तक वह न समझ सकी थी।

आज एकाएक समझ की कली पूरे जोर से चटक गयी। अभी उसने देखा नहीं, केवल सुना है। वे घायल होकर आये हैं, जरूर एक को बहुतों ने घेरा या धोखे में घायल हुए हैं। उस देश के एक का एक क्या बिगाड़ सकता है। राजकुमार अविवाहित हैं।

एक के बाद एक सुघर भावनाएँ फूटने लगीं। कुमारी राजकुमार को देखने के लिए व्याकुल हो गयी। घायल की सेवा-शुश्रूषा उसका धर्म है। इस कार्य में कोई रोक क्या हो सकती है ? बलवन्त उसका भाई है; वह सच्चे मार्ग पर उसकी गति को रोककर भी नहीं रोक सकता। वह अपना रास्ता आप पहचानेगी। दासी को देख आने के लिए भेजकर मालूम किया, राजकुमार जग रहे हैं।

जितने स्वप्नों से वह राजकुमार को सजा रही थी, उतने से खुद भी सजी जा रही थी। दो सेविकाएँ साथ लेकर राजकुमार के महल को चली। रात को वैद्यों ने घाव को साफ कर औषधि लगा दिया था। कुमार यथेष्ट अशान्ति के बाद घोर निद्रा में सो रहे थे। जगे, तब चिन्ता-स्नायुओं का प्रवाह प्रभा की ओर स्वभावतः बहा। कुछ देर पार्श्व-वर्तन करने के बाद उसी के ध्यान में अन्तर्हित हो गये। एक तन्द्रा सी आ गयी। स्वप्न देखने लगे—प्रभा की भावना भरी-आँखों में आँसू हैं; वह उन्हें खोजती हुई जहाँ पहुँची है—वह एक वन है, वहाँ कोई नहीं, कोई राजकुमार को घायल कर हाथ-पैर बाँधकर डाल गया है, प्रभा सुखद हाथों से उनके बन्धन खोल रही है, अपने हृदय की सम्पूर्ण सहानुभूति से उनकी पीड़ा को प्रशमित करती हुई, अपने सर्वस्व का अर्पण कर उनका सर्वस्व ले रही है।—उन्हीं की तरह उसे व्यथा है।

सुखकर स्वप्न के भीतर से राजकुमार की पलकें खुलीं। देखा—अपूर्व सुन्दरी तरुणी हृदय की समस्त प्रीत दृष्टि से देती हुई, देख रही है, उनके पलँग के मध्य-भाग में बैठी हुई, निस्संकोच, सुगन्धि से कक्ष भरा हुआ, दो परिचारिकाएँ दो ओर से मन्द-मन्द व्यजन करती हुई। राजकुमार ने अच्छी तरह देखा। यह प्रभा न थी। वन न था। होश में आये।

तरुणी को देखकर मर्यादा के विचार से उठने लगे। हृदय पर हाथ रखकर उसने रोक दिया, "मैं सेविका हूँ, लेटिए, कष्ट होगा।"

राजकुमार उड़ी दृष्टि से देखते रहे। कई भाव व्यंजित हो रहे थे। समझकर तरुणी बोली, "मैं देवी त्रियामा की छोटी बहन रत्नावली हूँ। वे यमुना नाम से प्रसिद्ध हैं। यहाँ इसी नाम से वे पुकारी जाती थीं।" कहकर राजकुमारी देखती रही।

यह हृदय का सम्प्रदान उतना ही निश्छल था, जितना प्रभा की ओर से हुआ था। मनुष्य में क्या शक्ति थी कि वह इसे रोक देती ?

राजकुमार की दृष्टि से खुलते हुए प्रभा की याद के कितने मर्म रत्नावली की दृष्टि से विनय कर रहे हैं, वह नहीं समझी।

तेरह

बलवन्तसिंह का भेजा हुआ कर पहुँच चुका। महेश्वरसिंह स्वयं आकर मिले, और उनकी जबानी कान्यकुब्जेश को जैसा मालूम हुआ, बलवन्तसिंह का पक्ष उससे और दृढ हो गया, विशेषतः उनका मौन, प्रमाण हुआ। महाराज जयचन्द अपने मन्त्रणा-कक्ष में बैठे विचार कर रहे हैं। उच्च द्वितल सौध का वृहत् प्रकोष्ठ, ऊँचा रत्नासन, स्वर्ण-मण्डित बहुचित्रमाला प्रकोष्ठाच्छद, कारुखचित, विशाल स्तम्भाधार, मसृण पद-सुख-स्पर्श ईरानी कालीन जिस पर सरदार बैठे हुए। रत्नाधारों पर सुगन्धित तैल के दीपक जल रहे हैं। सामने प्रशान्त गंगा प्रवाहित। उदार स्वच्छ आकाश द्वारों से देख पड़ता हुआ है। दूर नक्षत्रों की नील ज्योति आती हुई। सरदार सिर झुकाये अपने स्वार्थ की चिन्ता में लीन। एक ओर महेश्वरसिंह बैठे हुए। केवल महेन्द्रपाल अनुपस्थित हैं, न बुलाये जाने के कारण।

स्वतन्त्रता खोकर मनुष्य किस प्रकार सरदार होता है, इसके प्रमाण कभी संसार में विरल नहीं हुए। तब व्यक्तिवाद और प्रबल था। इसलिए हर व्यक्ति, जिस तरह भी हुआ, सिर देकर या लेकर, सरदार होने के प्रयत्न में था। यह सिर लेने और देने का अभ्यास-अध्यास पड़ोस से ही शुरू होता था, हो भी सकता है; इसी तरह उत्तरोत्तर फैलता हुआ मनुष्य को एक वृहत् वृत्त में सरदार के रूप से स्थित करता था। आज एक वैसा ही दृश्य उपस्थित है। जो लोग अपनी क्षुद्रता के कारण महाराज जयचन्द को सिर झुकाकर बड़े हुए थे, वे समय समझकर, और बड़े होने की चिन्ता में लीन हैं। शक्ति में छोटा होकर बड़े से लड़ना राजनीति नहीं—किसी प्रकार का विरोध नहीं; बडे की हर बात में, गीत की ताल पर बजते बाजे की तरह, साथ रहना चाहिए, तभी सिद्धि प्राप्त हो सकती है, उसकी बात में ताल या बेताल बात है, इसका निर्णय बाजा नहीं कर सकता। राजनीति, विराजमान होने की पद्धति ऐसी ही है। हमेशा रही, हमेशा रहेगी। इसकी साधनिका है—जीव को भोजन मिलना चाहिए, भोजन से बैर जीवन का नाश—आत्महत्या है। वहाँ सब सरदार इस कला के पण्डित हैं। जिधर राजदृष्टि हुई, उधर शून्य क्यों न हो, उस दर्शन के अनुरूप सब सम्यक् सृष्टि-तत्त्व देखते हैं। आज महेन्द्रपाल पर महाराज क्रुद्ध हैं, इसलिए सरदार अनुरूप कैसे हों ?

महेन्द्रपाल स्वयं ऐसे सरदार थे। बहुत जाल डाले जा चुके थे, जाल काटकर,

निकल चुके थे। कभी सोचा न था कि जल में रहने से एक दिन जाल में आना होता है। दूसरों की तरह उनका भी अभ्यास था, 'फाँसेंगे, फँसेंगे नहीं।'

आज दूसरे उन्हें फँसता देखकर फाँसने के विचार में हैं। इससे स्वास्थ्य-लाभ की सम्भावना है। लालगढ़ बेदखल किया गया, तो पड़ोसवालों को उसका हिस्सा मिलेगा। जो पड़ोस के नहीं, उन्हें धन-रत्न। दोष पिता-पुत्र दोनों पर है। एक बार बैर साबित हो चुका है। उसमें बलवन्तसिंह की मानहानि हुई थी।

"आप लोग बलवन्त के विषय में क्या कहते हैं?"

"महाराजाधिराज की ही आज्ञा यथार्थ आज्ञा है।" खजुआ के सरदार ने सिर खुजलाते भक्ति-भाव से उठकर हाथ जोड़े।

"महाराज राजेश्वर की आज्ञा हमारे लिए ईश्वर की आज्ञा है। ईश्वर की कोई अपनी जिह्वा नहीं।" महेश्वरसिंह हाथ जोड़े विनयपूर्वक कहकर सबको देखते हुए बैठ गये।

कुछ सरदारों ने एक साथ उठकर महेश्वरसिंह के कथन में तिलार्द्ध झूठ नहीं, इसकी दोहाई दी।

"हमें बलवन्त का मौन रहना महत्तायुक्त सच जान पड़ता है।" महाराज जयचन्द ने कहा।

"बलवन्त जैसे मनुष्य!" शिवराजपुर के सरदार बोले।

"इसमें महेन्द्रपाल की चाल है।" महाराज जयचन्द ने कहा।

"महाराजाधिराज इसमें सन्देह नहीं; वे बड़े चालाक आदमी हैं।" एक सरदार ने कहा।

प्राणों को बल मिला। महेश्वरसिंह बोले, "महाराजाधिराज के डर से मैं नहीं कह सका, वरना लोगों से ऐसे प्रमाण मिले हैं। महेन्द्रपाल अपने पुत्र से कहकर यहाँ सफाई के लिए चले आये थे।"

"हाँ, यह बहुत बड़ी मानहानि है। दूसरी बार स्पर्द्धा की।" गम्भीर होकर महाराज बोले।

"महाराज, उनकी तो आदत पड़ गयी है। बलवन्तसिंह को महाराज की ओर से सम्मान मिला है, वे ऐसे हैं भी! यह महेन्द्रपाल देख नहीं सकते।" एक ने कहा।

दूसरा बोला, "किसी गाढ़े समय में देखो, कट जायँगे, बस प्रशंसा के सामने हैं।"

"शशिवृत्तावाली लड़ाई में बहुत कहने से गये थे, लड़े नहीं, हमारी सेना की आड़ में रहे। पूछने पर कहा, 'सहायता के लिए हैं।' दाहिना पक्ष टूटा तो भागती सेना के साथ भाग खड़े हुए।" तीसरे ने पुष्टि की।

"हम तो बहुत दिनों से देख रहे हैं, युद्ध की बात पर महेन्द्रपाल हमेशा कटते हैं।" महाराज जयचन्द ने कहा और सोचने लगे।

"स्वार्थी हैं और पूरे विश्वासघाती।" महेश्वरसिंह ने गले में जोर देकर कहा।

"इस तरह औरों का स्वभाव बिगड़ता है।" एक ने मदद की।

"ऐसे मनुष्य को उचित शिक्षा न दी गयी, तो सरदार राज-धर्म का पालन न

करेंगे, केवल स्वार्थ की चिन्ता में रहेंगे।" महाराज ने कहा।

"महाराज सत्य आदेश करते हैं।" कई कण्ठों से एक ध्वनि हुई।

"इसका कठोरतम दण्ड देना है, अगर विधान की रक्षा पर दृष्टि की जाय।" महाराज गम्भीर हो गये।

सभा चुप हो रही। न्याय की कार्यावली पूरी न होने तक, दोष के प्रमाण धर्माधिकरण के सामने न आने तक महेन्द्रपाल को बन्दी कर रखने की आज्ञा हुई।

जयचन्द जानते थे, जितने प्रमाण मिले हैं, प्रकाश्य रूप से इतने ही कठोरतम दण्ड के कारण बन जायँगे; लोगों को विश्वास हो जायगा, पुनः ऐसे अपराध के लिए सरदार शंकित रहेंगे।

चौदह

प्रभा-यमुना आदि के रहने का जहाँ इन्तजाम हुआ, वह पूर्व की आढ़त है। वहाँ व्यापार होता है। पर यह जासूसी के सुभीते के लिए एक प्रदर्शन-मात्र है। यहाँ वीरसिंह के मित्र-वर्ग रहते हैं। ऊपर का दोमंजिला यमुना आदि के लिए खाली कर दिया गया। यथावकाश, एकान्त में यमुना भविष्य के कार्यक्रम पर वीरसिंह से बातें कर लेती है।

महाराज शिवस्वरूप रोटी पकाते, सुबह-शाम शहर घूमकर सम्वाद एकत्र करते हैं। आज रात साढ़े सात बजे भोजन से निवृत्त होकर कन्नौज के प्रधान रास्ते से टहलते हुए जा रहे हैं कि निगाह एक छज्जे पर गयी, एक निरुपमा सुन्दरी खड़ी राज-पथ के लोगों को देख रही थी। दृष्टि से सौन्दर्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। नयी कली से बँधे भौंरे की तरह महाराज कुछ देर तक दूसरा ज्ञान भूलकर देखते रहे––कैसी सुघर, गोरे, जरा लम्बे मुख पर बड़ी-बड़ी आँखें!–– पलकों की छाँह में कह रही हैं—हम संसार में मुक्त हैं, कोई बाधा हमें रोक नहीं सकती।

होश में आ, देर करने के अभिप्राय से, महाराज दूकान में पान लेने लगे। फिर बेगम धीरे-धीरे आगे बढ़े; पीछे किसी ने पीठ छूकर कहा—'सुनिए।' जरा घूमकर देखा, एक स्त्री है। कहने से पहले उस स्त्री ने कहा, "उस मकान में मेरी मालकिन आपको बुलाती हैं।"

महाराज डरे। पर यमुना का उपदेश याद आया, धीरे-धीरे साथ हो लिये। दासी ज़ीने से कमरे में ले गयी। कमरा उसी प्रकार सजा है, जैसे सुरभि के लिए दल केशर पराग आदि से फूल। इक्कीस-बाईस वर्ष की युवती सुगन्धित दीपों के प्रकाश को मन्द करती हुई बैठी है। महाराज को द्वार पर आते देख मुस्कराकर

उठकर खड़ी हो गयी और झंकृत सरस पदों से बढ़कर हाथ पकड़ ऊँचे रेशमी चादर बिछे गद्दे की ओर ले चलने लगी। पहले महाराज जरा खिंचे, युवती इतने से समझ गयी। महाराज को साथ ही यमुना की बात याद आयी, बढ़ गये।

बैठालकर युवती ने दासी को इशारा किया। वह चली गयी।

युवती ने पानों की तश्तरी महाराज की ओर बढ़ायी।

महाराज ने हाथ जोड़कर खिंचते हुए कहा, "हम पर तौ दूरै से दया करौ!"

"अच्छा," युवती महाराज की भाषा से प्रान्तदेश का निश्चय कर हँसती हुई बोली, "आँख लड़ाते वक्त दूरी का ख्याल न था!"

महाराज ने जनेऊ निकालकर कहा, "यह देख लेव!"

युवती को वर्ण, स्थिति, स्वभाव और साक्षरता का ज्ञान हो गया। गुदगुदाई हुई-सी महाराज को देखती रही।

महाराज ने सोचा, इनको विश्वास नहीं हो रहा। सफलतःपूर्वक बोले, "छानबे की कसम, कही बिना जाने पान नहीं खाते।"

युवती वैसी ही हँसती आँखों देखती हुई बोली, "लेकिन हमारे हाथ के तो पान-पानी दोनों चलते हैं।"

सादगी से महाराज बोले, "यह हमारा नहीं जाना।"

"अररररररर!" जैसे भूली बात याद आयी, बोली, "हे भगवान्, ब्रह्महत्या का पाप मुझे बदा था!"

चोटी से महाराज के प्राण निकल गये! घबराकर पूछा, "बरमहत्या कैसी?"

युवती ने एक लम्बी साँस छोड़ी। फिर अनमनी होकर बोली, "आज महाराजाधिराज कान्यकुब्जेश्वर के यहाँ मैं बुलायी गयी हूँ। सिपाही शायद ले जाने को आ गये। मेरी दो ही दासियाँ यहाँ रहती हैं। बाकी वहाँ की। उन्होंने सिपाहियों से आपका हाल कह दिया हो, तो वे आपकी जान ले लेंगे!"

महाराज काँपने लगे। स्वर भंग हो गया। युवती ने शान्त होने का इशारा किया। फिर उठकर ज़ीने के द्वार बन्द कर आयी। हँसकर कहा, "जब तक द्वार न खोलूंगी, वे भीतर न आ सकेंगे।" महाराज घबराये हुए देखते रहे।

"मैं तुम्हें दिल से चाहती हूँ! जरूर बचाने की कोशिश करूँगी।" खिलकर पूछा, "तुम्हारा नाम?"

वैसे ही घबराये स्वर से महाराज बोले, "सिवसरूप।"

युवती ने कहा, "कल तो इसी रास्ते पर किसी को बरमदत्त बतलाया था।"

महाराज ने पैर पकड़ लिये। बोले, "वह झूठ था।"

युवती ने कहा, "मैं जानती हूँ। मैं तुम्हारी परीक्षा ले रही हूँ, तुम्हारा सारा हाल जानती हूँ।"

फिर कुछ सोचते हुए पूछा, "खास स्थान कहाँ है?"

महाराज—"दलमऊ।"

युवती—"यहाँ कैसे आये?"

काँपते-काँपते महाराज सारा हाल कहने लगे। निविष्टचित्त युवती सुनती रही। किस्सा खत्म होने पर, महाराज को उठने का इशारा किया। पानी लेकर हाथ-मुँह धुलाया। फिर पान खाने को इंगित किया। मन्त्र से चलते हुए जैसे महाराज आज्ञा पूरी करते गये, अनिमेष करुण दृष्टि से देखते हुए।

युवती मुस्करायी। बोली, "मैं तुम्हें चाहती हूँ!"

महाराज आशा से बँधे देखने लगे।

युवती ने कहा, "मान लो, मैंने तुम्हें बचा दिया, तो मुझे प्यार करोगे?"

जल्दी से महाराज बोले, "मैं तुम्हारा गुलाम बना रहूँगा।" पगड़ी उतारकर पैरों पर रखने लगे। युवती ने रोक लिया। कहा, "घबराओ मत। मतलब तुम्हारी समझ में आयेगा, मैं कहती हूँ।"

महाराज कृतार्थ दृष्टि से युवती को देखने लगे। युवती कहती गयी, "देवी यमुना और प्रभावती से मेरा प्रणाम कहना।" महाराज को समझाकर, सँभलकर फिर बोली, "मैं तो यमुना को भी प्रणाम कर सकती हूँ, क्योंकि नर्तकी से दासी का कुल ऊँचा है, क्यों महाराज?"

"हाँ, क्यों नहीं," गम्भीर होकर महाराज बोले। हँसकर युवती कहने लगी, "कहना कि बलवन्तसिंह कुमार देव के साथ मनवा पहुँचकर दवा के लिए वहीं छोड़कर तहसील के लिए फिर निकल गये हैं। चलते वक्त एक पत्र उन्होंने महाराजाधिराज कान्यकुब्जेश्वर को लिखा था। पत्र के साथ कुछ कर भी वसूल किया हुआ भेजा था। पत्रवाहक कर जमा कराकर, यहाँ के लिए कहना कि गाना सुनकर रहने के लिए आया था। उसके साथ और दो-तीन आदमी थे। पहले से शराब पिये हुए थे। आपस में बातचीत करने लगे। महाराजाधिराज के पास पत्र नहीं पहुँचा सके थे। दूसरे दिन पहुँचाना चाहते थे। कहना कि गायिका का नौकर उनके पीछे खड़ा बातचीत सुन रहा था। उसने गायिका से वे बातें कह दीं। गाना सुनकर पत्रवाहक के साथी चले गये, वह रह गया। गायिका ने उसे और अच्छी शराब पिलायी और नशे में कर कुल बातें पूछ लीं। जब वह सो गया, तब उसकी चिट्ठी निकाल ली। पत्र यदि महाराजाधिराज के पास पेश हुआ होता, तो राजा महेन्द्रपाल के वध की आज्ञा निकल चुकी होती। कोशिश होनी चाहिए कि महाराजाधिराज के पास जल्द-से-जल्द अनुकूल प्रमाण पेश हों।"

फिर सोचती हुई बोली, "मैं चिट्ठी देती, पर मैं खुद भी कोशिश में हूँ।"

एक के बाद दूसरा, इस तरह महाराज के मन में अनेक भाव आये-गये। ऐसा सजीव पट-परिवर्तन जीवन में न देखा था। युवती को आश्चर्यपूर्वक देखते हुए उठे, वह स्थिर बैठी रही; "फिर आइयेगा", गुंजित स्वर से बोली। महाराज कुछ कदम बढ़े तो फिर बुलाया, और खड़ी हो गयी। कहा, "सिपाही जो खड़े हैं?" घबराकर महाराज पीछे हटे और उसे पकड़ लिया, "आप कैसे प्रेमी हैं?" नर्तकी युवती ने पूछा, "अभी तक मेरा नाम भी आप नहीं मालूम कर सके।" महाराज बेवकूफ की तरह देखने लगे। "मेरा नाम विद्या है," कहकर उसने पीछे के जीने से सस्नेह उन्हें उतार दिया।

पन्द्रह

महाराज सीधे डेरे पहुँचे। दूसरे दिनों से देर हो गयी थी। यमुना प्रतीक्षा कर रही थी। महाराज को देखकर प्रसन्न हुई। पूछा, कोई घटना तो देर करने की नहीं घटी ? महाराज गम्भीर होकर बोले, "बड़े काम की बात है।" प्रभावती सजग हो गयी। यमुना ने संक्षेप में असली बात कहने के लिए कहा।

महाराज जैसे ईश्वर का स्मरण करते हुए बोले, "जिसके राम रखवारे हैं, उसका कोई क्या बिगाड़ सकता है ? वे कहो तो सुई के छेद से हाथी को निकालें !"

महाराज और कुछ इसी तरह कहनेवाले थे कि यमुना से न रहा गया। बोली, "अरे भले आदमी बात तो बताओ !"

"बीच में न टोक, यह कह कि तेरे बड़े भाग रहे जो प्रात:काल उठकर बराँभन का मुँह देखेगी। हैं; चिड़िया का मरना, लड़कों का खेलवाड़ ! बड़ी समझदार बनी घूमती है। पड़ी होती आजवाले चक्कर में तो मक्कर भूल गये होते।"

यमुना तमतमा उठी कि दें गाल पर एक चाँटा। तब तक मधुर धीमे स्वर से प्रभावती ने कहा, "महाराज, भाग तो हमारे थे ही जो तुम मिले, अब यह बताओ कि क्या बात है ?"

"हम बाजार में टहल रहे थे कि एक औरत ने कहा कि उस मकान की मालकिन आपको बुलाती हैं। हे यमुना, जिधर निकलो, सब देखती हैं।" महाराज ऊपरवाला होंठ जरा सिकोड़कर निगाह नीची कर मूँछें देखने लगे। प्रभावती ने मुश्किल से हँसी को रोका। महाराज कहते गये, "कसरती बदन और रियाज की बातें ही और हैं। तू तो यमुना हमारा सुभाव जानती है, उसके मरने के बाद दस-पन्द्रह तो ब्याह आये होंगे, लेकिन हमने कहा कि उन उढ़रिहों की लड़की का ब्याह कर दालिब ऋषि के कुल को कलंक लगाना है।"

यमुना और प्रभावती दोनों अधीर हो गयीं, पर महाराज के क्रम में परिवर्तन असम्भव है, सोचकर बैठी रहीं। महाराज कहते गये, "पहले तो हमारी इच्छा हुई कि कह दें कि न जायेंगे। फिर हमें यमुना की बात याद आ गयी कि आने-जाने और बातचीत में कहीं अटको मत, तो हम चले गये। ज़ीने के ऊपर गये तो पूरी अप्छरा बैठी थी। उठकर हमारा हाथ पकड़कर गद्दे पर ले जाकर बैठाला, फिर हमारा नाम पूछा। हमने कहा, सिवसरूप महाराज—"

"नाम बता दिया ?" यमुना ने तेजी से पूछा।

"अरे यह तो हम अपने मन में बता रहे हैं। हमने कहा, सिवसरूप महाराज, समय पड़े की बात है कि अब बात करना भी मोहाल हो रहा है। हमने कहा, हमारा नाम है बरमदत्त। उसने पूछा, अस्थान कहाँ पर है ? हमने कहा, सुनो सिवसरूप महाराज, तुम वही हौ, जो जुन्नी करके दूसरे के जजमान नहवाते थे, किसी के भी अस्थान को अपना अस्थान बताते थे, आज यह तुमसे पूछ रही है। हमने कहा, प्रयागराज। तो बोली कि हम दलमऊ नहाने गये थे। हमने कहा कि हाँ, तब हम मामा के यहाँ आये थे, हमने वहाँ तुमको देखा है। सुनकर पैरों पर

माथा रख दिया। फिर बोली कि मैं महाराजाधिराज की सभा में नाचती हूँ। हमने आसिरवाद दिया कि तुम्हारी तड़क्की हो; अरे हाँ भाई, जजमान है। फिर उसने पूछा कि देवी परभावती को जानते हैं आप, वह जो दलमऊ के सरदार की लड़की है ? हमने कहा, हाँ, उनको देखा है, वे हमारे रिश्तेदार के जजमान हैं। उसने कहा, उनका यह हाल है।"

फिर महाराज ने वह हाल और उस तवायफ का नाम बतलाया।

सोलह

गंगा पार कर चार सवार उत्तर-पूर्व की ओर बढ़ते जा रहे हैं। समय दिन डेढ़ पहर हो चुका है। चारों मौन हैं। दृष्टि पर एक स्थिर प्रतीक्षा झलक रही है।

आगे के सवार ने कोमल कण्ठ से कहा, "उधर से भी तीन-चार सवार आ रहे हैं, शायद।"

"हाँ।" दूसरे ने अच्छी तरह देखते हुए कहा।

"हम लोग दस कोस से ज्यादा आ गये होंगे।" पहले ने कहा।

"कम नहीं।" दूसरे ने बरछी तौलते हुए कहा।

"दुश्मन हो तो बड़ा अच्छा मौका है।" पहले ने दूसरे को फिरकर मुस्कराती आँखों देखते हुए कहा।

"हाँ, उस बार विवश होना पड़ा था।" दूसरे ने बरछी कमर से लगाते हुए कमान निकालकर कहा।

तीसरे ने चौथे से पूछा, "आप घबराते तो नहीं ?"

"अरे भय्या, हमारी गरमी गंगाजी ही बुझा पाती हैं।" कहकर चौथे ने बनी भंग की एक गोली जीभ पर रख ली और पेंचदार गिलास का ढक्कन खोलकर पानी के साथ उतार दी। फिर पेंच बन्द कर गिलास रखते हुए, तीसरे से पूछा, "अभी और है, आपौ को चाही ? विजया है भय्या, वार खाली न जायगा, दूना हौसला बढ़ाती है।"

"नहीं महाराज, हमें तो विजया के नशे में रही सूझ भी नहीं रहती।" कहकर तीसरा आते हुए सवारों की तरफ देखने लगा।

पहले प्रभावती, उसके बाद यमुना, उसके पीछे वीरसिंह और वीरसिंह के पीछे महाराज शिवस्वरूप, कुमार देव के उद्धार के लिए मनवा जा रहे हैं। देव से महेन्द्र-पाल का सारा संवाद भी कहना है।

"इधर से बलवन्तसिंह या उनके सिपाहियों के आने की सम्भावना अधिक है। सम्भव है, पत्रवाला दूत पत्र खो जाने पर घबराकर बलवन्तसिंह से मिला हो और पत्र खोने का झूठा संवाद कहा हो; देर होने पर कुमार और महेन्द्रपाल की दृष्टि

में कान्यकुब्जेश्वर के पास प्रमाण पहुँच न जाय, ऐसा विचार कर बलवन्त स्वयं चल दिये हों।" वीरसिंह ने यमुना से कहा।

"हाँ, सम्भव है।" यमुना देख रही थी, सवार अब बहुत निकट आ गये थे।

प्रभावती एकाग्र थी। इससे पहले वीरसिंह के सम्बन्ध की कल्पनाओं में पड़ी थी। यमुना ने जो परिचय दिया था, वह और विस्मयोत्पादक था।

"लेकिन हम···" पहचानकर यमुना ने कहा, "वही हैं।"

"कुछ परवाह नहीं, प्रभा का बायाँ देखना दूर से, मैं दाहिने हूँ। महाराज, जिसका हथियार घटे, अपना दे देना, घबराना मत।" वीरसिंह के कहते ही यमुना ने घोड़ा बढ़ाया। वीरसिंह दाहिने आ गये।

"बलवन्त, अगर बलवन्त है!" प्रभा ने आवाज दी।

बलवन्त ने अच्छी तरह देखा न था; विचार में थे। केवल आते हुए राजपूत सोचा था। प्रभावती को न पहचाना, पर यमुना और वीरसिंह को देखकर घृणा से भर गया।

"उस रोज नाव पर अवसर नहीं मिला मुझे बलवन्त, मैं ही प्रभावती हूँ, तैयार हो, देखा जाय द्वन्द्व किसका रहता है।" कहती हुई प्रभावती ने भाला मारा।

बलवन्त ने बचने के लिए जल्द घोड़े को बायें फेरा, पर वार बड़ा तेज था। भाला एक बगल से दाहिनी जाँघ पार कर जीन छेदकर कुछ घोड़े के भी जा चुभा। बलवन्त के साथी उसी वक्त रास फेंककर भग खड़े हुए, वे यमुना और वीरसिंह को जानते थे।

बलवन्त होश में था, पर घायल, डरा हुआ। वीरसिंह ने भाला निकालकर सँभालकर उतार लिया। वहीं लेटाकर यमुना को दूर ले जाकर कहा, "अब तो चलने की सूरत बदल गयी। मैं इनको यहाँ से अपने एक केन्द्र में ले जाता हूँ, दूसरे रास्ते से। भगे सिपाही कहीं से मदद लेकर जल्द आ सकते हैं। वे हमें पहचान गये हैं। सम्भव, मनवा जाकर कुमार देव पर अत्याचार करें। तुम्हें बचकर भी जाना है और जल्द भी। महाराज को हमारे साथ कर दो। हम दोनों इन्हें सँभाल लेंगे। चिन्ता न करना। सचेत रहना।"

प्रभावती, देवी की तरह, स्पर्द्धा से खड़ी बलवन्तसिंह को देख रही थी। लौट-कर यमुना ने कहा, "इन्हें प्रणाम करो बहू, यही तुम्हारे जेठ वीरसिंह हैं।" प्रभावती वीरसिंह को भक्तिपूर्वक प्रणाम करने लगी।

बलवन्त को देखकर यमुना की आँखें सजल हो आयीं। तेज रक्तस्राव हो रहा था। पत्तियाँ लेकर रस निचोड़कर घाव बाँधने लगी। फिर करुण दृष्टिपात कर बोली, "भाई, तुम सच्चे भाई न हुए! बहन को अपराधिनी समझा, पर क्षमा करना। राज-दर्प से ईश्वर तुम्हारा भला करें।"

महाराज बड़े ताव से बलवन्त को देख रहे थे। यमुना की बातचीत से बिलकुल मूढ़ हो गये।

महाराज को वीरसिंह के साथ निश्चित होकर रहने के लिए कहकर यमुना प्रभावती को लेकर प्रस्थान कर गयी।

सत्रह

मनवा के किले से कुछ दूर, सरायन नदी के तट पर, एक एकान्त स्थान में, बबूल की डालों से घोड़े बाँधकर, यमुना और प्रभा बैठी हुई हैं। रात डेढ़ पहर बीत चुकी है। प्रभावती अपनी आदर्श-देवी यमुना के सामने सिर झुकाये बैठी उनके उज्ज्वल चरित्र की कल्पना में लीन है।

"दीदी," प्रभा बोली, "मैंने तुम पर बड़ा अन्याय किया है, पर वह अज्ञानकृत है, इसलिए क्षमा करना।"

"बहन," प्रभा का हाथ हाथों में लेती हुई सस्नेह यमुना ने कहा, "ऐसे अपराध तो, मुमकिन, ज्ञानकृत भी अब तुम्हें करने पड़ें। पर भ्रम तो भ्रम ही है? उसके लिए क्षमा की क्या आवश्यकता है?—जगह भी नहीं। पारस्परिक व्यवहार का जब जो सम्बन्ध रहता है, तब वह पारस्परिक व्यवहार के अतिरिक्त और कुछ नहीं ठहरता, इसलिए वह अपने रूप में ही अनित्य है, फिर अनित्य के लिए क्या क्षोभ और क्या क्षमा? मैं तुम्हारी दासी थी, फिर भी तुम्हारे मन में मेरा ही आदर्श था—मैं ही वहाँ आराध्या बनकर रही, यह कम प्राप्ति नहीं; और देखो कि इस तरह जीवन का रहस्य जीवन में किस तरह रहता है। जिसे लोग नहीं मानते, उसे ही लोग मानते हैं। जो दासी है, वही देवी है।"

यमुना आकाश की ओर देखने लगी। फिर स्थिर कण्ठ से बोली, "अब हमें चलना चाहिए।"

प्रभावती उठी। वहाँ के रास्ते यमुना के परिचित थे। बचकर चलती हुई चारदीवार के एक कोने पर आकर खड़ी हुई। प्रभा को नाले के पास प्रतीक्षा करने के लिए छोड़ आयी थी। चारदीवार के चारों ओर रात को पहरेदार लगते थे। सन्तरी घूमता हुआ आया तो एक स्त्री खड़ी हुई देख पड़ी।

"कौन?" सिपाही ने आवाज दी।

"मैं एक दुखी स्त्री हूँ।" यमुना ने कहा।

सिपाही बढ़कर पास आया।

"तुम क्या चाहती हो?"

यमुना खिलखिलाकर हँसने लगी। "क्या चाहती हूँ?—मैं खून चाहती हूँ।" अट्टहास।···"इस पुरी में पाप बहुत बढ़ गया है! एक यमुना थी, राजा की लड़की थी, इसी पुरी में रहती थी, बड़े लाड़-प्यार से पली थी; एक वीर से उसने विवाह किया; चूंकि वह राजा न था, इसलिए उसका भाई नाराज हो गया; उसे देश-निकाला दिलवा दिया; अब गली-गली ठोकरें खाती फिरती है। क्यों सिपाही, तुम सिपाही की तरफ हो या राजा की तरफ?"

पहले सिपाही ने सोचा था, पागल है; अब संशय में पड़ा।

"क्यों पहरेदार? चुप क्यों हो? डरते हो।"

"तुम ठीक कहती हो। मैं सिपाही हूँ, सिपाही की तरफ हूँ। मैंने कुमारी यमुना को देखा है।" सिपाही दुखी हो गया।

"तुम्हें उसके लिए स्नेह है ?"

"मैं उसके लिए जान दे सकता हूँ।"

"अच्छा, और नजदीक आओ; अच्छी तरह पहचानो तो, मैं कौन हूँ।"

सिपाही अच्छी तरह देखने लगा। फिर राज परिवार को दी जानेवाली सशस्त्र सलामी दी। यमुना ने भी हाथ उठाकर अभिवादन द्वारा सिपाही का सम्मान किया।

कहा, "बैठ जाओ; तुमसे कुछ बातें करूँगी।"

सिपाही चारदीवार के सहारे बैठ गया। एक ओर यमुना भी बैठ गयी।

"कुमार देव को भाईजी यहाँ कैद कर लाये हैं, यह तो तुम जानते होगे ?"

"जी हाँ।"

"वे घायल हो गये थे, अब अच्छे हैं ?"

"जी हाँ, बहुत कुछ अच्छे हो गये हैं।"

"रतन अच्छी तरह है ?"

"जी हाँ, कुमार की सेवा उन्होंने बड़ी तत्परता से की।"

यमुना सोचने लगी।

"भाईजी का क्या हाल है ?"

"वे कर लेने के लिए गये थे, तब से नहीं आये।"

"क्या आज उनकी कोई खबर यहाँ आयी है ?"

"जी नहीं।"

"अच्छा, देखो, कुमार से मिलने की हमें जरूरत है। तुम पर किसी को सन्देह न हो पायेगा, विश्वास करो और अगर होगा भी, तो हम तुम्हें अपने साथ ले लेंगे, और अच्छी नौकरी देंगे, यों भी तुम्हें पुरस्कार देंगे, तुम हमारी मदद करोगे ?"

"आपके साथ मुझे स्वर्ग का सुख होगा। आपकी आज्ञा पूरी करना मैं अपना सबसे बड़ा अवसर मानता हूँ; फिर जहाँ आप ऐसी दीनता से मेरी मदद चाहती हैं, वहाँ मेरे लिए इससे बड़ा मान और कोई नहीं, मैं कैसे भूल जाऊँगा ?"

यमुना कुछ काल तक स्थिर रही, शान्त दृष्टि से सिपाही को देखती हुई। पूछा, "कुमार किस जगह रक्खे गये हैं ?"

"इसी बैठक में," उँगली उठाकर सिपाही ने बगलवाले प्रासाद की ओर इंगित किया।

"तो एक काम करो। रात काफी हो गयी है। प्रासाद के अधिकांश जन सो गये होंगे। शंका की कोई बात नहीं। मेरी एक सखी हैं, वे वहाँ बैठी हैं। मैं बुला लाती हूँ। मैं गयी या वे, कुमार से मिलकर लौट आयेंगी।"

सिपाही ने स्वीकृति दी। यमुना प्रभा के पास गयी और वृत्तान्त समझाकर बुला लायी।

रास्ते में कहा, "चारदीवार पर चढ़ना होगा।"

प्रभा मुस्करा दी। दीवार के पास आकर यमुना ने सिपाही से पूछा, "आज का संकेत क्या है ?"

"वज्र," नम्रता से सिपाही ने उत्तर दिया।

काँटा लगा कमन्द, जिसमें रस्सी की सीढ़ी बनी थी, हाथ में लेकर यमुना बोली, "आओ, मैं काँटा फेंकती हूँ। ऊपर चढ़ जाओ। फिर खींचकर उतरकर बायें हाथवाले भवन में जाना। संकेत तुम्हें मालूम हो चुका है। लोग देख भी लेंगे, तो दासी समझेंगे।"

शिवजी का स्मरण कर प्रभा चढ़ी, फिर उतर गयी।

अट्ठारह

प्रभावती, धीरे-धीरे, सँभलती हुई चली। हृदय को भरकर लहराते हुए नये उच्छ्वास पुलकित कर राजकुमार की ओर प्रेरित कर रहे हैं। उत्सुकता शीघ्रता कर रही है, पर धैर्य और बोध बाँध रहे हैं। आनन्द को चरणों की गति से निकलने की बाधा मिली, तो दृष्टि से छलकने लगा। वहाँ के समस्त दृश्य रँगे हुए, जैसे राजकुमार की तरह आदर देने को खड़े हैं। एकान्त में देह से लिपटते हुए हवा के झोंके प्राणों को उभाड़ते हुए, दबाव को दूर करते हुए, पहले से ही प्रिय का मधुर सन्देश कह रहे हैं।

प्रभावती चलती गयी, उस भवन के पीछे से बगल में आयी, बगल से सामने। सामने मन्द-क्षेप सोपान पर चढ़ने लगी। निराभरण, भावभारा, दोलितान्तःकरण; खम्भों की आड़ से प्रकाश की ओर बढ़ती गयी, खम्भों की तीन कतारें पार कर एक बगल से देखा—राजकुमार मुद्रित-नयन पड़े हुए हैं। उनके पार्श्व में एक दूसरे आसन पर एक सुन्दरी बैठी हुई है। मुख राजकुमार की ओर, पीठ सोपानों की तरफ। सुगन्ध दीपक की कई शिखाएँ जल रही हैं, तरुणी कुछ देखने में तन्मय है।

प्रभा धीरे-धीरे एक बगल हटती गयी, वहाँ से सुन्दरी का दक्षिण पार्श्व अच्छी तरह दिखने लगा। प्रभा ने अनुमान किया—'यह दीदी यमुना की छोटी बहन रत्नावली होगी। वेष-भूषणों से राजकुमारी लगती है।' स्तब्ध खड़ी रही।

भिखारी से खरीदी मोतियों की माला पहने हुए सुन्दरी हृदय पर रहनेवाला उसी का क्षुद्र हीरक-पान पूरे आश्चर्य से देख रही थी। उसके दूसरी ओर 'देव' लिखा था। ये कुमार देव थे, यह सुन्दरी मालूम कर चुकी थी। यह माला कुमार 'देव' की है, यह अब मालूम हुआ। यमुना की घटना से प्रेम-वैचित्र्य में पड़कर कुमारी एक कवियत्री की तरह उस देश के अज्ञात युवक को भी प्यार करती थी, राजकुमार को एकाएक प्राप्त कर उसने अपना सौभाग्य ही माना था। आज माला देखकर ऐसा मालूम हुआ, जैसे देवता पहले से प्रसन्न होकर हृदय में आ विराजे हों। भरकर हृदय के अन्तःपुर से निकली और कुमार को देखने लगी।

एकाएक कुमार ने भी पलकें खोलीं, दृष्टि कुमारी की माला पर गयी। समझ-कर जैसे उसने कहा, "यह माला आपकी है। मैंने एक भिक्षुक से खरीदी है।"

राजकुमार ने मन्द स्वर से कहा, "मैंने एक दूसरी माला के लिए, बदले में यह माला दी थी।" कहकर प्रभावतीवाली माला की लड़ी पकड़कर उठायी। झुककर रत्नावली पान पढ़ने लगी। 'प्रभावती' लिखा था।

एक बार सारा संसार रहस्यमय मालूम दिया। जिसने उसके हृदय को इतने स्वप्नों से रँगा था, इच्छा-प्राप्ति का इतना बड़ा विश्वसनीय प्रमाण दिया था, उसी ने एकाएक साबित कर दिया कि वह सोची हुई सारी कविता, वह पाया हुआ समस्त प्रमाण झूठा था, यमुना का घटना-क्रम उसके जीवन का घटना-क्रम नहीं बन सकता; यमुना को जहाँ सफलता मिली, उसे वहाँ पूरी असफलता हुई। कुमारी स्तब्ध बैठी सोचती रही। वह प्रभावती की जगह ले, कितना पतन उसके स्त्रीत्व का साबित होगा! —वह देवी यमुना की बहन कहलाने योग्य न रहेगी। छि:! छि:!!

प्रभा के लिए राजकुमार के अकृत्रिम भाव का इससे अधिक पुष्ट और क्या प्रमाण होगा? प्रभा का सारा आनन्द सरोवर की लहरों की तरह हृदय के तटों में बँधा रहा। इससे अधिक सुख परिणीता के लिए क्या होगा?

रत्नावली निश्चय के साथ गम्भीर हो गयी। जीवन का जो उपाय एक को उठाता है, वह दूसरे को गिरा देता है; कमल सूर्य को पाकर खिलता है, पर यह नियम जूही के लिए नहीं। जूही रात्रि के अन्धकार में हँसती है।

राजकुमार शून्य दृष्टि से रत्नावली को देख रहे थे।

एक ही क्षण में जैसे रत्नावली की कुमारी-सुलभ भावनाएँ बदल गयीं। स्थिर सहृदय कण्ठ से पूछा, "कुमार आप क्यों कैद किये गये, अभी तक मैंने आपसे नहीं पूछा, आपकी हालत अच्छी नहीं थी, इसलिए।"

"प्रभावती मुझे चाहती थीं; पर उनके पिता बलवन्त से उन्हें ब्याहना चाहते थे।" कुमार धीरे-धीरे कह रहे थे। रत्नावली ने पूछा, "भाई साहब तो कई विवाह कर चुके हैं; फिर भी इन्हीं से आग्रह क्यों?"

"राजनैतिक कारण कह सकते हैं।" कहकर कुमार चुप हो गये।

"फिर?" साग्रह राजकुमार को देखती हुई रत्नावली ने पूछा।

"फिर विवाह की रात नाव पर मैं कैद हुआ। यमुना देवी वहीं प्रभावती के पास थीं। हमारी नाव जा रही थी, बलवन्त की नाव, जिस पर महेश्वरसिंह भी थे, आ रही थी। पिता के सम्मान के विचार से प्रभावती गंगा में कूद गयी। अपशब्द कहने पर बलवन्त पर क्रोध से यमुना देवी ने भाला चला दिया। वे बच गये, पर एक सिपाही घायल हो गया; सम्भव, काम आ गया हो। फिर प्रभावती की रक्षा के विचार से वे भी गंगा में कूद गयीं। वार मुझ पर हुए। मैं घायल हो गया। फिर नहीं मालूम।" राजकुमार धीरे-धीरे कहते हुए चुप हो गये। रत्नावली चित्रार्पित-जैसी स्थिर बैठी इस प्रसंग पर सोचती रही। अपने पर बड़ी ग्लानि हुई।

कुछ काल बाद, राजकुमार की शान्ति में विघ्न न हो, इस विचार से, परिचारिकाओं को भेज देने लिए, उठी; रात अधिक हो चुकी थी, इसका भी ख्याल था और भावी कार्य-क्रम की रचना का भी।

रत्नावली के उठते ही प्रभावती जल्द-जल्द सोपान से नीचे उतरकर एक बगल खड़ी हो गयी। रत्नावली धीरे-धीरे उतर रही थी। सामने छायाकार अज्ञात किसी को देखकर चौंकी। चाँदनी निकल आयी थी। रत्नावली चोर के भय से त्रस्त न हो, इस विचार से प्रभा चाँदनी में आकर खड़ी हो गयी।

"कौन हो ?" रत्नावली ने पूछा।

"इधर आओ, शब्द न करो, यमुना देवी ने संवाद भेजा है !"

देवी यमुना को इस समय सहायता की जरूरत होगी, यह कल्पना कर रत्नावली बढ़ गयी। पास जाकर देखा, स्त्री है। फिर पूछा, "तुम कौन हो ?"

"मैं यमुना की दासी हूँ।"

"तुम्हारा नाम ?"

"आभा।"

"आभा ?"

"जी।"

"प्रभावती को तुम जानती हो ?"

"जानती हूँ।"

"इस समय वे कहाँ हैं ?"

"कान्यकुब्ज में।"

"तुम आयीं किस तरह ?"

"दीवार के ऊपर से, रस्सी की सीढ़ी से होकर।"

"सिपाही ने नहीं देखा ?"

"देखा है, पर देवी यमुना के नाम से आने दिया।"

"यहाँ किससे तुम्हारा काम है ?"

"आपसे।"

"या राजकुमार से ?"

"आपसे न मिलती तो राजकुमार से होता।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि लाचारी होती। कुमार के घाव भर रहे हैं। यमुना देवी और प्रभावती के जीवित रहने का संवाद हर्ष का कारण होता, घावों को क्षति पहुँचती है।"

"क्या काम है ?"

"महेश्वरसिंह स्वार्थवश बलवन्त से प्रभावती का विवाह करना चाहते थे। लालगढ़ के महेन्द्रपाल से पहले का वैमनस्य आपको मालूम है। बलवन्त के कहने से महेश्वरसिंह ने यह प्रमाण दिया है कि जबरन कुमार देव ने प्रभावती का हरण किया, जब वे नाव में विहार कर रही थीं। ऐसा खास तौर से बलवन्त को नीचा दिखाने के लिए किया। प्रभावती का विवाह बलवन्त से हो रहा है, यह प्रसिद्धि फैल चुकी थी। महेन्द्रपाल कैद कर लिये गये हैं। उपयुक्त प्रमाण न पहुँचे तो जल्द उनके शिरश्छेद की आज्ञा निकलेगी। सम्भव, किला भी जब्त किया जाय।"

"हाँ, यह तो ठीक है।" सोचती हुई रत्नावली बोली, "कुमार देव के स्वास्थ्य

पर इसका भी बुरा प्रभाव पड़ेगा।"

"जी।"

"अच्छा, आओ, मेरे साथ रहो।"

"जी नहीं, मुझे आज ही यहाँ से जाना है।"

"तुमसे वहाँ कहाँ मुलाकात हो सकती है; मैं दीदी को एक बार देखना चाहती हूँ।"

"स्थान का निश्चय नहीं। इसलिए ठीक तौर से नहीं कह सकती। उनसे आपका संवाद कह सकती हूँ।"

स्थिर दृष्टि से प्रभा को देखती हुई—"तुम उनके पास से आयी हो, इसका क्या प्रमाण है ?" कुछ तेज गले से राजकुमारी ने पूछा।

तत्काल प्रभा अँगूठी निकालकर दिखाती हुई बोली, "यह; प्रभावती को मिली कुमार की अँगूठी देते हुए उन्होंने कहा था, पहचान के लिए यह काफी है।"

हाथ में लेकर चाँदनी में चमकते अक्षर पढ़कर, स्थिर भाव से देती हुई रत्नावली बोली, "हाँ, ठीक है। पर, तुम्हारी दृष्टि और जबान दासी की नहीं जान पड़ती।"

प्रभावती चौंकी। सँभलकर बोली, "मुझे उन्हीं से शिक्षा मिली है।"

"क्या गंगा पार करते समय वे कोई दासी भी ले गयी थीं ?"

"नहीं, बाद को मिली।"

"अच्छा !" साँस छोड़कर रत्नावली बोली, "मेरा प्रणाम कहना, और कहना, चिन्ता न करें।"

चलकर प्रभा ने देखा, जिस सीढ़ी से वह उतरी थी, वह नहीं है। दीवार इतनी ऊँची है कि वह चढ़ नहीं सकती। चारों ओर घूमकर, देखकर, लौट आयी।

कुछ देर तक खड़ी सोचती रही। किधर से निकले, कुछ समझ न सकी। राजकुमार के पास उन्हीं के हित के विचार से नहीं जाना चाहती। उनकी हालत भी अभी तक ऐसी नहीं हुई कि वे खुद इस विपत्ति में कुछ प्रतिकार कर सकें। अन्त में निश्चय किया कि रात का संकेतचिह्न मालूम ही है, कुमार के मकान के सामने से जो रास्ता गया है, उसी से बाहर निकलेगी, पकड़ गयी तो जो होगा, होगा। चल दी। रात का तीसरा पहर था। कई जगह सिपाहियों ने टोका; पर 'रत्नावली की दासी और वज्र' सुनकर सबने छोड़ दिया। ईश्वरेच्छा से वह रास्ता सरायन के घाटवाले फाटक की ओर गया था। फाटक से बाहर निकलकर घाट के बायीं ओर से अपने स्थान की तरफ चली। सरायन का किनारा देखे रही। बढ़ती हुई अपनी जगह पर आयी। देखा, सिर्फ उसी का घोड़ा बँधा है। बड़ा आश्चर्य हुआ। दीदी प्राण रहते छोड़ जानेवाली न थीं। निश्चय किया, कोई बड़ी घटना हुई है। पर मालूम करने का उपाय न था। थक गयी थी। पलकें मुँदी आ रही थीं। आशा थी कि दीदी कहीं गयी होंगी तो सुबह तक लौट आयेंगी। प्रतीक्षा करनी चाहिए। इसी विचार से हरित तृण-संकुल तट पर धीरे से लेट रही। आँख लग गयी।

उन्नीस

बलवन्त को घायल अवस्था में ले चलना असम्भव था। आड़ में एक नाले के भीतर उन्हें और महाराज को छोड़कर, पालकी या डोली जो कुछ मिल जाय, लेने के लिए वीरसिंह गाँव की तरफ गये थे। महाराज एकान्त में धार्मिक भावना से विचलित कर अपनी तरफ खींचने का प्रयत्न करने लगे। भाव में भरकर बोले, "वह महाराज सिवसरूप हम ही हैं। देश-निकाला दिलवाय दिह्यो। बरामन का सराप आखिर पड़ा न ?" बेबस बलवन्त पलकें मारते सुनते रहे। महाराज कहते गये, "हमारे पास चार भलेमानुस आते हैं, चार नंगालुच्चौ आते हैं। मगर हम किसी की बात नहीं कहते। मान लेव, आपै एक ठकुराइन ले आओ तो अब हम कहते फिरैं कि मनवा के महाराज ठकुराइन भगाय लाये रहें। ऐसे उस मामले को समझौ। अब तो आय गया आपकी समझ में कि महाराज का कसूर नाहीं रहै ?"

बलवन्त की पीड़ा बढ़ी थी। चुपचाप पड़े सुन रहे थे। इसी समय दूर गर्द उड़ती देख पड़ी। ये बलवन्त के वही भगे आदमी हैं, बलवन्त को बचाने और बदला लेने आ रहे हैं; महाराज ने निश्चय किया। नाला काफी गहरा था। वहाँ से आदमी और घोड़े न देख पड़ते थे। पर आनेवाले बगैर खोजे छोड़ न देंगे, वीरसिंह भी नहीं हैं, अकेले महाराज किसका-किसका मोहरा लेंगे, अभी भगने का समय है, फिर पछताना हाथ रहेगा, ऐसा सोचकर महाराज घोड़े पर सवार होकर उल्टी तरफ भागे।

जब वीरसिंह डोली-कहार लेकर आये, तब न वहाँ महाराज थे, न बलवन्त। बहुत-से घोड़ों की टापें बनी थीं, मालूम हुआ कि घोड़े कान्यकुब्ज की ओर गये हैं। डोली-कहार वहीं से बिदा करके वीरसिंह मनवा की ओर चले। चिन्ता से मस्तिष्क और हृदय भारी हो रहा था। इतनी उलझनें पड़ गयी थीं कि कोई उपाय न सूझ रहा था। घोड़ा बढ़ाते, थके हुए, तरह-तरह के विचार करते चले जा रहे थे। मनवा दुर्ग का नक्शा उन्हें मालूम न था। यमुना दुर्ग के भीतर न जायगी, वे जानते थे, उसका रहना वहीं किसी एकान्त में नैश काल-भर के लिए सम्भव है, उन्होंने निश्चय किया। पहले जो बातचीत हुई थी, उसका रूप उनके न रहने के कारण बदल गया होगा, उन्होंने स्थिर किया।

इस प्रकार कल्पना करते मनवा पहुँचे। घोड़े को दूर एक डाल से बाँधकर, परिच्छद उतार, साधारण पहनावे में यमुना की खोज में चले। काफी रात हो चुकी थी। नाले में फिरते हुए इधर-उधर बहुत देखा, पर कुछ पता न चला। धीरे-धीरे चाँदनी फैल चली। दुर्ग के दीवार के पास दो आदमियों को अस्पष्ट देखा। दोनों के परिच्छद की भिन्नता से सन्देह हुआ। अपना सांकेतिक शब्द किया। यमुना समझ गयी। चिन्ता भी बढ़ी। प्रभावती को गये देर हो चुकी थी; अब तक उसे लौट आना था। सन्तरी से जल्द लौटने को कहकर उत्कण्ठा से शब्द के सीधे चली। यह शब्द दूसरे का नहीं हो सकता। इसी से वीरसिंह कभी-कभी रात को दलमऊ में उसे बुलाते थे। देखा, वीरसिंह ही हैं।

"क्या है ?" साश्चर्य यमुना ने पूछा।

"सब ठाट उलट गया।" वीरसिंह मन्द स्वर से बोले।

यमुना शंकित पदक्षेप से सरायन की ओर बढ़ती गयी।

"भाई साहब का क्या संवाद है ?" सोचते हुए पूछा।

"उनके साथियों ने उन्हें छुड़ा लिया, महाराज का पता नहीं, भगे या कैद कर लिये गये। जो सिपाही कट गये थे, वे कई सहायक लेकर लौटे, जान पड़ता है। मुझे डोली लेकर आते देर हो गयी। वहाँ देहात में हमारा अपना आदमी माल खरीदने के बहाने रहता है। उससे मालूम हुआ, वह उसी समय कान्यकुब्ज से लौटकर आया था। हम लोगों के कुछ बाद चला था। कहा कि रामसिंह पकड़ लिया गया है;—उसे मालूम न था—दलमऊवाली चिट्ठियाँ उससे गिर गयीं या किसी तरह चुरा ली गयीं। वहाँ की हमारी सारी व्यवस्था अब तक बदल चुकी होगी। रामसिंह के प्राणों की शंका है; राजा महेन्द्रपाल भी अब शायद नहीं बचाये जा सकते। बलवन्त की जगह आकर देखा, घोड़े की टापें कान्यकुब्ज की ओर बनी हैं।"

यमुना खड़ी हो गयी। एक गहरी साँस छोड़ी, "यहाँ प्रभावती भी नहीं लौटी; देर हो गयी। सन्तरी के बदलने का समय आया, विपत्ति की सम्भावना यहाँ भी दीख रही है।"

"वैसी नहीं, समझदार तो है प्रभा ?"

"समझदार तो है, पर अनभ्यस्त है; ऐसे कुयोग का सामना नहीं किया कभी।"

"कुछ बात नहीं; एक अभिज्ञता होगी, ऐसा खतरा नहीं; सिपाही से मिलकर और मेल कर लो कुछ देकर।"

"शायद ही वह मुझसे पुरस्कार ले !"

"समझाकर दो, बदले में या सहानुभूति में प्रभा की सहायता करे जो कुछ उससे हो, और काँटा निकाल लो, सदर से भी निकल सकती है, बहुत सम्भव है आवेश में कुमार के पास रह जाय, और जिस कार्य के लिए गयी है, उसकी पूर्ति तो यहाँ से हो भी नहीं सकती—उतना समय ही नहीं रहा। मैं तुम्हें लेने आया हूँ। वहाँ तुम्हारे बिना न बनेगा। जल्द चलना है।"

"अच्छा।"

यमुना सिपाही के पास गयी। कुछ स्वर्ण-मुद्राएँ निकालकर, इन्कार करते हुए को समझाकर दीं, और यथासाध्य सन्देशवाहिका की सहायता के लिए कहा। फिर काँटा निकालकर उतर गयी, पत्र पर, कागज लेकर, सांकेतिक एक चिट्ठी, चाँदनी में लिखी और प्रभा की उतारी जीन के सामने खोंसकर वीरसिंह के साथ, थके घोड़ों से भी जितना रास्ता तय हो—विचार कर गोमती पार कर कान्यकुब्ज की ओर चली।

बीस

"चाचा !"

राजा महेन्द्रपाल कैदखाने के एक बगल बैठे हुए तरह-तरह के विचारों में गर्क थे। अभी तक कैद होने का कारण मालूम नहीं हुआ। कमरे में स्वल्पमात्र प्रकाश है। यह कौन-सा भतीजा साथ रहने के लिए आया, पहचानने के लिए आँखों में जोर लगा रहे थे कि रामसिंह ने फिर कहा—

"चाचा !"

"कौन ?"

"मैं आपका खुशनसीब भतीजा हूँ !"

"खुशनसीब भतीजा !"

"जी हाँ।"

"खुशनसीब कैसे ?"

"ऐसे," रामसिंह ने दण्ड-प्रणाम करके कहा, "आपके शुभदर्शन हुए।"

राजा महेन्द्रपाल ने गौर से देखा, पर पहचान न सके। कभी देखा है; ऐसा भी न मालूम हुआ। पूछा, "तुम्हारा नाम ?"

रामसिंह गिड़गिड़ाता हुआ बोला, "महुए के पेड़ और फल की तरह यह बदकिस्मत वही नाम रखता है जो श्रीमान् का है।"

"मजाक करते हो ?"

पैर छूकर रामसिंह ने कहा, "चाचा, मजाक करता होऊँ तो···क्या कहूँ बाहर होते तो अपनी पतोहू से पूछ लेते !"

"बेवकूफ, पतोहू तेरा नाम क्यों बताती ?" राजा महेन्द्रपाल हँस दिये।

"चाचा, आपकी पतोहू ने ही तो मुझे यहाँ भेजा है। बड़ी सती है। बोली, जाओ; चाचाजी तो कैद में रहें और तुम गुलछर्रे उड़ाओ ?—तुम न रहोगे तो क्या होगा ?—तुम्हारे चाचाजी बच जायँगे, तो सबकुछ है !"

"तू बड़ा बेवकूफ है रे !" राजा महेन्द्रपाल स्नेह से रामसिंह को देखने लगे।

"लेकिन चाचा, बात तो ऐसी ही है।" रामसिंह शून्य दृष्टि से महेन्द्रपाल को देखने लगा।

"तू कैसे फँसा ?" महेन्द्रपाल ने करुणा के स्वर से पूछा।

"फँसा कहाँ चाचा ? उसी ने कहा फँस जाओ। मैं परोहन खोजने गया था—"

परोहन सुनकर चौंककर खिंचते हुए महेन्द्रपाल ने पूछा, "तू धोबी है ?"

"धोबी होता तो तुम्हारे पास इस कैदखाने में पहुँचता चाचा ? चौहान हूँ। तुम्हारी पतोहू धोबिन है। कोई-न-कोई परोहन रोज खोती है। मैं खोज लाता हूँ—"

"क्या बकता है, बे-सिर-पैर की !"

"चाचा, बाद को समझियेगा। सब बातें सिर-पैर की हैं। सुनते जाइये। जहाँ

न समझ में आये, समझ लीजिये कि बाद को समझियेगा। ऊँची बात है। फिर ऐसे ही परोहन खोज रहा था कि दो चिट्ठियाँ मिलीं। एक थी राजा महेश्वरसिंह की, एक राजा बलवन्तसिंह की। दोनों में था कि राजा महेश्वरसिंह की लड़की प्रभावती से कुमार देव ने जबरदस्ती गान्धर्व विवाह कर लिया है। पर महेश्वरसिंह अपनी कन्या बलवन्त से ब्याहना चाहते थे। चूँकि महेश्वर और बलवन्त से आपकी पहले की लागडाट थी, इसलिए अपने लड़के को सिखाकर आप सफाई के लिए यहाँ चले आये। पर आपका मतलब था कि ताक में रहकर देख मौका पाते ही जबर-दस्ती गान्धर्व विवाह कर ले। फिर तो प्रभावती पति का विचार कर सती-भाव में अचल रहने के लिए चूँ भी न करेगी। ऐसा ही हुआ। महेश्वर और बलवन्त जब वसूली के लिए पूरब गये तब पूर्णमासी को— यही जो बीती है—जासूसों से पता पाकर कि प्रभावती चाँदनी में नौका-विहार करेगी, कुमार देव कुछ साथियों के साथ आये, एक दूसरी नाव पर चढ़कर प्रभावती की नाव पर पहुँचे और जबर-दस्ती विवाह कर लिया। बेचारी अबला विवश हो गयी। फिर तो पति हो ही चुके थे। उनके साथी सब विदा हो गये और देव प्रभावती के साथ विहार करते हुए बहाव में बहते गये। इसी समय ईश्वर की कृपा से उधर से बलवन्त और महेश्वरसिंह आ पहुँचे। कुमार देव और बलवन्त में तकरार हो गयी। कुमार घायल हो गये। उनकी सेवा-शुश्रूषा के लिए बलवन्त उन्हें अपने यहाँ लिये जा रहे हैं। उनका जो अपमान यह दोबारा किया गया, इसका महाराजाधिराज ही उचित विचार करें। यह हाल उन दोनों चिट्ठियों में था। चिट्ठियाँ महाराजाधिराज के पास पहुँच गयी होतीं तब तो चाचा, तुम्हें मरे कई रोज हो गये होते!" कहकर महेन्द्रपाल की टाँगें पकड़कर रोने लगा।

महेन्द्रपाल के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

फिर उन्हें गौर से देखता हुआ बोला, "फिर महेश्वरसिंह आये। महाराजाधिराज से सारा हाल कहा। उन्हें मालूम हुआ कि वे चिट्ठियाँ नहीं पहुँचीं। हरकारे को किसी ने मालदार समझकर लूट लिया, सोचा, होगा। फिर चाचा, तुम्हारी पतोहू ने उन चिट्ठियों को पढ़ा तब तुम गिरफ्तार हो चुके थे। पढ़कर बोली, महेन्द्र, तुम्हें धिक्कार है जो तुम यहाँ बैठे हो! चाचा, मेरा नाम लिया न, जो तुम कहते थे, न लेगी? फिर बोली, जाओ अपने चाचा के पास और कहो कि तुम महेन्द्र बच जाओ, मैं अपना सिर कटवाता हूँ। मैं यहाँ बलवन्त और महेश्वरसिंह की सारी कारस्तानी अच्छी तरह धोये देती हूँ। मैंने कहा, तुम्हें धोने में क्या देर होगी, तुम तो अपने आपको धोये बैठी हो, लेकिन मैं चाचा के पास जाऊँगा कैसे? बोली, ये चिट्ठियाँ किसी सिपाही के सामने गिरा दो चलते-चलते, फिर खड़े रहो, जरा दूर कुछ खाते-पीते देखते-सुनते हुए, फिर देख लो, क्या हाल होता है। फिर तो चाचा देखते हो कि क्या कमाल हुआ?"

महेन्द्रपाल पस्त हो गये। रामसिंह देखने लगा, कि वे शिथिल हो गये हैं। बोला, "चाचा तुम्हें सफाई पेश करने की फुरसत न दी जायगी; बस आज ही कल हो रहा है, जब भी कत्ल की आज्ञा निकल जाय।"

निस्तेज राजा महेन्द्रपाल कान्यकुब्ज का प्रचलित ढंग जानते थे। विचार

किस तरह पारस्परिक ईर्ष्या के कारण मन्त्रणा-भवन में ही हो जाता है, किस तरह सफाई पेश करने का मौका न देते हुए हमेशा के लिए अभियुक्त को संसार से बिदा कर देते हैं; इसके अनेक रूपों में राजा महेन्द्रपाल प्रतिस्पर्धियों के मामले में पेश आ चुके थे; बोले, "तुम ठीक कहते हो। जो कुछ मेरे सम्बन्ध में कहा है, सही मालूम देता है। पर, तुम हो कौन ?"

रामसिंह हँसा। कहा, "चाचा, मेरा परिचय तो आपको मिल चुका है। इससे ज्यादा आपकी समझ में न आयेगा। अच्छा, यह तो बताइए, कहीं किसी लड़की पर, जब वह तेरह साल की थी, रात को बदमाश उठा ले गये थे और एक नर्तकी के यहाँ बेचा था, आपकी कृपा-दृष्टि थी ? लिखाने-पढ़ाने और गाना सिखाकर होशियार कर देने की उदारता आपने दिखायी थी ?"

"हाँ।"

"इसके लिए आपने यथेष्ट धन भी खर्च किया था ?"

"हाँ।"

"क्यों ?"

राजा महेन्द्रपाल चुप रहे।

"फिर उसका क्या हुआ ?"

"फिर वह महाराजाधिराज के यहाँ नाचने आयी ?"

"अपनी इच्छा से ?"

राजा महेन्द्रपाल चुप रहे।

"वह किसकी लड़की थी ?"

राजा महेन्द्रपाल त्रस्त दृष्टि उठाकर रह गये।

"बतलाइए चाचा !"

महेन्द्रपाल लज्जित हो गये।

"उसे जो बदमाश लेकर भगे थे, उन्हें आप जानते थे ?"

महेन्द्रपाल झूठ न बोल सके।

रामसिंह मुस्कराया। कहा, "उसी ने आपको बचाने के लिए भेजा है। यद्यपि वह आपकी पाली हुई नर्तकी, लड़की है, पर मेरे सम्बन्ध से बहू है।"

"तुम्हारा मतलब सिन्धु से है !"

"हाँ, सिन्धु से। महाराजाधिराज के यहाँ से उससे बुरे तौर से आप फायदा नहीं उठा सके, इसलिए इस समय वह सच्चे तौर से आपके उद्धार के लिए कटिबद्ध हुई है।"

राजा महेन्द्रपाल कृतज्ञता के भार से सिर झुकाये हुए बैठे रहे।

शीशे की पतली पाती में लपेटी, चवन्नी से कुछ बड़े आकार के गोल काठ पर पक्के रंग से खींची एक तस्वीर गाल के भीतर से निकालकर, पर्त खोलते हुए रामसिंह ने पूछा, "अच्छा, चाचा, वीरसिंह कोई आपके यहाँ था ?"

"हाँ, था।" आशा से उमड़कर महेन्द्रपाल ने कहा।

"बड़ा बदमाश आदमी था ?"

महेन्द्रपाल फिर बैठ गये।

"अच्छा चाचा, देखिए तो, यह किसकी तस्वीर है ?" गोल काठवाला टुकड़ा रामसिंह ने महेन्द्रपाल को दिया। प्रकाश की ओर करके देखते ही महेन्द्रपाल बोले, "हाँ, वीरसिंह की है।"

"अच्छा दे दीजिए।" लेकर रामसिंह अन्यमनस्क हो गया। उसे वीरसिंह ने कभी अपना परिचय नहीं दिया। यमुना के आने के बाद उसे सन्देह हुआ था। वह हृदय से वीरसिंह का भक्त था, धीरसिंह को भी वह आचार्य मानता था। आज दोनों सूरतों के एक हो जाने से उसे जैसे जीवन्मुक्ति का आनन्द मिलने लगा। स्नेह, श्रद्धा तथा क्षोभ एक-साथ उमड़ने लगे।

"तुम परोहन खोजने की बात कहते थे, सिन्धु का परोहन कहाँ है ?" बैठे-बैठे महेन्द्रपाल ने पूछा।

"वह आदमियों को परोहन कहती है।" अन्यमनस्क भाव से कहकर रामसिंह सोचने लगा।

इक्कीस

महाराज शिवस्वरूप घोड़ा बढ़ाते हुए कान्यकुब्ज से पूरबवाले गंगा के घाट पर आये। सन्ध्या होने को कुछ समय रह गया। पार कर एक लक्ष्य से बढ़ते हुए विद्या के मकान के सामने आकर घोड़ा रोका। कुछ मजूर बाजार में खड़े थे। एक को बुलाया और दाम देकर जल्द घास और दाना आदि ले आने के लिए कहा, फिर जमकर वहीं की एक सराय में उतरे। परिचय आदि देने का पहले से अभ्यास पड़ चुका था, दबे नहीं। घोड़े के आराम और दाने-चारे का प्रबन्ध कर, स्वयं भी कुछ जलपान कर निश्चिन्त चित्त से झूमते हुए विद्या के जीने पर चढ़ने लगे। देखा, विद्या उदास बैठी है।

महाराज को देख उठकर स्नेह-सम्भाषणपूर्वक पास बैठाला, यथा-साध्य भाव को बदलने का प्रयत्न करती हुई।

"बड़ा धोखा हुआ," महाराज अनेक भावों से विद्या को देखते हुए बोले।

"क्या ?" सोचती हुई, धीरे स्वर से विद्या ने पूछा।

"आज मालूम हुआ कि प्रभावती की दासी जिसका नाम यमुना है, वही बलवन्तसिंह की बहन यमुना है।"

"हाँ," विद्या अपने स्वल्प निश्चय को मन में दृढ़ करती हुई बोली, "मुझे तो बहुत दिनों से मालूम था।"

"और उनके पति वीरसिंह को भी आज देखा। देखा तो पहले था, जब प्रागराज से आ रहे थे—साधू बने बैठे थे—क्या कहैं, माथा टेकना पड़ा, पर कोई दोख नहीं, भेख की पूजा है; पर आज पहचाना। बड़ी विपत रही।" कहकर महाराज

ने लम्बी साँस छोड़ी।

विद्या और सचेत होकर देखने लगी। महाराज अपनी यात्रा आगमन तक सारा हाल बयान करने लगे।

दरवाजा बन्द करा विद्या ध्यान लगाकर सारा विवरण सुन रही थी। देर तक महाराज ने उसका वर्णन किया। कोई वात न छूटी। अनेक प्रकार के भाव विद्या के मुख पर प्रतिफलित हुए, जिनका मतलब महाराज की समझ में प्रेयसी के विभिन्न सौन्दर्य के रूप में ही आया।

रात एक पहर का वक्त हुआ, ऐसे समय दासी ने आकर कहा, "महाराजाधिराज के यहाँ से धावन आया है, महाराजाधिराज याद करते हैं।"

आज विद्या के गाने का दिन न था, एकाएक महाराजाधिराज के स्मरण करने का कारण उसके लिए शुभफलप्रद हो सकता है, सोचकर मन में मुस्करायी। महाराज से कहा, "मुझे महाराजाधिराज के यहाँ जाना है; आप यहीं विश्राम कीजिए, मैं अधिक-से-अधिक डेढ़ पहर रात रहने तक लौटूंगी।" फिर हँसती आँखों देखती हुई, "आपको कुछ गाने-बजाने का शौक है।"

"हाँ," महाराज गम्भीर होकर बोले।

"क्या बाजा बजाते हैं?"

"बीन बजाता हूँ; अरे भाई, हमको काम कौन है? हम किसी राजा से घटकर थोड़े हैं।"

"घटकर क्यों हैं? आप तो ईश्वर के यहाँ से महाराज होकर आये हैं?"

महाराज प्रौढ़ भाव से हँसे। चपल चलती हुई विद्या बोली, "अब मुझे जरा सजना है। फिर जल्द मौका निकालकर एकान्त में मेरा आपका गाना-बजाना होगा—मैं गाऊँगी, आप बजायेंगे; फिर आप गायेंगे, मैं बजाऊँगी; बड़ा आनन्द रहेगा। देखूँ मैं आपकी चेली होती हूँ या आप मेरे चेला?"

विद्या दूसरे कक्ष में चली गयी। महाराज मन-ही-मन संकोच कर रहे थे। सोच रहे थे, संसार कुछ नहीं, धर्म ढकोसला है; कहीं भी यहाँ का जैसा आनन्द नहीं; विद्या के साथ एकान्त में जो सुख होगा, वह स्वर्ग में दुर्लभ है। प्रभावती के साथ आने का यह सबसे बड़ा लाभ हुआ। आगे-पीछे कोई है ही नहीं। माँ गाँव में पड़ी रहेगी। उसे कोई कष्ट न होगा। मुझे भी और क्या चाहिए।

महाराज इसी प्रकार की कल्पनाओं के स्रोत पर बह रहे थे कि विद्या सजकर सामने आ खड़ी हुई। महाराज आश्चर्य से देखने लगे।

फर्श पर अँगूठे की रगड़ से नूपुरों की रणन गुंजाकर मधुर स्वर से अप्सरा ने पूछा, "यहाँ रहते हुए आपको कोई चिन्ता अवश्य नहीं!"

"कुछ नहीं; चिन्ता तो हम बहुत पहले छोड़ चुके हैं। वहाँ सराय में घोड़ा बँधा है, कोई खोल तो न ले जायगा?"

"मेरे नौकर को लेकर सराय से घोड़ा और सामान ले आइए। मैं जाती हूँ।"

नीचे रथ सजा था। साजिन्दे बैठे थे। बीच विद्या बैठ गयी। रथ राजमहल की ओर चला।

बाईस

मणि-फलित सहस्रों दीप के आलोक से प्रमोद-भवन झलमला रहा है। देहरी, द्वार, खम्भे पटाव से लेकर समस्त वस्तुएँ, राजासन आदि भारत की श्रेष्ठ कारीगरी के आदर्श। चारों ओर से द्वार मुक्त। एक ओर शुभ्र जाह्नवी की जलधारा रात्रि की नीलमसिरेखा-सी प्रतीत होती हुई। अपर तीन पार्श्व प्रकृति के अन्य शोभन दृश्य नैश अन्धकार की अस्पष्टता से स्पष्ट करते हुए। मुक्त हवा सुगन्धियों से भीगी बहती हुई। भीतर और बाहर की समस्त दृश्यावली, तारकाखचित आकाश तक, जैसे इस महाशक्ति को मानकर नत होती हुई आज्ञापूर्ति के लिए सन्नद्ध है—महाराजाधिराज के मनोरंजन के लिए उद्यत। सारे फर्श पर सुख-स्पर्श बिस्तर लगा। पान और पात्र राजासन के सामने मणिपीठ पर रक्खे हुए। प्रवेश-द्वार पर सशस्त्र सिपाहियों का पहरा।

महाराजाधिराज की आज्ञानुसार सेवकों ने केवल नर्तकी को छोड़ने के लिए कहा था; इसलिए साजिन्दों को सिपाहियों ने बाहर प्रतीक्षा करने के लिए कहा, जब तक संगीत के लिए संगत की आज्ञा से पुकार न हो। केवल विद्या नूपुरों के मधुर रव से विलास के उस आकाश और सौध को रणित करती हुई कक्ष के भीतर गयी। पूर्ण प्रौढ़ महाराजाधिराज जयचन्द बैठे हुए विचारमग्न, सेविकाएँ चवर ढुरती हुई। एक बगल विद्या हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी। आँख उठाकर महा-राजाधिराज मुस्कराये। नम्र, मुस्कराहट से उत्तर देती हुई विद्या पात्र पूर्ण कर मधुर भंगिमा से हाथ बढ़ाकर खड़ी हुई, महाराज ने ले लिया, और चवर ढुरने की आवश्यकता नहीं, हाथ के इशारे से सूचित किया। समझकर चपल भाव को हृदय में दबाकर दासियाँ सिर झुकाये हुए, महाराज को दाहिने रखकर बगल से बढ़ती हुई कक्ष के बाहर हो गयीं।

एक पात्र स्वयं भरकर प्रेयसी को पास बैठा, प्रौढ़ महाराजाधिराज ने उसके सुकुमार होंठों से लगाया, एक बाँह से उसे आवृत करते हुए। मुस्कराकर विद्या ने पी लिया। एक पात्र उसने पुनः तैयार कर पिलाया। सुरा का तड़ित प्रवाह अंगों को प्रभावित करने लगा। आज्ञा हुई, स्वल्पझंकृत वीणा से तानें अलापो। पास सजी रक्खी हुई महाराजाधिराज की वीणा विद्या ने उठा ली। दो-एक बार मीठी झंकार कर वाद्य में अलाप लेने लगी। मर्मज्ञ महाराज एक दृष्टि से स्वर की परीक्षा कर मुग्ध होते रहे।

अलाप समाप्त कर विद्या ने एक पात्र और पिलाया और फिर दूसरी रागिनी में अलाप लेने लगी। महाराजाधिराज निपुणता पर मन से निछावर हो गये।

फिर बिना वाद्य के ताल-युक्त भाव-नृत्य करने के लिए कहा।

विद्या उठी। बायें हाथ से क्षुद्र स्वच्छ शीशा और दाहिने से प्याला लेकर नृत्य करने लगी। महाराजाधिराज के अज्ञात एक दूसरे भाव से आज उसका हृदय उद्वेलित था, उसके नृत्य और भाव के प्रति प्रदर्शन पर उसकी तरंगें उठ-उठकर राजेश्वर में आवेश भरने लगीं। सुरा-सुन्दरी स्वयं जैसे नृत्य कर रही हो। नर्तित-

पद ताल पर बढ़ती हुई भावपूर्ण विविध भंगिमाओं से विद्या महाराज को आसव पिलाती रही। नशे में यह दृश्य कान्यकुब्ज के समस्त ऐश्वर्य से कान्यकुब्जेश्वर को बढ़कर प्रतीत होने लगा।

प्रसन्न होकर बोले, "तुम्हारी जो इच्छा हो, माँगो।"

विद्या प्रसन्न होकर बोली, "महाराजाधिराज की कृपा-दृष्टि से बढ़कर भी कुछ ?"

"नहीं, माँगो।"

"सेविका तो कृपा-दृष्टि ही चाहती है !" कहकर, हाथ बाँधकर विद्या मराल-ग्रीवा बनकर नम्र-दृष्टि ये मन्दस्मित खड़ी रह गयी।

उठकर, उसकी ललित अंजलि खोलकर, मुग्ध प्रौढ़ महाराज आयत तिर्यक आँखें देखते हुए बोले, "तुमने प्रार्थना कभी नहीं की; सदा यही शब्द कहे !"

"हाँ, याद आयी," आँखें फेरकर विद्या बोली, "मेरा एक बीनकार कैद कर लिया गया है।" फिर खिलखिलाकर हँसी। "महाराजा राजेश्वर के सिपाही और सरदार बड़े विचित्र मालूम होते हैं !" फिर एक तरफ मुँह फेरकर बोली, "रास्ते में उसे दो चिट्ठियाँ पड़ी मिली थीं। एक सरदार महेश्वरसिंह की लिखी थी, एक सरदार बलवन्तसिंह की। क्या शादी का झगड़ा था ? महाराजाधिराज के नाम थी। मैंने उससे कहा, तू किसी सिपाही को दे आ जाकर। वह डर रहा था। मैंने भगवानदास को साथ कर दिया। लौटकर भगवानदास ने कहा कि मारे डर के उसने सिपाही के हाथ में चिट्ठियाँ नहीं दीं, सामने डाल दीं। फिर सरदार को चिट्ठियाँ दिखाकर सिपाही ने उसे गिरफ्तार कर कैदखाने में डाल दिया।" खिलखिलाकर बोली, "अब महाराजाधिराज को समझ लेना चाहिए कि बहुत जल्द हमारी पल्टन महाराजाधिराज पर चढ़ाई करनेवाली है !"

महाराज जयचन्द हँसे। बोले, "हाँ, वे चिट्ठियाँ हमें मिली हैं। पर वह तुम्हारा साजिन्दा है, यह किसी को कैसे मालूम होता ? तो तुम उसकी मुक्ति चाहती हो ?" मन में उसकी माँगने की क्षुद्रता पर मुस्कराये।

"हाँ; महाराजाधिराज की बड़ी कृपा और क्या होगी कि बेचारे निर्दोष मनुष्य की आज ही मुक्ति हो जायेगी।"

"उसका नाम क्या है ?"

"महेन्द्रपाल।"

"महेन्द्रपाल ?"

"हाँ।"

"राजा महेन्द्रपाल भी कैद में हैं।"

"यह मुआ कहाँ मर गया राजा महेन्द्रपाल ! यह रागी महेन्द्रपाल है।"

"अच्छा, मुक्ति का परवाना लिखो। हम मुहर देते हैं, कर लो—वह देखो पत्र, मसिपात्र और लेखनी सब वहाँ रक्खे हैं। लिखो।"

विद्या ने लिखा, "रागी महेन्द्रपाल को निर्दोष जानकर मुक्ति दी जाती है।" फिर उस पर महाराजाधिराज की मुहर कर दी। दिखा दिया। नशे में महाराज जयचन्द ने नहीं देखा। उसने 'राजा' 'रागी' की लिखावट में भेद न रक्खा था।

ईकार को आकार ही रक्खा था। यथासमय महाराजाधिराज की आज्ञा पर बिदा हुई।

तेईस

रात का तीसरा पहर अभी पूरा नहीं हुआ, वैसे ही सजी हुई विद्या हाथ में दीपक लिये अकेली काराद्वार पर उपस्थित हुई। महाराजाधिराज की इस नर्तकी से कान्यकुब्ज के सैनिक तुष्ट रहते थे। इसका एक कारण था, अधिक उपार्जन-सम्मान पानेवाली अपर नर्तकियों में जैसे विद्या में अहंकार न था, स्नेह के विचार से यह महाराजाधिराज के अधिक निकट पहुँची हुई थी, सिपाहियों से सरदारों तक सभी को यह रहस्य ज्ञात था। बात सबसे बड़ी जो थी, वह यह कि राज्य-विभाग के हर एक मनुष्य को विद्या मीठी मुस्कान से स्नेहसिक्त कर देती थी; उसका ऐश्वर्य स्नेह था। सिपाही दर्प से लड़ता, स्नेह से नम्र होता है।

रहस्यमय स्नेह की दृष्टि परवाने के साथ कारा-कर्मचारी के सामने बढ़ी; खड़ा सिपाही भी देख रहा था। कर्मचारी ने कहा, "राजा महेन्द्रपाल की मुक्ति का आज्ञा-पत्र है।" परवाने को देखते हुए रख लिया। सिपाही काराद्वार खोलने लगा।

विद्या सभंग अंगों से नम्र होकर बोली, "आपकी आज्ञा हो तो मैं राजा महेन्द्र-पाल को रास्ता दिखाकर ले आऊँ; आपके किसी सिपाही को कष्ट देना नहीं चाहती।"

जहाँ अन्य स्वार्थ का लेश नहीं रहता वहाँ भी सुन्दरी युवती की दृष्टि और स्वर का प्रसाद लोग चाहते हैं। कर्मचारी को इस निरुपमा नर्तकी की इच्छा-पूर्ति में केवल दृष्टि और स्वर का प्रदान न मिल रहा था, आकांक्षा और दूर, उसकी प्रशंसा से होनेवाली भविष्योन्नति के ध्रुव-नक्षत्र पर थी, मार्ग न रोकने के लिए सिपाही को आज्ञा दी। सिपाही स्वयं भी हृदय से ऐसी कामना कर रहा था, ससम्भ्रम विद्या को भीतर जाने के लिए हाथ बढ़ाकर सम्वर्द्धित किया। विद्या भीतर गयी।

नूपुर-गुच्छ की श्रुति-मधुर रणन निश्चेतन कारागृह में प्राणों से प्लुत नवीन जीवन का संचार करने लगी। ज्योतिश्चुम्बी भौंरों की गूंज जैसे कमलों में फुल्ल होने के कारण हुई।

राजा महेन्द्रपाल की अभी-अभी पलकें लगी थीं; रामसिंह देर से खर्राटा भर रहा था। दोनों चौंककर एकाएक बैठ गये। रुक्ष प्रकाश में आँखें तिलमिला गयीं। मलकर अच्छी तरह देखने लगे।

देखकर, "आप आ रही हैं!" रामसिंह ने अभिनन्दन किया। अचपल दृष्टि विद्या धीरे-धीरे बढ़ती हुई रामसिंह के पास आकर खड़ी हुई।

पहचानकर, "सिन्धु !" कहकर राजा महेन्द्रपाल आश्चर्य से देखने लगे।

"हाँ।" कहकर विद्या स्थिर दृष्टि से रामसिंह को देखने लगी। देखते-देखते आँखें सजल हो आयीं।

"तुम्हारा अनुमान ठीक था, विद्या ! यह लो, ये वही हैं।" कहकर रामसिंह ने धीरसिंह का वह चित्र मुँह से निकालकर विद्या को दिया। धीर भाव से विद्या ने ले लिया।

राजा महेन्द्रपाल इस अभेद्य रहस्य के प्रति निःशब्द देखते रहे।

"आचार्य को सूचित कर दूँगा यदि समय प्राप्त हुआ, कि शिष्य ने पूर्णरूप से आचार्य को आत्मा में मिला लिया है।" संयत धीर शब्दों में रामसिंह बोला।

विद्या मौन खड़ी रही। केवल कुछ बूंदें आँसुओं की, शरत् की शेफाली के पत्रों से ओस-जैसे पृथ्वी पर टपकीं।

"चिन्ता क्या है ! इस जीवन में न मिले तो फिर मिलेंगे, विद्या ! जाओ।"

देखकर विद्या फिर स्थिर खड़ी रह गयी।

"कार्य हो गया ?" रामसिंह ने धीर मन्द स्वर से पूछा।

"हो गया।" विद्या ने एक हाथ उठाकर प्रिय के स्कन्ध पर रखा। दूर रखा दीपक पार्श्व से दोनों के मुखों को प्रकाशित करता रहा।

"अच्छा अपना उद्देश्य पूर्ण करो।"

विद्या फिर खड़ी रही।

"चाचा," रामसिंह ने मजाक के स्वर में कहा, "देखिए, मार्गाचलव्यति करा-कुलितैव सिन्धुः !" फिर विद्या का हाथ पकड़कर द्वार की ओर ले चलते हुए, "चाचा, इनके साथ जाइए, आप मुक्त कर दिये गये।" फिर दीपक लेकर हाथ में रखते हुए, "चाचा को अच्छी तरह दिया दिखाकर ले जाओ, नहीं तो बुढ़ापे में कहीं गिर पड़ेंगे तो दाँत टूट जायेंगे, फिर तुम्हीं को सेवा करनी पड़ेगी। अच्छा, चाचा, चरण छूता हूँ।"

मन्द-चरण विद्या, साथ-साथ राजा महेन्द्रपाल काराद्वार से बाहर हो गये। प्रकाश में एक दृष्टि से रामसिंह विद्या की छवि-गति देखता रहा। कारा का द्वार फिर बन्द हो गया। फिर फिरकर विद्या ने नहीं देखा। सीधे अपने घर की ओर राजा महेन्द्रपाल को ले चली।

वहाँ कुछ भोजन कराकर उसी समय घोड़े पर चढ़कर सुबह होते-होते दूर निकल जाने के लिए कहा, और संक्षेप में सारा हाल समझाकर बतला दिया कि अनुकूल कारणों के प्रकट होने के पूर्व वे प्रकाश में न आयें, उनके लिए अच्छा न होगा, और उसे निकालकर भी पालन करने की अपनी कृपा का इसे ऋण-शोध-रूप समझें। राजा महेन्द्रपाल प्रभात होते-होते विद्या के दिये एक घोड़े पर, निशा के कलंक की ही तरह, अदृश्य हो गये।

महाराज शिवस्वरूप विद्या के पलँग पर बेखबर सो रहे थे। अब तक क्या हुआ, नहीं मालूम। ऐसी सेज इस जीवन में पहले-पहल मिली थी। जब जगाये गये तब विद्या अपनी बड़ी-बड़ी कुल वस्तुएँ प्रातःकाल ही नौकरों को आपस में बराबर बाँटकर चले जाने के लिए देकर, अलंकारों की एक गठरी बाँधकर,

आवश्यक कुछ सामान और लेकर, महाराजवाले घोड़े के साथ अपना घोड़ा सजवाकर, पुरुष-वेश में भागने के लिए तैयार हो चुकी थी। आँखें खोलकर प्रेयसी को पुरुष-रूप में देखकर महाराज ने आश्चर्य से पूछा, "क्या है ?"

"तुम्हारे साथ भागने को तैयार हो गयी।"

"कहाँ ?"

"यहाँ-वहाँ जहाँ चाहो, उठो जल्द।"

चौबीस

प्रातःकाल आँख खुली तो प्रभा के पास एक अपरिचित मनुष्य को बैठा देखा। अब मन में किसी प्रकार का आवेग न रह गया था। एक निश्चय की प्रतिमा बन गयी थी। जिस यमुना ने उसकी सेवा की, उसकी बहन को प्रसन्न करके, स्वेच्छा से अपना स्थान उसे देकर वह उस सेवा का सहृदय बदला चुकायेगी। अब राजकुमार के भविष्य की भी उसे चिन्ता नहीं रह गयी। कारण, इससे अधिक राजकुमार के भविष्य के लिए वह कुछ न कर सकती थी। अब केवल एक कर्त्तव्य उसकी दृष्टि में रह गया है, वह यह कि वह राजकुमार की दृष्टि से दूर पृथ्वी में कहीं अदृश्य हो जाय, जिससे उनके गले में रत्नावली के हार पड़ने में कोई संशय न रहे। वह उसे प्यार करते हैं, इतनी स्मृति उसके लिए बहुत है। पत्नी को इससे अधिक और चाहिए भी क्या ? दीदी अवश्य किसी कर्त्तव्य से विवश होकर गयी हैं। अब उनसे भी मिलने की ऐसी क्या आवश्यकता है ?

उठकर बैठते ही, उस अपरिचित मनुष्य को देखते-देखते, उसके मस्तिष्क में ये भाव चक्कर लगा गये। मन्द गति के सरायन के तट पर चलकर हाथ-मुँह धोया। सोचा, स्वतन्त्र जीवन का यह पहला कार्य हुआ। 'क्या शान्ति मुख पर विराज रही है ?'—अपरिचित मनुष्य एकटक देखता रहा।

प्रभा उसी जगह आकर बैठ गयी। जीन पर दृष्टि गयी। चिट्ठी निकालकर पढ़ने लगी। कुछ शंका हुई, पर स्थिर होकर वह चिट्ठी उसी तरह रख दी, फिर उस अज्ञात मनुष्य की ओर रुख किया, "तुम कौन हो ?"

"कलवाला सिपाही, जिसके पहरे पर आप चारदीवार के भीतर गयी थीं।"

"तुम्हारा नाम ?"

"महादेवसिंह।"

"फिर क्या हुआ ?"

"फिर कोई आया था, कुमारीजी उनके साथ चली गयीं। आपको आने में देर हो गयी। मेरी बदली का समय आ गया था, रस्सी यों भी निकाल देनी पड़ती।"

"हाँ, तुम्हारी बदली की मुझे याद न थी। तुम उन्हें कुमारीजी कैसे कहते हो ?"

"वे हमारे ही यहाँ की कुमारी हैं, मैंने उन्हें बचपन से देखा है।"

"उन्होंने तुमसे क्या कहा ?"

"आपकी रक्षा के लिए कहा, स्थान बतलाया कि उस जगह घोड़ा बँधा है। मैं पहरे से छूटकर हर फाटक पर खड़ा होता था कि अगर कोई अड़चन आपको पड़े जब आप फाटक पार कर रही थीं। मैं जल्द बढ़कर दूसरे फाटक पर आ जाता था। आप जब घाटवाला फाटक पार कर गयीं, तब मैं एक बार डेरे गया, फिर यहाँ लौटा; घड़ी-भर की देर हुई होगी। देखा, आप सो गयी हैं।"

प्रभा मुस्कुरायी; कहा, "तुमने मेरी पूरी रक्षा की, महादेव; तुम मेरे लिए साक्षात् महादेव हुए।"

महादेव नम्र हो गया।

"तुम मुझे पहचानते हो ?" मधुर कण्ठ से प्रभा ने पूछा।

"पहचानता हूँ, कुमारीजी ने चलते समय बतला दिया था।"

प्रभा गम्भीर हो गयी। ईश्वर की कृपा सोचकर मन में कृतज्ञ हुई कि इस नाम के साथ प्रिय पति का नाम सम्बद्ध है, पुनः स्मरण में आने के लिए; भरकर बोली, "महादेव, यहाँ तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं ?"

"कुमारीजी, जहाँ सिपाही को, सच्चे सिपाहियों की जगह, गिरा देनेवाली चालें, छल देख पड़ता है, जहाँ पेट भरने के अलावा जीने-मरने का प्रश्न प्रति क्षण उसे नहीं हल करना पड़ता, वहाँ सिपाही, सिपाही नहीं मजदूर बन जाता है। यह उसके लिए सिर ऊँचा रखने की बात नहीं।"

"झुके सिर के लोग सुखी नहीं, इसकी साक्षी वे स्वयं भरते रहते हैं। पर, कुमारीजी, अब आपको जल्द यह स्थान छोड़ना चाहिए।"

प्रभा सोचने लगी। कुछ क्षण वातावरण स्तब्ध रहा। ज्यों-ज्यों प्रभा गहन से गहनतर क्षेत्र में प्रवेश करती गयी, निकलकर स्थिर दृष्टि सिपाहियों पर रखते हुए पूछा, "तुम मेरे साथ रहोगे ?"

सिपाही खुश हो गया। बोला, "आपके साथ मुझे अच्छा सुख होगा।"

"और लोग तुम्हारा साथ देंगे ?"

"मेरे गिरोह के बीस आदमी हैं, उन पर मुझे विश्वास है, वे देंगे।"

"अन्याय के समक्ष, मैं उन्हें धर्म के रास्ते रोटियाँ देने के लिए कहती हूँ।"

"आप लोगों पर हमें पूरा विश्वास है।"

"अब मैं अकेली नहीं हूँ।" प्रभा की आँखें सूर्य का प्रकाश भर रही थीं। सिपाही का हृदग्र शौर्य से तन गया।

"मुझे आप पर, कुमारीजी पर जैसा विश्वास है।"

"ठीक, मैं उन्हीं के चरण-चिह्नों पर चलती हूँ। जाओ, साथियों को ले आओ। पर तुम लोग इसी राज्य के हो या दूसरे के ?"

"इसी के।"

"तुम पर अत्याचार हो सकता है, यदि छुट्टी के बाद न लौटे, या मेरे साथ

रहने का कारण खुल गया।" पलक मारते सोचकर, "पर चिन्ता नहीं। मैं शीघ्र शक्ति बराबर कर लूंगी; मैं कहाँ तुम्हारी प्रतीक्षा करूँ ?"

"कुछ आगे और, गोमती-सरायन का संगम है; गोमती के किनारे, एकान्त है, कोई देखेगा भी तो यहाँ का आदमी सोचेगा।"

सिपाही चलने को हुआ। प्रभा ने पुन: सोचकर कहा, "सुनो, यह जितना अर्थ विलास में खर्च होता है, इसका चौथाई भी तुम्हें नहीं मिलता, समझते हो ?"

"जी, हाँ।"

"यह अर्थ तुम्हीं देते हो ?"

"जी।"

"बलपूर्वक तुमसे लिया जाता है ?"

"जी।"

"बलपूर्वक ले लेने में अधर्म है। यदि अक्षमों को उदारता से बाँट दिया जाय ?"

"कुछ नहीं।"

"तो यही हमारा उद्देश्य होगा। हम इसी तरह शक्ति बढ़ायेंगे। जब तक समर्थ न हों, कर वे वसूल करेंगे। फिर देखा जायगा। व्यवस्था ईश्वर की है। मनुष्य तो अपने लाभ के नियम बनाता है। हमारा लक्ष्य ईश्वर है, कार्य दुखों का दूरीकरण, उचित उपाय से। उस अर्थ-ग्रहण में दोष नहीं, जिससे भूखे अन्न पायें; यही व्यवस्था स्थित होती है। क्या कहते हो ?"

"आप ठीक कहती हैं।"

"अच्छा, बलवन्त तहसील के लिए गये थे, कर लेकर लौटे नहीं; किसी कार्य से जल्द कान्यकुब्ज जा रहे थे; उनके वसूल किये कर का क्या हाल है ?"

"मालूम नहीं; वह उसी तरफ से सीधे, सम्भव है, कान्यकुब्ज जाय, या जाता हो।"

"हाँ," प्रभा गम्भीर हो गयी, "कर के साथ एक गाँव से दूसरे गाँव तक गाँव-वालों की सहायता रहती है, यों पाँच-सात आदमी से ज्यादा नहीं रहते—क्यों ?"

"जी, हाँ।"

"अच्छा फिर सोचा जायगा। तुम लोग जल्द जाओ। छुट्टी लेने की क्या आवश्यकता है जबकि निश्चित समय पर फिर हाजिर होना नहीं ?—ऐसे ही चले आओ।"

सिपाही डेरे की तरफ गया। प्रभावती घोड़ा साजकर संगम की तरफ चली।

गंगा के उत्तर पार एक दूसरी आढ़त में घोड़े छोड़कर वीरसिंह और यमुना पैदल कान्यकुब्ज आये, देखा, रामसिंह के कैद होने की वैसी हलचल नहीं जैसी राजा महेन्द्रपाल के छुटकारे के बारे में है। लोग कह रहे हैं, यह सारी सिन्धु की, की हुई कारस्तानी थी, वह राजा महेन्द्रपाल को चाहती थी, लेकर भाग गयी, एक दूसरे बेवकूफ धोबी को उनकी जगह फँसा गयी। वे चिट्ठियाँ राजा महेन्द्रपाल की छीनी हुई थीं, उन्होंने उनसे काम निकालने के लिए सिन्धु को दी थीं।

वीरसिंह को यह समझते देर न हुई कि चिट्ठियाँ जबकि रामसिंह के पास थीं और उन्हीं चिट्ठियों के कारण वह गिरफ्तार हुआ है, तब सिन्धु से रामसिंह का भला-बुरा कोई सम्बन्ध जरूर रहा होगा और नर्तकी सिन्धु रामसिंह की मर्जी के खिलाफ राजा महेन्द्रपाल को छुटा न सकती थी। पुनः कुछ पहले महाराज शिव-स्वरूप को मिली विद्या नाम की एक नर्तकी के समाचार यमुना से वीरसिंह को मिल चुके थे। निश्चय किया, यह विद्या ही सिन्धु है; विद्या नाम की कान्यकुब्जे-श्वर की कोई नर्तकी नहीं; इसकी राजा महेन्द्रपाल के वंश की ओर सहानुभूति है यह प्रमाण मिल चुका है। शिवस्वरूप महाराज के कहने के अनुसार, यह उनकी जान-पहचान की है। कुछ हो, आगे मालूम हो जायेगा। वीरसिंह ने यमुना से सलाह ली।

यह सब पता वीरसिंह ने रामसिंह के अड्डे पर संन्यासी-वेश में रहकर लगाया। वहाँ धोबी और धोबिनें रहती थीं। वे सब पछाँह के रहनेवाले थे। संन्यासी-वेश वीरसिंह का नाम बाबा अमरनाथ था—यहाँ इस समय इसी नाम से वे मशहूर हैं। रामसिंह जैसे कुछ साथियों को उन्होंने सिखलाकर तैयार किया था। ये लोग इनकी तपस्या का प्रचार कर रहे थे, और कह रहे थे कि बाबाजी की निगाह में बड़े-छोटे, ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं, वे सभी को सम देखते हैं, मन्त्र देते हैं। इससे कुछ धोबी पहले-पहल फँसे। फिर उनकी देखा-देखी उनकी बिरादरी के और दीक्षित हुए। फिर बाबाजी ने सलाह दी कि कान्यकुब्ज में चलकर बसा जाय तो फायदा ज्यादा होगा। धोबियों का एक गिरोह इस तरह कान्यकुब्ज में आकर बसा। रामसिंह साथ आया। यह यहाँ रहकर कार्य की सिद्धि करने का एक उपाय हुआ। रामसिंह इनमें धोबी बनकर ही रहता था। आपस में बड़ी प्रीति थी। कभी-कभी बाबाजी आते थे। बड़ी आवभगत होती थी। इस बार यमुना को साथ लाकर धोबियों से परिचित कराते हुए कहा कि छँगुनियाँ की भौजी है, देवर को देखने आयी है। धोबिनें बड़े स्नेह से मिलीं, बहुत रोयीं कि छँगुनियाँ पकड़ लिया गया है। यमुना भी रोयी। फिर सब ढाढ़स बँधाने लगीं कि अब के सरदार के कपड़े लेकर जायँगी तो कहेंगी, कर नहीं तो डर क्या है।

अन्यत्र पृथ्वीराज की तरफ से काम करनेवालों में, रामसिंह अपने सच्चे नाम से प्रसिद्ध था, बाबा अमरनाथ को लोग धीरसिंह जानते थे। पूर्व में धीरसिंह की वीरता की बड़ी ख्याति थी। वह लापता भी था। धीरसिंह भी चौहानों में अज्ञात-

कुलशील महोबिया होकर मिला था। उन्हें संशय न हो, इसलिए मशहूर कर रक्खा था कि वीरसिंह ने कान्यकुब्ज में, ऊदल से मित्रता कर ली थी और महोबे की लड़ाई में लड़ता हुआ काम आ गया है। वहाँ रामसिंह के गिरफ्तार होने का कोई राजनीतिक कारण न मालूम हुआ।

नेत्रपल्लवी द्वारा यमुना से सबकुछ कहकर समझा दिया। निश्चय हो गया कि रामसिंह सिन्धु से मिलकर स्वेच्छया राजा महेन्द्रपाल को मुक्त करने के लिए कैद हुआ है, क्योंकि रागी महेन्द्रपाल की मुक्ति के लिए कान्यकुब्जेश ने आज्ञा दी थी; सिन्धु ने उसे अपना बीनकार कहकर उनसे परिचय दिया था, फिर उनकी आज्ञानुसार आज्ञा-पत्र लिखते हुए, 'रागी' को अस्पष्ट 'राजा' के रूप में रहने दिया था।

छब्बीस

बलवन्त को लेकर सिपाही उसी दिन कान्यकुब्ज नहीं पहुँच सके। रास्ते से एक गाँव में रह गये। घाव भीगने पर पीड़ा बढ़ गयी थी; मरहम-पट्टी करनी थी। दो दिन बाद पालकी पर लेकर गये। पहलेवाले सिपाही बलवन्त के थे; बाद को उनकी मदद के लिए आये हुए गाँव के जन।

बलवन्त की खबर कान्यकुब्ज में घर-घर फैल गयी। पर उसका असली रूप बदला हुआ था। घायल होने के कारण में राजा महेन्द्रपाल ही लपेटे हुए थे कि वीरसिंह छिपे तौर से राजा महेन्द्रपाल की मदद के लिए रहता है; उसी ने उन्हें अधिक सिपाहियों के साथ घेरकर घायल किया है, उन्हें न जाने कहाँ ले जाना चाहता था, घायल हो जाने पर एक नाले में ले जाकर रक्खा था, तब तक उनके बहादुर सिपाही, जो उन्हें बचाने के लिए भाग गये, गाँवों से बराबर की मदद लेकर जल्द लौटे, पर वीरसिंह और उसके साथी उन्हें छोड़कर डरकर भाग गये। एकान्त में अपने सिपाहियों को बलवन्तसिंह ने ऐसा ही कहने के लिए सिखाया था। मदद के लिए गये हुए गाँववालों को असली कारण मालूम न था।

बलवन्तसिंह कान्यकुब्जेश्वर के प्रासाद में बहुत अच्छी जगह रक्खे गये, और अच्छे से अच्छे राजवैद्य उनकी औषधि के लिए नियुक्त किये गये।

उसी दिन सन्ध्या समय संवाद मिला कि राजा बलवन्तसिंह का वसूल किया हुआ कर जो कान्यकुब्ज के लिए आ रहा था, मार्ग में लूट लिया गया, साथ के अधिकांश सिपाही घायल हो गये हैं। उन्हीं में से भागे हुए एक ने कहा। किसने लूटा, यह उसे मालूम न हुआ था; क्योंकि, कर के साथ घिरे दो-चार सिपाहियों के गिरते ही भविष्य-फल का निश्चय कर वह भगा था।

एक के बाद दूसरे, सभी आरोप राजा महेन्द्रपाल पर उत्तम रूप से चलाये

गये। कान्यकुब्जेश्वर का धैर्य जाता रहा। सरदारों को बुलाकर उन्होंने सलाह ली। सरदारों ने कहा कि भगे हुए महेन्द्रपाल अब लालगढ़ में आश्रय नहीं ले सकते। इसी तरह अपने दल के साथ लूटते-खाते फिरेंगे, जब तक इसका दमन होता है, तब तक इस अक्षम्य अपराध का दण्ड भी उन्हें दिया जाय; अब संशय की बात नहीं रही।

सुनकर, देर तक विचार करने के पश्चात् महाराजाधिराज कान्यकुब्जेश्वर ने आज्ञा की; इस अपराध का दण्ड वध है। पर महेन्द्रपाल अधिकार से बाहर हैं, इसलिए साल-भर यह आज्ञा जारी रहेगी; उन्हें पकड़कर देनेवाले को पुरस्कार-स्वरूप पाँच गाँव भूमि निष्कर दी जायगी; और कान्यकुब्ज से राजा महेश्वरसिंह के नायकत्व में दस सहस्र सेना लालगढ़ लूटने के लिए भेजी जायगी। लूट की सारी वस्तुएँ, अस्त्र और अर्थ कान्यकुब्ज-कोष में जमा होंगे, इससे कर लूटने की क्षति की पूर्ति होगी, और देवसिंह को, पिता के अवैध कार्य की सहायता करने के कारण, सदा के लिए कान्यकुब्ज-भूमि से बहिष्कृत होने का दण्ड दिया जाता है। लालगढ़ के पूर्व और दक्षिण के चार पत्तन राजा महेश्वरसिंह को दिये जाते हैं और बाकी उत्तर और पश्चिमवाले समस्त राजा बलवन्तसिंह को।

आज्ञा यथाविधि लिखी जाकर महाराजाधिराज की मुहर और नामाक्षरों में चिह्नित हो गयी।

इसी समय सरदार भीमसिंह ने कहा, आज मेरी धोबिन के साथ एक औरत आयी थी, वह उन चिट्ठियों के सन्देह पर पकड़े गये छँगुनियाँ धोबी की भावज थी। उस धोबी को बुलाकर उससे पूछतांछ कर ली जाय; वह निर्दोष हो तो उसे बन्दी रखने से क्या फल होगा? महाराजाधिराज तक इन धोबियों की पुकार पहुँचेगी नहीं, और वह वैसे ही पड़ा सड़ता रहेगा। वह है भी राजनीतिक बन्दियों के कारागार में।

मुस्कराकर महाराज जयचन्द ने उसे ले आने की आज्ञा दी।

कुछ देर बाद, आधी बाँह की तनीदार मिर्जई पहने रामसिंह सिपाहियों की रक्षा में हाजिर किया गया; महाराजाधिराज को देखकर जमीन पर माथा टेककर उसने प्रणाम किया और उड़ी निगाह से देखने लगा।

"तू कौन है?" भीमसिंह ने पूछा।

"महाराज, छँगुनियाँ धोबी।"

"क्या करता है?"

"महाराज अपना काम करता हौं; आप लोगन के कपड़े धोता हौं।"

"तुझे चिट्ठियाँ कहाँ मिलीं?"

"महाराज, बाईजी से।"

भीमसिंह ने महाराजाधिराज की ओर देखा। इशारा पाकर फिर पूछा, "कैसे बाईजी से चिट्ठियाँ तूने लीं?"

रामसिंह रोनी सूरत बनाये आँखें मलता हुआ, वैसी ही आवाज में बोला, "मैं का जानौं, का लिखा है? मुझसे कहा कि भगवानसिंह सिपाही के सामने डाल दे, उनको छूकर देगा तो मारेंगे; मैं इनाम देऊँगी? मैं उनके कपड़े लेने गया था।

जैसा कहा, वैसा ही किया। भगवानसिंह ने चिट्ठियाँ उठायीं, मैंने दूर से सलाम किया। फिर पढ़कर मुझे पकड़ ले गये। रात को बाईजी गयी थीं; मुझसे बोलीं, ऐसे ही छुट जायगा घबरा मत।" लोग हँसने लगे। रामसिंह छोड़ दिया गया।

सत्ताईस

बाबा अमरनाथ कुछ समय तक धोबियों के यहाँ रहे, फिर अपने संगठन की पर्यालोचना करके पहले अड्डे में चले गये।

रामसिंह सीधे मकान गया। कुछ धोबी दरवाजे पर बैठे थे। बहुत खुश हुए। एक बुड्ढे ने सस्नेह कहा, "छँगुनियाँ रे, कहाँ मरा था ? सरदार भीम बाबा से कितना रोयी बहोरिया तेरे लिए, और तेरी भौजी भी आयी है, गयी थी उसके साथ, बेचारी रोती रहती है जब से आयी।"

रामसिंह ने बड़ों के पैर छुए, राम-राम की, कहा, "धोबी की जात, गँवार, चहै जो फँसाव ले चाचा !"

कहकर भीतर गया। कौन भौजी आयी हैं, जानने की उत्सुकता बढ़ी। यमुना आँगन में खड़ी थी। रामसिंह यमुना को देख चुका था। निस्सन्देह भक्ति-भाव से पैर छुए, कहा, "भौजी तुम्हारी किरपा से बच गया। यहाँ आते तुमको बड़ी तकलीफ हुई होगी। भय्या का मेरे ऊपर बड़ा स्नेह है, नहीं तो तुमको आने न देते ! मुझको गँवार जानकर भौजी सब धोखा देते हैं !"

धैर्य रखने में इतना कष्ट यमुना को कभी नहीं पड़ा। कन्धे पर हाथ फेरती हुई बोली, "देवर राजा, अपने भाग बचे, अपना भाग फूलौ-फलौ, हमैं भी आँखों देखे का सुख है।"

और-और धोबिनें मिलीं। उसकी भौजी जो भीम बाबा के यहाँ यमुना को ले गयी थी बोली, "रण्डी के पाले पड़ गये, मजा चखा दिया।" फिर एक दूसरी की तरफ मुखातिब होकर बोली, "ऐ, नहीं बड़ा सीधा है, छक्का-पंजा नहीं आता," फिर रामसिंह से बोली, "गुरु महाराज आये थे, तेरी भौजी को वही साथ ले आये हैं।"

यमुना ने रामसिंह को गुड़ और रोटी खाने को दिया। वैसे ही छप्पर के नीचे पंजों के बल बैठकर बायें हाथ में रोटी पर गुड़ रक्खे, दाहिने से तोड़-तोड़कर रामसिंह खाने लगा। खाकर, पानी पीकर, हाथ-मुँह धोकर, अपने गधे पर चढ़कर बिरहा गाता हुआ बाहर चला।

शहर पार कर दो-तीन घण्टे तक वैसे चला गया। दूर से धीरसिंह का अड्डा दिखायी पड़ने लगा। धुनी के धुएँ से उनके रहने का विश्वास हो गया। धीरे-धीरे बढ़ता हुआ हँसता धीरसिंह के पास पहुँचा। कोई न था। गधे को वहीं साँदकर

चरने के लिए छोड़ दिया और गम्भीर होकर धीरसिंह के पास बैठा।

"कैसे छूटे ?" धीरसिंह ने मुस्कराकर पूछा।

"जैसे गया।"

"यानी ?"

"यानी अपनी जो अक्ल लड़ाकर गया था वही अन्त में लड़ाकर जीती।"

"सिन्धु से कैसे जान-पहचान हुई ?"

"जिस तरह वह क्षत्रिय की लड़की से नर्तकी बनायी गयी।"

"क्या मतलब तुम्हारा ?"

"वही जो तुम्हारा है।"

"मैं नहीं समझा किस क्षत्रिय की लड़की थी और किस तरह नर्तकी बन गयी।"

रामसिंह एक दृष्टि से धीरसिंह को देखता रहा।

धीरसिंह यह भाव-परिवर्तन पढ़ रहे थे।

"क्या तुम सच कहते हो धीरसिंह ?"

दो चिनगारियाँ एकाएक धीरसिंह की आँखों से निकल गयीं। पर धैर्य से स्वर को बाँधकर रामसिंह को स्थिर देखते हुए उन्होंने कहा, "खुलकर कहो, तुम्हारा क्या मतलब है।"

रामसिंह कुछ आवेश में आ गया; बोला, "जो मनुष्य राजनीति को धर्मनीति के इतना महत्त्व देता है; खान-पान, आचार-व्यवहार जिसकी धर्मनीति के उपांग भी नहीं; वह राजनीतिक स्वार्थ के लिए एक लड़की को हर लेना बुरा न समझेगा, यह तुम मानते हो ?"

दूर तक समझकर, मुस्कुराकर धीरसिंह ने कहा, "नहीं।"

रामसिंह कुछ संयत हो गया, पूछा, "क्यों ?"

"इसलिए कि लड़की के हरण में राजनीतिक स्वार्थ भले हो, राजनीतिक उन्नति भी है, तुम कह सकते हो ? धर्म के उपांगों के न मानने की बात को इसी तरह तौलो; उसमें धार्मिक पतन न होगा, राजनीतिक और धार्मिक एक बड़े लक्ष्य की पुष्टि होगी।"

रामसिंह का विचार था, सिन्धु के भागने में वीरसिंह का हाथ है, कम-से-कम वीरसिंह इस दुष्कृत्य को जानते हैं; पर जब सत्य की मूर्ति की तरह स्थिर देखा, तब अपने आप यह विश्वास पैदा हो गया कि वीरसिंह को यह प्रसंग ज्ञात नहीं, साथ-साथ सरल भक्ति का उद्रेक हुआ; पहली वृत्ति जाती रही। विनयपूर्वक कहा, "मुझे क्षमा करो, मैं तुम पर दोषारोपण कर रहा था। पर तुम वीरसिंह हो, यह मुझे मालूम हो गया।"

"हाँ, तुमने मालूम कर लिया, यह तुम्हारी बातों से सूचित था। पर कैसे मालूम किया, रामसिंह ?"

"तुमसे मिलने से पहले मैंने चित्रकला सीखी थी। सिन्धु तब लड़की थी; पढ़ती थी; नाम विद्या था। हम एक ही गाँव के रहनेवाले हैं। विद्या की सुन्दरता की गाँव भर में तारीफ थी। कुछ दिनों बाद असमर्थ पिता-माता की सहायता के लिए

दिल्ली गया और पिथौरा की सेना में भर्ती कर लिया गया, लौटकर जब गया, तब सुना, एकाएक विद्या लापता हो गयी है। कारण कुछ भी मालूम न हो सका। इसके बाद तुम्हारा साथ हुआ, क्रमशः घूमते-फिरते हम लोग यहाँ आये। एक दिन कपड़ों के लिए मैं सिन्धु के यहाँ गया।"

रामसिंह रुक गया। अपने को सँभालने लगा। कुछ देर बाद कहा, "तब वह पूरी सिन्धु बन चुकी थी। मैंने नहीं पहचाना। देर तक मुझे देखती रही। पहले दिन कुछ नहीं बोली। कपड़े दे दिये। —पता लगाया। वहाँ क्या पता लगता ? दूसरी बार बोली, छिगुनियाँ, तू कभी-कभी आया कर, कपड़े लेने हों या नहीं, मैं तुझे इनाम दिया करूँगी। मुझे शंका हुई। साथ-साथ विद्या का वह मुख आँखों में उठ-उठकर सिन्धु के इस मुख से मिल जाने लगा। बड़ी इच्छा हुई कि पूछूँ; पर कायदे के खिलाफ न गया। एक दिन उसी ने कहा, छिगुनियाँ, ईश्वर ने यहाँ भी मुझे धोखा दिया, रामसिंह को न दिया उसका साँचा भेजा। मैंने पूछा, रामसिंह कौन है ? उसने कहा, कोई नहीं। उसकी आँखें भर आयीं। अब मुझसे न रहा गया। मैंने पुकारा, विद्या ! वह सहस्र प्राणों से उच्छ्वसित होकर मुझसे लिपट गयी। मैंने कहा, विद्या, मैं सुन चुका हूँ, हताश न हो। फिर क्या, वह राठौर की लडकी है, मैं चौहान हूँ; बचपन में मैं उसे प्यार करता था, मेरी ओर भी वह खिची थीं; ईश्वर ने मिला दिया। फिर अपने भगाये जाने, वेश्या के यहाँ रहने, नृत्य-गीत सीखने और राजा महेन्द्रपाल की कृपा पाने का हाल उसने बयान किया। यद्यपि महेन्द्रपाल उसके भगानेवाले होकर नहीं, मदद करनेवाले होकर मिले थे, फिर भी कान्यकुब्जेश्वर से सम्बन्ध जोड़ने के कारणों को मिलाती हुई वह समझती है कि यह सब उन्हीं का बिछाया जाल था। मैंने उसे पत्नी के रूप से स्वीकृत किया है। तुमसे छिपाकर मैंने तुम्हारी एक छोटी तस्वीर खींची थी; उसने तुम्हें देखा न था; क्योंकि वह यहीं रक्खी गयी थी; तुम्हारी तारीफ सुनी थी। तस्वीर देखकर उसने संशय किया था कि धीरसिंह नहीं, तुम वीरसिंह हो। प्रभावती को लेकर यमुनादेवी के आने पर उसका संशय बदलकर निश्चयात्मक हो गया था। मेरे कैद होने के दो मुख्य कारण थे। एक तुम्हारी तस्वीर दिखाकर राजा महेन्द्रपाल से मालूम करना कि तुम्हीं वीरसिंह हो या नहीं, दूसरा उन्हें मुक्त करना। विद्या को उन्हें मुक्त करने की धुन थी। यद्यपि राजा महेन्द्रपाल ने उसे पतित कर दिया था, फिर भी चूंकि बड़े व्यय से उन्होंने उसे शिक्षा दिलायी थी और कान्यकुब्जेश्वर से उसके जरिये कोई फायदा अब तक न उठा पाये थे और इस तरह वह कोई उपकार उनका करती भी नहीं, इसलिए उन्हें बचाकर हमेशा के लिए उनके ऋण को मुक्त कर देना चाहा था। इस तरह मैं बँधा।"

"मैं समझा।" सोचते हुए वीरसिंह बोले, "यहाँ महाराज पृथ्वीराज का संवाद आया है, दूसरे केन्द्र से। कहा गया है कि पूरी तैयारी के साथ नैमिषारण्य में ठीक एक पक्ष बाद सब लोग मिलें, पर चतुरता से रहें; छुपे हुए।"

"क्या कारण है ?" रामसिंह ने उत्सुकता से पूछा।

"जान पड़ता है, पृथ्वीराज शिकार खेलने के बहाने छिपकर वहाँ जायँगे संयोगिता से मिलने के लिए। इसके सिवा इधर इनके राज्य में आने का कोई

कारण नहीं मालूम देता। संयोगिता के चलने की खबर हुई, तो आने का यही कारण समझना चाहिए।"

"पर अब मेरा जी ऊब गया है। मैं इस तरह की राजनीति से विद्या के साथ सुखपूर्वक जीवन बिताना अच्छा समझता हूँ। मुझे इन राजों से घृणा हो गयी है। व्यर्थ के लिए जान देना है। कुछ न होगा, विद्या का प्यार स्वर्ग है। मैंने जो सचाई तुम्हारे साथ रहकर पायी थी, विद्या उसी की कीमत मिली। कुछ अच्छा नहीं लगता। दिन-रात उसी की चिन्ता लगी रहती है। कभी रास्ता नहीं चली। कहाँ भटकती होगी। रास्ते की ठोकरें खाती फिरती होगी। यह सब मेरे ही लिए हुआ। कितने सुख से रहती थी, पर उस सुख को ठुकरा दिया। मुझे वह कह गयी थी कि अब इस धोखे की राजनीति में न रहना; यह महापाप है। मुझे बड़ा संशय यह है कि राजा महेन्द्रपाल फिर उसे धोखा न दें। कारागार से वह महेन्द्रपाल को साथ लेकर गयी है। मेरी उससे ऐसी बात हुई थी कि वह एक पक्ष बाद मुझे नैमिषारण्य में मिलेगी, वीरसिंह अब मैं छुट्टी चाहता हूँ; केवल कभी-कभी तुम्हारे दर्शनों को आऊँगा, यों मैं इधर से निराश हूँ।"

"गिरे दिन को सुधारने में कष्ट होता है। रामसिंह, बने दिन आप सुधरते जाते हैं। हताश न हो। हम एक साथ हँसेंगे, एक साथ रोयेंगे। काम बिगड़ता जा रहा है, इसलिए छोड़ना ठीक नहीं, बनाने की ही चेष्टा रहनी चाहिए। एक दिन शरीर भी क्षीण होता हुआ छूट जायगा, इसलिए आत्महत्या ठीक नहीं। अभी हमें तुम्हारी जरूरत है। जब न होगी, तब तुम्हें भी हमारी न होगी, दर्शनों को भी नहीं। सुखपूर्वक काम करो। क्षत्रिय होकर छाँह में मरोगे।" रामसिंह सुनता रहा। वीरसिंह ने अपना सारा हाल मनवा जाने का बयान किया। फिर कहा, "बहुत सम्भव है, महाराज शिवस्वरूप आश्रय के लिए वहाँ से भगकर विद्या के यहाँ गये हों और विद्या उन्हें साथ लेकर भगी हो। ऐसी हालत में वह राजा महेन्द्रपाल के साथ न जायगी। शिवस्वरूप को उसने अपना विद्या नाम ही बतलाया था। शिवस्वरूप के कथनानुसार वह उन पर भक्ति करती थी। उसने एक भेद भी खोला था, जिससे विश्वास के दृढ़ होने की सम्भावना है। फिर शिवस्वरूप मनवा का रास्ता न जानते थे, इधर का देख चुके थे। भगनेवाला पहचानी राह से ही भगेगा, जहाँ तक होगा। इधर, मालूम नहीं, विचार क्या हुआ। तुम पता लगाकर यमुना देवी को लेकर जल्द मनवा की तरफ जाओ, या जैसी उनकी सलाह हो करो; वहाँ मशहूर कर दो कि भावज के साथ घर जा रहे हो। हम एक पक्ष के भीतर तुम्हें नैमिषारण्य में मिलेंगे।"

बातें करते-करते पश्चिमाकाश अरुण हो आया। रामसिंह भक्तिपूर्वक प्रणाम कर गधे की खोज में चला।

अट्ठाईस

प्रभा के कहने पर भी प्रातःकाल जब रत्नावली उठी और राजा महेन्द्रपाल के बचाने की याद आयी, तब एक साथ कई विरोधी भावनाएँ उसकी राह रोक-रोककर खड़ी होने लगीं। वह वहाँ किसी को तो नहीं पहचानती, अकेली क्या करेगी वहाँ जाकर ?—पुनः वह कुमारी है, वहाँ उसकी बराबरी के अनेक नरेश हैं, अगर किसी को मालूम हो गया और उस समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार किसी ने उसका हरण किया तो ? उधर राजा महेन्द्रपाल के लिए जितनी शंका की गयी है, वह उतनी हद तक, मुमकिन है, न भी की जा सके, केवल स्नेहवश की गयी हो। अगर वहाँ जाया भी जाय तो सबसे बड़ा प्रमाण उसके पास जो वह भिक्षुक है, वह पहुँच से बाहर है; वह कहाँ रहता है; उसे नहीं मालूम, उसका पता लगाना होगा; इसमें देर होगी। कुमार देव से कुछ कहना ठीक नहीं; कारण उत्तेजना बढ़ने पर नये पुरते हुए घावों को क्षति पहुँच सकती है।

इस प्रकार के निश्चय और अनिश्चय में रत्नावली वहीं रह गयी। कुमार से भी कुछ नहीं कहा। उसी तरह उनसे मिलती हुई उनकी सेवा में दत्तचित्त रही। केवल मन से निश्चय कर लिया कि कुमार देव प्रभावती के हो चुके हैं, अब धोखा खाये हुए जीवन को इस तरह का धोखा न देना ही ठीक होगा। इसके लिए चिन्ता तक व्यर्थ है। निश्चय के भीतर से एक दर्द उठता था, पर सँभलकर रह जाती थी। चित्त की एकाग्रता दूसरे दिन से एक विशृङ्खलता में बदल चली।

इसी दिन कुछ सिपाही इस्तीफा देकर चले गये। बलवन्त के आने की राह न देखी। इसी दिन खबर भी पहुँची कि बलवन्त घायल हो गये हैं। पर विवरण उल्टा था। जैसा कान्यकुब्ज में कहा गया था, उस रूप में। वीरसिंह के हाथ बलवन्त के घायल होने का कारण रत्नावली ने वही प्रभावती वाला समझा। इससे भी उसे विश्वास हुआ कि वीरसिंह और यमुना की सहायता से राजा महेन्द्रपाल को मुक्ति मिल सकती है यदि वे ऐसे ही बुरे रूप में फँस गये हैं।

तीसरे दिन वहाँ महाराज शिवस्वरूप और उनकी धर्मपत्नी विद्यादेवी यजमान कुमार देव को आशीर्वाद देने के लिए पहुँचे। उन्होंने मार्ग की सुनी खबर सुनायी कि सिन्धु नाम की कान्यकुब्जेश्वर की कोई नर्तकी छल से राजा महेन्द्रपाल को छुड़वाकर साथ लेकर भाग गयी है। इससे रत्नावली को विशेष रूप से सन्तोष हुआ, घबराहट की वजह जाती रही।

रत्नावली ने बड़े आदर से महाराज को रक्खा। कह दिया कि कुमार को प्रभावती तथा राजा महेन्द्रपाल का कोई संवाद न सुनायें; कुछ दिनों बाद सब हाल उन्हें आप मालूम हो जायँगे। महाराज ने मिलते समय इस आशा की पूरी-पूरी रक्षा की। उन्हें पहचानकर कुमार उच्छ्वसित हुए, तब स्वाभाविक बुद्धिमत्ता से उन्होंने दोनों हाथों के पंजे उठाकर आश्वस्त किया कि चिन्ता न करें, गंगाजी की कृपा से सब कुशल है।

तीन दिन बाद कान्यकुब्ज से भेजा बलवन्त का पत्र मनवा के सेनापति के नाम

गया, जिसमें लिखा था कि कान्यकुब्जेश्वर महाराजाधिराज ने विचार कर यह आज्ञा जारी की है कि राजा महेन्द्रपाल को एक साल के अन्दर पकड़ देनेवाले को निष्कर पाँच गाँव जागीर दी जायगी और कुमार देव सदा के लिए कान्यकुब्ज भूमि से निर्वासित किये गये। हरकारे ने भीतरी और-और बातें भी बताईं। लालगढ़ के किले को लूटने और उस भू-भाग के बँटवारे की खबर भी उसने दी; यह भी कहा कि यह भेद अभी गुप्त रखा गया है; केवल सरदारों को मालूम है; राजा महेश्वर-सिंह दस हजार सेना लेकर परसों चलेंगे, आज्ञा जारी हो चुकी है। जिस समय दूत सेनापति से बातें कर रहा था उस समय महाराज शिवस्वरूप गंगाजली लिये वहाँ बैठे थे; कान्यकुब्ज से गंगाजली भर ले गये थे : जब पानी घटता था, तब सरायन का भर लेते थे। सेनापति को जनेऊ और गंगाजल देकर आशीर्वाद करने गये थे। उन्हें निर्लिप्त ब्राह्मण जानकर सेनापति ने चिट्ठी के अलावे दूसरे प्रसंग खुलकर कहने के लिए कहा था।

सब सुनकर सज्जित होकर सेनापति आज्ञापत्र हाथ में लिये कुमार देव के पास पहुँचे। पीछे-पीछे गंगाजली लिये धीर पदक्षेप से महाराज।

बिना काँटे की सद्यःस्फुट उज्ज्वल केतकी की कली-सी सौरभ भार से व्याकुल भी पुष्ट वृन्त पर सँभली हुई कुमारी रत्नावली मधुर-मधुर हँसती कुमार से बातें कर रही थी। जो हृदय दे चुकी है, वह लौट नहीं रहा; फिर भी पूरी शक्ति से अपने को सँभाले हुए है; भीतर की शुभ्र प्रेम की किरणें दर्द के बादलों में रंगों से फलित हो रही हैं। कुमार अपने गत जीवन की एक भी बात नहीं कहते, कायिक क्लेश के साथ मानसिक दुःख को केवल सहते जा रहे हैं। रत्नावली समझती है : और समझकर मलिन हो जाती है। दोनों ओर से रूप अपने अलौकिक प्रकाश में फूट-फूटकर अपनी ही सत्ता में विलीन हो रहा है। रत्नावली व्यावहारिक हँसी से होंठ रँगकर, अब आप बहुत जल्द अच्छे हो जायेंगे, आज आपके लिए छेने की रसेदार तरकारी बनाऊँगी, कल मैंने एक नया गाना सीखा है—आपको सुनाऊँगी, इस तरह की बातों से कुमार का दिल बहला रही है। संयत स्वर के भीतर भी दर्द के तार कभी-कभी झंकार भरकर और सँभलने के लिए सचेत कर जाते हैं। कुमार बहुत थोड़ा बोलते हैं। कुछ दिनों से एक दृष्टि से रत्नावली के पृथुल हृदय पर शोभित हार को देखते हैं। रत्नावली इसे प्रभावती की याद सोचकर गम्भीर हो जाती है।

इसी समय सेनापति आकर आज्ञापत्र लिये सामने खड़े हुए। भंगिमभ्रू, तिर्यक पक्ष्मल दीर्घ तारक आँखों को उठाकर सेनापति पर रखती हुई क्या है, रत्नावली ने पूछा। सेनापति निवेदन करने लगे ! अविकृत भाव से पड़े हुए कुमार ने आज्ञा सुनी।

रत्नावली कुछ देर तक निश्चल पलकों से बैठी रही। फिर पास की दासी को, छः-सात और जो उच्चपदस्थ नायक सेनापति से नीचे काम करनेवाले थे, उन्हें बुला लाने के लिए भेजा। सेनापति को आसन डलवा दिया। सेनापति रत्नावली की बदली हुई चेष्टा देखते हुए निश्चेष्ट से आसन पर बैठ गये। देखते-देखते बुलाये हुए नायक भी आकर एकत्र हुए; रक्षित आसनों पर कुमारी का इंगित पाकर, बैठे।

आसन से खड़ी होकर एक दृष्टि सरदारों पर डालकर रत्नावली ने राजा

महेन्द्रपाल और कुमार देव पर निकली हुई राजाज्ञाएँ कह सुनायीं। उसके बाद झुलसती दृष्टि से सबको देखती बोली, "मेरी समझ में, आप लोगों में कोई ऐसे नहीं जिन्होंने दीदी को न देखा हो। दीदी के सम्बन्ध में जो अन्याय हुआ है, केवल राजा होने के कारण जो स्पर्द्धा, जो भाव, जो घृणा अपर साधारण राजपूत के लिए प्रकट की गयी है, वह आप लोगों को मालूम है। यदि वीरसिंह राजा होते, तो दीदी के विवाह के समुद्र-मंथन में जो केवल विष निकला वह न निकलता, बल्कि अन्य रत्न ही निकलते हुए देख पड़ते। क्या वीरसिंह सच्चे वीर और एक राजा के सेनापति न थे ? क्या यह अपमान हरएक सच्चे वीर का न था—बोलिये आप लोग ?"

"था," दो-तीन क्षुब्ध नायकों ने आवाज की।

"दीदी ने कभी राजा और प्रजा, स्वामी और सेवक का विचार नहीं किया; उनकी दृष्टि में वीर का ही महत्त्व था; उन्होंने वीर को वरा। सच्चे वीर वीरसिंह से आप लोग परिचित हैं; उनका युद्धकौशल प्रत्यक्ष देख चुके हैं। फिर भी आप लोग क्या बता सकते हैं कि उनका अपराध भी था जिससे उन्हें अपने स्थान लालगढ़ से सदा के लिए बिदा लेनी पड़ी ?"

"निःसन्देह उनके साथ अन्याय हुआ है।" इस बार चार-पाँच एक साथ कह उठे, भिन्न-भिन्न शब्दों में एक अर्थ।

"वे वीरसिंह और देवी यमुना आज भी, सम्भव है, छिपे हुए किसी प्रकार जीवन-निर्वाह कर रहे हों। पर क्या वे न सोचते होंगे कि जिन साधारण सरदारों को ऊँचा उठाने के लिए वह आदर्श था, वे और सिर झुकाये उन्हीं राजा कहलाने-वाले पुरुषों की सेवा कर रहे हैं ? क्या वे न सोचते होंगे कि उनके भाइयों ने यदि उनका पक्ष लिया होता तो आज वे लोकलोचनों के समक्ष होते ? क्या यह सरदारों के लिए लज्जा की बात नहीं ?"

सभी सरदार सिर झुकाये बैठे रहे।

"वीरो, तुम राजा के लिए कटकर मर जाते हो, पर अपने लिए सिर भी नहीं उठाते। तुम पर अत्याचार बढ़ते ही जा रहे हैं; पर तुम एक बार भी अपनी सदा-चारिता नहीं प्रदर्शित करते। तुम लोग जानते हो कान्यकुब्जेश्वर को प्रसन्न करने के लिए राजा महेन्द्रपाल ने सेनापति वीरसिंह से अन्याय-व्यवहार किया था। देवी यमुना उन्हें मुक्त कर उनके साथ निरुद्देश हो गयीं। वे आज भी हैं। मुझे पता लगा है। यदि तुम मेरा साथ दो तो मैं तुम्हारे पक्ष से लड़ने के लिए तैयार हूँ। दर्पी उद्धत बलवन्त को तुम्हें नीच समझने की घृणा का उचित फल प्राप्त होगा।"

सेनापति से न रहा गया। कहा, "आप ठीक कहती हैं, मैं प्राण रहने तक आपका साथ दूँगा।" नायकों ने भी धर्म-साक्षी कर शपथ की।

"धन्य है, धन्य है !" उच्छ्वसित रत्नावली की आँखों से आनन्द की ज्योति विच्छुरित होने लगी; "तुम सत्य ही क्षत्रिय हो, तुमसे तुम्हारी माताएँ पुलकित, पत्नियाँ हर्षित हैं। देखो," गले से उठाकर हार दिखाती हुई, "यह हार मैंने एक भिक्षुक से खरीदा है; उसने स्वयं विश्वास कर मेरे पास लाकर वेचा। कुछ दिनों बाद वह आयेगा तब तुम्हें और अच्छी तरह मालूम हो जायगा; यों वामा (सेविका) से पूछ सकते हो यह माला लालगढ़ के कुमार ने भिक्षुक को दी, दलमऊ की कुमारी

प्रभावती की माला से बदली थी। इस समय भी कुमार देव के गले में प्रभावती वाली माला है। इससे प्रमाणित है कि कुमार देव ने बलपूर्वक विवाह नहीं किया। पर प्रभावती के भीरु पिता स्वार्थवश प्रभावती का बलवन्त से विवाह करना चाहते थे। कुमार प्रभावती के साथ नाव पर थे जब बलवन्त घायल हुए। आज वह प्रसंग अनेक षड्यन्त्रों का दृश्यफल प्रकट कर रहा है। वह तुम्हें मालूम हो—भगे हुए राजा महेन्द्रपाल को एक वर्ष के भीतर खोजकर पकड़ देनेवाले को निष्कर पाँच गाँव की जागीर और कुमार देव को जीवन भर के लिए देश-बहिष्कार है। देखो, कैसा विवाह है ? इसके मूल में भी बलवन्त हैं।"

सभा के लोग मौन।

"मैं जानना चाहती हूँ, क्या तुम इस तरह की आज्ञाओं को मानकर ही चलना चाहते हो ?"

"नहीं, हमें सहारा न मिल रहा था, हम दिल से बराबर ऐसे कृत्यों को बुरा मानते आये हैं।"

"ठीक है।" रत्नावली शान्त होकर बोली, "आप लोग जाकर विश्राम कीजिए। मैं प्रतिकार करती हूँ, बलवन्त का दुर्ग के भीतर प्रवेश पहरों में कहकर, रोक दीजिए। आज्ञा मेरी रहेगी।"

सत्य के लिए दृढ़प्रतिज्ञ, कोई-कोई सच्ची वीरता दिखाकर रत्नावली के लोभी, इस नयी उद्भावना में लीन, अपने-अपने वासस्थल को गये।

रत्नावली कुछ देर तक बैठी रहकर, स्वस्थ होकर, सस्नेह कुमार को देखती हुई बोली, "आप चिन्ता न कीजियेगा; चाँद देर तक बादलों में न ढँका रहेगा।"

"आप अकारण मेरे लिए कलह न कीजिए।"

"मैं कलह नहीं कर रही; कलह दूर कर रही हूँ।"

"फिर भी भाई से वैर होगा।"

"नहीं, स्वभाव से भाई वैरी था, उसे मित्र बनाऊँगी।"

"नहीं, मैं कल यहाँ से चला जाऊँगा; मैं समझता हूँ, यमुना देवी की भूमिका आपने मेरे लिए बाँधी।"

"वामा," रत्नावली ने सेविका को आवाज दी, "सब फाटकों में कह आ, कुमार आज्ञा के अनुसार चले जाना चाहते हैं, वे जाने न पायें, जब तक निर्णय न होगा, वे यहाँ बन्दी रहेंगे।"

सेविका प्रणाम कर चली गयी।

लौटकर संवाद लायी, एक दूत किसी राजराजेश्वरी का भेजा हुआ कुमार को स्वयं पत्र देना चाहता है।

आने की आज्ञा हुई। दूत ने कुमार को पत्र दिया।

खजाना लूटकर प्रभावती ने निश्चय किया, जब तक कुमार के मन में वह प्रभावती रहेगी, कुमार रत्नावली का प्यार स्वीकृत न करेंगे। यह सोचकर एक चिट्ठी कुमार के नाम लिखी और एक दूसरे सिपाही के हाथ, जो वहाँ का न था, मर्म समझाकर भेज दी। खोलकर कुमार पढ़ने लगे—

श्रीकुमार देवजू को राजराजेश्वरी का यथोचित।

समाचार यह है कि तुम्हारी पत्नी प्रभावती ने मेरा आश्रय ग्रहण किया है जब उसे कहीं भी रहने का स्थान नहीं मिला। वह मेरी दासी है। मुझे अब तक तुम्हें सूचित करने का समय नहीं मिला, कारण मैं बलवन्तसिंह का भेजा कान्यकुब्ज को जाता हुआ कर लूटने की चिन्ता में थी। कर लूटकर निश्चिन्त होकर तुम्हें लिख रही हूँ। मेरी दासी भी शस्त्र चलाने में पटु है, इसलिए मुझे बहुत पसन्द आयी। संवाद मिला है कि तुम्हारे पिताजी जो तुम्हारे इस विवाह के भ्रमात्मक कारण से बन्दी कर लिये गये थे, सिन्धु नाम की कान्यकुब्जेश्वर की नर्तकी की कृपा और छल से मुक्त हो गये हैं। उन्हें लेकर नर्तकी अपने बचाव के विचार से अदृश्य हो गयी है, उन्हीं के नाम से एक धोबी को फँसाकर। आशा है, तुम प्रसन्न हो, और यदि मेरी दासी को या मुझे कुछ लिखना चाहो तो पत्र-वाहक के हाथ लिखकर भेज सकते हो।

—श्रीमती राजराजेश्वरी

पत्र पढ़कर कुमार ने रत्नावली को पढ़ने के लिए दिया। कुमार में एक साथ इतने परिवर्तन आ चुके थे कि इस पत्र का वैसा कुछ प्रभाव उन पर न पड़ा, अकारण एक दुःख हुआ। रत्नावली पत्र पढ़कर उसकी ध्वनि में तमतमा गयी। उसी वक्त अपनी तरफ से एक पत्र लिखा। फिर राजकुमार से उत्तर के लिए पूछा। कुमार ने कहा कि कोई ऐसी आवश्यकता उत्तर देने की क्या है; मैं केवल इतना आपसे अनुरोध करूँगा कि आप महाराज के हाथ अपना पत्र भेजें। देवी प्रभावती से महाराज जबानी मेरा हाल कह देंगे, महाराज प्रभावती के ही पित्रालय में रहते हैं।

रत्नावली ने पत्र बन्द कर महाराज को दिया। फिर दासी के कान में महाराज को पाथेयरूप एक पुरस्कार निश्चय कर देने के लिए कहा।

महाराज विद्या के पढ़ाये हुए थे कि कहीं छोड़कर न जायँ। विद्या प्रभावती की खोज में यहाँ आयी थी। बातचीत से महाराज को मालूम हो गया कि प्रभावती को वहाँ जाना है। जब मनवा आये थे तब कोस भर दूर तक विद्या भी घोड़े पर थी। यहाँ आते समय विद्या ने गंगापुत्र की हैसियत से मिले घोड़ों को जो कुछ भी मिले, उसी कीमत पर बेच देने के लिए महाराज को सलाह दी थी; उन्होंने ऐसा ही किया था। अब चिट्ठी लेकर चलते समय विद्या की बात सोचकर बोले, "और वह भी साथ है; वह घोड़े पर कैसे चढ़ेगी?"

हँसकर रत्नावली ने कहा, "तो हाथी पर जाइये।"

"अच्छा," सोचते हुए महाराज ने कहा, "हौदा कसवाय देव।" कहकर पत्र लेकर डेरे गये। विद्या बैठी सोच रही थी। महाराज के पैरों की आहट से भी उसे बाह्य-ज्ञान न आया। कन्धा पकड़कर हिलाते हुए महाराज ने कहा, "पता लग गया, वहाँ से चिट्ठी आयी है। उसका जवाब ले जा रहे हैं। हम घोड़ों पर जाते, फिर याद आया, हमने कहा, और वह जो है। तो कुमारीजी बोलीं, हाथी में जाओ। हाथी में तो नहीं दोख? और हे—बड़ी खराब खबर आयी है। राजा महेन्द्रपाल भगे हैं, कोई साल भर में पकड़ लेगा तो उसको पाँच गाँव की जागीर मिलेगी; और देव कुमार को देश-निकाला दिया गया है। और लालगढ़ लूटने के लिए महेश्वरसिंह,

प्रभा के पिता, परसों चलेंगे।"

"जाओ, कहो, हाथी पर नहीं, रथ पर जायँगे। यह गठरी-मुठरी लेकर हाथी पर क्यों बैठेंगे?"

महाराज फिर कहने गये।

उन्तीस

प्रभा एक पेड़ की छाँह में बैठी थी। घोड़ा बँधा हुआ था। घोड़े की पीठ ही अब वासस्थल है। पुराना मन्दिर, जीर्ण-प्रासाद या खुला प्रान्तर कुछ क्षण के लिए शयन-भूमि। खाना, पीना, रहना, प्रायः घोड़े की पीठ पर। इस समय अपने भावी कार्यक्रम की चिन्ता में तन्मय रहती है—किस उपाय से ग्रामीणों में शिक्षा का प्रचार होगा, बाहर रहकर भी प्राणों के भीतर पैठने का उत्तम मार्ग तैयार होगा, सर्वसाधारण के हित की किस तरह की धारा प्रखरतर होकर उन्हें शीघ्र बहुत ज्ञान के समुद्र से ले चलकर मिलायेगी, साथ-साथ जनता को इस रीति के ग्रहण में किसी तरह का संकोच न होगा, बल्कि इससे लोगों में स्फूर्ति फैलेगी और परस्पर सम्बद्ध होने की सहृदयता दूर-दूर के भिन्न-भिन्न गाँवों और वर्गों के लोगों को बाँधेगी; हर वर्ण की अलग-अलग शिक्षा हर वर्ण के मनुष्य को पूर्णता तक पहुँचायेगी, और जबकि हर शिक्षा अपनी प्रगति में दूसरी शिक्षाओं का सहारा लेती है, तब हर मनुष्य भी सापेक्ष होकर दूसरे मनुष्य का मूल्य समझेगा; भिन्न वर्ण के प्रति इस प्रकार घृणा का भाव न रह जायगा; सम्बद्ध होकर देश सच्ची शक्ति से प्रबुद्ध होगा, यह सफलता साधारण आनन्द की दात्री नहीं। इसमें प्रिय का जो रूप है, वही यथार्थ मुक्ति के आनन्द का कारण हो सकता है।

प्रभावती छाँह में तने के सहारे आधी लेटी हुई इस प्रकार से भविष्य की कल्पना कर रही थी। खजाना लूटकर चतुर्थांश उसने उसी क्षण सिपाहियों में बाँटा था; एक चतुर्थांश और सिपाही बढ़ाने के लिए लगाने को कहा था, बाक़ी एक चतुर्थांश रखकर, वहाँ के कई गाँवों के दरिद्रों में चतुर्थांश धन बँटवा दिया था।

कुछ सिपाही नित्य-कृत्य में लगे थे। कुछ प्रभावती की रक्षा में इधर-उधर बैठे खड़े थे। चारों ओर नाले, ढाक का वन। कुछ लोग पेड़ पर चढ़े बैठे थे। आगे घोड़ा और पीछे रथ आता हुआ देखकर एक ने पास के दूसरे से कहा। उसने भेजे हुए सिपाही का अन्दाजा लगाया। एक तीसरा उतरकर घोड़े पर चढ़कर वन के किनारे पहुँचा। घोड़ेवाले सिपाही से तथ्य मालूम हुआ। उसने रथ वहीं रोक देने के लिए कहा। रथारोही ने महाराज से पैदल चलकर मिलने के लिए निवेदन किया। रथवाहक को प्रतीक्षा में वहीं रहने के लिए स्नेहपूर्वक कहा।

विद्या अपना सामान महाराज को लेकर चलने के लिए कहकर उतरी। अश्वारोही दूत भी घोड़े से उतर पड़ा, लगाम थामकर बढ़ा। पीछे-पीछे महाराज, उनके पीछे विद्या चली। कुछ झाड़ियों की आड़ रह गयी तो दूत ने महाराज को वहीं प्रतीक्षा करने के लिए कहा और स्वयं प्रभावती के पास चला। प्रभा उठकर बैठ गयी। दूत ने प्रणाम कर पत्र देने की खबर कही और कहा कि कुमार देव ने उसका उत्तर अपने दूत के हाथ भेजा है, दूत के साथ उसकी पत्नी भी है, रथ पर आये हैं; रथ वन के किनारे खड़ा है; दूत अपनी पत्नी के साथ आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा है। दूत पत्नी को लेकर आया है, यह एक विचित्र विनोद-सा प्रभावती को मालूम दिया। उसके आज्ञा दी, "अच्छी बात है, दूत की पत्नी को सम्मानपूर्वक आगे करके दूत को ले आओ।"

आगे-आगे विद्या, उसका सामान लिये सकुचाते हुए पीछे-पीछे महाराज चले। भावमयी अपूर्व-सुन्दरी विद्या को प्रभा देखती रह गयी; उसके पीछे महाराज को देखकर हँसी न रोक सकी; कहा, "महाराज, आप निन्नानवे के फेर में पड़ गये? एकाएक बड़ा भारी भार पड़ा! प्रणाम करती हूँ। अच्छे तो हैं?" कहकर महाराज की धर्मपत्नी को प्रणाम करने को अंजलि बाँधी तो उसने हाथ पकड़कर छुड़ा दिया —"मुझे नहीं," स्नेह के कण्ठ से कहकर। प्रभावती ने सोचा, शायद महाराज ने कहीं से भगाया है। महाराज ने ऊँचे स्वर से प्रभावती को आशीर्वाद दिया; फिर सबको वहाँ से हटा देने के लिए कहा। इंगित पा लोग इधर-उधर हो गये।

महाराज ने रत्नावली की चिट्ठी निकाली। बड़े आग्रह से प्रभा ने हाथ बढ़ाया। महाराज संकुचित होकर बोले, "लेकिन बिट्टीरानी, यह चिट्ठी तो रतन ने, राज-राजेसुरी कोई हैं इहाँ, उनको देने के लिए दी है।"

"तो मुझ पर विश्वास नहीं तुम्हें?"

"तुमसे ज्यादा विश्वास किस पर होगा हमको? हम कुछ राजराजेसुरी के बसते हैं, तुम ही लेव।"

"तुम्हें अब रतन के पास लौटकर थोड़े जाना है? घबराते क्यों हो? पढ़कर पहुँचवा दूँगी।"

प्रभावती उतावली से चिट्ठी खोलने लगी। विद्या भाव समझकर पुलकित हो मुस्कुराती रही। एक दृष्टि से प्रभावती पढ़ने लगी—

डाकू राजराजेश्वरी को यथोचित।

कुमारदेव को लिखा तुम्हारा पत्र कुमारी की इच्छा से मैंने पढ़ा। उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं, इसलिए उचित उत्तर मैं उनकी ओर से लिख रही हूँ। पुनः वे तुम्हें उत्तर लिखकर सम्मान दें, ऐसी मर्यादा तुम्हारी नहीं। मैं भी न लिखती, मेरी दासियों के तुम्हारी-जैसी दासियाँ हैं। चार बदमाश इकट्ठे करके रास्ता चलता धन लूटकर तुम्हें शक्ति का गर्व है, लज्जा नहीं। शक्ति के स्पर्द्धाभाव में देवी यमुना की सहोदरा तुम्हें क्या समझ सकती हैं, सोच लो। तुम राजराजेश्वरी समझती हो अपने को! मिलने की जगह बतलाओ तो बल की परीक्षा कर ली जाय। देखो फिर मेरे पदत्राण उठाने से पहले परित्राण पाती हो या बाद।

—कुमारी रत्नावली

कई बार प्रभावती ने पत्र पढ़ा। कई बार देव-शब्द को आँखों से लगाया। इच्छा हुई, हृदय से लगायें; पर महाराज और विद्या की लाज बाधक हुई। मन से उसे सहस्र बार हृदय से लगाया। भाव में भरी हुई देर तक बैठी रही। कुछ समझ में न आ रहा था कि इसका क्या उपाय किया जाय।

मन के क्षोभ को समझकर विद्या ने प्रिय स्वर से कहा, "देवी, आप चिन्ता न करें। अभी और बहुत-से सवाद आपको सुनने हैं। इसके बाद कार्य की चिन्ता करनी है। मेरा विचार है, यह सारी धूल सघन कार्य की वर्षा से दब जायगी। पथ सुखमय होगा।"

विद्या की आवाज ऐसी थी कि प्रभा आकृष्ट हो गयी। यह स्त्री पत्नी-रूप से महाराज से ही नहीं मिल सकती, विश्वास हो गया।

"आपसे मेरा विशेष परिचय नहीं, पर मैं एकान्त में आपसे बातें करना चाहती हूँ, क्योंकि स्त्रियों की भीतरी बातें पुरुष के सामने नहीं हो सकतीं (महाराज को सुनाकर कहा); तब तक महाराज वहाँ से आये रथवाले को देखकर आयें कि उसके भोजन-पान का अच्छा प्रबन्ध हुआ या नहीं और वह कब तक यहाँ से जाना चाहता है।" प्रभा ने कहा। महाराज उठे।

"ठहरो," विद्या महाराज से बोली, फिर उसने प्रभावती की तरफ रुख कर कहा, "उसे इसी वक्त कुछ देकर बिदा कर देना ठीक होगा, क्योंकि ऐसी परि-स्थिति है। कहकर अपनी एक अँगूठी निकालकर प्रभा को देखती हुई बोली, इसे आप अपनी ही चीज समझें, मैं आपको कष्ट देना नहीं चाहती, महाराज उसे आपके नाम से पुरस्कृत करके जाने के लिए कह दें, आपको मेरी चीज लेने में शास्त्रीय आपत्ति न होगी, विश्वास रक्खें।"

"पर मेरे नाम से नहीं महाराज, कहना कि देवी राजेश्वरी ने पुरस्कार दिया है।"

अँगूठी लेकर महाराज चल दिये। डरे कि पहली रातवाली बात कह न दे, जिसे उन्होंने छिपाया था।

विद्या महाराज से मिलने की पहली रात से लेकर मनवा से चलने तक सभी बातें सुधरे ढंग से कहने लगी, जिसमें थोड़े समय में सभी बातें और सारा परिचय आ गया। महाराज से उसे दूत की कही लालगढ़ लूटनेवाली गुप्त बात भी मालूम हो चुकी थी। उसे भी कहा। सोचा था, महेश्वरसिंह, सम्भव है, प्रभावती का स्नेह माने।

प्रभा चुपचाप सब सुनती रही। इस अद्भुत स्त्री के प्रति उसकी सहानुभूति, सम्मान और अभेद अपनाव पैदा होता रहा, ज्यों-ज्यों वह बातचीत में आगे बढ़ती गयी।

सारी बातें सुनकर प्रभा ने कहा, "बहन, लालगढ़ की रक्षा पिता की कृपा पर निर्भर रहने पर नहीं हो सकती। वे इतने कृपालु व्यक्ति नहीं। विरोध से हो सकती है। पर मेरे पास जितना धन है, इतने से अतुल्य सैन्य संग्रह किया जा सकता है; पर यह कार्य शीघ्र न होगा। अधिक अर्थ का लोभ देकर सेना एकत्र नहीं की जा सकती, कारण उतना अर्थ नहीं; पुनः जो अर्थ मेरे पास है, वह दूसरे

अभिप्राय से है। मैं लालगढ़ की रक्षा के लिए उसका व्यय करूँगी तो मेरे सहकारी अच्छी आलोचना न करेंगे।"

कुछ क्षण विद्या चुप रही। सोचकर कहा, "पहले तो आपको कुमार देव की पत्नी होने का प्रमाण पेश कर राजा महेश्वरसिंह के पहुँचने से पहले पहुँचकर दुर्ग में अधिकार करना चाहिए। फिर पत्र लिखकर समय की प्रार्थना। अवश्य यह अधिकार राजा महेश्वरसिंह नहीं रखते। पर इसके बाद युद्ध होने पर भी आपकी विजय होने पर बाद की शंका कम रहेगी। क्योंकि कान्यकुब्जेश्वर न्याय के फन्दे में आ जायँगे। रही बात खर्च की, सो वहाँ अधिकार मिलने पर सेना भी मिलेगी, और वह सेना सुशिक्षित होगी, थोड़ी ही सेना बाहर से एकत्र करनी पड़ेगी। सम्भव है, लालगढ़ के ही लोग धर्म और सत्य का विचार कर आपका साथ दें। नहीं तो यह लीजिये; इससे आप राजा महेश्वरसिंह की दस-गुनी सेना एकत्र कर एक साल तक युद्ध कर सकती हैं। यह किसी का दान नहीं; मेरे परिश्रम से अर्जित अर्थ है।" यह कहकर हीरे, मोती और भिन्न-भिन्न रत्नों की पेटिका खोलकर प्रभा के सामने बढ़ा दी।

एक बार पेटिका और एक बार विद्या की ओर दिव्य भक्तिपूर्ण दृष्टि से प्रभा ने देखा।

कुमारी रत्नावली ने कुमार के लिए जो संगठन किया था, विद्या से उसे मालूम हो चुका। किसी तरह दोष की अँधेरी रातवाले दिन कटे तो आकाश पर उसके परिणय के दिन की पूर्ण शशाङ्कच्छवि अंकित दिखे—इस बार कुमार और रत्नावली एक साथ बँधकर सदा के लिए सुखी हों। यह लालसा प्रभा के हृदय में लहराकर रह गयी—दीदी का ऋण इस शोध से भी पूरा न होगा!

प्रभा ने निश्चय कर कहा, "मैं यथाशक्ति आपकी आज्ञा पालन करूँगी।"

"हम में 'तुम' का ही व्यवहार ठीक होगा। तुम मुझसे उम्र में छोटी होगी, यमुना देवी बड़ी।" मुस्कुराकर प्रभा उठकर वन में एक तरफ गयी।

तीस

धोबी और धोबिन से मिलकर भरसक जल्द लौटने का कौल कर भौजी के साथ रामसिंह बिदा हुआ। फैसले की सारी बातें गुप्त रीति से मालूम हो गयी थीं। उपाय न रहने पर भी उद्यम करने के विचार से भौजी की सलाह पर चला था। यों रामसिंह विद्या की खोज करना चाहता था। एकान्त में उसने भौजी से कहा भी था कि उसके बिना उसका जी मसोस रहा है; सुख में पली थी, अब न जाने कैसे दुख झेलती हो। भौजी ने स्नेह के स्वर में कहा था कि धैर्य रखना ठीक है जब कि मिलने का वादा बदा जा चुका है; जब पहले-पहल बारिश होती है तब दुनिया भर

के काँटे बढ़ते हैं, उस समय तैरकर पार करने के बनिस्वत नदी का बहाव देखते रहना ज्यादा अच्छा है: कहीं काँटे में उलझ गये तो फिर जिन्दगी भर के लिए पार रह ही जाता है—धारा ही धारा जान पड़ता है। फलतः रामसिंह ने भाभी की वश्यता स्वीकार की। सोचा, एक दूसरी अभिज्ञता होगी, इतना नाम सुना है, कुछ काम भी देखूँ। चूंकि प्रभावती का पता न था और पता लगाकर लालगढ़ की रक्षा करते देर हो रही थी, ऐसे ही मनवा जाकर लौटते-लौटते महेश्वरसिंह लालगढ़ दाखिल हुए जा रहे थे, कुछ पेशबन्दी न हो रही थी, इसलिए यमुना ने सीधे लाल-गढ़ चलने की सलाह दी। यथासमय तैयार दो घोड़े स्वामीजी के डेरे पर मिले, यमुना और रामसिंह भक्तिपूर्वक स्वामीजी से बिदा लेकर चले।

काफी दूर निकलकर विश्राम के लिए दोनों उतरे। घोड़ों के दाना-पानी का प्रबन्ध किया। सायिक सेवा के लिए नौकर बुला लिया। स्नान-भोजन कर दोनों ने कुछ काल आराम किया।

एकान्त देखकर रामसिंह ने पूछा, "भाभी, हम दो आदमी दस हजार का सामना करेंगे ?"

यमुना सोच रही थी, बोली "क्यों, तुम दो आदमियों ने दस लाख का सामना कैसे किया ?"

"वह तो चाल थी।"

"यहीं कौन ढाल-तलवार लेकर लड़ने जा रहा है ?"

"भाभी, तुम कितने आदमियों का सामना कर सकती हो ?"

"अकेली ?"

"हाँ।"

"एक आदमी का।"

बेवकूफ की तरह देखता हुआ रामसिंह बोला, "लेकिन तुमने भाई साहब को थोड़े आदमियों की मदद से छुड़ाया था।"

"वह और बात थी; सूझ भी लड़ाई में कभी-कभी नकशा बदल देती है।"

"इस मामले में कुछ सूझा ?"

"हाँ, देखो, बताती हूँ; जाओ थोड़ा-थोड़ा रंग सब तरह का खरीद लाओ। कूचियाँ भी तीन-चार; कम-से-कम एक।"

भाभी तस्वीर खींचेगी, सोचकर रामसिंह बहुत खुश हुआ। यह विद्या वह भी जानता है। बड़ा आग्रह हुआ कि भाभी का हाथ देखें। मन में तरह-तरह से सोचता हुआ चला। जहाँ टिके थे, वहाँ से बाजार निकट था। चित्र खींचने का सारा सामान, प्यालियाँ, कूची, रंग, पत्र खरीद लिये। फिर यथारीति सब तैयार कर भाभी के सामने रक्खा, और शिष्य की तरह आग्रह से देखने लगा। यमुना ने करुणा से भरी हुई एक मूर्ति पत्र लिखकर नामाक्षरों के नीचे अंकित की। रामसिंह देखकर मुग्ध हो गया। आत्म-सम्प्रदान के स्वर से बोला, "भाभी, इस दूसरे पत्र में भाई साहब की एक तस्वीर खींचकर अपने यथार्थ हस्ताक्षरों से एक पत्र लिखो, मैं सोने में मढ़कर बाँह में बाँधूंगा।" प्रसन्न होकर यमुना रामसिंह का आग्रह पूरा करने लगी। ऊपर बहुत जल्द, बड़ी सफाई से, वीरसिंह की वह मूर्ति खींची जो

उसने पहले-पहले देखी थी; फिर प्रणय-पत्र के तौर पर एक भावपूर्ण पत्र लिखकर नीचे 'कुमारी त्रियामा' स्वाक्षर कर दिया। आनन्द से पुलकित होकर रामसिंह नम्र भाव से खड़ा रहा। फिर दोनों हाथों पत्र लेकर मस्तक पर रखकर पूर्ण भक्ति-प्रीति की दृष्टि से देखा किया। वीरसिंह की यह युवक-मूर्ति है; कितना आकर्षण है आँखों में! —कैसी अपराजित ज्योति निकल रही है! भाभी के हस्ताक्षर भी कितने अच्छे! पूरी प्रसन्नता से देखकर यत्नपूर्वक रखकर कहा, "उस पत्र का लक्ष्य मैं समझ गया।"

"हाँ, अब तो तुम्हारे जैसे चतुर के लिए समझ जाना उचित है।"

"खूब लड़ाई है अक्ल आपने।"

यमुना चुप रही; फिर रुककर बोली, "तुम्हारी मौलिकता की नकल की मैंने।"

प्रसन्न होकर रामसिंह बोला, "नहीं, नकल तो पूरी-पूरी नहीं कही जा सकती; पर आपने मुझे समझा जरूर दिया कि इस विद्या में आप मेरी यथार्थ आचार्या हैं; मुझे कुछ सलाह विद्या से मिली थी; आप अकेली पूर्ण हैं।"

"अच्छा तुम क्या समझे? कुछ कहो।"

"मैं समझता हूँ, काम के लिए यहीं रहना ठीक होगा, चलने का परिश्रम व्यर्थ है; और आगे अब मेरा कर्त्तव्य होगा।"

"हाँ, तुम ठीक समझे।"

"मेरा विचार है आप समय लेना चाहती हैं, बिना समय के आप सफल नहीं हो सकतीं।"

"हाँ, ठीक है।"

"परन्तु इसके आगे सफलता निश्चित ही हो, ऐसी बात नहीं, सम्भावना है। यह जरूर है कि इस पत्र की सफलता पर सन्देह नहीं होता।"

"हाँ, तुम उस्ताद हो गये।"

"तो मैं रह जाऊँ, आप जाइए।"

"अगर तुम फँस गये?"

"मैं इस बार नहीं फँस सकता।"

"तुम भूलते हो।"

"समझ में नहीं आता।"

"तुम्हें अपनी पुष्टि के प्रमाण रखने चाहिए।"

"जी हाँ, वहाँ के, अगर बातचीत हो।"

"हाँ।"

"बतलाइए।"

"लिखो।"

रामसिंह लिखने लगा।

"दुर्ग के द्वार से निकलते दाहिनी ओर बस्ती है।"

"जी।"

"पैठते तीन द्वार हैं; फिर दो सेनानिवास, फिर रनवास।"

"जी।"

"दुर्ग के बायीं तरफ चोर द्वार है; दाहिनी तरफ तंग बगल से रास्ता। दुर्ग की ऊँचाई रनवास के पास प्रायः दो सौ हाथ; द्वार के पास भूमि से प्रायः दस हाथ की चढ़ाई पर।"

"जी।"

"सरदारों के नाम; सेनापति विक्रमसिंह, सहायक यदुनाथसिंह, शत्रुघ्नसिंह, बुद्धिबल, ज्ञानसिंह, महीपतिसिंह। रानी की दासियाँ, मुख्य चपला, मालिनी, लवङ्गी, श्यामा, रामा, विमला।"

रामसिंह ने लिख लिया।

यमुना विश्राम का समय समझकर रामसिंह से विदा हुई, छुट्टी मिलते ही मिलने के लिए कहकर।

इकत्तीस

कान्यकुब्ज से राजा महेश्वरसिंह के प्रस्थान करने के दिन प्रभावती लालगढ़ के उत्तरवाले मैदान में अपनी सेना अलग-अलग टुकड़ियों में बाँटकर एकत्र करने लगी। उसने अपने विश्वस्त अनुचरों में जिन्हें दक्ष समझा था, एक-एक सेना का नायकत्व उनमें एक-एक को दिया था। जिन गाँवों की उसने सहायता की थी, उनके लोग संवाद पाते ही साथ देने को चल दिये थे। वेतन अधिक मिलने का प्रकाश्य रूप से प्रचार किया गया था: भूखे लोग अपनी तलवार बाँधकर ढाल लेकर सेना में भर्ती होने को चल पड़े थे। इस प्रकार प्रभावती के साथ प्रायः पञ्चदश सहस्र सेना थी। एक-एक फौज उसके एक-एक सरदार के अधीन, दूसरी से कुछ फासला रखकर, चली आ रही थी। देखते-देखते लालगढ़ के उत्तर समुद्र-सा गरजने लगा। लालगढ़ पर जो विपत्ति का वज्र कान्यकुब्ज के विचार में टूटा था, उसका संवाद वहाँ फैल चुका था; सब श्रीहत हो रहे थे! कुमारदेव की माता मुरझाई हुई बैठी थीं; वहाँ अभी यह संवाद न पहुँचा था कि लालगढ़ की जब्ती की भी आज्ञा उसी दिन हुई थी और राजा महेश्वरसिंह कान्यकुब्ज की दस हजार सेना के साथ चढ़ाई करनेवाले हैं। प्रभावती की सेना को एकत्र होते देख नगर तथा दुर्ग के लोग कुछ समझ न सके कि वह किसकी सेना है और उसके आने का कारण क्या है। भय से लोग विवर्ण हो गये; उन पर पहले ही इतना अधिक दुःख पड़ चुका था कि लड़ने के लिए उनका हाथ न उठ रहा था; सेना भी उनके पास इतनी अधिक न थी; सब त्रस्त हो रहे थे, नगर में चारों ओर आतंक छाया हुआ था।

प्रभा एक जंगली कुंज में विद्या के साथ बैठी हुई आगे के कार्यक्रम पर विचार करने लगी।

"जैसा कि पहले मैंने कुमार को सोचकर लिखा था, तदनुकूल तुम यहाँ राजराजेश्वरी का अभिनय करो।" गम्भीर होकर प्रभा ने कहा।

"तो ?"

"तो, सम्भव है, दुर्ग के लोग आसन्न विपत्ति से उद्धार पाने के लिए तुम्हारी शरण में आयें; तुम लिखो भी कि इस-इस तरह राजा महेन्द्रपाल और कुमार पर अन्याय किया गया है; प्रभावती ने हमारी शरण ली है—कुमार का पत्र प्रमाण है—अतः हम दुर्ग की रक्षा के लिए आये हैं; राजा महेश्वरसिंह आज चलकर शीघ्र किला लूटने के लिए पहुँचेंगे। हमारी इच्छा है कि तुम लोग निश्चिन्त होकर हमसे सहयोग करो; हम यहाँ से सच्चे प्रमाण राजा महेन्द्रपाल और कुमार के निर्दोष होने पर भेजेंगे; अभी तक कहीं पैर न जम सकने के कारण प्रभावती अनुकूल कार्य नहीं कर सकी।"

"बुरी नहीं सलाह।"

"फिर जल्दी करो।"

इन्हीं संकेतों पर विद्या ने एक दीर्घ-पत्र कुमारदेव की माता रानी कमला को लिखा और राजराजेश्वरी नाम से साक्षर कर दिया।

पत्र पहुँचाने के लिए महाराज को भेजा, लिख दिया कि ये महाराज शिवस्वरूप दलमऊ के रहनेवाले हैं, प्रभावती के मामले में बलवन्तसिंह और महेश्वरसिंह से डरकर घर छोड़ा था। अनेक प्रकार से पत्र में धैर्य दिया।

महाराज पत्र लेकर चले।

जब यमुना लालगढ़ की सरहद पर पहुँची, तब उत्तर की तरफ गर्द उड़ती हुई देखकर शंका करने लगी। अनेक प्रकार की बातें मन में आने-जाने लगीं। पहले तो यह सोचा कि राजा महेश्वरसिंह के चलने की तिथि गलत बतलायी गयी। यह भी एक राजनीतिक चाल है। वे सीधे रास्ते न आकर, दूसरे रास्ते से आये। अब रामसिंह बेकार बैठा रहेगा। फिर सोचा, सम्भव है, रत्नावली ने कुमार को सहायता दी हो, वहाँ खबर पहुँची हो। वह कुमार को चाहती है, यह अनुमान यमुना कर चुकी थी। एक टीले के पीछे घोड़ा खड़ा किये इसी प्रकार की चिन्ताओं में पड़ी थी, जी व्याकुल हो रहा था, वहाँ जाने का एक उपाय सोच रही थी, इसी समय महाराज का घोड़ा गोल से बाहर निकलकर किले की ओर बढ़ता हुआ देख पड़ा। साथ-साथ यमुना ने भी घोड़ा बढ़ाया। कुछ निकट आकर महाराज को पहचाना, धैर्य हुआ, अधिक मात्रा में आनन्द भी। इस प्रकार महाराज का आना सूचित कर रहा था कि दल मित्र का है, शत्रु का नहीं। कुछ और तेज घोड़ा बढ़ाकर यमुना ने महाराज को आवाज दी। नाम लेकर पुकारते हुए आदमी की ओर गौर से महाराज ने देखा। यमुना को पहचानकर घोड़ा रोक दिया। बड़े खुश हुए। अब वे यमुना को सच्चे रूप में पहचान चुके थे। सम्मान देने के विचार से घोड़े से उतर पड़े। यमुना भी अब दासी-रूप में न रह सकती थी। घोड़े पर बैठी हुई लगाम हाथ में लिये दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

मधुर हँसकर महाराज ने कहा, "देवी, आसिरवाद गँवार बराँभन का यहै है कि तुम्हारा सोहाग अचल होय; और हमारे अपराध क्षमा होयँ।" महाराज की

आँखों से आँसू बहने लगे।

यमुना घोड़े से उतर पड़ी। बोली, "ब्रह्मन, इतनी दीनता उठा सकूँ वह शक्ति मुझमें नहीं। आपकी अनन्त मूर्खता इस अलौकिक तत्त्व में दबी है, मेरे समस्त कृत्य यहाँ परास्त हैं।

फिरकर महाराज को एक पेड़ की छाँह में ले गयी, वहाँ छुटने के बाद से अब तक की समस्त बातें मालूम कीं। सब सुनकर प्रभावती के भाव-परिवर्तन पर कुछ देर सोचती रही।

"चलो," यमुना ने कहा, "मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ। फिर तुमसे जरूरी दूसरा काम है। दूसरा उसे नहीं कर सकता। तुम्हारा घोड़ा थका होगा। काम हो जाय, फिर यहीं से दूसरा सुस्ताया घोड़ा ले लेंगे।"

दोनों घोड़े पर सवार हो लालगढ़ के उत्तरवाले फाटक पर पहुँचे। रानी कमला के नाम जरूरी पत्र सुनकर सिपाही ने अपने सरदार को खबर दी। वह आया और पत्र लेकर रनवास भेजवा दिया। यमुना ने सरदार कर्णसिंह को बुला देने के लिए कहा। कहा कि कहना कुमारदेव का जबानी हाल है। कर्णसिंह तत्काल आया। यमुना को देखकर देर तक खोया हुआ-सा खड़ा रहा। फिर होश में आ पैर छुए। पूछा, "भय्या के क्या समाचार हैं?"

"अच्छे हैं," कहकर यमुना एकान्त में ले गयी, फिर कुछ बातें समझाकर, प्रभावती को बुला लेने के लिए रानीजी से कहने को कहकर जल्द भेज दिया।

बत्तीस

प्रभावती को प्रवेश मिल गया। कर्णसिंह वीरसिंह का सहायक रह चुका था। यमुना को पहचानता था। रानी कमला भी यमुना को देख चुकी थीं। यमुना का नाम सुनकर लालगढ़ के सभी लोग खिल गये। अभी तक ज्ञात न था। अब तो, जानकर कि वह लड़ने के लिए फौज लेकर आयी हैं और डाकुओं की रानी किसी राज-राजेश्वरी से उनका मिलने का यही कारण है, लोग फिर से आनन्द में मत्त हो गये। फिर उन्हें प्रतिकार की आशा होने लगी। कान्यकुब्ज से लूटने के लिए दस सहस्र फौज लेकर आनेवाले महेश्वरसिंह का सामना करने के लिए अब आस्फालन करने लगे। लालगढ़ के भीतर और बाहर अपूर्वा नगरी हर्ष के समुद्र-सी उद्वेल हो उठी। कान्यकुब्ज की सेना निश्चित रूप से परास्त होगी, यह सबका विश्वास हुआ। पाँच हजार सेना लालगढ़ की थी; नगर के लोग मिलकर पच्चीस हजार से भी अधिक हुए जा रहे थे, राजराजेश्वरी की सेना अकेली, कान्यकुब्जवाली सेना से ड्योढ़ी थी। प्रभा की सेना को रसद की सुविधा हो गयी। रत्न तोड़वाकर उसने भिन्न-भिन्न वणिकों से रसद का प्रबन्ध कर दिया। दुर्ग के चारों ओर कायदे

से प्रभा की सेना के पड़ाव पड़ गये। भीतर कुछ चुने हुए आदमी गये। महाराज, यमुना, राजराजेश्वरी, प्रभा और कुछ और जन।

प्रभा से पहले-पहल जब यमुना मिली, उसने देखा प्रभा पुलकित होती हुई भी धीर है। पहले का जैसा खुला रूप इस बार नहीं; जैसे एक निश्चय उसमें बँध चुका है, वह बालिग हो गयी है, इसलिए इस बार शिष्टाचार पहले से अधिक है। यमुना समझ गयी कि इसके अर्थ हैं, मैं अपने विषय में वश्यता स्वीकार नहीं करती। कुछ न बोली। उस पर हुआ कार्य पूरा समझकर चुप रही। खुली विद्या से, जब से उसे पूरी पहचान के बाद की प्रभा की तरह नम्र और भक्तिमयी देखा। देखती रह गयी; प्रदीप-सी शान्त जल रही थी; सारा पाप जल चुका था; मूर्त्ति-मती रागिनी साकार कला बन रही थी। इस पर प्रभावती ने राजराजेश्वरी की तरह सम्वर्द्धित कर सज्जित किया था।

दुर्ग में रानी कमला के पदों में प्रभा ने भूमिष्ठ प्रणाम किया। अश्रु-पुलकित रानी मुख चूमकर, "दुख बहुत मिला ?" कहकर अपनी विवशता सोचकर सिसक-सिसककर रोने लगीं। विनीत स्वर से प्रभा को ही धैर्य देना पड़ा। अनेक प्रकार से उसने सासुजी को सान्त्वना दी। ऐसे स्थलों पर धैर्य रखने की शिक्षा आप लोगों से मुझे मिली है, मैं उसका उपयोग करती हुई शान्ति पाती हूँ और अब पूर्ण विश्वास हो गया है कि मैं स्वयं महाराजाधिराज जयचन्द को न्याय के पथ पर आने को विवश करूँगी, विनीत भाव से सासुजी को समझाया। रानी आश्वस्त हुई। रनवास में खुशी के फव्वारे फूटने लगे।

रात्रि के समय, बहू के आने की खुशी में, रानी ने प्रतिष्ठित राजपुरुषों, ब्राह्मणों, कलाविदों तथा धनिकों को देवियों सहित आमन्त्रित किया। नगरी की प्रसिद्ध नर्तकियों को भी आमन्त्रण मिला। आतिथ्य-सत्कार का वृहत् समारोह होने लगा। बहू देखने का नगर भर में निमन्त्रण फिर गया। देवियाँ उपहार, निछावर आदि ले-लेकर बहू का मुख देखने के लिए चलीं। दुख और चिन्ता के बाद यह आनन्द महानन्द में परिणत हो गया।

प्रभा रानी के पास थी। विद्या और यमुना अलग-अलग प्रकोष्ठों में। यमुना चिन्ताशील, प्रभा की माता रानी पद्मावती को पत्र लिख रही थी। भावों को कई बार मनोयोगपूर्वक देखा। फिर महाराज को देखती हुई बोली, "आज यहाँ बड़े जोर-शोर का गाना है, अगर आज ही काम पर भेजें तो आपको कुछ बुरा लगेगा, और रात को, मुमकिन है, आपको रास्ता न मिले और आप डरें भी; लेकिन यह समझ लीजियेगा कि रानी पद्मावती का पत्र है, आपके सिवा दूसरा नहीं जा सकता और कल दोपहर तक पत्र उन्हें मिल जाना चाहिए; अगर आप गाना सुनते रहे रात भर तो आप समझियेगा।"

"सवारी पर तो जाना है," महाराज ने जल्दी में कहा।

"सवारी पर और मेहनत पड़ती है। सुना है, आपकी बीवी साहबा भी रानी कमलाजी की खुशी में राजराजेश्वरी के नाम से कुछ गाने और नाच भेट करनेवाली हैं।" कहकर यमुना महाराज को देखती हुई मुस्कुरायी।

"हमें नहीं मालूम," उड़ी निगाह से देखते हुए महाराज ने कहा।

"अब आपको कैसे मालूम होगा ? अब आपकी बीबी थोड़े ही हैं ! — अरे महाराजिन अब तो राजराजेश्वरी हैं । जाइये पूछिये ।"

"हे कुमारीजी, जान पड़ता है, राजराजेश्वरी कोई है नहीं ! —हमें तो न उहाँ देख पड़ी, न इहाँ; बस नामै नाम है।" महाराज जिज्ञासा की दृष्टि से देखते रहे।

"नाम बड़े, दरशन थोड़े, क्यों महाराज ?" यमुना मुस्कुरायी ।

महाराज ने भी नीचे-ऊपर के दाँत निकाल दिये। फिर चिट्ठी लेकर अँगोछे में लपेटकर कमर में बाँधकर विद्या के कमरे में गये । दरवाजा बन्द करके उसके पलँग पर बैठ गये, और बड़े विश्वस्त स्वर से कहा, "एक बड़ा संशय मन में है ।"

"कह डालो झटपट," कहकर मजे की एक चपत मारी महाराज के गाल में, "अँह, उड़ गया, मच्छर काट रहा था ।"

महाराज का संशय दूर हो गया। सचेत होकर गाल एक बार सुहलाकर बोले, "यह राजराजेश्वरी कौन है ?"

"एँ ! अन्धे हो ?"

महाराज घबरा गये, बोले, "हम तो—"

"तुम तो एक सच्चे बेवकूफ हो । कह दिया, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ । पर यह मैंने कब कहा कि मैं विद्या हूँ, राजराजेश्वरी नहीं ?"

महाराज कुछ खुश होकर कुछ अहमक बनकर बैठे देखते रहे। विद्या महाराज की हथेली अपनी हथेली में लेकर स्वर में नारी-हृदय की सारी चंचलता भरती हुई बोली, "अच्छा, तुम इतने दिन से तो मेरे साथ हो, कहो, कुछ समझ पाये कि मैं कौन हूँ !"

निश्छल कण्ठ से महाराज ने कहा, "समझे तो कुछ नहीं !"

"तो राजराजेश्वरी को ही क्या समझोगे जिसे कभी नहीं देखा !"

महाराज को फिर चक्कर-सा आने लगा ।

मुस्कुराकर देखती हुई महाराज की एक उँगली दबाकर बोली, "देखो, तुम्हारी कुमारीजी, प्रभावती मेरी चेली हैं, इतना समझे या नहीं !"

"हाँ, इतना तो अब समझ में आ गया ।"

"तो तुम क्या समझते हो कि तुम्हारी कुमारीजी किसी नाचनेवाली की चेली होतीं ?"

"हम कुछ नहीं समझते ।"

"तभी तो मैं तुम्हें प्यार करती हूँ; कोई दूसरा मर्द होता, तो मन्त्र पढ़कर फूंक देती तो दुनिया के उस पार उड़कर गिरता ।"

महाराज ताज्जुब की निगाह से देखने लगे ।

"मेरी उम्र क्या समझते हो ? तुमने सोचा होगा, इसकी उम्र बीस साल की होगी, मुझसे छोटी है, इसलिए बुजुर्गाने की शेखी में रहते हो; मेरी उम्र पाँच सौ पचहत्तर साल की है; मेरे छनाती के छनाती तुमसे बुड्ढे हैं। सौ साल तक मैं बंगाले में रही, सारा जादू वहाँ का सीखा; उसी के बल से सदा जवान रहती हूँ ।"

महाराज को शिथिल देखकर बोली, "पर तुम घबराओ मत । तुम ब्राह्मण हो । मैं ब्राह्मण को मानती हूँ, नहीं तो मेरी विद्या भ्रष्ट हो जाय; एक बार सिर्फ

चलेगी जैसे तुमको उड़ाना चाहूँ तो उड़ा दूँगी, पर फिर वह विद्या अपने घर चली जायगी। तुम आराम करो, मैं आती हूँ; आज मेरा नाच है, देखकर बतलाना कैसा लगा।"

"हम नाच न देखेंगे, हमको काम है, सोवेंगे। पिछली रात उठकर जाना है।"

आँखें ऊपर को उठाकर, भौंहें टेढ़ी कर, कुछ सोचती हुई-सी, जरा देर बाद बोली, "हाँ ठीक है समझ गयी," कहकर चादर ओढ़कर बाहर निकली।

यमुना पलँग पर पड़ी हुई विचार में मग्न थी; तरह-तरह के भावी चित्र बना-बिगाड़ रही थी; इसी समय मधुर आवाज आयी—"दीदी!"

"आओ।"

धीरे पदक्षेप से विद्या भीतर गयी और दोनों हाथों से पलँग पर यमुना के पदपद्म ग्रहण कर माथा रखकर प्रणाम किया।

"रामसिंह के लिए चिन्ता तो नहीं?" छोटी बहन को देखती हुई जैसे, यमुना ने प्रश्न किया।

विद्या समझ गयी। पुलकित होकर बड़ी उतावली से पूछा, "क्या छूट गये? —कैसे हैं, दीदी?"

यमुना उठकर बैठ गयी और बाँह पकड़कर पलँग पर बैठा लिया, "खूब, तुम भी एक ही मिलीं; अच्छे हैं रामसिंह धोबी, मैं उनकी भौजी बनी थी; विचार में ऐसे ही छोड़ दिये गये; साथ आये हैं; काम से राह पर गये; दो-एक दिन में आ जायेंगे। बिचारे ब्राह्मण को धोखे-ही-धोखे में रक्खा।"

लाज से नत होकर विद्या बोली, "कुछ हो, ब्राह्मण की सरलता अन्यत्र नहीं मिल सकती।" फिर देर तक पहले दिन वाली बातें कहती रही। यमुना मिलाती गयी, महाराज ने लौटकर झूठ बयान किया था। दोबारा महाराज से मिलने की बातें और रामसिंह के पास से वीरसिंह की तस्वीर ले के हाल साद्यन्त कहे और दाहिनी बाँह खोलकर वीरसिंह की वह तस्वीर दिखायी। यमुना ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। फिर, "तुममें खूब पता लगाया, मैं रामसिंह से सारा वृत्तान्त सुन चुकी हूँ, तुम यथार्थ देवी हो, तुमसे उर्वशी, देवी दुर्गा, सरस्वती और लक्ष्मी, सबके गुण वर्त्तमान हैं," कहकर सम्वर्द्धित किया।

"दीदी, प्रभावती के स्वागत में आज मैंने महफिल में उतरने का संवाद भेजा है। आपसे उनकी प्रसन्नता के हाल पाकर मैं अपने को सँभाल नहीं सकती, इतना आनन्द है। प्रार्थना है, उस वक्त आप वहाँ अवश्य रहें, मुझे उत्साह मिलेगा; और यह भी कहें कि मैं किस तरह उतरूँ, वाद्य का भी अच्छा प्रबन्ध होना चाहिए; यह आप ही कर सकती हैं।" विद्या कहकर नतदृष्टि रह गयी।

यमुना हँसी। सरल स्वर से बोली, "बहन, वहाँ प्रभावती का स्वागत हो रहा है। महफिल में उसका स्थान भी वैसा ही रहेगा। वह युवराज की परिणीता प्रथम स्त्री है, भविष्य में रानी होगी। मैं यहाँ के सेनापति की पत्नी हूँ। मुझे राज-कन्या समझती हुई भी रानी कमला सेनापति तथा सरदारों की महिलाओं में ही स्थान देंगी, नहीं तो बनता नहीं, मैं भी इस प्रथा को व्यवहारोचित मानती हूँ, और मुझे उनमें बैठने का अपमान-ज्ञान नहीं, पर प्रभा मुझे देखकर अपने आसन पर न

रहेगी, इसलिए मैं जाना नहीं चाहती, सिर्फ जेवनार में जाऊँगी, और अलग तुम्हें बगल में बैठाकर भोजन के बाद चली आऊँगी। मुझे स्थिति की पर्यालोचना से समय भी नहीं। हाँ, तुम्हारे लिए जहाँ तक अच्छा होगा, बाजे का प्रबन्ध करा दूँगी, क्यों, उदास क्यों हो।"

"प्रभा आपको छोड़कर महफिल में बैठेगी नहीं। जेवनार में भी नहीं। मैं उससे पूछ लूँ। आप अभी तक उनके सेनापति की स्त्री हैं ? तीन-पांच करें तो लूट मचवा दूँ। मेरा नाम सुन चुकी हैं सब।"

यमुना खिलखिला दी—"हाँ, हाँ, लूट लेना तुम्हारे लिए कौन बड़ी बात है ? बहुत रवाँ दाँव, चलता अस्त्र है। क्या कटाक्ष खेलता है आँखों पर ! हाँ, कुछ न पहनकर, केवल साड़ी में, सिर्फ नूपुर बाँधकर प्रदर्शन करो; रहना भी तो राज-राजेश्वरी की तरह होगा।"

"मैंने भी यही सोचा था दीदी। आपने मन की बात छीन ली।"

इसी समय रानी कमला की दासी आयी। प्रणाम कर यमुना से बोली, "युवरानीजी आने की आज्ञा चाहती हैं।"

"ले आओ।"

रानी को सजायी, पूर्ववत् आभरण-भारा प्रभा मन्द-गुंजित-पद आयी और नत होकर प्रणाम किया। यमुना ने ठोड़ी स्पर्श कर स्नेह सूचित किया, और पलँग पर बैठी देखती-देखती सजल हो गयी; आर्द्र कण्ठ से कहा, "आज अकेली हो ?"

प्रभा की भी आँखें छलछला आयीं।

नत मुख निश्चला बैठी हुई अपने को सँभालकर बोली, "दीदी, चलो जेवनार के लिए बुलाने आयी हूँ। पहले-पहल देवता-पूजन करूँगी, अकेली नहीं कर सकती। महिलाएँ आ गयी हैं। मेरा आना उन्हें अस्वाभाविक-सा लगा। आलोचनाएँ भी बहुत अच्छी नहीं। मैं राजराजेश्वरी की आश्रिता हूँ, यह मेरी हीनता बहुत आँखों में मर्यादा ला रही है। और जेवनार में मैं तो इन्हें अलग न करूँगी, पर शायद क्षत्राणियाँ पहले से मुझे अलग किये बैठी हैं—अलग ही बैठेंगी।"

"हूँ !" यमुना अत्यन्त गम्भीर होकर द्वार की ओर देखती रही।

विद्या संकुचित होकर जैसे अपने में समा गयी। प्रभा एक बार बादल से बाहर निकल आयी।

विद्या को देखती हुई बोली, "मैं समझती हूँ, राजराजेश्वरी का यही वेश ठीक होगा," चिबुक पकड़कर, "शोभने, महत्ता सदा क्षुद्रताओं को अपने भीतर रखती है, तभी वह महत्ता है; चलो; प्रभावती तुम्हारे कारण यहाँ आने में सफल हुई है; चौहान होकर तुम वहाँ इन्हीं से श्रेष्ठत्व प्राप्त करो। देखा जाय, क्या होता है।" आगे-आगे निराभरणा प्रियप्रवाहिका यमुना, मध्य में विद्युल्लता विद्या, पीछे नीलाञ्चला साक्षात् प्रभा रनवास को चलीं।

देवी यमुना को देखने के साथ ही समवेत समस्त क्षत्राणियाँ रानी कमला के साथ-साथ किसी अज्ञात प्रेरणा से जैसे उठकर खड़ी हो गयीं। रानी ने हाथ पकड़-कर अपने सर्वोच्च आसन पर बिठाना चाहा। पर संयत स्वल्प सम्मान रानी के प्रति प्रदर्शित कर यमुना ने कहा, "यह आप ही के योग्य है। हमारे साथ चूंकि

चौहान-महिला देवी राजराजेश्वरी वर्त्तमान हैं, इसलिए हमें उन्हीं का उचित सम्मान करना चाहिए : वे अपनी अभिन्नहृदया सखी देवी प्रभावती के साथ इस आसन पर बैठें।" एक-एक हाथ दोनों का पकड़कर दो कदम बढ़कर यमुना ने छोड़ दिया। दोनों आज्ञा मानकर चुपचाप जाकर बैठ गयीं। वहीं एक दूसरे श्रेष्ठ आसन पर रानी को बैठाल सरदारों की महिलाओं के साधारण देवियों में जाकर यमुना ने हँसकर आसन ग्रहण किया। क्षणमात्र में सभा की भावना बदल गयी। एकटक सब एक बार प्रभा और एक बार राजराजेश्वरी को देख रही थीं। क्या शान्ति और क्या तेजस्विता है प्रभा के रूप में ! उधर क्या भंगिमा, क्या कला है राजराजेश्वरी की मुखकान्ति में।

पश्चात् एक-एक कर सब महिलाएँ प्रभा से मिलीं, उपहार दिये, रानी मधुर स्वल्प शब्दों में सबका परिचय देती रहीं। इसके बाद देव-पूजन-विधि पूरी करने को आयीं। ब्राह्मण-देवियाँ प्रदर्शिका हुईं। यमुना ने कहा, "यहाँ देवी राजराजेश्वरी देवी प्रभावती के कुल-देवता का पहले पूजन कर राजवंश को लगे अज्ञात अपराधों की क्षमा-प्रार्थना करेंगी, इसके बाद देवी प्रभावती उनके प्रीत्यर्थ यथारीति पूजन कर कुल-प्रवेश करेंगी।"

ऐसा ही किया गया। विद्या ने अन्तःकरण से देवता से प्रार्थना की, वे राजा महेन्द्रपाल के अपराधों को क्षमा कर दें।

पूजन के पश्चात् जेवनार में विद्या का वही आसन रहा। वह अज्ञातकुल-शील-वाली नहीं; चौहान-जाया होकर प्रभावती के दक्षिण रही; वाम पार्श्व में यमुना स्वयं बैठी। वहाँ प्रभावती यमुना की आज्ञा को मानकर चल रही थी, इसीलिए शान्ति-भंग करने की इच्छा उठने पर भी दबा गयी। बाहर समागत पुरुषों का आदर-स्वागत, भोजन-पान चल रहा था, कुलीन ब्राह्मणों के द्वारा उच्च कर्मचारी-गण करा रहे थे। सार्वजनिक सभा में प्रभावती के आने की सब लोग उतावली लिए जल्द-जल्द प्राथमिक अङ्ग पूरे कर रहे थे।

राजराजेश्वरी के साथ आये हुए लोग, जो दुर्ग के बाहर पड़ाव डाले पड़े थे, वे सब व्यूह-रचना के अनुसार वहीं रहने के लिए आदिष्ट थे; उनके सरदार भी वहीं थे; उन्हें ऐसी ही आज्ञा थी; समझा दिया गया था कि दुर्ग में राजराजेश्वरी के सम्मान में आनन्द मनाया जा रहा है, वहाँ के लोग उसमें शरीक होंगे; विजय करके लौटने पर उनके लिए वहाँ इनसे भी अच्छा प्रदर्शन किया जायगा।

यमुना ने पुराने अच्छे कलाविदों के नाम लेकर उन्हें आने के लिए बुलाया। मालूम हुआ कि वे सब आमन्त्रित होकर पहले से आये हुए प्रतीक्षा कर रहे हैं।

पुरुषों की सभा यथाविधि बैठा दी गयी। यमुना के निर्देशानुसार महिलाओं को लेकर दासियाँ यथास्थान बैठा आयीं। फिर प्रभा को लेकर रानी चलीं; साथ-साथ यमुना और विद्या। पहले के विचारानुसार आसन बड़ा रखवाया गया था। बीच में प्रभा को आगे कर रानी कमला बैठीं, दाहिने राजराजेश्वरी, बायें यमुना। दोनों ओर के निरलंकृत सौन्दर्य के बीच आभरणों से जगमगाती प्रभा क्या शोभा दे रही है ! —लोगों की दृष्टि बँध रही थी।

दासियाँ आज्ञा की प्रतीक्षा में पीछे खड़ी थीं। एक को बुलाकर यमुना ने कहा,

"देवी राजराजेश्वरी के महाराज को देखो, सो रहे हों तो जगा दो, भोजन कराकर यहाँ ब्रह्म-मण्डली में बैठा दो। मेरा नाम लेकर कहना कि नाच देखने के लिए जल्द बुलाया है।"

नृत्य-गीत शुरू हो गया। अपूर्वा की अपूर्वा वीर-वनिताएं पूरी सजकर आयी थीं। युवरानी के स्वागतार्थ सबके हृदय में स्नेह उमड़ रहा था, फिर जब अपूर्वा और लालगढ़ पर विपत्ति के बादल छाये हुए थे, वे तेज हवा जैसी दूर के बहती हुई बादलों को उड़ा देने के लिए आयी हैं। आज उनकी प्रसन्नता से प्राप्ति भी अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक होगी। वे पूर्ण सम्पन्न हैं; इतना वैभव, इतनी शक्ति लालगढ़ नहीं दर्शित कर सका।

अगरु की सुगन्ध से सभा-मण्डप सुवासित हो रहा था। प्राचीन प्रथानुसार रंग-मंच पर नर्तकियाँ जगमगा रही थीं। वीणा और मुरज मिल चुके थे। रानी ने सङ्गीत के श्रीगणेश के लिए आज्ञा दी। प्रवीणा सुन्दरी उठी। कोमल कोयल-कण्ठ से, अपना ही विरचित स्वागत-गीत गाया। निष्कम्प दृष्टि से देखती हुई, प्रभा ने इंगित से बुलाकर पुरस्कृत किया। इस प्रकार मुरला, मंजरी आदि कई बार नारियों के नृत्य-गीत हुए। सभास्थ लोगों को पूरी तृप्ति हुई। विद्या स्थिर बैठी हुई तोल रही थी। यमुना रह-रहकर विद्या के व्यक्त मनोभावों को देख लेती थी। इसी समय उत्तर के द्वार से एक सन्तरी ने आकर संवाद दिया, "देवी यमुना से मिलने के लिए उनका अश्वारोही दूत आया हुआ है।" बड़ी उत्कण्ठा से देवी यमुना ने दूत को आने के लिए कहा, फिर स्वयं सभा से उठकर गयी। प्रभावती और विद्या की पलकों पर विचार की रेखा खिंच गयी। नृत्य-गीत चलता रहा।

यमुना रामसिंह को अपने कक्ष में ले गयी। घोड़ा दूसरे सेवक के सुपुर्द कर दिया। रामसिंह का आना ही सफलता सूचित कर रहा था। पर समझकर भी यमुना उतावली न रख सकी। स्नेहार्द्र कण्ठ से पूछा, "क्यों सफल हुए ?"

फिर चरणधूलि लेकर गर्वित मस्तक उठाकर रामसिंह बोला, "हाँ, भाभी-जी।"

"कैसा हुआ ?"

"मुझे और उल्टा कान्यकुब्ज की ओर चलना पड़ा। मत्त चाल से आ रहे थे हमारे अनुमान तक नहीं पहुँचे। पहुँचकर मैंने पत्र दिया। रानी पद्मावती की मूर्त्ति देखकर ही सूख गये। पत्र पढ़कर मारे घबराहट के संज्ञा-शून्य हो गये। मुझसे पूछा, महेन्द्रपाल के साथ कितने आदमी होंगे ? मैंने कहा, सप्त सहस्र, अब दुर्ग टूटता ही है; न जाने क्यों, आधे सिपाही आपके आने के बाद से धीरे-धीरे निकल गये; मैं गंगा की ओर वाले जीने से उतरकर नाव से होकर गाँव गया, वहाँ से घोड़ा लेकर आया; रानी बेहाल हैं; कहा है, मृत्यु से पहले एक बार दर्शन कर लूं, बस इतनी ही कामना है।"

यमुना हँसी—"फिर ?"

"फिर सारा क्रम बदल दिया। मुझसे बोले, हम जल्द दलमऊ आते हैं। जाओ संवाद दो, चिन्ता न करें, महेन्द्रपाल के दिन अब समाप्त समझें। मारे घबराहट के पत्र नहीं लिख सके। मैंने कहा, अभी उड़ता हूँ। कहकर अपना रास्ता लिया।"

पूरी मुसकान हँसकर यमुना ने कहा, "यहाँ का हाल तो मालूम हो गया होगा ?"

"हाँ, बाजार में सुना। चारों ओर से पड़ाव देखकर एक राह-चलते से पूछा। मालूम हुआ, राजराजेश्वरी की सहायता आयी है, अपने आदमी हैं। यह राज-राजेश्वरी कौन हैं ?"

"तुम्हारी श्रीमतीजी।"

"अच्छा ?"

"क्यों; सन्देह हो रहा है ?"

"नहीं, मैंने कहा, सब ओर अधिकार रखती हैं।"

"प्रभावती ने उन्हें राजराजेश्वरी बनाया है।"

संक्षेप में यमुना ने सारा हाल कहा, फिर कहा, "अपना हाल किसी से कहना मत, विद्या से भी नहीं, अभी किसी को नहीं मालूम।" फिर सस्नेह भोजन कराकर सभा में चलने के लिए पूछा। रामसिंह तैयार हो गया। सबको देखने की प्रबल उत्सुकता हुई। राजराजेश्वरी के रूप में विद्या गायेगी, नृत्य दिखलायेगी, ये उनकी सफलता में और आनन्दवर्द्धक हुए। उसे लेकर यमुना फिर सभा में आयी और एक उत्तम स्थान पर उसे आसीन करा अपने आसन पर बैठ गयी।

यमुना ने इस तरह रामसिंह को ले जाकर बैठाया था कि विद्या को न मालूम हो। दूत के नाम से विद्या समझी भी नहीं कि रामसिंह है। यमुना के आते ही प्रभावती से राजराजेश्वरी ने उतरने के लिए कहा। प्रभा ने यमुना की आज्ञा ली। यमुना पूर्ण प्रसन्न थी, कहा, "अवश्य, इनका प्रदर्शन अवश्य रखूँगी। अपनी रुचि के अनुसार गाना नहीं सुना, बहुत दिन हो गये।" प्रभावती ने सासुजी से कहा कि सभा में योग्यजन से यह कहला दें कि अब देवी राजराजेश्वरी इस आनन्द में अपना नृत्य-गीत दर्शित करेंगी, उनका परिचय इतना यथेष्ट है कि दुर्ग की रक्षा के लिए आयी हुई यह समस्त सेना उन्हीं की है। देवी कमला ने अपने पुरोहितजी को बुला-कर समझा देने के लिए कह दिया। सभा में उन्होंने घोषणा कर दी।

सुनकर उसी सादे वेश में विद्या उठी, जैसे शुभ्र वस्त्रधारिणी साक्षात् सरस्वती नृत्य-संगीत की मूर्ति में भक्तों को तृप्त करने के लिए जा रही हों। गति-गति खिल रही थी। लोग उस संयत चपला को देख रहे थे, रूप की मोहिनी महिमा से बँधे हुए। प्रशंसा के शब्द भी इधर-उधर से उठ रहे थे,—हम लोगों पर देवीजी की बड़ी कृपा हुई, ऐसी ही दृष्टि सदा रहे, हमारी नम्र प्रार्थना है। यमुना ने प्राचीन वाद्यकारों के नाम कहकर मञ्च पर ले जाने के लिए दासियों को भेज दिया। महाराज ताज्जुब में आकर राजराजेश्वरी को देख रहे थे। रामसिंह अपनाव की पूरी स्वतन्त्रता से खिला हुआ साधना के बाद जैसे सिद्धि को देख रहा हो।

वादकों ने वाद्य लिये। वीणावादक से विद्या ने कहा, विष्णुताल के बोल बजाइये, सामयिक जो रागिनी पसन्द करें उसमें भरकर। वीणा में बोल बजने लगे, मृदङ्ग सङ्गति कर चला, विद्या ने नूपुर बँधवा लिये। यमुना मुस्कुरा रही थी, देख-कर दृष्टि से प्रोत्साहन दिया, प्रभा स्तब्ध थी। ताल-ताल पर, भावना में भरी हुई विद्या विष्णु की सृष्टि-रक्षा के भाव को गति, इङ्गित और भङ्गिमाओं से स्पष्ट

करती हुई रागिनी की मूर्त्ति बन रही। बड़ी तालों पर नृत्य सहज काम नहीं। समझदार दङ्ग थे। यमुना कलावती की मर्मज्ञता पर तुष्ट। समा बँध गया। रामसिंह नृत्य-गीत का इतना समझदार न था; धोबी बन गया। रानी मन्त्रमुग्ध-सी रह गयी। विष्णुताल पर नृत्य समाप्त कर, विद्या ने रुद्रताल पर वैसे ही दूसरे राग में बजाने के लिए कहा जो रुद्ररूप को व्यंजित करे। कुशल वृद्ध वीणावादक बजाने लगे। रुद्र का प्रलयंकर रूप ध्यान में लाकर विद्या ताण्डव-नृत्य करने लगी। एक-एक गहन अभिव्यक्ति उच्छ्वसित सागर-तरङ्ग-सी उठने लगी। विनाश का निर्मम भाव प्रति स्थिति भंग से व्यक्त हो चला, जैसे सत्य-सत्य नटराज नारी से बँधकर प्रकट हो गये। मुहुः स्पन्दित हृदय यमुना उठकर खड़ी हो गयी। आज पहले-पहल यमुना की दृष्टि में आश्चर्य मुद्रित हुआ। उसके राजराजेश्वरी होने में जो शका महाराज को थी, वह दूर हो गयी, इतना ही वे समझे।

नृत्य समाप्त कर, कुछ क्षण विश्राम करने के लिए विद्या बैठी। स्तुति शब्द से सभा गूँजने लगी। यमुना ने हार्दिक धन्यवाद देकर कहला भेजा कि अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं, लास्य का एक अच्छा उदाहरण देकर नृत्य समाप्त कर देना ठीक होगा, गीत दो-एक स्वल्प बाद को नृत्य सम्बद्ध हो जायें। दूसरी दासी के हाथ प्रशंसा में पान भेजे। विद्या को लास्य के लिए ताम्बूल रक्ताधरा होने की जरूरत थी; कुछ थक भी गयी थी। पान से गला सिंच रहा था। यमुना की मर्मज्ञता पर बहुत प्रसन्न हुई।

स्वस्थ होकर, तीन ताल की चीजें बजाने के लिए कहकर उठी। सौन्दर्य की भावना में रँगकर स्वप्न की ज्योतिर्मयी प्रेयसी बनी हुई तारक-तरल दृष्टि से सभा को एक बार देखा। मुख, भौंह, आँख, हाथ, पैर की प्रतिगति बदलकर सुन्दर बन गयी, पार्थिव आकर्षणों में सर्वश्रेष्ठ उठते पैर के साथ मालूम हो रहा था, साकार सुरभि समीर पर चल रही है। देह किरण से हँसती। एक-एक आवर्त में सारी सभा निछावर हो रही थी। क्या तैयारी, क्या ड्योढ़, क्या तेहरी, क्या छल, पलकें बँध गयीं। लास्य समाप्त कर विद्या ने यमुना की आज्ञा के अनुसार नृत्य के बँधे वैसे ही तीन तालों में भिन्न-भिन्न रागिनियों के गीत गाये, और अपार प्रशंसा पर चरण रखती हुई, वैसे ही बँधे नूपुरों से अपने आसन पर आकर बैठी। गहरी पहचान की मधुर मुस्कान से प्रभावती ने सम्वर्धित किया, सेविका नूपुर खोलकर दे आयी।

औरों के गाने होने लगे। कुछ देर बाद यमुना विद्या को लेकर चली गयी। कर्त्तव्य-वश प्रभावती बैठी रही। विद्या से रामसिंह के आने का हाल कहकर कक्ष में प्रतीक्षा करने के लिए कहा, और समझा दिया कि महाराज की द्विविधा मधुरता से दूर कर देना अच्छा होगा, फिर महाराज को बुला देने के लिए कहकर अपने कक्ष में चली गयी।

महाराज सीधे विद्या के अर्थात् अपने कमरे में गये। प्रदीप जल रहा था। उसके प्रकाश को मन्द करती हुई अपने नृत्य के छन्द की तरह विद्या बैठी थी। सम्मान की दृष्टि से महाराज ने देखा। विद्या उठी। अपनी स्वाभाविक चाल से महाराज के पास जा पैरों पर सिर रखा, कहा, "महाराज ब्राह्मण तो दया की मूर्ति होते हैं, आप मुझे क्षमा कीजिए!"

"क्या हुआ ?" महाराज आश्चर्य में भरकर बोले।

"मैंने तुमसे छल किया है, पर उस समय वही उपाय था।"

"क्या छल ?"

"मैं ब्याही हुई हूँ, शत्रुओं के हाथ से मुक्ति पाने के लिए तुम्हारा सहारा लिया था।"

महाराज ने सम्मान की दृष्टि से देखा, फिर सिर झुकाये हुए यमुना के कक्ष में चले गये।

तैंतीस

राजा महेश्वरसिंह दलमऊ पहुँचने के लिए रवाना हुए। उन्होंने सरदारों को रानी पद्मावती की पत्रिका दिखलायी, कहा कि सती रानी बराबर अपने हाथ से अपना चित्र खींचकर उन्हें पत्र लिखती थीं; सामयिक मनोभाव सामने मुकुर रखकर खींचे चित्र में पत्र की शब्दावली के साथ मिला देती थीं; यह पत्र किसी दूसरे का लिखा हुआ नहीं, नीच महेन्द्रपाल को पकड़कर जल्द लालगढ़ लूटेंगे, इस प्रकार एक-दो काज होंगे, महेन्द्रपाल को महाराजाधिराज के सामने पकड़ ले जाने पर जो निष्कर भूमि पुरस्कार-स्वरूप मिलेगी, वह सरदारों में बराबर बाँट देंगे, अगर महेन्द्रपाल भग गया तो भी उसे यह पता नहीं लगा होगा कि हम लालगढ़ के लिए रवाना हुए हैं, वह यही समझेगा कि संवाद पाकर हम दलमऊ के लिए ही कान्य-कुब्ज से चले हैं; इसलिए वह लालगढ़ के कीमती सामान उठा न ले जायगा, जो कुछ उसे लेना रहा होगा, वह ले चुका होगा। इतना समझाने पर भी सरदारों ने आज्ञा के खिलाफ सलाह न दी। उन्होंने कहा कि राजाज्ञा को शिरोधार्य न करने पर अपराध पुरस्कार से गुरुतर होगा। पर राजा महेश्वर को अपनी लगी बुझानी थी। उन्होंने और भी कहा कि कहेंगे कि लालगढ़ में ही महेन्द्रपाल को कैद किया है, पर फिर भी सरदारों की ताल न हुई। आखिर महेन्द्रसिंह ने विशेषाधिकार का प्रयोग किया। सरदार और सेना विवश होकर साथ चली। रास्ते भर किसी तरह धैर्य रहा, पर ज्यों-ज्यों नजदीक होते गये और महेश्वरसिंह अधिक सतर्क करते गये और क्रमशः किले तक कहीं कुछ न मिला, त्यों-त्यों सरदार और सेना के तेवर बदले। प्रकट कुछ न कहा, पर आपस में सलाह कर सरदारों ने उसी वक्त दो अश्वारोही महेश्वरसिंह के कर्त्तव्य के संवाद देने के लिए कान्यकुब्ज भेज दिये। महेश्वरसिंह को इसका पता न हुआ, वे लज्जित होकर सरदारों से कुछ देर के लिए विदा होकर दुर्ग के भीतर गये।

महाराज शिवस्वरूप रानी को पत्र देकर लौट आये थे। रानी बैठी विचार कर रही थी कि दासी ने महाराज के आने की खबर दी। रानी उठकर खिन्न स्वागत कर पति को कक्ष में ले गयी। राजा महेश्वरसिंह आग हो रहे थे। नाराज

बैठते हुए पत्र बढ़ाते हुए कहा, "यह क्या लिखा है ?"

"यह ?" आश्चर्य से पत्र लेती हुई, "यह मैंने नहीं लिखा !" पढ़कर, "यह क्या रहस्य है ?"

"तुमने नहीं लिखा ?"

"न, यहाँ ऐसी कोई बात हुई है ? मैं क्यों लिखने लगी ?"

"अब निस्तार नहीं !" राजा महेश्वरसिंह मस्तक पर हाथ रखकर अर्द्धशयान हो गये।

"क्यों ?" शंका और आवेग से उच्छ्वसित होकर रानी ने प्रश्न किया।

राजा महेश्वरसिंह उतरे गले से सारा हाल संक्षेप में कहने लगे।

"तो यह प्रभा का किया छल होगा। एक पत्र मेरे पास आया है। देखो।" रानी ने वह पत्र निकालकर राजा को दिया। लिखा था—

रानी प्रभावती को मणिपुर की राजकुमारी त्रियामा का यथोचित।

देवी,

आप मेरी मातृतुल्या हैं। मैं ही आपके वहाँ दासी यमुना के रूप में रह चुकी हूँ। मेरे अपर समाचार जो मेरे राजकुमारी-जीवन से विवाह के अन्त तक हैं, आपको विदित हैं। इसलिए मेरा दासी बनकर रहने का अर्थ आपको सब अनायास ज्ञात हो जायगा। मैं प्रभा की दासी होकर भी उसे छोटी बहन समझती थी; मुझे न जानती हुई भी प्रभा मेरे आदर्श में ढल रही थी और एक दिन पूरी-पूरी ढल गयी। मैं बराबर उसके साथ थी। राजकुमार देव को सच्चे हृदय से उसने वरण किया। इसके बाद की घटना आपको मालूम है। फिर कान्यकुब्ज तक मैं उसके साथ रही। रास्ते में मेरे बड़े भाई बलवन्त को उसी ने घायल किया। जहाँ पिता स्वयं विरोधी थे, वहाँ न्याय की आशा उसने छोड़ दी। अब राजराजेश्वरी नाम की एक प्रबल पराक्रमवाली स्त्री से उसका सखी-भाव स्थापित हो गया है। कान्यकुब्जेश्वर का कर लूटकर इस समय लालगढ़ दुर्ग पर वह अधिकार किये हुए है। यदि उसके पिता अपने अपराध के लिए उससे तीन दिन के भीतर क्षमा-प्रार्थना न करेंगे तो वह दलमऊ दुर्ग को लूटने के लिए चौथे दिन यहाँ से प्रस्थान करेगी। उसके साथ अभी केवल पच्चीस सहस्र शिक्षित सेना है, लूटा हुआ तथा लालगढ़ का कोष भी। उसकी वश्यता स्वीकार करने पर उसके पिता को कान्यकुब्जेश्वर का भय न रहेगा, कारण वह कान्यकुब्जेश्वर को सत्यमार्ग पर आने पर बाध्य करेगी। इस समय मणिपुर भी एक प्रकार उसी के अधिकार में है। बलवन्त वहाँ प्रवेश नहीं पा सकते। मेरे नाम से मेरी छोटी बहन रत्नावली ने सिपाहियों को उभाड़कर अपनी तरफ कर लिया है; निरपराध राजकुमार को कान्यकुब्ज के षड्यन्त्र से निर्वासन-दण्ड मिला, यह अन्याय रत्नावली के लिए असह्य हुआ, उसने राजकुमार को रोक रक्खा।"

नमिता कन्या

'त्रियामा'

पढ़कर महेश्वरसिंह स्तब्ध रह गये। अत्यन्त भय हुआ था, अब बचने का अंकुर उगा हुआ देख पड़ा। पत्नी से बोले, "बड़ी भूल हुई।"

"किसलिए ?"

"इसलिए कि सत्य छोड़कर असत्य-पक्ष ग्रहण किया। अपनी कन्या, उसके सुख का विचार न किया!"

रानी रोने लगी।

कुछ देर तक दोनों मौन रहे। एक दासी ने आकर कहा कि सरदार किसुनसिंह मिलना चाहते हैं।

सरदार किसुनसिंह कान्यकुब्ज से आये थे। राजा महेश्वरसिंह ने रानी से आने का संक्षिप्त वृत्तान्त कहा : फिर जोश में आकर बोले, "अपने ही हाथों अपनी कन्या का भविष्य बिगाड़ा है, अब उन्हीं से क्षमा प्रार्थना भी करूँगा।"

रानी पद्मावती की सजल आँखों के भीतर से मर्मभरी बिजली झलक आयी। बोली, "अवश्य कीजिए। गिरे पिता को उठानेवाली पुत्री क्षमा करने के लिए ही तो आती है ?"

राजा महेश्वरसिंह बाहर आये। सरदार क्रुद्ध खड़ा था। उसे देखकर महेश्वरसिंह बोले, "अच्छा हुआ कि हम लोग यहाँ चले आये, वहाँ राजराजेश्वरी की पंचविंश सहस्र सेना पड़ाव डाले हुए है। दुर्ग पर भी उसी का अधिकार है। कान्यकुब्ज का कोष उसी ने लूटा है। बात दूसरी तरह सत्य हुई। व्यर्थ सैन्यक्षय होता। तुम लोग कान्यकुब्ज लौट जाओ। मैं महाराजाधिराज को सूचित करता हूँ।"

सरदार लौट गया।

महेश्वरसिंह पत्र लिखने बैठे।

चौंतीस

कान्यकुब्ज में एक ही सप्ताह के भीतर खलबली मच गयी। मनवा से कुमारी रत्नावली के पत्र के साथ प्रमाण में भेजा हुआ वह भिक्षुक आया, जिससे कुमारी प्रभावती के साथ कुमारदेव के विवाह का प्रमाण पेश हुआ। राजा महेन्द्रपाल और कुमारदेव की निर्दोषिता बतलायी गयी, और सबसे आवश्यक अंश सुधार के लिए महाराज के पास यह आया कि इच्छा के न रहते हुए भी मनवा की कुमारी रत्नावली को राजा बलवन्तसिंह को प्रश्रय देने के कारण महाराजाधिराज का विरोध भी स्वीकृत होगा यदि उन्होंने समुचित न्याय न किया।

इसके बाद लालगढ़ लूटने के लिए जानेवाली सेना का वापस जाना एक दूसरी उलझन का कारण हुआ। इससे कुमारदेव और राजा महेन्द्रपाल पर हुआ सन्देह अधिक अंश में घट गया। राजा महेश्वरसिंह का धोखा खाना और राजराजेश्वरी नाम की किसी डाकुओं की नायिका का राज-कर लूटना, पश्चात् प्रभावती को आश्रय देकर लालगढ़ पर अधिकार करना ज्ञात हुआ।

फिर राजा महेन्द्रपाल का पत्र देवी त्रियामा के पत्र के साथ जो उन्होंने रानी पद्मावती को लिखा था, महाराजाधिराज को प्राप्त हुआ। इससे सन्देह पूर्णमात्रा में दूर हो गया। बल्कि समस्या उलझनदार हो गयी। इन तीन प्रधान सरदारों के परस्पर मिलने की शंका खड़ी हो गयी। इन्हें दबाने के उद्योग से राजसूय के अनुष्ठान को पहले दबाना होता था। पुन: केवल बलवन्तसिंह को लेकर कान्यकुब्जेश्वर न रह सकते थे। बलवन्त का अन्याय भी प्रत्यक्ष हो रहा था।

इसी समय लालगढ़ से राजराजेश्वरी का पत्र प्राप्त हुआ। उससे परिस्थिति और परिष्कृत हो गयी। लिखा था, कान्यकुब्ज की गिरती व्यवस्था को देखकर प्रजा के कष्ट निवारणार्थ राजराजेश्वरी ने उस शक्ति के विरुद्ध सिर उठाया। उसी ने दलमऊ से भेजे हुए राजा बलवन्तसिंह और राजा महेश्वरसिंह के पत्र पकड़े; फिर उसने नर्तकी सिन्धु को मिलाकर छिगुनियाँ धोबी को फँसाया; ये पत्र राजा महेन्द्रपाल पर जाली आक्षेप लिये हुए थे; भीतरी उद्देश्य महेन्द्रपाल और कुमारदेव को देवी त्रियामा के मामले में भ्रम-धारणा के कारण नीचा दिखाना था। देवी त्रियामा, यमुना नाम से प्रसिद्ध बलवन्तसिंह की बहन विपत्ति की मारी इधर-उधर भटकती हुई, यमुना नाम से, दलमऊ दुर्गाधिपति के यहाँ दासी के रूप में रहती थीं। इस विवाह की वे साक्षी हैं। नाव पर अपनी इच्छा से कुमारी प्रभावती देवी त्रियामा की सहायता से कुमार देव को ले गयी थीं। उसी रात उनका वहाँ, गंगा-तट पर, विवाह हुआ था। फिर पिता को बलवन्त के साथ आते हुए देखकर वे गंगा में कूद गयी थीं। देवी त्रियामा भी उनकी रक्षा के लिए कूदीं। राजा महेश्वरसिंह स्वार्थवश विवाहित बलवन्त से अपनी कन्या का विवाह कर रहे थे, यह कुमारी प्रभावती को स्वीकृत न था। नाव की सज्जा देखकर आरोहियों के नाम मालूम कर बलवन्त समझ गये, विवाह हो गया; इसी पर उन्हें क्रोध आया और कुमारदेव को उन्होंने घायल किया, और लालगढ़ के सम्बन्ध में जाल फैलाया। पति के मिलने के उद्देश्य से मनवा जाती हुई प्रभावती ने शिकायत के लिए कान्यकुब्ज जल्द आते हुए बलवन्त को घायल कर पति के घायल करने का बदला लिया। बलवन्त केवल षड्यन्त्र की जड़ को दृढ़ करने के लिए कान्यकुब्ज को चले थे; अन्यथा साथ कर लेकर जाते। इसका एक कारण और है। मनवा से उन्होंने कान्यकुब्जेश्वर को प्रसन्न करने के लिए ही कर भेजा था; उसके साथ एक पत्र भी उन्होंने भेजा था, जिसमें अपना पक्ष समर्थन किया था। वह पत्र वाहक से छिनवा लिया गया। वह भी साथ जाता है। प्रभावती को निराश्रय जानकर राजराजेश्वरी ने पक्ष लिया। कान्यकुब्ज की सारी खबरें उसे मालूम होती रहती हैं। संवाद पाकर उसने कर लूटने के पश्चात लालगढ़ दुर्ग पर अधिकार किया और कान्यकुब्जेश्वर की सेना को धोखे से दलमऊ भेजने को बाध्य किया। अब राजा महेन्द्रपाल और कुमारदेव की दण्डाज्ञा यदि न बदली, उन्हें उनके अधिकार न दिये गये, तो वह कान्यकुब्जेश्वर की शक्ति का सामना भी करेगी। राजेश्वर की व्यवस्था ठीक रही तो वह दुर्ग का अधिकार कान्यकुब्जेश्वर के अधीन राजा महेन्द्रपाल के लिए छोड़कर अरण्य की ही रानी रहना स्वीकार करेगी।

ऐसी स्थिति के सुधार के लिए कान्यकुब्जेश्वर की इच्छा में उनके मन्त्रियों ने

पहलीवाली आज्ञाओं को वापस लेने की ही सलाह दी। कल्याण इसी में था। नहीं तो अनुष्ठान बिगड़ रहा था। आज्ञा हुई, राजा महेन्द्रपाल की निर्दोषता के प्रमाण मिलने के कारण उन्हें मुक्ति के साथ उनके समस्त अधिकार दिये गये, कुमारदेव भी यथाक्रम पिता के उत्तराधिकारी हुए, वे कुमारी प्रभावती के मनोनीत पति हैं; सप्ताह-काल में ही पिता-पुत्र कान्यकुब्ज में उपस्थित होकर अपने उच्च आसनों को अलंकृत करें; राजा बलवन्तसिंह दो वर्ष तक मनवा-दुर्ग में प्रवेश न कर सकेंगे, कुमारी रत्नावली की योग्यता से कान्यकुब्जेश्वर को प्रीति हुई, वे दो वर्ष तक कार्य-संचालन कर अपनी योग्यता का प्रमाण दें, राजा महेश्वरसिंह वास्तव में निर्दोष हैं, वे पूर्ववत् अपने अधिकारों के साथ कान्यकुब्ज में उपस्थित हों।

भीतर-भीतर कान्यकुब्जेश्वर राजराजेश्वरी पर उसकी स्पर्द्धा के कारण जलकर रह गये। घोषणा प्रचारित हो गयी। छिपे हुए राजा महेन्द्रपाल खुलकर कान्यकुब्ज पहुँचे। वहाँ सब हाल मालूम कर कान्यकुब्जेश्वर से राजराजेश्वरी को पकड़ा देने की प्रतिज्ञा की।

कुमारदेव समस्त समाचार मालूम कर सीधे लालगढ़ पहुँचे; उस समय वहाँ से सारा ठाट उखड़ चुका था; केवल महाराज शिवस्वरूप मिले, कहा कि उन्हें दलमऊ जाने की आज्ञा हुई है, और जो कुछ उन्होंने कहा, वह कुमार की समझ में आकर भी न आया। फिर माता के पास गये; वहाँ का हुआ जो हाल उन्हें मालूम था, कहा; बहू की प्रशंसा की; कहा कि कह गयी, बहुत जल्द तुम्हारी बहू मिलेगी।

पैंतीस

सारी परिस्थिति सुधर गयी, दिवस के बाद की शान्त सन्ध्या की गौरी उदास स्वरों से यमुना के प्राणों में बजने लगी, जैसे कर्मों के भार से श्रान्त हो चिर-विश्राम चाहती है; आज तक जिस सफलता से होकर आयी, वह साधन के भीतर उसे क्षुब्ध किये हुए थी, उसका वह फल उसके सुखभोग के योग्य नहीं, वह उससे भी दूर किसी अदृश्य, अस्पृश्य, अज्ञात तत्त्व में, लोक-लोचनों में अन्धकार द्वारा ढँके हुए दिन की तरह छिप जाना चाहती है: यह चिर-विदा ही उसकी दृष्टि में शान्ति के रूप से है।

प्रभावती में दीदी के प्रति अचल श्रद्धा रहती हुई भी भेद का अंकुर उग चला था; वह कुछ मधुर था, कुछ तीव्र। इसीलिए लालगढ़ की लूटवाली परिस्थिति का जिक्र दूसरे दिन उसने दीदी से किया तो, पर रक्षा के लिए स्वयं तैयार रहने का प्रदर्शन कर कोई उपाय न पूछा, उसने अन्य उपाय की चिन्ता भी नहीं की। दुर्बल पिता को लड़कर परास्त करने की ही सोची थी। यमुना इस भाव-परिवर्त्तन

को समझकर मुस्कराती रही कि प्रभा अब अपने साफल्य का चित्र आप तैयार कर लेती है। अपेक्षित समय में जब कान्यकुब्ज की सेना न आयी, दो दिन और हो गये, तब उकताकर दीदी से प्रभा परामर्श करने गयी। यमुना ने बहका दिया। महाराज के हाथ भेजी गयी चिट्ठी का हाल पूछने पर बहका दिया; कहा कि बेचारा ब्राह्मण मारा-मारा फिरता है, वह निर्दोष है, उसे घर रहने की आज्ञा हो जाय और सताया न जाय, इस भाव का एक पत्र उसने देवी पद्मावती को लिखा है, साथ अपना परिचय भी और यह कि प्रभा ने स्वेच्छया कुमारदेव को अपना पति निर्वाचित किया है, इसकी वह साक्षी है; चिट्ठी देकर महाराज को लौट आने के लिए कह दिया है; आज्ञा आ जाने पर जायेंगे।

इसी समय राजराजेश्वरी के नाम राजा महेश्वरसिंह का पत्र आया। वे उसके साथ हैं, उनकी एकमात्र सुशील कन्या की बाँह गहकर उसने सदा के लिए पिता को बाँध लिया है, पहले उसके विवाह के सम्बन्ध में जो भ्रम उन्हें था, वह अब दूर हो गया, वे लालगढ़ लूटने के लिए जा रहे थे, राह से इस गलती का जो प्रमाण उन्हें मिला, इसके लिए वे कृतज्ञ हैं; अब कन्या के और उसके पक्ष में यदि कान्य-कुब्जेश्वर की कृपा छोड़नी पड़े तो यह भी उन्हें स्वीकृत है; वे अपने कृत्यों की उससे और पुत्री से क्षमा चाहते हैं, कान्यकुब्ज की सेना वापस गयी।

पत्र ऐसा था कि उसमें न तो यमुना के पत्र का उल्लेख था, न लालगढ़ आते हुए दलमऊ लौट जाने का खुला कारण। प्रभावती इसका भीतरी भेद न समझ पायी। उसने दीदी को पत्र दिखाकर कहा कि अब कान्यकुब्जेश्वर को दबाकर पत्र लिखना चाहिए; मनवा अपनी तरफ है; दलमऊ भी आ गया, परिस्थिति ऐसी है कि कान्यकुब्जेश्वर विरोध न करेंगे; सत्य विचार के लिए बाध्य होंगे। यमुना ने कहा, हाँ, ठीक है, लिखो। विनीत दृष्टि से प्रभा ने निवेदन किया कि शब्दावली यमुना कहती जाय, वह लिख ले। यमुना ने वैसा ही किया।

न्याय प्रकट हो जाने पर रामसिंह को यमुना ने राजा महेश्वरसिंह को फेरने-वाली घटना सिन्धु से कहकर बोझ हल्का कर लेने की आज्ञा दी। इस तरह प्रभा-वती को भी रहस्य मालूम हुआ। लज्जित होकर एक बार फिर दीदी से उसने क्षमा-प्रार्थना की और दीदी से सीखने के लिए बहुत कुछ है कहकर वश्यता प्रकट की।

न्याय-फल प्रचारित हो जाने पर प्रभा ने यथेष्ट धन देकर महाराज को बिदा किया। साथ के सिपाहियों को भी दूना पुरस्कार दिया और धीरे-धीरे हट जाने की आज्ञा दी। पहले के चुने हुए सिपाही रह गये। विद्या को लेकर जाने के लिए रामसिंह से भी कहा; पर उसने प्रभा के उद्देश्य पर ही जीवन व्यतीत करने की इच्छा जाहिर की, कहा कि राजराजेश्वरी को अब विद्या या सिन्धु के रूप में उतारना वह उसका अपमान समझता है, वह जिस जीवन को अपनी पूजा के योग्य मानता है, यह राजराजेश्वरी का वही जीवन है; इसी की छाँह में वह शीतल रहेगा। प्रभा ने रामसिंह को राजराजेश्वरी की सेना का सेनापति बनाया। फिर विश्रृंखल होकर, एक-एक, दो-दो करके, सब संकेत-स्थल के लिए रवाना हो गये। प्रभा ने सासजी के चरण स्पर्श कर उनकी बहू बहुत जल्द मिलेगी, कहकर बिदा

ली और दीदी के साथ नैमिषारण्य आयी।

यहाँ दीदी को कई बार गुरु से बातें करते हुए सुना। जिनकी कभी-कभी प्रशंसा सुनी थी, उन्हें प्रत्यक्ष देखा। उनकी पुष्ट देह की शान्त दृष्टि के सामने अपने आप प्रभा का मन नत हो गया। बातों से भक्ति ने प्रगाढ़ भाव धारण किया। गुरु की कृपा योग्य शिष्य-शिष्या पर क्या रूप धारण करती है, दीदी से अनेक प्रमाण वह प्राप्त कर चुकी है। उसे सबसे अधिक आश्चर्य उस दिन हुआ, जब यमुना ने गुरु से शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने की आज्ञा माँगी और गुरु के यह कहने पर कि संचित क्षात्रतेज को धारण करने की आवश्यकता है, इसलिए राजकुमार को भिक्षालब्ध भोजन उचित न होगा—ऐसे वह गुरु के आश्रम में रह सकती है, उसने कहा था कि मेरी सखी स्वामिनी प्रभा के कुछ अलंकार गंगातट पर गाड़े हुए हैं उनसे पति के साथ उसके अन्तिम दिन बिना भिक्षाभ्रमण के कट जायेंगे। सुधार न चल सका, कहकर गुरु हँसे, फिर कहा, ज्ञान के कोष में कितना है, उसका पूरा पता नहीं चलता, इसलिए अपनी सोची हुई कुछ क्षण के लिए पूरी हुई देख पड़ने पर भी वह अपूर्ण रह जाती है, उसका रूप ज्ञान में ही कुछ देख पड़ता है; अच्छा है, यहाँ से एक दूसरा अनुभव होगा कि स्थान से भी सब स्थानों में सुधार किस प्रकार होता है; और एक सुधार कभी-कभी कितने सहस्राब्दियों की अपेक्षा में रहता है।

नत हो प्रभा ने मन्त्र के लिए प्रार्थना की। तीन दिन तक निष्ठापूर्वक रहने के बाद आने की गुरु ने आज्ञा दी।

समय पूरा कर प्रभा गयी। गुरु ने कहा, तुम्हारे लिए मन्त्र की आवश्यकता क्या? तुम तो स्वयं उत्तीर्ण हो, तुम्हारा उद्देश्य सफल है, तुम्हारी विशुद्धता अपनाने के लिए पण्डिता त्रियामा तपस्या करे; देवी, इसी रूप से मैं मिलूं!

प्रभा मन्त्रमुग्ध मौन मिलती ध्वनित निःस्पन्द खड़ी रही। गुरु की आँखों से अविरल अश्रुधारा बह चली। वह क्या देख रहे थे, न समझी। उनकी वह दर्शन-मुद्रा हृदय में अंकित हो गयी। मन नयी स्फूर्ति से उमड़ आया।

छत्तीस

दिन का तीसरा पहर है। गोमती धीरे-धीरे बह रही है। सामने वन की हरियाली दूर तक फैली हुई और जगह-जगह झाड़, छोटे-बड़े पेड़, ढाक और जंगली वृक्षों का वन। चिड़ियाँ एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को पार करती हुई। मधुर-मधुर हवा संसार के स्थावर और जंगम सभी को हृदय से लगाकर शान्त करती थी। सूर्य की स्वर्गीय किरणें सुनहली दृष्टि से विश्व के प्रतिचित्र को देखती हुई। गोमती के किनारे एक टीले पर यमुना और प्रभावती बैठी हुईं मन्द स्वर से वार्त्तालाप कर रही हैं, आँखों की चितवन जैसे किसी की प्रतीक्षा के रहस्य में चंचल है। वीरसिंह

जिस मुहूर्त्त तक बैठने के लिए कह गये हैं, वह पार हो चुका है। डरे हुए पशु कभी-कभी उधर से निकल जाते हैं।

"वह आ रहे हैं!" यमुना सजग होकर बोली और तीर-कमान सँभालने लगी।

प्रभावती ने भी कन्धे से कमान उतार ली, तीर जोड़ा। सवारों को देखती रही।

सवार एक बगल से निकले। उनके सामने शिकार था—एक चीता दोनों घोड़े पर। चीता सामने के गुल्म की ओर भगता हुआ। टीले की बगल से इसी समय सवारों ने तीर मारे। साथ ही दो तीर और छूटे, और सवारों के तीरों की बीच डाँडी पर लगे। वार कट गये। चीते ने घूमकर एक बार देखा और झाड़ी के भीतर हो रहा। सवारों की तेज निगाह यमुना और प्रभावती पर पड़ी।

सवार नजदीक थे; टीले के पास घोड़े बढ़ाये। बिल्कुल सामने आ गये। यमुना और प्रभावती बैठी रहीं। टीले पर बैठी हुई सवारों से कुछ ऊँचे पर थीं। यह निश्चय कर लिया कि ये महाराज पृथ्वीराज और महाराजकुमारी संयोगिता हैं।

संयोगिता की भौंहें तनी हुईं। पृथ्वी भी गर्व की दृष्टि से देख रहे थे। यमुना और प्रभा की चितवन शान्त, जैसे कोई घटना नहीं घटी।

"तीर क्यों काटे?" हीन समझनेवाली निगाह से देखती हुई संयोगिता ने पूछा।

यमुना ने प्रभा को मौका दिया। उसके कुछ क्षण के मौन ने प्रभावती को समझा दिया कि उत्तर उसी को देना है। सोचकर प्रभावती बोली, "इसीलिए कि यह ऋषिभूमि है, यहाँ लोग भक्ति की भावना से आते हैं।"

"हमें तुम्हारी शिक्षा की जरूरत नहीं, तुम्हें मालूम हो।" और तेज गले से कहा।

"तुम्हारा या किसी का भ्रम-शोधन कर देना यहाँ हर एक का काम है।" बैठी हुई वैसी ही निर्भयता से प्रभावती ने कहा।

"तुम्हें मालूम है—मैं कौन हूँ।" कहती हुई संयोगिता अपमानित होने के भाव से क्षुब्ध हो गयी।

"यह तो तुम्हीं को मालूम न होगा; तुम्हारी किसी भी उपाधि को ऋषिभूमि के लोग उपाधिमात्र समझेंगे।" और शान्त होकर प्रभा बोली।

"तो फिर उपाधि का प्रयत्न किया जाय?" प्रखर दृष्टि से देखती हुई संयोगिता बोली।

"क्यों कसर रहे? तभी तुम्हें भी मालूम होगा।" हँसकर प्रभावती ने उत्तर दिया। यमुना स्थिर खड़ी देखती रही।

"तकरार अच्छी नहीं; इनके भाव में क्रोध नहीं।" पृथ्वी ने संयोगिता से कहा।

संयोगिता ने व्यक्तित्व और प्रतिभा समझी। बातचीत करने के विचार से घोड़े से उतर पड़ी। पृथ्वी भी उतरे। दोनों टीले पर चढ़ने लगे। घोड़े यथास्थान

खड़े रहे। पास आने पर दोनों ने उठकर बैठाला। फिर पूर्ववत् बैठ गयी।

"यह वन मेरा है, और तुम मेरी ही जगह मुझसे छेड़ कर रही हो।" कुछ संयत होकर संयोगिता बोली, "तुम स्त्री हो नहीं तो।"

"नहीं तो आज ही तुम्हारा हरण होता," कहकर प्रभा मुस्करायी।

"यानी ?" संयोगिता खड़ी हो गयी।

और सब भी खड़े हो गये।—"यानी मैं तुम्हारे लिए क्षत्रियत्व का पूरा परिचय देती।"

"तुम जानते हो—मैं कौन हूँ ?"

"सम्भव; पर तुम भी जानती हो ?"

"नहीं; कौन हो तुम ?"

"राजराजेश्वरी।"

"डाकू ?"

"नहीं; महाराजाधिराज कहलानेवाले राठौरपति का कर लूटनेवाली, उनसे स्पर्धा रखनेवाली, तुम्हें मालूम हो कि तुम्हारी सारी मर्यादा इस समय मेरे हाथ में है।" पृथ्वीराज का तलवार के कब्जे में हाथ गया कि तुरन्त यमुना बोली, "बहुत विचार कर, चौहानपति !—यह सिरसागढ़ नहीं है कि एक मलखान को आप बहुतों ने घेरा है; दिल्ली पहुँचना दूभर हो जायगा। आपके साथी नहीं आ रहे। हमारे तो बहुत निकट हैं। इंगित पर टूटेंगे। विहार के विचार से आपने अपने सिपाहियों का इधर आना रोक दिया है,—कुछ सरदारों से गुप्तरूप कहकर। और मैं अकेली भी आपकी स्पर्धा से नहीं डरती। पर मानती हूँ कि आप वीर हैं। वीर की मर्यादा नष्ट न कीजियेगा।"

पृथ्वी की मुट्ठी कब्जे में ढीली पड़ गयी। यदि पृथ्वी बन्दी हो गये तो सारी बात बिगड़ जायेगी, सोचकर संयोगिता घबरायी। प्रभा से बोली, "मैंने त्रुटि की। मुझे अपनी स्थिति के भाव ने धोखा दिया। मैं क्षमा चाहती हूँ।"

"किसके लिए ?" हँसकर प्रभा बोली, "कुमारी, तीर कटवाने के अपराध के लिए या पृथ्वीराज के साथ विहार करने की त्रुटि के लिए ?"

संयोगिता लज्जा से नत हो गयी, बोली, "हमारी श्रेष्ठता सेना के कारण है; यों एक व्यक्ति एक ही व्यक्ति के बराबर है। मैंने शिकार को तीर मारा; जिस तरह शिकार मेरा लक्ष्य था, उसी तरह मेरा तीर दूसरे का लक्ष्य हो सकता है।"

"और सूक्ष्म," पृथ्वीराज बोले।

"और बाण-विद्या-विशारद चौहानपति को इस प्रकार अपना लक्ष्य-वेध सिद्ध कर दिखाना भी किसी के लिए अनुचित नहीं कहा जा सकता।" प्रभावती बोली।

पृथ्वीराज को प्रसन्नता हुई। संयोगिता भी सम्मान-प्राप्ति से संकोचरहित हो गयी; बोली, "मैंने 'तुम' का प्रयोग अपनी श्रेष्ठता पर विचार कर किया था; यह भी मेरा भ्रम था; प्रसंग भी वैसा ही पड़ गया। अब मैं सत्य-सत्य सखी-भाव से 'तुम' कहूँगी। तुम 'डाकू' हो, यह न जाने क्यों अच्छा नहीं लगता।"

"राजराजेश्वरी डाकू नहीं। साधारण मनुष्यों पर समान भाव रखनेवाली,

उनके हित की चिन्ता करनेवाली केवल एक वीरांगना है।" शिष्ट स्वर से प्रभा ने कहा।

"मैं हृदय से कहती हूँ, मैं भी साधारण कुमारियों की तरह एक कुमारी हूँ, और अनेक आपत्तियों में फँसी हुई।"

"मैं जानती हूँ।" प्रभा बोली।

"मैं चाहती हूँ, तुम्हारी एक सखी के प्रति सहानुभूति हो और तुम उसकी रक्षा करो।"

संयोगिता के स्वर में एक सत्य-सत्य दुर्बलता बज रही थी। प्रभा यद्यपि बहु-विवाहवाले भाव से घृणा करती थी, फिर भी यहाँ सत्य प्रेम की मर्यादा उसके हृदय में प्रतिष्ठित हो गयी। इस भाव का विरोध वह न कर सकी। क्यों पृथ्वीराज के प्रति उसका प्रेम हुआ, यह भाव दूर हो गया, बल्कि प्रेम के प्रति उसकी सहानुभूति पैदा हुई। बोली "बहन, मैं सब प्रकार तुम्हारे साथ हूँ।"

"मुझे तुम्हारी और (यमुना की तरफ देखकर) इसकी अत्यन्त आवश्यकता है, और इस प्रकार कि लोग मेरे ही यहाँ चलकर रहें, मेरी अन्तरंग सखी बनकर; मैं महाराज कुमारीवाला व्यवहार आप लोगों से न करूँगी; एक सखी बनकर ही रहूँगी। चौहानपति सब प्रकार समर्थ हैं, परन्तु मैं अपने लिए उनकी शक्ति का ह्रास न देख सकूँगी; और आप लोग जानती हैं, राजरूप में मुझे पति-वरण करना ही होगा। महाराज चौहानपति मेरे लिए मेरी सखियों की सहायता से शृंगार की ही दृष्टि से देखेंगे।"

कुछ क्षण स्तब्धता छायी रही। यमुना ने सोचकर कहा, "बहन, मैं अपने जीवन का निश्चय कर चुकी हूँ; अब यही साधना करती हुई भविष्य पार करना चाहती हूँ।"

संयोगिता की आँखों में यथार्थ ही प्रार्थना अंकित थी; निराश होकर जैसे प्रभा की ओर उसने देखा।

"मैं तुम्हारे साथ हूँ," प्रभा बोली, "तुम्हारे लिए प्राण देते भी मुझे आपत्ति न होगी।" संयोगिता की ठोड़ी पकड़कर ऊपर उठायी। सूर्यास्त की किरणें उस नवीन म्लान मुख पर पड़ रही थीं।

सैंतीस

कई महीने बीत गये। राजा महेन्द्रपाल, जहाँ कहीं भी डाका पड़ता है, राज-राजेश्वरी को पकड़ने का धावा करते हैं। जिस तरह कहा गया है कि लड़ाई के बाद प्रेम और बढ़ता है, उसी प्रकार महेन्द्रपाल, महेश्वरसिंह और बलवन्त की मैत्री उत्तरोत्तर सुदृढ़ होती जा रही है। कुमारदेव अपूर्वा में भी रहते हैं और

कान्यकुब्ज में भी, पर सदैव चिन्ताशील। प्रभावती का कोई संवाद उसके बाद नहीं मिला। कान्यकुब्जेश्वर ने अपने स्वार्थ में परमार्थ का पाठ पढ़ाकर सबको और दृढ़ रूप से मिला लिया है। चारों ओर से कर वसूल किया जा चुका; राजाओं के आमन्त्रण भेजे जा चुके; राजसूय की सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी हैं। कान्यकुब्ज में एक दूसरी ही हवा बह रही है। चारों ओर प्रसन्नता-ही-प्रसन्नता देख पड़ती है।

निर्धारित समय निकट आ गया। बड़े-बड़े राजाओं के पड़ाव पड़ने लगे। समस्त देश के व्यवसायी दूकानें ले-लेकर आ गये और उचित-उचित स्थानों पर लगा दीं। सुप्रबन्ध की पहले से व्यवस्था कर ली गयी थी।

सभा-मण्डप की सूचना वर्णनातीत हुई। हजारों मनुष्यों के बैठने की योजना की गयी थी। बीच में महाराजाधिराज जयचन्द का सिंहासन था, जहाँ से वरमाला लेकर संयोगिता को वर वरण करने के लिए चलना था। समस्त सभा-मण्डल गृह-निर्माण-कला-विशारदों के द्वारा छा दिया गया था, जिससे जल से भी सभा-समय भय न रहे। सहस्रों स्तम्भ ऊँचे से क्रमशः नीचे किये हुए लगे थे। भीतर से सारा मण्डप बसन्ती रंग से रँगे बहुमूल्य पट्ट-वस्त्रों से आच्छादित था। बीच-बीच फूल कटे हुए जिसमें चाँदी, सोना, मणि और मोतियों का जड़ाव। इसी प्रकार खम्भों में। ऊँची-ऊँची वेदिकाओं पर नरेशों के आसन और भी सुशोभित। प्रवेश के लिए मुख्य चार द्वार। चारों में बन्दनवार लगे हुए। जलपूर्ण स्वर्ण घट—जिन पर आम्र-पल्लव और यवपात्र—ऊपर घृत-प्रदीप, प्रतिद्वार के दोनों ओर रक्खे हुए। मुख्य द्वार पर पृथ्वीराज की मूर्त्ति द्वारपाल के रूप से स्थापित।

राजसूय यज्ञ समाप्त हो गया। ब्राह्मणों को यथेष्ट दान-दक्षिणादि देकर महाराजाधिराज ने राज्य में दैवी शान्ति स्थापित की। सरदार तथा अभ्यागत नरेशों को जागीर, उपाधि तथा सम्मान देकर भौतिक शान्ति सुदृढ़ की। अब संयोगिता के स्वयंवर में सफल होकर चिर-मानसिक शान्ति की स्थापना करने चले। यह शुभ मुहूर्त्त पहले से निश्चित हो चुका था। आज वह समय आ गया। महाराजकुमारी अपूर्व रूपगुणवाली नवयौवना संयोगिता को पाने की आशा लेकर ही प्रायः अन्य मित्र-राष्ट्र के राजा गये थे। यदि केवल राजसूय में जाना कान्यकुब्जेश्वर के आमन्त्रण का कारण रहा होता तो अनेक नरेश न गये होते। सज-सजकर अपने दरबारी कवियों और सामन्त सरदारों के साथ सब अपने-अपने आसन पर चलकर विराजमान हुए। बड़े आदर से महाराज जयचन्द ने उन्हें बैठाला। सबकी आँखें संयोगिता के आने की प्रतीक्षा कर रही थीं।

आज स्वयंवर है, पर संयोगिता की आँखों में आँसू हैं। एकान्त कक्ष में सखी से बातें कर रही है।

"बुलावा आ चुका है। जाती हूँ। माताजी, देर हो गयी कह रही हैं। चलने की सज्जा करनी होगी।"

"जाओ ! रोती क्यों हो ?" पूरी प्रसन्नता से हँसकर, "मैं बिल्कुल तैयार हूँ। तुम्हारे जाने पर कपड़े बदलकर ठीक अपनी जगह रहूँगी। डर क्या ? सलाह के अनुसार ही काम होगा। महाराज पृथ्वी सभा में आ गये। तुम्हारी कुछ ही दूर

रक्षा होनी चाहिए। तब तक चौहान-सेना आ जायगी।"

भावपूर्ण दृष्टि से अभिन्न सखी को देखकर, नम्र, परिणताङ्गी संयोगिता माता के पास चली।

महाराजकुमारी का शृंगार ऋतुराज के हाथों हुए मधु माधवी के शृंगार से भी बढ़कर है। वह विविध रत्नों की प्रभा के बीच असामान्य सुन्दरी संयोगिता पृथ्वी की किसी सृष्टि से उपमिता न होती हुई ही महाराजकुमारी हुई है। दासियाँ माल्य, चन्दन, अर्घ्य, मोती आदि अलग-अलग थालों में लेकर संयोगिता को चन्द्रबिन्दु के आकार में घेरकर ले चलीं। उस समय कविवर चन्द्र कविता पाठ कर रहे थे।

मन्द-झंकृत-पद धीरे-धीरे संयोगिता सभामण्डल में आयी। कान्यकुब्जेश्वर के बन्दी उसके परिचय में पद्य पढ़ने लगे। सबको महाराजकुमारी का आगमन सूचित हो गया। राजाओं की टकटकी बँध गयी। संयोगिता पलकें झुकाये हुए दासियों के साथ महाराजाधिराज के सामने आकर खड़ी हुई। ब्राह्मण-पुरोहितों ने माल्य-प्रदान से पहले सभा के मध्य बैठकर पितृकुल के देवपूजन की विधि पूरी की। पश्चात् यथाक्रम बैठे हुए एक-एक राजा के सामने ले जाकर सिखाये हुए बन्दी उनका परिचय करने लगे। दो-एक श्लोक राजा के अपने भट्टजी भी दसगुनी तारीफ में सुना देते। इस प्रकार दासियों के साथ संयोगिता उस विशाल सभा-स्थल की परिक्रमा करने लगी।

इसी बीच कान्यकुब्ज के सरदारों में बैठे हुए कुमारदेव की दृष्टि एक युवक पर गयी। ऐसे युवक से उनकी गहरी पहचान हो चुकी थी। इसी युवक में उन्हें जीवन की प्रिय प्रभा मिली थी। सबकुछ वैसा ही है। केवल पहनाव कान्यकुब्ज सैनिक का है। आज कमर में दो तलवारें हैं। और वह पिथौरा की मूर्ति के पास दूसरे सैनिक के पास टहल रहा है। बड़ा अद्भुत लगा। 'यह प्रभा नहीं हो सकती। प्रभा वहाँ कैसे आयेगी ?' इस प्रकार अनुमान और शंका कर, फिर अच्छी तरह आँखें मलकर देखने लगे। उत्सुकता बढ़ती गयी; वैसे ही शंका भी बढ़ती रही। फिर भी, उस रूप का सादृश्य मिलता है, इतना क्या कम है ? —एकटक कुमार युवक की गति-भंगिमा देखते रहे। उनका स्वयंवर देखना न हुआ। एकाएक उठ नहीं सकते; पूछते भी क्या ? यह वन नहीं।

देर हो गयी। संयोगिता सभा की प्रदक्षिणा करती उसी द्वार के पास आयी। भाव की दृष्टि से द्वारपाल पृथ्वीपाल की मूर्ति को देखती रही। फिर उसी के गले माला डाल दी। सभा में हाहाकार मच गया। महाराज जयचन्द बड़ी विनय से राजाओं को समझाने लगे कि संयोगिता अभी बालिका है, जिसके गले में माला डालना चाहिए, यह ज्ञान उसे नहीं, इस बार उसे समझाकर जयमाला डलवाता हूँ। यह कहकर उन्होंने क्षत्रिय राजाओं को शान्त किया और संयोगिता को बुलाकर मतलब अच्छी तरह समझाकर फिर माला डालने के लिए कहा। सेविकाएँ फिर उसे साथ लेकर प्रदक्षिणा करने लगीं। इस बार वह जल्द-जल्द राजाओं को पार करने लगी, और उसी प्रकार द्वार के पास पहुँचकर फिर पृथ्वीराज के गले में माला डाल दी।

फिर हल्ला मचा। चन्द्र के साथ पृथ्वीराज के होने का सन्देह, जयचन्द को हो चुका था। पर ऐसे सेवक के रूप से चौहान न जायेंगे यह निश्चय भी था। इसीलिए कोई छेड़ नहीं की। अब, पृथ्वीराज ने सोचा, यह मौका चूकना सदा के लिए चूकना होगा। इशारे के साथ वहाँ बैठे हुए समस्त सरदार चन्द के पीछे उठे। राजा भी तकरार की ताक में थे। भर्राकर बाहर निकले। पर पहले ही पृथ्वीराज ने प्रिया की बाँह पकड़ी। तत्काल उस खड़े हुए युवक ने एक तलवार और अपनी ढाल संयोगिता को दे दी और घूमकर पृथ्वी पर होता हुआ वार बचाया। अब तक हजारों की संख्या में शत्रु एकत्र हो गये थे, चौहान लड़ते हुए आगे को बढ़ रहे थे। पृथ्वी का घोड़ा अभी दूर था। पर वहाँ दूसरों के पास भी सवारी न थी। घमासान के साथ बढ़ते हुए चौहान घोड़े के पास आये। पृथ्वी और संयोगिता घोड़े पर सवार हो गये। देखते-देखते छिपी चौहान-सेना भी आ गयी। कान्यकुब्ज की सेना लड़ती हुई उसका पीछा करने लगी। तब तक हजारों जवान कट गये।

देव बराबर युवक को देख रहे थे। जब उसने संयोगिता को ढाल और तलवार दी थी तब उनका संशय और बड़ा था। खड़े रह गये थे। कान्यकुब्ज के सरदार चौहानों के पीछे थे। वे उसी युवक को देखते रहे। बढ़ते चौहान के साथ संयोगिता का दाहना पार्श्व बचाकर लड़ता बढ़ता हुआ युवक सभा-स्थल पार कर गया और बाहर पृथ्वी और संयोगिता के घोड़ों पर चढ़ने तक लड़ता दिखायी दिया। फिर चारों ओर से उमड़ी आती हुई सेना की आड़ में कुछ देख न पड़ा। कुमारदेव धीरे-धीरे बढ़े। कुछ कदम बढ़ने के बाद द्वार के बाहर लाशें-ही-लाशें दिखीं। पृथ्वीराज के घोड़े पर चढ़ने के कुछ आगे चलकर देखा, प्रभा मूर्च्छित पड़ी हुई है; उसकी पगड़ी, जिससे वह युवक बनी हुई थी, गिर गयी है; बाल खुल गये हैं! कुमार के हृदय में वज्र-सा टूटा; धड़कन बढ़ गयी। जल्द बढ़कर देखा, वहीं एक ओर बलवन्त पड़ा हुआ है—सदा की नींद सोता हुआ; प्रभावती सख्त घायल, मूर्च्छित; साँस देखी, बहुत क्षीण!

"प्रभा!!"

प्रभा ने भूमि पर हाथ हिलाने की चेष्टा की, कुमार नहीं समझे—वह पैरों की धूल चाहती है। फिर बहुत ही क्षीण स्वर से बोली, "रतन।"

०००

निरुपमा

निरुपमा

मेरे कलकत्ते के काव्य-प्रसून को मिली
प्रिय श्री दयाशंकर वाजपेयो की स्नेह-सुषमा को।

प्रयाग
21.3.36

—'निराला'

निवेदन

हिन्दी के उपन्यास-साहित्य को 'निरुपमा' मेरी चौथी भेंट है। आलोचक साहित्यिक जिन महानुभावों ने उठने की कसम खायी है भाषा और भावों के लच्छेदार वर्णन के सम्बन्ध में, उनके लिए मैं स्वयं उतर आया हूँ। उन्हें यदि 'निरुपमा' स्थलविशेष पर भी सौन्दर्य के बोध से निरुत्तर कर सकी तो मैं श्रम सार्थक समझूंगा। पर अगर सिंहलवासियों को प्रयाग सुलभ न हुआ, तो मुझे आश्चर्य न होगा। जिन्होंने 'अप्सरा' और 'अलका' आदि की तारीफ मुझे उपन्यास-साहित्य का आधुनिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया है और मूल्य आँकते-आँकते अमूल्यता तक पहुँच गये हैं; उनकी सानसिक उच्चता के सामने कृतज्ञ मैं अत्यधिक संकुचित हूँ; पर 'निरपमा' के संकुचित होने का कोई कारण नहीं। मुझे विश्वास है, वह उन्हें निरुपम सौन्दर्य और संस्कृति देकर प्रसन्न कर सकेगी।

मेरे लिये हुए भिन्न दो समाजों के विषय, हिन्दी के अपरिचय के कारण, यद्यपि विष ही होना चाहते थे, फिर भी यथा-साध्य मैंने अमृत बनाने की कोशिश की है। दूसरे उन्नत समाज उपन्यास-लेखक की जो सहायता करते हैं, वह हिन्दी के समाज से प्राप्त नहीं। इसलिए काल्पनिक सृष्टि करनी पड़ती है, जैसे समाज की लेखक आशा करता है और जिसका होना सम्भव भी है। उनभ्यस्त और स्वभाव-संचालितों को वहाँ अस्वाभाविकता मिलती है। पर वह है स्वाभाविक। साथ, प्रचलित छोटे-छोटे चित्र, सहारे के लिए रहते हैं. साधारणों के हक में उतना ही आता है। फिर भी, जैसा परिवर्तन है, मुझे विश्वास है, साधारण भी इसे असाधारण कलंक न देंगे।

—**'निराला'**

एक

लखनऊ में शिद्दत की गरमी पड़ रही है। किरणों की लपलपाती दुबली-पतली असंख्यों नागिनें तरु-लता-गुल्मों की पृथ्वी से लिपटी हुई कण-कण को डस रही हैं। उन्हीं के विष की तीव्र ज्वाला भाप में उड़ती हुई, हवा में लू होकर झुलसा रही है। तमाम दिन बड़े-बड़े लोग खस-खस की तर टट्टियों के अन्दर बन्द रहकर काम और आराम करते हैं। इसी समय योरप की मुख्य भाषाओं का समझ भर के लिए अध्ययन कर लण्दन की डी. लिट्. उपाधि लेकर लौटा हुआ कुमार, स्थान रहने पर भी योग्यता की अस्वीकृति से उदास, कलकत्ता विश्वविद्यालय से लखनऊ आया हुआ है—यहाँ कोई स्थायी-अस्थायी काम मिल जाय; पर चूँकि किसी चान्सलर, वाइस चान्सलर, प्रिन्सिपल, प्रोफेसर या कलक्टर से उसकी रिश्ते की गिरह नहीं लगी, इसलिए किसी को उसकी विद्वत्ता का अस्तित्व भी नहीं मालूम दिया। जाँच करनेवाले ज्यादातर बंगाली सज्जन एक राय रहे कि एम. ए. में किसी तरह घिसट गया है—थीसिस चोरी की होगी। एक अस्थायी जगह लखनऊ-विश्वविद्यालय में बाबू कामिनी चरण चटर्जी की छुट्टी से हो रही थी, वहाँ बाबू यामिनी हरण मुखर्जी आ गये। ये पी-एच. डी. ही थे, पर इनकी पूँछ में बालों का गुच्छा मोटा मिला। कुमार फिर जगह की तलाश में क्रिश्चियन-कालेज गया; पर वहाँ भी वर्णाश्रम-धर्मवाला सवाल था। देखकर विद्या ने आँखें झुका लीं और हमेशा के लिए ऐसे स्थलों का परित्याग कर देने की सलाह दी।

योरप के लौटे हुए कुमार की दृष्टि में 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' का ही महत्त्व है, इसलिए मन में हार की प्रतिक्रिया न हुई। कोहनूर होटल की नीचेवाली मंजिल में टिका हुआ है। सामने के कमरों में दो-तीन बाबू और रहते हैं शायद अलग-अलग दफ्तरों में नौकर हैं। रात को कमरों से बाहर सड़क के किनारे चारपाइयाँ डलवाते हैं। ठण्डी-ठण्डी हवा लगती है, नींद अच्छी आती है।

सब जगह हताश होकर भी कुमार दिल से दृढ़ रहा। योरप जाते वक्त भी उसे समाज का सामना करना पड़ा था। लौटकर और करना पड़ेगा, यह पहले से निश्चय कर चुका था। इसलिए, हेच जरा भी नहीं खायी; एक तरंग उठी और दिल-बहलाव की स्वाभाविक प्रेरणा से गुनगुनाने लगा। गुनगुनाते-गुनगुनाते भावना पैदा हुई गाने लगा। रात के साढ़े-नौ का समय होगा। गाना समाप्त हुआ कि सामने के सुन्दर मकान से हारमोनियम का स्वर गूंजता हुआ सुन पड़ा, फिर किशोरी कण्ठ

का ललित संगीत। तरुणी भाव के मधुर आवेश में गा रही थी—"तोमारे करियाछि जीवनेर ध्रुवतारा।" कुमार का हौसला अभी पूरा न हुआ था, पुनः संगीत का श्रीगणेश उसी ने किया था, इसलिए वह भी गाने लगा। पर गाता क्या, भाव के आवेश में शब्दों का ध्यान ही जाता रहा। जब एक जगह एक रागिनी गायी जा रही हो, तब दूसरी रागिनी गाना असम्भव भी है, दुःखप्रद भी। भाव के आवेश में कण्ठ उन्हीं-उन्हीं पदों पर फिरने लगा। एक ही पद के बाद हारमोनियम बन्द हो गया। पर कुमार की गलेबाजी चलती गयी। हारमोनियम क्यों बन्द हो गया, इस तरफ ध्यान देने की उसे फुर्सत भी नहीं हुई। उसकी तान-मुरकी समाप्त हुई, उधर ग्रामोफोन में किसी बंगाली महिला का काफी ऊँचे स्वरों में, जहाँ उसके पुरुष-कण्ठ की पहुँच नहीं हो सकती, टागोर-स्कूल का गाना होने लगा। यह चाल और चालाकी कुमार समझ गया। साथ-साथ यह भी उसके ख्याल में आया कि इस स्वर से गला मिलाकर गाने की उसे चुनौती दी गयी है। उसने गला एक सप्तक घटा दिया। इससे उसे सहूलियत हुई। वह इतने ही स्वरों पर गाता था। टागोर-स्कूल का ढंग भी उसे मालूम था। तमाम किशोरावस्था बंगाल में बीती थी। गाने लगा, बल्कि कहना चाहिए, अगर कण्ठ के कामिनीत्व को छोड़कर कमनीयत्व की ओर जाया जाय तो कुमार ने ही बाजी मारी।

एकाएक गाने के मध्य में रेकार्ड बन्द हो गया। गाढ़ीवाले बरामदे की छत पर एक तरुणी आकर रेलिंग पकड़कर खड़ी हो गयी। होटल की ओर देखा। कई चारपाइयाँ पड़ी थीं। कुमार का गाना बन्द हो चुका था। वह तकिये पर सिर रक्खे एक भले आदमी की तरह उसी ओर देख रहा था। तरुणी निश्चय न कर सकी कि उसे चिढ़ानेवाला किस चारपाई पर पड़ा है। एक बार देखकर "छूँचो,—गोरू, गाधा—"* कहकर तेजी से फिरकर चली गयी। कुमार समझकर निर्विकार चित्त से करवट बदलकर "भज गोविंदं भज गोविंदं भज गोविंदं मूढ़मते"—गाने लगा।

गाने के भीतर गाली की ध्वनि—"छूँचो,—गोरू,— गाधा—" बार-बार गूँजती हुई सुन पड़ने लगी। कुमार ने गाना बन्द कर दिया। विचार करने लगा। सोचकर हँस पड़ा। गाली की तरफ ध्यान न गया, क्योंकि गाली के साथ-साथ उसकी वजह भी सामने आयी। जहाँ गाली की कठोरता की तरह उसकी वजह मुलायम हो, वहाँ कोई मूर्ख गाली की तरफ ध्यान देगा। वह मूर्ख नहीं। कोरे "छूँचो, गोरू, गाधा" में क्या रक्खा है?—न इनमें से वह कुछ है। वह उस भाव को सोच रहा है जो गाली देते वक्त जाहिर हुआ था, जिसमें गाली सुनाने की स्पर्द्धा को शालीनता से दबा रखने की शक्ति भी साथ-साथ प्रकट हुई थी, जहाँ भय था कि जिसे सुनाती हूँ उसके सिवा दूसरा तो न सुन लेगा, जिसमें पाप के विरोध में खड़ी होने की सरल पुण्य प्रतिभा थी, भले ही वह पाप दूसरों के विचार में पाप न हो।

* 'छूँचो' का अर्थ है छछुन्दर, मतलब औरतों के पीछे छछुआनेवाला। 'गोरू' अर्थात् गऊ; मूर्खता, निर्बुद्धिता आदि अर्थों पर बँगला में यह गाली प्रचलित है। 'गाधा'—गधा।

युवती के मनोभावों की सुखस्पर्श उधेड़-बुन में कुमार को बड़ी देर हो गयी। रात काफी बीत चुकी; पर न पी हुई उस मधु को एक बार पीकर बार-बार पीने की प्यास बढ़ती गयी। आँखें न लगीं, उन विरोधी भावों में प्राणों के पास तक पहुँचनेवाली इतनी शक्ति थी कि वह स्वयं उसको धीरे-धीरे प्राणों को आवृत करनेवाली कोमलता से मिलता हुआ परास्त होता गया। जब आँखें लगीं, तब वह जैसे उसकी पूर्ण पराजय की ही सूचना हो। तब तक रात के दो-तीन का समय हो चुका होगा। नींद जैसे युवती के पढ़े जादू का नशा हो।

कुमार की आँखें खुलीं जब सूरज निकल आया था, मुँह पर धूप पड़ रही थी। पास के और-और सोनेवाले उठकर चले गये थे। भ्रमण समाप्त कर लौट चुके थे, कुछ देर से जानेवाले लौट रहे थे। रास्ते पर काम से चले लोगों की काफी भीड़ हो रही थी।

जगने के साथ ही जिस तरफ को मुँह था, आँखें सीधे उसी तरफ आप-ही-आप गयीं। जिस कल्पना को लेकर वह सोया था, जगने के साथ ही अपनी मूर्तिमत्ता में लीन न होने के लिए उसी तरफ वह चलीं। सामने टेलीग्राफ के पोस्ट को बाँधनेवाले एक तार पर उसी मकान के भीतर से मधु-माधवी की एक लता ऊपर तक चढ़ी हुई प्रभात के वायु से हिल-हिलकर फूलों में हँस रही थी। उसी की फूली दो शाखाओं के अर्द्धवृत्त के भीतर से देखती हुई दो आँखें कुमार की आँखों से एक हो गयीं—उसकी कल्पना जैसे सजीव, परिपूर्ण आकृति प्राप्त कर सामने खड़ी हो। इस खड़े होने के भाव में भी रात का वही भाव स्पष्ट था। सारी देह लता की आड़ में छिपी हुई, मुख लता के दो भुजों के बीच, जैसे छिपने का पूरा ध्यान रखकर खड़ी हुई हो।

बरामदे पर सुबह-शाम रोज वह वायु-सेवन के लिए, बाहरी दृश्य देखने की इच्छा से, निकलती थी, जरूरत पर यों भी आती थी। कल जिसे गाली दी, मुमकिन आज देख लेने के लिए आयी हो। पहचान थी नहीं, सोते कुमार को देखा हो, आँखों को अच्छा लगा हो, इसलिए छिपकर देखने लगी हो।

कोई भी कुमार को सुन्दर कहेगा। उसके सोते समय युवती किस भाव से किस दृष्टि से देख रही थी, नहीं मालूम। पर उसके सोने पर भी उसके ललाट, चिबुक, नाक और मुँदी आयत आँखें विद्या के परिचय से प्रदीप्त रहती हैं। लम्बे बाल कानों को ढककर कपोलों तक आ जाते हैं। गोरे चेहरे पर केवल साबुन से धुले सुनहले बाल किसी मनुष्य को एक बार देखने के लिए खींच लेंगे, मुख और बालों की ऐसी मैत्री है।

कुमार के देखते ही युवती लजा गयी। उसी की प्रकृति ने उसकी चोरी की गवाही दी। आँखें झुक गयीं, होंठों पर पकड़ में आने की सलाज मुस्किराहट फैल गयी। सामने मधु-माधवी की लता हवा में हिलने लगी। पीछे सूर्य अपने ज्योतिमण्डल में मुख को लेकर स्पष्टतर करता हुआ चमकता रहा। युवती छिपने के लिए पहले से तैयार थी, पर छिप नहीं सकी। कुमार अपनी कल्पना को सुन्दर प्रकृति के प्रकाश में घिरी, प्रत्यक्ष सजीव अपार रूप-राशि के भीतर सलज्ज सहानुभूति देती हुई देर तक देखता रहा—जैसे कल गाली देने के कारण आज वह मूर्तिमती

क्षमा-प्रार्थना वन रही हो, जैसे कल के भीतरवाले भाव आज व्यक्तरूप धारण कर रहे हों।

सुन्दर को सभी आँखें देखती हैं, अपनी वस्तु को अपना सर्वस्व दे देती हैं। क्यों देखती हैं, क्यों दे देती हैं, इसका वही कारण है जो जलाशय की ओर जल के वहाव का। रूप ही दर्शन की सार्थकता है। यहाँ एक रूप ने दूसरे रूप को—आँखों ने सर्वस्व-सुन्दर आँखों को चुपचाप क्या दिया, हृदय ने चुपचाप दोनों ओर से क्या समझा, मौन के इतने बड़े महत्त्व को मुखरा भाषा कैसे व्यक्त कर सकती है।

दोनों देख रहे थे, उसी समय एक बालिका आयी। वहन के सामने खड़ी होकर रेलिंग पकड़े हुए पंजों के वल उठकर अजाने मनुष्य को एक बार देखा, फिर दीदी को देखकर दौड़ती हुई चली गयी।

पकड़ में आकर हटते हुए युवती के पैर नहीं उठ रहे थे। वह रेलिंग पकड़े हुए। मुँह फेरकर दूसरी ओर देखने लगी—होंठों में मुस्किरा रही थी। कुमार उठकर कमरे के भीतर चला गया।

दो

एक साधारण रूप से अँगरेजी रुचि के अनुसार सजा हुआ कमरा। एक नेवाड़ का बड़ा पलँग पड़ा हुआ। पायों से चार डण्डे लगे हुए। ऊपर जाली की मशहरी बँधी हुई। पलँग पर गद्दे-चदरे आदि विछे हुए। चारों ओर तकिये। बगलवाले दो लम्बे गोल, सिरहाने और पाँयते के कुछ चपटे, कोनों के दो सिरहाना सूचित करते हुए। दो बड़े शीशे आमने-सामने लगे। दीवार पर चुनी हुई तस्वीर—परमहंस रामकृष्णदेव, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, लोकमान्य वाल-गंगाधर तिलक लाला लाजपतराय, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी, पं. मदनमोहन मालवीय, बाबू चितरंजन दास और पं. मोतीलाल नेहरू आदि की बड़े आकार-वाली। इनके नीचे एक-एक वगल, मासिक-पत्रों में निकली हुई, आशा, भावना, कविता, शरत्, वासन्ती, वर्षा आदि की काल्पनिक तस्वीरें। फिर भी तस्वीरों की अधिकता न मालूम देती हुई। लोहे की छड़ों के बाहर से पूरे दरवाजे के आकार की खिड़कियों का आधा ऊपरवाला हिस्सा खुला हुआ, आधा नीचेवाला बन्द। पूरववाली खिड़कियों से प्रभात की हल्की धूप आती हुई। एक ओर एक मेज, जिसके दो ओर दो कुर्सियाँ। एक पर वही बालिका बैठी पढ़ रही है। इसी समय उसकी दीदी कमरे में आयी और दूसरी कुर्सी पर बैठ गयी। सामने बालिका के रोज के पढ़ने की तालिका रक्खी थी, उठाकर देखने लगी। मन का दृष्टि के साथ सहयोग न था, इसलिए देखकर भी कुछ समझ न सकी। केवल लिखावट पर निगाह दौड़कर रह गयी। मस्तिष्क तक विषय का निश्चय न पहुँचा।

तालिका रखकर युवती बहन को हँसती आँखों देखने लगी। फिर पूछा, "अच्छा नीली (बालिका का नाम नीलिमा है) हमारे सामनेवाले वैडमिन्टन ग्राउण्ड की घास दो घोड़े दो दिन में चरें तो एक घोड़ा कितने दिन में चरेगा ?"

उच्छ्‌वास से उमड़मी हुई, उसकी ओर मुँह बढ़ाकर, उसी वक्त बालिका ने उत्तर दिया, "एक दिन में।"

"चट्ट" से चपत पड़ी। बालिका गाल सहलाती हुई, सजल आँखों एकटक बहन की चढ़ी त्योरियाँ देखने लगी।

इसी समय एक दासी ने आकर कहा, "दादा बुलाते हैं। यामिनी बाबू मोटर लेकर आये हैं, हवाखोरी को जा रहे हैं।"

युवती दासी की बातें सुन रही थी कि एक ओर से बालिका निकल गयी। सीधे यामिनी बाबू के पास पहुँची। यामिनी बाबू उसका आदर करते हैं। उस समय उसका दादा सुरेश वहाँ न था। कपड़े बदलने के लिए निरुपमा को बुलाकर, अपने कमरे में गया हुआ था। बलिका अच्छी तरह जानती है कि यामिनी बाबू उसकी दीदी को प्यार करते हैं, और उसके घरवालों की इच्छा है कि उसकी दीदी का यामिनी बाबू से विवाह हो। फिर मन-ही-मन दीदी के प्रति रुष्ट होकर बोली, "वह जो बड़े-बड़े बालवाला हिन्दुस्तानी है न—उस होटल में !—आज सुबह गाडीवाले बरामदे पर खड़ी दीदी उसे देख रही थी वह भी दीदी को देख रहा था।"

बालिका की बात का असर साँप के जहर से भी यामिनी बाबू पर ज्यादा हुआ। प्रेम और संसार की नश्वरता का सच्चा दृश्य उन्हें देख पड़ने लगा। 'यां चिन्तयामि सततम्' आदि अनेक पुण्यश्लोक आद आने लगे ! इसी समय बालिका ने कहा, "अभी मुझे पढ़ा रही थीं, पूछा, उस बैडमिण्टन ग्राउण्ड की घास दो घोड़े दो दिन में चरें तो एक कितने दिन में चरेगा ? कितना सीधा सवाल है ? हमारे स्कूल में जबानी पूछा जाता है। मैंने ठीक जवाब दिया, पर दीदी ने मुझे मार दिया।"

बालिका जीने की तरफ देखकर सभय चुप हो गयी। दासी के साथ निरुपमा धीरे-धीरे उतर रही थी। अचपल-दृष्टि, गौरव की प्रतिमा बालिका व्याकुल हो गयी कि पीछेवाली बात इसने सुन न ली हो। निरुपमा नीचे के बरामदे में पहुँचकर धीरे-धीरे नीली के पास गयी और उसका हाथ पकड़कर बगीचे की ओर देखने लगी। नीली को विश्वास हो चला कि नहीं सुना। फिर भी धड़कन थी, इसलिए इस प्रकार स्नेह का दान पाने पर भी खुलकर कुछ बोल न सकी—उसकी छड़ी की तरह चुपचाप सीधी खड़ी रही।

यामिनी बाबू के वैराग्य-शतक की शक्ति निरुपमा के आने के बाद से क्षीण हो चली। रूप के साथ आँखों का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है। पतंग एक दूसरे पतंग की जलकर भस्म होते देखता है; पर रह नहीं सकता। इतना बड़ा प्रत्यक्ष ज्ञान भी रूप के मोह से उसे बचा नहीं सकता—वह दीपक को सर्वस्व दे देता है। दीपक अपने ही स्थान पर जलता रहता है।

निरुपमा की दृष्टि में चाह नहीं, कौन कहेगा ? उसकी दृष्टि से, उसकी

बातें सुनकर सभी उसे प्यार करने लगते हैं, जो जिस तरह के प्यार का हृदय में अधिकार रखता है। और वह, शमा है जो बाहर की भस्म को ही भस्म करती है। इसलिए वैराग्य-शतक का कृत्रिम भस्म उसके एक ही दृष्टिपात से अपनी स्वर्गीय सत्ता में मिलित हो गया। यामिनी बाबू उमड़कर कुछ क्षण के लिए पहले-से हो गये।

तबीअत अच्छी न रहने के कारण निरुपमा की इच्छा दासी को लौटाल देने की थी; पर भाई के बुलावे का खयाल कर चली गयी। उसके आने के कुछ ही देर में सुरेश बाबू भी कपड़े बदलकर आ गये। मोटर रास्ते के किनारे लगी हुई है। यामिनी बाबू के साथ सुरेश बाबू बहन को बुलाकर आगे-आगे चले। नीली को साथ लेकर पीछे-पीछे निरुपमा चली। नीली के जाने की कोई बात न थी। इधर जब से यामिनी की सुरेश बाबू से घनिष्ठता हुई, भाई के कहने से केवल निरुपमा साथ जाती थी, कभी-कभी नीली; यों प्रायः जाने के लिए खड़ी छलकती रहती थी। सुरेश बाबू डाँट देते थे। कभी-कभी पढ़ने के लिए खुलकर भी कड़ी जबान कह देते थे। वह लाज से मुरझाकर लौट जाती थी। भाई की आज्ञा पर कुछ कहने का अभ्यास निरुपमा को पहले से न था।

किसी बगीचे के पास मोटर से उतरकर टहलते हुए सुरेश बाबू निरुपमा को अकेली छोड़ देते थे। यामिनी बाबू को बातचीत की सुविधा हो जाती थी। कुछ देर बाद किसी कुञ्ज से टहलकर सुरेश आते थे। इस प्रकार दोनों का परिचय बढ़ गया है। दोनों के हृदय निश्चय से बँध चुके हैं। अँगरेजी पढ़ने पर भी, प्राचीन विचारों की महिलाओं में रहने के कारण निरुपमा हिन्दू-संस्कारों में ही ढली है। भाई तथा अपर स्त्रियों का निश्चय ही उसका निश्चय है। पर यामिनी बाबू योरप की हवा खाकर लौटे हैं, इसलिए इस वैवाहिक प्रसंग पर कुछ अधिक स्वतन्त्रता चाहते हैं। सुरेश अपने बंगाली समाज की वर्तमान खुली प्रथा के समर्थक हैं, पर एकाएक यामिनी बाबू को दी पूरी स्वतन्त्रता के अनभ्यास के कारण निरुपमा को संकोच पहुँच सकता है, इस विचार से धीरे-धीरे रास्ता तय कर रहे हैं।

नीलिमा का साथ रहना यामिनी बाबू को पहले से पसन्द न था, पर आज सुरेश के मना करने से पहले उसे बुलाकर, ड्राइवर की सीट की बगल में अपने पास बैठा लिया। सुरेश बाबू निरुपमा से साथ पीछेवाली सीट पर बैठ ही रहे थे कि होटल के सामने बरामदे पर कुमार खड़ा दीख पड़ा। नीली यामिनी बाबू को कोंचकर होटल की तरफ देखने लगी। यामिनी बाबू कुमार को देखकर निरुपमा को देखने लगे। निरू सिर झुकाये बैठी थी।

कुमार देखता रहा। मोटर चल दी। सीधे सिकन्दर बाग गयी। एक जगह सब लोग उतरकर इधर-उधर इच्छानुसार टहलने लगे। यामिनी बाबू नीली के साथ एक कुंज की तरफ गये। भ्रम था ही। सोचते हुए नीली से पूछा, "क्या पूछा था निरू ने तुमसे ?"

नीली मुस्किराकर बोली, "आप भूल गये! आप याद नहीं रख सकते! अच्छा उसमें घोड़े हैं, बतलाइये ?"

"हाँ दो घोड़े दो दिन में, तो एक, क्या कहा तुमने ?"

"एक दिन में," कहकर नीली समझदार की तरह हँसने लगी।

"अच्छा इसलिए मारा तुम्हें !

आवाज ऐसी थी कि नीली ने सहृदयतासूचक न समझी। एक विषम दृष्टि से यामिनी बाबू को देखने लगी।

अब यामिनी बाबू को नीली की मैत्री खटकने लगी ; नीली के भविष्य पर अनेक प्रकार की शंकाएँ उन्होंने कीं। निरू के प्रति जितने विरोध भाव थे, एक साथ, तेज हवा में बादलों की तरह कट-छँट गये। प्रेम का आकाश पहले साफ हो गया। निरुपमा की ओर अभियुक्त की तरह धीरे-धीरे बढ़ने लगे। वह एक चम्पा के किनारे खड़ी फूलों की शोभा देख रही थी। सोच रही थी—'इनकी प्रकृति इनका कैसा विकास करती है! ये कितने कोमल हैं! खुली प्रकृति की सम्पूर्ण कठोरता, उपद्रव और अत्याचार बरदाश्त करते हैं! इनके स्वभाव से मनुष्य क्या सीखता है। केवल सौन्दर्य भोग के लिए इनके पास आता है ?'

तीन

कुमार कमरे में अन्यमनस्क भाव से एक कुर्सी पर बैठ गया। चिन्ताराशि, फल के छिलके पर खुले रंग-जैसे, मुख पर रंगीन हो आयी। स्वच्छ हृदय के शीशे पर अपने ही रूप का प्रतिबिम्ब पड़ा। इसे ही वह प्यार करता था। अन्यत्र भी यही प्रतिफलित होता था, जहाँ उसकी ज्ञानेन्द्रियों को आनन्द मिलता था। इस तरह प्यार आप अपना आकर्षण पैदा करता था। मनुष्य होकर, पश्चात् विद्वान् बनकर, इसी की रक्षा के लिए वह तत्पर रहा था। हृदय का निष्कलुष तत्त्व जीवन के पथ पर पथिक-जीव के विचलित—स्खलित होने पर मलिनत्व प्राप्त होता, क्रमशः उसे पतित कर देता है, यह वह जानता था। पहले स्थूल रूप से समझा था, अब सूक्ष्म रूप से जानता है। पहले यह प्यार शक्ति के रूप में था जब उसे मनुष्योचित शिक्षा के अर्जन की धुन थी—इसीलिए समाज और घरवालों का विरोध उसने किया था अपनी शिक्षा के समस्त सोपान तय करने के लिए, अब वह अपनी प्रज्ञा में स्थित है, उसकी पुष्टि में लगा हुआ, इसीलिए जो ठोकरें मिल रही हैं, उन्हें दूसरों की कमजोरी समझकर वह समर्थ होकर संसार के मुकाबले के लिए तैयार हो रहा है। उस पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है, वह कुछ भी पूरा नहीं कर सका; दूसरे अपने स्वार्थ में समक्ष उसे अपरास्त भी परास्त करार देते गये हैं, वह पुनः-पुनः सँभलता, पैर उठाता बढ़ाता जा रहा है यही उसके चेहरे पर खिली रंगीनी है और भविष्य के कार्यक्रम पर विचार उसकी चिन्ता।

घड़ी में टन्-टन् कुछ बजा, आठ हैं, नौ या दस, उसे पता नहीं, गिना भी नहीं। एकाएक सामने टेबल पर नजर गयी, देखा, चाय रक्खी हुई है,—ऊपर से

धुआँ नहीं उठ रहा; प्याले में हाथ लगाकर देखा, अभी पीने लायक है। उठाकर पीने लगा।

नौकर फिर आया। "बाबू, कल शाम को यह चिट्ठी आयी, मैनेजर साहब देर से आये; इसलिए कल नहीं भेजी जा सकी।" सामने चिट्ठी रखकर चला गया था।

चाय पीकर कुमार ने चिट्ठी खोली। उसके छोटे भाई की लिखी है। पढ़ने लगा। लिखा है—खर्च नहीं चलता, माँ के पास भी खर्च नहीं, गाँववालों की कुछ भी सहानुभूति नहीं; न्योते नहीं आते, ऐसी और कुछ बातें।

कुमार ने सड़क की ओर चिन्ता की दृष्टि से देखा एक बुढ़िया पैक करनेवाले बाक्स की चार पहियेवाली गाड़ी पर एक बुढ्ढे को खींचती लिये जा रही थी। आँखें छलछला आयीं। धीरे-धीरे आकृति गम्भीर हो गयी। एक निश्चय साथ-साथ आया। टाई, मोजा, पतलून, कोट, जूता जल्द-जल्द पहनकर, जेब देखकर, कैप लेकर बाहर निकला।

चार

सुरेश ने नीली को बुलाकर यामिनी बाबू से कहा, "हम लोग जाते हैं, जल्द काम है, तुम पैदल निरू को लेकर आओ।" सुरेश मोटर ले गये।

निरुपमा समझकर एक बार लज्जित हो चम्पे के झाड़ की तरफ देखने लगी, यामिनी बाबू से भाव की आँख बचाने के लिए। यामिनी बाबू दिल से खुश हुए। आज उन्हें पहले-पहल निरू के साथ अकेले टहलने का लम्बा समय मिला है।

बराबर आकर निरू की उँगलियाँ, देखते हुए बोले, "खूबसूरत उँगलियों की चम्पे से उपमा दी जाती है।"

"हूँ" उसी वक्त मुँह फेरकर निरू ने कहा, "देह के रंग से भी, पर मुझे बड़े चमगादड़ के पंजे-सा लगता है।"

यामिनी बाबू का आधुनिक शृंगार खिल गया। उपमा सोचकर हँसे, मजाक में आया शृंगार का पूरा मजा लेकर पूछा, "अच्छा, बँगला में किसकी कविता तुम्हें अच्छी लगती है—रवि बाबू की ?"

"नहीं," निरुपमा चलती हुई चम्पे की एक पत्ती खोंटकर बोली, "गोपाल भाँड़ की।"

इस बार यामिनी बाबू को एक धक्का लगा। वे सच्चे कवि-प्रेमी हो रहे थे, निरुपमा हास्यप्रिया; गोपाल भाँड़ के भाव से उन्हें पराभव मिला; पर फिर भी निर्मल हृदय के निकले व्यंग से भीतर-ही-भीतर एक आनन्द का उद्रेक हुआ जो स्त्री-पुरुषवाले भेदात्मक प्रेम को अभेद मैत्री में बदल देता है। परन्तु यामिनी बाबू प्यासे मनुष्य थे,—पानी चाहते थे—स्थूल कर से लेकर पीना, शान्ति नहीं जो

अपने सूक्ष्म स्पर्श से तृष्णा को बुझा देती है, बोले, "हम जिस सम्बन्ध से बँधने जा रहे हैं, तुम्हें मालूम हो ही चुका होगा, उस पवित्र सम्बन्ध से मुझे पूर्ण आशा है कि हम सुखी होंगे : दिवस और रात्रि के प्रकाश और अन्धकार के प्रवाह में हमारे जीवन के खुले हुए फूल मुक्त भाव से बहते हुए संसार की परिधि को पार कर जायँगे।"

निरुपमा को जैसे किसी ने गुदगुदा दिया। देर तक अपने को रोके रही। सँभलकर भी उत्तर न दे सकी। चलती गयी।

मौन को सम्मति-लक्षण समझकर यामिनी बाबू ने कहा, "अब समय अधिक नहीं और खर्च कुछ अधिक करने का विचार है। एक दफा कानपुर जाना होगा। रेहन की एक सम्पत्ति है। हालाँकि करार की मियाद पूरी हो चुकी है; पर रजिस्ट्री की अभी है, उसका फैसला हो जाय तो रुपये काफी हाथ आ जायँ।"

बिलकुल मौन रहना निरू को अनुचित जान पड़ा, पूछा, "कैसी सम्पत्ति ?"

निरू बगीचे से बाहर निकली घर चलने के लिए। साथ चलते हुए यामिनी बाबू बोले, "एक हिन्दुस्तानी की है। दो मकान हैं। बाबा (पिता) ने रेहन रक्खे थे। अब उनके न रहने से सारा भार मुझ पर है। कालेज की छुट्टियों में एक बार हो आऊँगा ! मुख्तार को समझा दूँगा।"

"मकरूज रुपयों का इन्जाम कर भी सकता है दूसरी जगह से।" निरू सड़क के सीधे देखती हुई बोली। रास्ते से कुछ दूर एक चमन में खिले अमलतास के रहे-सहे सुन्दर पीले फूलों को प्यार की दृष्टि से देखती हुई चलती गयी।

"अब उतनी गुन्जाइश नहीं, बाबा ने पहले ही हिसाब लगा लिया था।" मजाक के गले से यामिनी बाबू ने कहा, "मकरूज का भी देहान्त हो गया है। सुना है कि उसका लड़का विलायत से डी. लिट् होकर आया है, मैंने देखा नहीं—उसके बाप को भी नहीं; मुमकिन—देखा हो, याद नहीं। मैं जिस जगह पर हूँ, इसके लिए एक डी. लिट् ने कोशिश की थी मुमकिन—वही हो।" यामिनी बाबू कुछ याद कर हँसे।

"आप उससे बड़े विद्वान् साबित हुए।" स्वर को चढ़ाव-उतार से रहित कर निरुपमा ने कहा।

यामिनी बाबू लजा गये। फिर सँभलकर बोले, "बात यह कि सिर्फ डी. लिट्. होने से ही नहीं होता; और भी बहुत कुछ होना जरूरी है। मैं अँगरेजी-साहित्य का पी-एच. डी. हूँ; पर इतना ही देखकर कोई क्या समझेगा ?"

"अगर पी-एच. डी. नहीं !"

"नहीं, मेरा मतलब यह हैं, मैं कहता हूँ—'सिर्फ पी-एच. डी. होने से क्या होता है' ?"

"कुछ नहीं !"

"नहीं, यानी बड़ी-से-बड़ी डिगरी भी आदमी को आदमी नहीं बना सकती, अगर वह दायरे से बाहर अलग-अलग विषयों का और भी ज्ञान नहीं प्राप्त करता। फिर एक कल्चर भी तो है ? मुझे डाक्टरी हासिल करने के अलावा और भी बहुत कुछ देखना-भालना पड़ा है—सभ्य जातियों की रहन-सहन की बातें—कितना

मिला-मिलाया। यह तो मानी हुई बात है कि भारत वर्ष में बंगालियों से बढ़कर कल्चर अपर प्रोविन्स के लोगों में नहीं। हिन्दुस्तानी बेचारे लाख पी-एच. डी. डी.-लिट् हो जायें, कन्धे पर लिट् हो जायँ, कन्धे पर लाठी रखकर चलनेवाली वृत्ति कुछ-न-कुछ रहेगी।"

"यानी देखनेवालों को, हिन्दुस्तानी की पदवी की अपेक्षा कन्धे की लाठी ज्यादा साफ नजर आयी।"

यामिनी बाबू फँसे। तुला उत्तर न सूझा। बोले, "प्रोफेसर बनर्जी, चटर्जी, मुकर्जी सब अपने आदमी तो हैं? बैरिस्टर घोष भी अपने ही हैं। इनकी आवाज में ताकत है। कुछ तअल्लुकेदार हैं, बुद्ध; इनकी हाँ-में हाँ मिलाया करते हैं। ये जानते हैं और ठीक भी है, तुम्हें भी स्वीकार करना होगा, अभी बंगालियों का मुकाबिला हिन्दुस्तानी नहीं कर सकते। एक हिन्दुस्तानी जितना पढ़कर समझता है, एक बंगाली उससे ज्यादा सिर्फ़ देखकर।"

"मेरा ख्याल है, सिर्फ सुनकर।" निरुपमा कहकर गहरी मनोभूमि में उत्तर गयी। यह भाव भी ठीक-ठीक यामिनी बाबू की समझ में न आया; वे उसी सहृदयता से बोले, "हाँ, यह भी ठीक है; देहात में बहुत-से बंगाली हैं जिन्हें कलकत्ता देखने का अवसर नहीं मिला; पर सुनकर वे बहुत-सी बातें जानते हैं, उन्हें मौका भी है; जो जितना जानता है, वह उतना सुना भी सकता है; हिन्दुस्तानियों के पास तुलसीदास की रामायण के सिवा सुनाने की चीज है क्या?—इधर एक नौटंकी चली है।"

धीरे-धीरे बगीचे से कैसर-बाग तक खुली जगह पार हो गयी। निरुपमा ने बातचीत करना बन्द कर दिया। समझकर यामिनी बाबू भी चुप हो रहे।

रास्ता तय होता जा रहा था; पर हृदय चाहता था अभी और साथ हो—और बातचीत हो। प्रेयसी विमुखता उनके लिए सुमुखता थी, क्योंकि वे उसका अनुकूल अर्थ लगाते थे।

इसी समय रास्ते के एक बगल बैटा, कैप-कोटवाला एक चमार देख पड़ा। यामिनी बाबू बोले, "यह कुछ पढ़ा-लिखा होगा; अगर चमार है तो समझना चाहिए, इसे जगह नहीं दी ऊँचे वर्ण वालों ने, इसलिए कमल छोड़कर अपना पेशा इख्तियार किया है। इसे पैसा देना चाहिए। अगर चमार नहीं, तो भी; क्योंकि इसने एक आदर्श सामने रक्खा।" फिर बढ़ते हुए चमार के सामने जाकर खड़े हुए। निरुपमा को भी साथ चलना पड़ा। पर पास पहुँचकर देखकर जरा ठिठुक गयी, "चमार"! मन में अव्यक्त ध्वनि हुई। कृपा की दृष्टि से देखते हुए उपकार करने वाले स्वर से यामिनी बाबू ने कहा, "२6 हिवेट रोड पर आना घण्टे भर बाद, हम काम देंगे; अभी यही पेशगी देते हैं," एक इकन्नी फेंकते हुए, "तुम कौन हो?"

"इस वक्त तो चमार हूँ," इकन्नी वापस करते हुए कुमार ने कहा, "मैं घण्टे-भर बाद वहाँ आऊँगा, तब काम करके पैसे लूंगा, मैं आपकी कृपा के लिए हृदय से कृतज्ञ हूँ।"

"तो तुम चमार नहीं हो; अच्छा, वहीं तुमसे पूछेंगे।" यामिनी बाबू मण्डी

की तरफ मुड़े।

कुमार के पास बहुत-से आदमी आये और आते रहे। भीड़ लगती बढ़ती रही। लोगों में उत्सुकता, आनन्द, सहानुभूति फैली। वह बादामी और काली पालिश की दो डिबिया और एक ब्रश लिये बैठा था। कई जोड़े पालिश करने को मिले। सबसे एक-ही-एक पैसा उसने लिया। उसकी भलमंसाहत का यह दूसरा प्रमाण था। शहर में सनसनी फैल चली। चमार इधर-उधर जो थे, चौकन्ने हुए; वे दो पैसे से कम नहीं और एक आने तक पालिश करायी लेते थे।

कुछ पहचान के लोग भी रास्ते से होकर गुजरे। 'सस्ता साहित्य समुद्र' के प्रकाशक लाला श्यामनारायण लाल देखकर कह गये, "हम चार रुपये फार्म दे रहे थे मोपासां के अनुवाद के, वह आपको नहीं मंजूर हुआ; आखिर पालिश और ब्रश लेकर बैठे!"

पं. रामखेलावनसिंह मुँह बिगाड़कर बोले, "सात रुपये घण्टे की पढ़ाई लगवा रहे थे नहीं भायी; अब चमार बनकर पुरखों को तारो।" फिर फिरकर नहीं देखा; कितने स्वगत कह गये!

घण्टे-भर बाद कुमार उठा। पास छः आने पैसे आ गये थे। मन प्रसन्न था, संसार में कोई मार नहीं सकता; रोटियाँ चल जायेंगी। अगर इसी कार्य को महत्त्व देने के लिए अदृष्ट-चक्र से घूमता हुआ बहुभाषाविद् और लण्डन-विश्वविद्यालय का डी. लिट् होकर वह आया है, तो इसे श्रद्धापूर्वक स्वीकार करता है। उसका विद्या-प्राप्तिवाला उद्देश्य सफल है; अर्थ-प्राप्तिवाला यदि इस रूप से, विद्यावाले को दिखावे के तौर पर लेकर हो रहा है तो हो, वह कटाक्ष नहीं करता; बल्कि इस कार्य को घृणा करनेवाली ऊँचे वर्ण की दृष्टि से वह घृणा करता है। सम्भव है, शिक्षा वैसा कार्य-सहयोग देकर भारत को सच्चे वर्ण-निर्माण की शिक्षा दे रही हो; सोचकर वह चला।

उसी गाड़ीवाले बरामदे के नीचे कई और बंगाली एकत्र थे। जब वह फाटक से भीतर गया और उसकी ओर कौतुकपूर्ण प्रश्नभरी दृष्टियाँ उठीं, वह समझ गया कि इससे पहले उसके सम्बन्ध में काफी बातचीत हो चुकी है। मोटर की बगल से निकलकर एक पैर बरामदे की सीढ़ी पर चढ़ाकर यामिनी बाबू से काम देने के लिए उसने कहा। तब तक एक बंगाली सज्जन ने पूछा, "आप कहाँ रहता है?"

"एक गाँव रामपुर है।"

"रामपुर?" सुरेश बाबू ने पूछा। सामने के दिवानखाने में निरुपमा थी। दरवाजे के पास आ गयी।

"जी," निगाह नीची किये हुए कुमार ने कहा।

"कौन रामपुर?" सुरेश बाबू ने देखते हुए पूछा।

"जिला उन्नाव में एक मौजा है।"

"अच्छा।" सुरेश और निरुपमा की हँसती हुई दृष्टि एक साथ मिल गयी, एक ही भाव से जैसे।

"रामपुर में आप किसके घर के हैं?" सुरेश बाबू ने पूछा।

"मिश्रों के यहाँ का।"

"आप ब्राह्मण हैं ?" एक बंगाली सज्जन ने पूछा।

"जी।"

प्रसन्न होकर सब बंगाली हँसे।

"आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम ?" सुरेश बाबू ने पूछा मन में निश्चय किये हुए।

"पं. गिरिजाशंकर मिश्र।"

"आपने—माफ कीजिएगा—कहाँ तक शिक्षा प्राप्त की है ?" एक बंगाली सज्जन की ध्वनि में भाव का आवेश स्पष्ट हो रहा था।

कुमार हँसा प्रश्न की सदाशयता समझकर। संयत स्वर से कहा, "मैं लण्डन का डी. लिट् हूँ।"

निरुपमा बिलकुल सामने आ गयी। ऐसी दृष्टि से देखने लगी जैसे वहाँ कोई न हो।

"आपका शुभ नाम ?" उस बंगाली ने पूछा।

"मुझे कृष्णकुमार कहते हैं। आप अधिक समय न लें; बड़ी कृपा होगी अगर मेरा काम मुझे दें।"

यामिनी बाबू गहरे भाव में डूबे हुए। कितने विषय, कितनी बातें आयीं-गयीं। यह वही व्यक्ति है। अभी-अभी इसकी चर्चा हो चुकी है।

भाव बदला। निरुपमा को देखा, फिर कुमार को नहीं समझ सके कि होटल-वाला यही आदमी है। तब अच्छी तरह देखा न था। जेब से एक रुपया निकालकर बढ़ाते हुए अँगरेजी में बोले, "लो; हम तुमसे जूते पालिश करवाना अपना अपमान समझते हैं। तुमने बड़े साहस का काम किया है। यह हमारी सहायता, हमें आशा है, स्वीकार करोगे।"

कुमार ने उसी तरह उत्तर दिया, "आपको धन्यवाद देता हूँ; मैं इस तरह की सहायता नहीं चाहता, क्षमा करेंगे। आप शिक्षित हैं, आपको शिक्षा देना व्यर्थ है; इतने से आप अच्छी तरह समझ लेंगे। अच्छा, आप सब सज्जनों को धन्यवाद।" फिर कृतज्ञ दृष्टि से एक बार निरुपमा को देखकर, धीरे-धीरे फाटक के बाहर आया।

यामिनी बाबू निरू को देखते हुए सुरेश से बोले, "इसी के दो मकान कानपुर में हमारे रेहन हैं। इसके बाप ने बाबा के पास रक्खे थे, इसके खर्च के लिए शायद, और जो काम रहा हो।"

निरुपमा को दिखाकर सुरेश बोले, "इसकी जमींदारी थी रामपुर सोलहो आने।"

पाँच

नीली मार खाकर जिस तरह निरुपमा से नाराज हुई थी; अनादृत होकर उसी तरह यामिनी बाबू से हुई। वह शारीरिक शक्ति में दीदी या यामिनी बाबू से कम है; पर बदला चुकाने की शक्ति में नहीं। जिस समय चमारके रूप से कुमार गया था और उससे उत्तरोत्तर बढ़ते परिचय से लोगों में आश्चर्य और श्रद्धा बढ़ रही थी, उस समय बिना व्यक्तित्व और बिना विशेषता की समझी गयी नीली भी एक बगल खड़ी हुई सबकुछ देख-सुन रही थी। उसे अपने प्रति होनेवाली अवज्ञा की परवा न थी, कारण, उसने निश्चय कर लिया था कि ऊँचाई, शक्ति और विद्या जैसी कुछ ही बातों में वह दूसरों से छोटी है,—जब वह उनकी ऊँचाई तक पहुँच जायगी, तब वैसी हो जायगी, यों दूसरों की तरह वह भी सब बातें समझ लेती है। कुमार के चले जाने के बाद देर तक उसके सम्बन्ध में बातें होती रहीं, वह सब समझी।

वहाँ कई और बंगाली युवक थे। उन लोगों ने कुमार के विद्वान होने पर भी, जूता पालिश करने का पेशा इख्तियार करने की तारीफें कीं। पहले देर तक बहस हो चुकी थी कि देश गिरा हुआ है, गुलामों की कोई जाति नहीं; फिर भी जातीय ऊँचाई का अभिमान लोगों की नस-नस में भरा हुआ है, इससे मानसिक और चारित्रिक पतन होता है; हम लोगों के एक दूसरे से न मिल सकने, इस तरह जोर-दार न हो पाने का यह मुख्य कारण है। इतने बड़े विद्वान् का निस्संकोच भाव से यह कार्य इख्तियार करना महत्त्व रखता है। इससे लोगों की आँखें खुलेंगी, उन्हें ठीक-ठीक मार्ग सूझेगा। यों योरप विद्यार्थी जाते ही रहते हैं; या तो वहाँ बिगड़ जाते हैं, या मेम लेकर, नहीं तो पदवी के साथ काले रंग के गोरे होकर आते हैं, अपनी संस्कृति के पक्के दुशमन बनकर। योरप की चारित्रिक शिक्षा यही है जो इसमें देखने को मिली कि गर्व का नाम नहीं, अपने काम से काम; हृदय से इस काम को छोटा नहीं समझता। बड़ी देर तक सोचते रहकर यामिनी बाबू ने कहा—परिस्थिति मजबूर करती है तब बुरे-भले का ज्ञान नहीं रहता, जो काम सामने आता है, इन्सान इख्तियार करता है, क्योंकि पेटवाली मार सबसे बड़ी मार है। दीवानखाने में बैठी हुई निरुपमा सुन रही थी। यामिनी बाबू के विकृत-स्वर से मुँह बनाकर उठकर ऊपर चली गयी, हृदय से दूसरे युवकों की आलोचना का समर्थन करती हुई। नीली बातें भी सुन रही थी और बातें करनेवालों का बोलते वक्त मुँह भी देख रही थी।

कुमार के लिए नीली के भी मन में सहानुभूति पैदा हुई। उस आलोचना के फलस्वरूप उसने निश्चय कर लिया कि यह अच्छा आदमी है और हर एक शंका का समाधान इससे निस्सन्देह होकर किया जा सकता है। कभी-कभी वह होटल जाया करती थी; मैनेजर उसे स्नेह करते थे। दुपहर के भोजन के बाद जब घर-वाले आराम करने लगे, होटल चलकर कुमार से स्नेह प्राप्त करने के लिए नीली चंचल हो उठी। मिलने की कल्पना से हृदय में बाल-चापल्य पैदा हुआ, जिससे उसे

एक प्रकार का सुखानुभव होता रहा। इधर-उधर देखकर घर के लोगों की आँख बचा त्वरित-पद होटल आयी। ठीक सामने मैनेजर का कमरा था। एक दृष्टि से मैनेजर को देखा। मैनेजर के मुख पर कुछ ऐसी गम्भीरता थी कि नीली की सस्नेह आलापवाली इच्छा दब गयी। उसे कुछ भय-सा लगने लगा। तब तक होटल का नौकर रामचरण आया और बोला, "बाबू, अभी नहीं तनख्वाह देना चाहते तो दस दिन बाद दीजिए। मैं अपने भाई के पास जाता हूँ; पर कुमार बाबू के बासन अब हम नहीं छू सकते, हमें रोटी पड़ जायेगी।" कहकर चलने लगा। इसका साफ मतलब नीली समझ गयी। एक कुर्सी पर बैठ गयी और उसी तरह कभी मैनेजर साहब और कभी नौकर का मुँह देखने लगी।

डाँटकर मैनेजर साहब ने रामचरण को बुलाया, फिर ऊपर नारायण बाबू और जगदीश बाबू को बुला लाने के लिए कहा।

यह होटल नाम में जितना भड़कीला है, भोजन में उतना सुघर और प्रचुराशय नहीं। नाम के नीचे छोटे अक्षरों में लिखा हुआ है—'वैष्णव भोजन।' होटल में जो कहार हैं वे भोजन से भी बढ़कर वैष्णव हैं, यानी आचार-शास्त्र का यथानियम पालन करनेवाले। उन्हें तरक्की की भी प्रचुर आशा है, क्योंकि भगवानदीन अहिर अब ठाकुर बन गया है और किसी का छुआ भोजन नहीं करता। उनके मनोभाव की यहाँ पुष्टि होती है। यहाँ ज्यादातर दफ्तरों के वे बाबू रहते हैं जो सरकार को कलियुग की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाली प्रधान शक्ति मानते हैं और उसकी या उसके रंग से रँगी अन्य आफिसों की नौकरी आर्थिक विवशता के कारण करते हैं; पर वे हृदय से पूर्ण रूप से प्राचीन सनातन-धर्म के रक्षक हैं। उनके विचार में 'यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' का पूरा चित्र इस समय भारत में देख पड़ता है, और श्री भगवान् के अवतार में अब क्यों देर हो रही है—यह उनकी समझ में नहीं आता।

नारायण बाबू और जगदीश बाबू को रामचरण बुला लाया। इतवार को भी आराम नहीं मिल रहा, वे नासिका कुंचित किये हुए सोचते-से आकर कुर्सी पर बैठ गये।

मैनेजर साहब ने कहा, "तो क्या कुमार बाबू को जाने के लिए कह दूँ?"

"यह हम कैसे कहें?" नारायण बाबू ने कहा, "पर यह जरूर है कि उनके रहने पर हम होटल छोड़ देंगे।"

जगदीश बाबू ने कहा, "यह इंगलिस्तान नहीं। जैसा देश वैसा भेष। यहाँ तो इस तरह चमारों में ही रहा जा सकता है। भाई, हमें सोना है, हम तो जाते हैं।"

"कुमार बाबू को बुला ला," मैनेजर साहब ने रामचरण को आज्ञा दी।

कुमार बगल में था। बातें सुन चुका था पहले की और इस समय की। कहा कि बाकी किराये का बिल चुकाकर वह शाम को चला जायगा, इस समय उसे मैनेजर साहब की बात सुनने की फुर्सत नहीं।

कुमार की आवाज मैनेजर साहब के पास तक पहुँची। नीली खुश होकर उठी। आवाज में खुश कर देने की वैसे ही लापरवाही थी। भीतर से कमरे में न जाकर बाहर के बरामदे में टहलने लगी। बाहर से भी भीतर जाने का दरवाजा है। पर

बिना परिचय के जाय कैसे ? मैनेजर से पूछ-ताछ कर कोई सूरत निकालती; पर उसकी जगह न रही। "मैनेजर कैसा आदमी है—इसे अक्ल नहीं,—होटलवाले गधे हैं।"

नीली बरामदे में टहलती रही, कुमार के झरोखे के पास इच्छापूर्वक धीरे-धीरे कि वह टोके, स्नेह करे तब बातचीत हो। उसे कुमार जैसा आदमी पसन्द है। होटलवालों को मालूम नहीं—कैसे आदमी से प्यार और कैसे से घृणा करनी चाहिए। जब कुमार ने नीली को गिन-गिनकर पैर रखते देखा, तब समझ गया कि सामनेवाले घर की लड़की है। वह उसके घर गया था, इसलिए उसे समझा देना चाहती है कि वह भी आयी हुई है और उसके प्रति उसकी सहानुभूति है।

बंगला में कुमार ने आवाज दी, "क्यों ?"

नीली खुश होकर आगे बढ़ गयी ! वहाँ से उसका मुँह न देख पड़ता था। उठकर कुमार ने दरवाजा खोला, देखा। देखकर लजाकर नीली दूसरी तरफ देखने लगी। टोकने से लड़कियाँ अक्सर भग जाती हैं। नीली भगी नहीं। कुमार की इच्छा हुई, उसे बुलाकर बैठाये और उससे बातें करे। इधर दुपहर-भर धर्म और नीति की बहस सुनते-सुनते परेशान हो रहा था। कहा, "एक तस्वीर मेरे पास है। बहुत अच्छी है। आओ तुम्हें दूँ।"

एक दफा सारी देह हिलाकर नीली ने "नहीं-नहीं" की; फिर धीरे-धीरे कमरे में गयी। कुमार बंगला बोला। वह साफ बंगला बोल सकता है। यह एक नया आविष्कार नीली ने किया, और पहले उसके मन में जितना सामीप्य कुमार का था, अब और हो गया।

बड़े आदर से कुमार ने कुर्सी पर बैठने के लिए कहा, फिर अंग्रेजी मैगजीन से एक तस्वीर फाड़कर दी। नीली तस्वीर देखती हुई खुश होकर कुमार से बोली, "आप तो हिन्दुस्तानी हैं।" नीली की साफ हिन्दी कुमार को बड़ी अच्छी लगी।

पूछा, "और तुम ?"

"बंगाली।" नीली गम्भीर हो गयी। फिर तस्वीर देखने लगी।

हम हिन्दुस्तानियों से बड़े हैं, यह भाव इस जरा-सी लड़की में भी बद्धमूल है, कुमार ने सोचा, फिर हँसकर पूछा, "तुम कहाँ पैदा हुई ?"

अपना मकान दिखाकर नीली बोली, "वहाँ।"

"तो वह बँगला है ? तब तो तुम भी हिन्दुस्तानी हो।"

नीली ने लजाकर सर हिलाया।

कुमार बंगला में बोला, "हम बंगाली हैं, तुम हिन्दुस्तानी हो।"

नीली बंगला में बोली, "आप हिन्दुस्तानी हैं। मैं जानती हूँ।"

"मेरी जन्मभूमि कलकत्ता है, फिर मैं हिन्दुस्तानी कैसे हूँ ?"

"तुम कहाँ रहते हो ?"

"ढाका।"

कुमार जोर से हँसा और बंगला का पूर्वबंगवालों पर मजाक बनाया एक पद्य कहा। पद्य बहुत मशहूर है। नीली भी जानती थी चूँकि वह पूर्वबंग की थी, इसलिए उसका उत्तर भी उसने रट रक्खा था जो पूर्वबंगवालों का बनाया हुआ था

—सुना दिया। फिर बोली, "दीदी कलकत्ते की है।"

कुमार ने नीली के मकान में जूते पालिश करने के लिए जाकर भी निरुपमा को देखा था। समझ गया, पर उस पर कोई बातचीत न की, कहा, "तुम लोग ढाके के बंगाली बनो, इससे तो बेहतर है कि लखनऊ के हिन्दुस्तानी रहो। बंगाली हम हैं।"

"हूँ," कुमार के गर्व के स्वर पर अवज्ञापूर्ण ध्वनि करके नीली ने कहा, "आप तो रामपुर में रहते हैं। रामपुर दीदी की जमींदारी है।"

कुमार खूब खुलकर हँसा, कहा, "तुम्हारी दीदी तो बहुत बड़ी जमींदार हैं! तीन घर का गाँव है और कुल नौ खेत बाकी सब ऊसर!"

"और भी तो गाँव हैं।" नीली कुमार को एकटक देखती हुई बोली।

"तुम्हारी दीदी बहुत बड़ी जमींदार हैं। शादी हो जायगी तब जमींदारी रक्खी रहेगी; तब तुम जमींदार होगी।"

"नहीं आप समझे? कहा तो दीदी कलकत्ते की है, हम ढाका के।"

"हाँ हाँ, गलती हो गयी। तुम्हारी दीदी कलकत्ते से यहाँ कैसे आकर जमींदार बन गयीं?"

"आपके गाँव के कौन जमींदार हैं?"

"वे तो रामलोचन बाबू हैं।"

"हैं नहीं, थे। उनका देहान्त हो गया तीन साल हुए। अब दीदी जमींदार है। काम सब दादा करते हैं।" नीली मन-ही-मन सोच रही थी, दीदी इन्हें प्यार करती है; ये भी दीदी को प्यार करें।

"तो तुम्हारी दीदी की जिससे शादी होगी, वह तो रातोरात मालदार हो जायगा।"

"हाँ," कहकर नीली खिलखिला दी; कहा, "यामिनी बाबू से होगी।"

यामिनी बाबू का नाम कुमार को याद था। पूछा, "कौन यामिनी बाबू?"

"वह जो यूनिवर्सिटी में अभी लेक्चरर हुए हैं।"

कुमार चुप हो गया। फिर जल्दी ही स्वस्थ होकर पूछा, "तुम्हारा नाम?"

"श्री नीलिमा देवी।"

कहने के सभ्य ढंग पर कुमार हँसा। फिर पूछा, "और हमारे गाँव की जमींदार तुम्हारी दीदी का नाम?"

नीली मुस्किराकर बोली, "श्री निरुपमा देवी।"

कुमार कुछ सोचता हुआ-सा उठा, कमरे के बाहर होटल की घड़ी लगी हुई थी, देखने के लिए। लौटा तो नीली ने पूछा, "अच्छा, एक ग्राउण्ड की घास दो घोड़े दो दिन में चरते हैं तो एक घोड़ा कितने दिन में चरेगा?"

"चार दिन में। क्यों? मेरा इम्तहान हो रहा है?"

"नहीं। आप तो आज चले जायेंगे?"

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

"आप जब कह रहे थे तब मैं वहाँ बैठी थी। अब कहाँ जायेंगे?"

"कुछ ठीक नहीं। तुम्हारी दीदी की इतनी जमींदारी है, कहीं जगह दिला दो।"

नीली उठी और तस्वीर लिये दौड़ती हुई जैसे कुछ लक्ष्य कर, घर चली गयी।

दीदी के कमरे में जाकर देखा, वह अँगरेजी का एक उपन्यास पढ़ रही थी। नीली को अपनी गलती मालूम होते ही दीदी के प्रति हुआ वैमनस्य दूर हो गया। बगल में बैठकर बोली, "कुमार बाबू ने मोची का काम किया है, इसलिए होटल-वाले उन्हें होटल में नहीं रख रहे। वह आज कहीं चले जायेंगे। बड़ी अच्छी बंगला बोलते हैं।"

निरुपमा सचिन्त आँखों से सोचती रही। किताब एक बगल रक्खी रही।

छह

सुरेश के पिता योगेश बाबू पचपन पार कर चुके हैं। गृहस्थी के झंझटों से फ़ुर्सत पा घर रहकर योग-साधन किया करते हैं। ध्यान सदा सुरेश पर रहता है कि नव-युवक गृहयुद्ध के दाँवपेंच भूलकर सहानुभूति में कहीं बहक न जाय। कर्म द्वारा जो सम्पत्ति अर्जित की है, अब ज्ञान द्वारा उसकी वृद्धि में रहते हैं। सुरेश पिता का आज्ञाकारी पुत्र है। यद्यपि उसमें बीसवीं सदी की संस्कृति-रूप दुर्बलता है, फिर भी वह पिता की कृपा और अपने कर्तव्य की दिन भर में कई बार याद करता है। इसका संसार-सुख-फल वह प्रत्यक्ष भी करता जा रहा है और इसी से होनेवाली देवताओं की पूजाएँ।

निरुपमा योगेश बाबू की सगी भानजी है। उनके बहनोई, बाबू रामलोचन के पिता प्रयाग में कार्यवश आकर रहे थे। रहनेवाले कलकत्ते के थे। रामलोचन की शिक्षा-दीक्षा प्रयाग में हुई, फिर लखनऊ में योगेश बाबू की बहन से ब्याह। क्रमशः सांसारिक संघात में उभड़ते हुए रामलोचन बाबू युक्तप्रान्त की एक अच्छी स्टेट के मैनेजर हो गये। दीर्घकाल तक इस पद पर रहे और यथेष्ट धन-अर्जन किया। जमींदारी में रहता हुआ आदमी जमींदारी ही पसन्द करता है। उपार्जित अर्थ का व्यय बाबू रामलोचन ने मौजे खरीदने में किया। मुसल्लम रामपुर और अवध के तीन और मौजों में कुछ-कुछ हिस्सा खरीदा। कुल मिलाकर बारह हजार की निकासी थी। प्रयाग में पहले से उनका अपना मकान था। लखनऊ में भी कई अच्छे बँगले बनवाये। सन्तान केवल निरुपमा थी। इधर मैनेजरी से अवसर ग्रहण कर चुके थे। उनकी मृत्यु से एक साल पहले उनकी पत्नी की मृत्यु हो चुकी थी। औरों की तरह उनका भी ससुराल-पक्ष प्रबल था। ससुरालवालों का ही विश्वास करते थे। कभी-कभी कलकत्ता जाया करते थे। उनके भय्याचार वहाँ थे, पर उन पर विश्वास न था। दैवयोग, पत्नी के मरने के छः महीने बाद खुद भी बीमार पड़े। छः महीने तक इलाज होता रहा; पर कुछ फल न हुआ। एक दिन निरुपमा को

योगेश के हाथ सौंपकर उन्होंने सदा के लिए आँखें मूँद लीं। उस समय निरू सोलह साल की थी।

एक शादी की बातचीत पहले निरू की माँ के समय हुई थी, उन्होंने सुधार का इतना ही अर्थ समझा था कि कन्या बालपन पार कर जाय तब उसका ब्याह हो जाना चाहिए; पर उसकी मृत्यु से वह शादी रुक गयी, दोष माना गया, फिर निरू के पिता का भी देहान्त हो गया। योगेश बाबू विचारों में यद्यपि सनातनधर्मी थे, फिर भी निरू के विवाह-विषय में ब्राह्म-समाजी बन गये। कहा, आजकल बीस साल से पहले का ब्याह, ब्याह में ही शुमार करने योग्य नहीं। भीतरी उद्देश उनका और था, जिसका पता उनके अलावा उनकी पत्नी को भी नहीं लगा। बात यह थी कि रामलोचन की बीमारी में उन्होंने पचास हजार का खर्च तैयार किया था। उनकी मृत्यु के बाद, उनकी जमींदारी तथा मकान-किराये की आमदनी उसी खर्चवाले कर्ज में ब्याज के साथ काटते जाते थे, वह भी इस तरह कि बीस रुपये महीने के मुख्तारआम की जगह सुरेश का मासिक वेतन दो सौ अलग करके, और घर के खर्च और मुआमलों-मुकद्दमों जो तीन के तेरह करते थे, वह अलग। इस रूप से ब्याज निकालकर तीन साल में सिर्फ दस हजार रुपये असल में कटे थे। बाकी जिन्स-असबाब निरू के घर से उनके घर पहुँचकर कम अंशों में निरू के रह गये थे। गहने अपनी अस्लियत खो बैठे थे; उनकी जगह उन्हीं की तरह हल्के दूसरे बनकर आ गये थे। निरू को यह कुछ मालूम न था। इस सबके सम्बन्ध में उसे ज्ञान भी बहुत थोड़ा था। योगेश बाबू के पास इन सबका सच्चा चिट्ठा तैयार था। वे कभी-कभी निरू को सुनाकर कहते थे, "तुम्हारे पिता ने सिर्फ एक जमींदारी पक्की खरीदी है।" निरू हँस देती। व्यंग्य और अन्योक्ति का इतना पता उसे न था। उसका आदर यथेष्ट था; वह काफी समझदार हो चुकी थी। जब उसकी माता और पिता स्वर्गवासी हुए, उसे जोरदार धक्का लगा। पर मामा-मामी और वहाँ के भाई-बहनों के स्नेह में अब वह भूलता जा रहा है। इधर कुछ दिनों से, काफी समझदार होकर वह ऐसा अनुभव कर रही है कि उस गृह के वायुमण्डल में उसे स्नेह देकर तृप्त कर देनेवाला कुछ भी नहीं है, वहाँ एक अभाव जैसे सदा ही बना रहता है। जब से विवाह की बात उठी, यामिनी बाबू की आमद-रफ्त बढ़ी, यह अभाव तीव्रता प्राप्त करता गया; जैसे दूर तक विचार करने पर भी सुख का कोई चिह्न स्पष्ट नहीं देख पड़ता। वह केवल गुरुजनों, समाज के अदब-कायदों, विरासत में मिली वहाँ की संस्कृति का अनुसरण करती जा रही थी। क्यों संस्कृति हृदय को संस्कृत नहीं करती—उसके प्रकाश से आयी दिव्य अनुभूति प्राणों को समुद्भासित नहीं करती, उसकी समझ में नहीं आता। पर उसका अपना कोई भी निश्चय नहीं। वह जैसे वहीं की, उन्हीं की इच्छा पर निर्भर उन्हीं के सुख से सुखी है।

यामिनी बाबू योगेश बाबू की साली की ननद के लड़के हैं। बड़ी छानबीन के बाद उनका पता लगाया गया है। सम्पन्न हैं, निरू के जैसे नहीं। कानपुर में उनके बाबा जज थे, पिता वकील। योगेश बाबू ने इन्हें मुलाहजेदार समझकर निरू के विवाह की बातचीत की थी। यद्यपि कन्या के देखने भर की स्वतन्त्रता बंगाल

में दी जाती है, फिर भी इनके विलायती भाव को ताड़कर एक दिन सुरेश से उन्होंने इशारे में यह बातचीत की—परमहंस रामकृष्णदेव की तपोभूमि दक्षिणेश्वर आजकल बंगालियों के कोर्टशिप की जगह हो रही है—दर्शन का बहाना भर रहता है—और अब उतनी बन्दिश चल भी नहीं सकती। सुरेश पिता के इंगितों का समझदार हो गया था। कवायद शुरू कर दी। योगेश बाबू का मतलब था, निरू सुन्दरी है, यह विलायती बेवकूफ जरूर फँसेगा। जब समझ में आ जाय कि गिरह लग गयी, तब इसे कर्जवाला मुआमला समझकर निरू से पक्की लिखा-पढ़ी करा ली जाय। इस तरह सामाजिक कलंक न लगेगा; और बनाव न बिगड़ा तो लिखा-पढ़ी के बाद भी, इस समय जैसे सुरेश के लिए आमदनी का जरिया रहेगा। रामलोचन का रुपया जमींदारी खरीदने और बँगले बनवाने में खर्च हुआ, यह साफ है। आमदनी वे घूमने-फिरने और और अनेक मदों में खर्च कर चुके थे।

योगेश बाबू दुमंजिले पर अपने कमरे में बैठे हुए थे। नौकर ने यामिनी बाबू के आने का संवाद दिया। योगेश बाबू ने बुला लाने की आज्ञा दी।

यामिनी बाबू ने बड़े भक्ति-भाव से प्रणाम किया। अभ्यस्त स्नेह के स्वर से योगेश बाबू ने आदर दिया, "आओ, आओ, बेटा, बैठो।" सामने की कुर्सी पर नम्रतापूर्वक यामिनी बाबू बैठ गये। योगेश बाबू पहले की तरह गम्भीर हो रहे।

कुछ देर बाद यामिनी बाबू बोले, "मैं कुछ दिनों के लिए कानपुर जा रहा हूँ।"

"मिलने के लिए ?" स्नेह के स्वर से कहकर मुस्किराकर वृद्ध ने फर्शी की नली सँभाली।

"जी नहीं।" साग्रह देखते हुए।

"तो ?—गर्मी की छुट्टियों में यहीं क्यों न रहो ?—खस की टट्टियों का आराम। मैं इसीलिए पहाड़ नहीं जाता—व्यर्थ खर्च !" सर झुकाकर एक बगल देखने लगे।

"जी, यहीं रहूँगा।" भक्त की दृष्टि से ताकते हुए।

"हाँ, मैंने सुना है, निरू भी यही चाहती है। उसी ने कहा है शायद तुमसे ?" पूरी प्रसन्नता से मुँह देखते हुए।

लजाकर —"जी, और काम है।"

"कहने लायक हो तो कहो।"

"इसीलिए आया हूँ। रुपयों की जल्द आवश्यकता होगी।—एक रेहन की सम्पत्ति है।"

"कानपुर में ?"

"जी, कोई ले तो रजिस्ट्री बेच दूँगा या करार की मियाद पूरी हो चुकी है, दावा कर दूँगा।"

"कैसी सम्पत्ति है ?" योगेश बाबू अच्छी तरह पल्थी मारकर तनकर बैठे।

यामिनी बाबू ने सारा हाल कहा। फिर यह भी बताया कि उन्होंने सुना है, वह रामपुर का रहनेवाला है। कुमार का हाल कहकर नम्रता से मुस्कराये।

"हूँ," योगेश बाबू ने समझ की साँस छोड़ी। फिर कुछ देर तक यामिनी बाबू

को देखते रहे। फिर अपने स्वभाव के अनुसार स्वस्थ होकर स्नेह के स्वर से बोले, "कहाँ प्रोफेसरी, कहाँ यह जहमत ?" कुछ रुककर, "तुम चाहो तो हम शक्ति भर तुम्हारी सहायता के लिए तैयार हैं।"

"जी हाँ, मैं तो इसीलिए आया था। बाबा हैं नहीं। सच्ची सलाह आप ही एक देनेवाले हैं और सहायक।"

योगेश बाबू हँसे। कहा, "जरा-सी अड़चन है, फिर कहेंगे, आखिर निरू की सम्पत्ति तो तुम्हारी ही सम्पत्ति है ? अभी निरू के पास भी रुपया नहीं।" हँसकर, "बुढ़ापे के सहारे के लिए कुछ कमा रखा था। तुम कहो तो सुरेश के नाम वह रजिस्ट्री खरीद ली जाय; या हम निरू को कर्ज दें, तुमसे निरू खरीद ले।"

"मकान मौके के हैं; अगर आप निरू को कर्ज देकर उसी के नाम रजिस्ट्री खरीद लें, तो बड़ी भारी कृपा हो।"

"अच्छा, अच्छा।" वृद्ध उसी प्रसन्नता से यामिनी बाबू को देखते रहे।

एक मिनट बाद प्रणाम कर यामिनी बाबू ने चलने की आज्ञा माँगी।

"अच्छा बेटा, चिन्ता न करना।" कहकर, यामिनी बाबू के मुड़ते वृद्ध ने घूरा।

सात

कमल निरुपमा की मित्र है। फर्स्ट आर्ट तक दोनों साथ थीं, निरू ने छोड़ दिया, वह बी. ए. में है। पिता ब्राह्म हैं, उसके भी विचार वैसे ही। बहुत अच्छा गाती है। मिलने आयी है।

"नमस्कार।" कमरे में बैठते ही हाथ जोड़कर कहा।

निरू बैठी थी, उठकर खड़ी हो गयी, हाथ जोड़कर वैसे ही नमस्कार किया। चेहरा उतरा हुआ। सँभलने की कोशिश की; पर बहुत कुछ न सँभली। बैठने के लिए कुर्सी ठीक कर दी, "आओ बैठो" कहकर मुस्करायी; चिन्ता की रेखाएँ फिर भी खुली रह गयीं।

कमल संयत होकर बैठ गयी, "भई, इस समय बैठने की इच्छा नहीं, तैयार हो लो, कुछ टहल आयें।"

कमल के स्वर से स्नेह की प्रसन्नता निरू में जगने लगी। उसे बैठे-बैठे अच्छा न लग रहा था। ग्रीन रूम की अभिनेत्री की तरह अलस बैठी रही, जिसका पार्ट देर में आनेवाला है और जिसमें उसे अभिरुचि नहीं। उठकर हाथ-मुँह धोकर साड़ी बदलने गयी।

कमल स्वभाव से चतुर है। उसका अन्दाजा ठीक लड़े, गलत, वह लड़ाती है। निरू सुन्दरी है, इसलिए उसके पास प्रेमपत्रों की कमी न होगी, उसने सोचा।

इसका आधार था। निरू को प्रेम-पत्र के कारण कालेज छोड़ना पड़ा था। राज-नीति-शास्त्र के लेक्चरर डा. भड़कंकड़ निरू के बगलवाले मकान में रहते हैं, नये-नये विलायत से आये हैं, उन्हें प्रेम के पवित्र सम्बन्ध में किसी प्रकार की रुकावट मनुष्योचित नहीं मालूम देती—प्रेम पाप नहीं। उन्होंने निरू को देखकर कालेज की छात्रा के ज्ञान से बढ़ी हुई मानकर, एक चिट्ठी लिखी, जिसमें अपनी सम्मति और विवाह की इच्छा प्रकट की थी। प्रेम के लच्छेदार शब्दों से पत्र सज्जित था। पढ़-कर उत्तर लिखने का ढंग निरू की समझ में नहीं आया। उसने पत्र मामा के हाथ रक्खा। मामा ने निरू का कालेज जाना बन्द कर दिया। कमल के लिए यह कम मजाक न था। वह निरू की सरलता, दिव्यता पर तुष्ट थी। पर वह यही नहीं समझी कि मामा ने भड़कंकड़ के पत्र में निरू के प्रति व्यक्त हुए उसके प्रेम की अपेक्षा निरू की जमींदारी पर पड़ी उसकी दृष्टि को ज्यादा साफ देखा था, साथ-साथ यह भी सोचा था कि जो भक्ति मामा के प्रति उसकी है, उसकी रक्षा मामा के लिए पहले आवश्यक है।

कमल उठकर टेब्ल के ड्राअर खोलने लगी। बन्द कर सरहाने के तकिये का तला देखा। अन्दाज ठीक लड़ा। एक पत्र पड़ा था, निकालकर पढ़ने लगी। नाम और पता देखकर मुस्किराकर, उसी तरह रख दिया और भलेमानस की तरह कुर्सी पर बैठकर प्रतीक्षा करने लगी।

निरू तैयार होकर आयी। "कहाँ चलना है ?" मुस्किराकर पूछा।

"कहीं नहीं, गोमती साइड तक, टहल आयें।"

"पर लौटकर गाना गाना होगा।"

"हाँ, हाँ; समय बड़ा अच्छा है !"

कहकर कमल हँसी। निरू सरल दृष्टि से देखती रही। आईने में एक बार चेहरा देखकर कमल निरुपमा को लेकर बाहर निकली। देर तक कोई बातचीत नहीं हुई। सीधी निगाह रास्ता देखती हुई दोनों गोमती की तरफ चलीं। कैसरबाग पार हो गया, लोगों की भीड़ घट गयी, इक्के-दुक्के रह गये कभी-कभी आते हुए।

"आजकल तुम्हारे रोमांस का क्या हाल है।" खुली हुई कमल ने पूछा।

"कैसा रोमांस ?" निरू ने लजाकर मुस्किराकर पूछा।

"वही भड़कंकड़वाला।"

"भइ, तुम्हें हमसे ज्यादा आजादी है। हमें बहुत वक्त, बहुत वक्त नहीं—अक्सर, घरवालों की मर्जी पर रहना पड़ता है।"

"अच्छा, तो इधर का कोई मर्जीवाला रोमांस हो तो बतलाओ।"

निरुपमा मुस्किराकर कमल को देखने लगी।

"इसी तरह मुस्किराती देखती रहो यही मैं चाहती हूँ।" निरुपमा को मर्म तक गुदगुदाकर उभाड़ने के लिए कमल ने कहा, "अगर कोई प्रसंग चल रहा है तो उससे तुम सुखी हो, इसके ये मानी हैं, यानी केवल तुम्हारे घरवालों की मर्जी नहीं।"

कमल की 'यानी' से निरुपमा को हँसी आ गयी; मजाक में बनाकर पूछा, "अर्थात् ?"

और तेज होकर कमल बोली, "अर्थात् उनसे तुम्हारे मामा नहीं शादी कर रहे।"

निरुपमा समझकर चुप हो गयी। कमल ने बनावटी क्रोध से कहा, "देखो, विवाह मजाक नहीं, एक जिन्दगी-भर का उत्तरदायित्व है—बिना समझे, बिना मन मिले"—सोचती हुई बोली—"तुम मेरी सखी हो, मुझसे छिपाना ठीक नहीं; मैं तुम्हारा उपकार कर सकती हूँ।" कहकर उत्तर की प्रत्याशा में कृत्रिम गम्भीर हो गयी। वह निरुपमा से उसके प्रेम और विवाह की कथा सुनकर सुखी होना चाहती थी और दुख में साथ देना एक सच्ची सखी की तरह।

निरू को कष्ट होने लगा। वह विवाह मनोनुकूल नहीं, फिर भी वह कह नहीं सकती, कुमारवाला प्रसंग, जिसका सत्य की प्रीति से आगमन हुआ था, वह किसी तरह नहीं कह सकती। समझ रही है—खुलकर अपने गौरव, प्रतिष्ठा और मर्यादा से, छाँह में आनेवाले भरे घड़े की तरह सूर्य के बिम्ब से रहित हो जायेगी। रुख न मिलाती हुई, संयत होकर बोली, "भइ, हम लोगों की कोई अपनी मर्जी नहीं होती।"

"पर प्राणों की होती है।"—कमल का मजाक वाला भाव बदल गया। निरुपमा कुछ विचलित हुई, पर सँभल गयी। कमल कहती गयी, "तुम्हारी संस्कृति की छाप, तुम पर गहरी होती जा रही है और इसलिए अपने यहाँ की पर्दा-प्रथावाली देवियों को—जैसे तुम इस प्रसंग को पर्दे में रखना चाहती हो, पर यह अगर प्राणों पर पड़ता हुआ पर्दा है, तो निश्चय यह सदा के लिए पड़ा ही रह जायगा।"

"हाँ, यह तो है।" निरुपमा लजाकर बोली।

"यानी ?"

"यानी और क्या ? तुम ठीक कहती हो।" बदल गयी।

"निरू !" कमल स्नेह के आवेश में आ गयी, "मैंने बाबा से बहुत तरह की बातें तुम्हारे और तुम्हारे मामा के सम्बन्ध में सुनी हैं; पर तुमसे नहीं कहीं।"

निरुपमा जीती। हृदय को दबाकर, सँभली हुई, सखी के हृदय को खोल दिया। स्नेह से हाथ पकड़कर कहा, "तो तुमने मुझसे छिपाया—यह स्नेह-व्यवहार न था।"

"हो न हो; पर आज इसीलिए मैं तुमसे मिलने आयी थी। यामिनी बाबू से तुम्हारा विवाह हो रहा है, यह लखनऊ भर के बंगाली जानते हैं। मैंने एक चिट्ठी उनकी तुम्हारे तकिये के नीचे देखी है। पढ़ी भी है। इसलिए जानना चाहती थी कि यह विवाह तुम कर रही हो, या तुम्हारे मामा कर रहे हैं!"

"इसीलिए मैं नहीं कह पा रही थी, भगवान् ने पुनरुक्ति से बचा लिया। मेरे कहने से पहले सबकुछ तो मालूम ही कर चुकी हो। मेरा जो कहना है, वह मैं कह चुकी हूँ। और, तुम जानती हो, क्लास की लड़कियों के नाटक में प्रेम की बातें सुनकर मैं हँसती थी। भड़कंकड़ साहब को क्या सूझा, बैठे-बिठाये मेरा पढ़ना बन्द कर दिया!"

कमल खुलकर हँसी, "उसे तो तुम अपना मनोभाव लिखकर भले आदमी की

तरह उत्तर दे सकती थीं ! मामा को पत्र दिखाने की क्या बात थी ?"

"अब क्या बताऊँ, मेरी गलती ! उत्तर न भी देती।" निरुपमा शून्य दृष्टि से कुछ देर तक रेजीडेन्सी की ओर देखती रही, फिर कहा, "अच्छा, कौन-सी बातें तुमने अपने बाबा से सुनी हैं ?"

"तुम्हारे मामा पर बाबा विश्वास नहीं करते। उनका ख्याल है, तुम्हारी जमींदारी पर तुम्हारे मामा की मामूली निगाह नहीं।"

"पर मामा मेरी जमींदारी ले तो सकते नहीं।"

"जमींदारी की आमदनी तो ले सकते हैं। क्या तुम्हें मालूम है, तुम्हारी जमींदारी की कितनी आय है और तुम्हारे बाबा के देहान्त के बाद अब तक कितना रुपया तुम्हारे नाम जमा हुआ ?"

"निकासी वगैरह तो मालूम है, क्योंकि बाबा के वक्त इसकी काफी बातचीत सुन चुकी हूँ। मामा काम सँभाले हुए हैं, कुछ कहने-सुनने की उन्होंने कोई जरूरत न समझी होगी।" सीधे कहकर निरुपमा विचार में पड़ गयी, जैसे यह एक बात ध्यान देने की हो।

अँधेरा अच्छी तरह नहीं हुआ। दोनों गोमती के किनारे-किनारे छतर-मंजिल की सड़क की तरफ से लौटीं। एक खाली ताँगा आता हुआ देख पड़ा। निरुपमा ने हाथ उठाया। ताँगा खड़ा हो गया। "थक गयी हूँ।" कमल से बोली, "जल्द लौट चलें, अभी तुम्हारा गाना सुनना है, फिर जल्द-जल्द भेजवा देना है।"

"जल्द-जल्द भेजवा देना है; क्यों ?" बैठती हुई, कमल ने पूछा, "क्या यामिनी बाबू आनेवाले हैं ?" बंगला में बोली, ताँगेवाले के न समझने के निश्चय से।

"यामिनी बाबू से मैं घर में नहीं, सिकन्दर-बाग में मिलती हूँ।"

कमल जोर से हँसी। उसके गुप्तदान का फल मिला है। पूछा, "तो तुम खुश हो ?"

"मुझे खुश करने के लिए है, यह तो मानती हो ?"

"नहीं, सँभलकर खेलना है।"

"दादा मैच मेकर हैं।"

कमल सन्ध्या के पश्चिमाकाश की तरह रँग गयी। पूछा, "कैसे ?"

"मुझे बाग तक साथ ले जाकर छोड़ देते हैं।"

"फिर ?"

"फिर यामिनी बाबू प्रेम की कविता सुनाते हैं।"

"क्या कहते हैं ?"

"भइ, यह सब मुझसे न बनेगा। एक प्रेम का नाटक पढ़ो न, पढ़ तो पचासों चुकी होगी; पार्ट भी कर चुकी हो।"

"तुम्हें लगता कैसा है ?"

"जैसे वहाँ की तरह-तरह की चिड़ियों की बोलियाँ सुनीं, एक स्वर यामिनी बाबू का भी सुना।"

"तो इन्हीं से विवाह का निश्चय है ?"

"सन्देह तो कहीं भी नहीं देखती।"
"अपने मन में ?"
"वहाँ भी नहीं।"

आठ

निरू ने कमल को स्नेहपूर्वक विदा किया। कमल से वह कुछ खुल गयी, इसके लिए मन में कुछ लज्जित हुई। पर, कमल उसकी हिताकांक्षिणी है, सोचकर आश्वस्त हुई।—ऐसी छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देना ठीक नहीं; आखिर यह गीत हर बंगाली के गले पर है—कैसी बेपर्दगी! —और वह पर्दा करती है। उसके समाज में वर-पक्षी अच्छी तरह कन्या को देख सकता है; पर कन्या के लिए वह आजादी नहीं। विवाह जैसे केवल वर का हो रहा है, वर ही हर तरह वरेण्य है। यामिनी बाबू उसके मनोनीत नहीं हैं, जिससे विवाह करना है। पर उसे मनोनीत कर विवाह करना है। वह यन्त्र की तरह है, स्वेच्छानुसार छेड़कर राग मिलाये—यह संस्कृति।

उपाय के लिए सोचा, पर चारों ओर मामा नजर आये। मामा के लिए जैसा कहा जाता है, कमल जैसा कह गयी है, मुमकिन है। सच हो। उसे हृदय में अस्वस्ति मिलती थी, यह वह मालूम कर चुकी है। यह भी देख चुकी है कि वैषयिक बातचीत, उसकी जमींदारी के सम्बन्ध की, अगर कुछ होती रहती थी और उस समय वहाँ वह जाती थी, तो बन्द हो जाती थी। उसे यह भी नहीं मालूम कि अब कितना रुपया जमा हुआ। उसे रुपये की भूख नहीं। जमींदारी थी, वह भी पिता की स्मृति के रूप न मिली होती तो वह न चाहती; और सत्य के मार्ग पर वह मामा और सुरेश दादा को सभी कुछ दे सकती है; पर इस तरह की कलुषित भावना लोगों में क्यों फैली है?—अब वह स्वार्थ और परार्थ को अच्छी तरह समझने लगी है, उसकी जमींदारी में, उसी की जबकि वह है, उसी की जहाँ रिआया हैं, स्वार्थ का बर्ताव प्रबल है या परार्थ का, वह नहीं जानती। परार्थ का बर्ताव किया जाय, तो अच्छी तरह किया जा सकता है, क्योंकि उसका खर्च बहुत थोड़ा है। कृष्णकुमार का क्या हाल है! उसी की जमींदारी का रहनेवाला है। निरुपमा में एक भेद पैदा हो गया। समस्त सात्विकता, जिसे असात्विक प्रभाव पड़ता हुआ आवृत कर रहा था, जैसे एक साथ जगकर केन्द्रीभूत हो विचार में बदल गयी। उसे मालूम हुआ, घरवालों की आँखों में जो वह किशोरी थी और अपने को भी वैसी ही समझती थी, वह भ्रम था; वह समय, बहुत समय हुआ, पार हो चुका है। वह राय रखती है।

सुबह उठकर हाथ-मुँह धोकर निरुपमा बैठी थी कि उसकी दासी ने आकर

कहा कि मामा बाबू बुलाते हैं।

निरुपमा उठकर मामा के पास चली। कमरे में उनकी गद्दी की बगल में बैठकर नत आँखों से पूछा :

"माँ आ गयी ?" योगेश बाबू एक हिसाब देख रहे थे, निगाह उठाकर कहा, "बैठो काम है, अभी कहता हूँ।" फिर हिसाब देखने लगे।

निरू चुपचाप बैठ गयी। कुछ देर में योगेश बाबू निवृत्त हो गये। स्नेह की दृष्टि से नत निरू को देखते रहे। फिर कहा, "माँ, अब तक तो तुम्हारे नौकर की तरह तुम्हारा काम करता रहा; पर अब वृद्ध हो गया हूँ। कुछ आराम चाहता हूँ। तुम्हें समझा दूँ, तुम मालकिन की तरह अपनी आज्ञा धारण करो—आखिर अब बहुत दिन तो हैं नहीं।" योगेश बाबू निरू को देखकर मुस्किराये।

इस स्नेह-स्वर में फर्क नहीं हो सकता, निरू ने निश्चय किया, लोग यों ही दूसरे को नीचा दिखाने के आदी हैं। स्नेह से उमड़कर नम्र हँसकर मामा को सरल दृष्टि से—वही जो किशोरी की दृष्टि थी—देखकर, बोली, "आज्ञा कीजिए।"

वृद्ध फिर हँसे, "तुम्हें देखता हूँ तो रानी की याद आ जाती है।" रानी निरुपमा की माता का नाम था। "तुम्हें सुखी करके मैं स्वर्ग का भागी हूँगा, मुझे पूरा विश्वास है।" निरू वैसी ही सरल दृष्टि से देखती रही।

"आज तक तुमसे नहीं कहा," वृद्ध गम्भीर हो गये, "जरूरत भी नहीं थी। अब है। क्योंकि सम्पत्ति-विषय में भी तुम्हें सँभाल देना है।" नली मुँह में लगाकर, धीरे-धीरे कई कश खींचे।

"यामिनी को रुपये की जरूरत है।"

निरुपमा कुछ सँभलकर, जैसे अच्छी तरह विषय में प्रवेश करना चाहती है, भाव को और भी तेज दृष्टि से देखने लगी।

वृद्ध कहते गये, "कभी-कभी हाथ खाली हो जाता है। तुम्हारे पिता बीमार पड़े थे, तब पास कुछ न था।"

निरुपमा को भीतर से जैसे किसी ने हिला दिया। कमल की बात याद आयी।

वृद्ध धीरे-धीरे सारी कथा कह गये। फिर रुपये लेने के सम्बन्ध में यामिनी बाबू की इच्छा प्रकट की, फिर हँसे, कहा, "तुम्हें यामिनी बाबू के लिए कर्ज लेना पड़ रहा है।"

निरुपमा के मुख पर विकार न था। अपनी साम्पत्तिक मर्यादा और ऋण की क्षुद्रता समझकर वह चंचल न हुई। केवल इस विषय में दूसरों की दूरदर्शिता उसे याद आती रही।

"माँ, तुम्हें समझा देना मेरा काम था, मेरे पास बहुत कुछ तो है नहीं। इसी पर मेरा बुढ़ापा और तुम्हारे भाई-बहिनों का भविष्य निर्भर है। नहीं तो तुम्हारे पिता मेरे ऊपर थोड़े ही थे ?"

"जी नहीं, मैं तो सोचती हूँ, दादा के लिए मैं इससे भी कुछ अच्छी व्यवस्था कर दूँ।"

"यह मैं जानता हूँ, तुम्हारा प्यार सभी को जता देता है; और तुम्हारा दादा तुम्हें फूफू की लड़की थोड़े ही समझता है ?"

निरू मुस्किराकर बोली, "रामपुर में बाबा ने डेरे की जगह रहने लायक एक घर बनवाया था।"

"हाँ—वह अब भी है।"

"मेरा विचार है, एक बार कुछ दिन रामपुर रह आऊँ।"

"लेकिन," वृद्ध सोचते हुए बोले, "बड़ी दिक्कत होगी। गर्मी है। देहात में तुम्हें अच्छा न लगेगा। वहाँ मिलनेवाली भी कोई नहीं। अकेली,—फिर हिन्दुस्तानी हमें कुछ नीची निगाह से देखते हैं।" हँसकर बोले, "मछली का तो वहाँ अध्याय समाप्त है।"

"बाबा के साथ मैं एक बार हो आयी हूँ। मेरा खूब जी लगता है। देहात की हवा अच्छी होती है और अभी नहीं, जून में जाना चाहती हूँ। आमों की फसल होगी।"

"अच्छा," धीमे स्वर से योगेश बाबू बोले, "तुम्हारे दादा साथ जायँगे, और ?"

"और नीली।"

नौ

नीम के नीचे बैठक है। गुरुदीन तीन बिस्वेवाले तिवारी हैं, सीतल पाँच बिस्वेवाले पाठक, मन्नी दो बिस्वे के सुकुल, ललई गोद लिये हुए मिसिर—पहले पाँच बिस्वे के पाण्डे, अब दो कट गये हैं, गाँववालों के हिसाब से, ललई पाँच ही जोड़ते हैं। सब हल जोतते और श्रद्धापूर्वक धर्म की रक्षा करते हैं। बेनी बाजपेई कानपुर के मिठाईवाले हैं; पर धर्म की रक्षा करते हुए बीसों बिस्वे बचाये हुए हैं, नीम की जड़ पर बैठे, बाकी इधर-उधर। पानी बरस चुका है, ये खेत जोतकर विश्राम करते हुए सामाजिक बातचीत कर रहे हैं, पतन से समाज की रक्षा के विचार से। सभी समाज के कर्णधार हैं। सामाजिक मर्यादा में बड़े, बेनी, सभापति का आसन ग्रहण किये हुए हैं।

"बाजपेईजी," व्यंग्य में ललई बोले, "किसुन तो आप लोगों में हैं ?"

"हम लोगों में ?" बाजपेई नाराज होकर बोले, "हमारा बीस बिस्वे में खान-पान—हेत-व्यवहार, किसुन कनवजिया है ?"

"लोग तो कहते हैं ?" गुरुदीन स्वर ऊँचा कर बोले।

मुँह बिगाड़कर बेनी ने कहा, "ऐसे बहुत हैं ! सब बने हुए हैं !"

"अब कितने रह गये, बाजपेईजी ?" सीतल ने हँसकर पूछा।

"अब भी उतने ही हैं।" मन्नी ने उसी तरह उत्तर दिया।

"अब क्या हैं ! जैसे बने थे वैसे ही धो गये।" वेनी गम्भीर होकर बोले, "अब तो मकुआ पासी उनसे अच्छा है।"

"विलाइत से लौटकर घर नहीं आये।" गुरुदीन इशारे की दृष्टि से देखकर बोले।

"घरवालों को बचाये रहना चाहते हैं।" धीमे गम्भीर स्वर से सीतल ने कहा।

"लेकिन क्या बचे रहे घरवाले ?" पूरी जानकारी से जैसे मन्नी ने कहा।

वेनी हँसे, मन्नी को देखकर अपनी उच्चता में गम्भीर हो गये। फिर कहा, "किसी की बुराई नहीं करनी चाहिए, पापी अपने ही पापों बहेगा।"

"अरे बाजपेईजी," मन्नी पंजों के बल उठकर बोले, "कानपुर में अपनी अम्मा को बुलाकर मिले और घर न आये, तो क्या गाँववाले इतने बेवकूफ हैं कि नहीं समझे कि वहाँ अम्मा ने सपूत को चौके में बुलाकर खिलाया होगा।"

मन्नी को बाजी मारते देखकर गुरुदीन त्योरियाँ चढ़ाकर बोले, "उसी के बाद रामचन्दा कुएँ पर मिला, हमने कहा—यह तेवारियों का कुआँ है, जहाँ बाप ने खोदवाया हो, वहाँ जाव भरो। फिर क्या भरने पाया ?"

सीतल बोले, "लेकिन घरों में आना-जाना हमने बन्द कराया है। नहीं तो तुम्हारे साथी अब तक कितने बेधरम हो चुके होते।"

शिष्टता से गम्भीर होकर वेनी ने कहा, "कहना न चाहिए; लेकिन वही कहावत है कि कहता हूँ तो माँ मारी जाती है, नहीं कहता तो बाप कुत्ता खाता है।"

"कही डालिए अब, बाजपेईजी।" कई कण्ठों ने एक साथ आग्रह किया।

"क्या कहें !" बेनी फिर गम्भीर हो गये।

"तो अब कुछ मिलने-मिलाने की बात थोड़े ही रह गयी है कि कहने से कलंक दबा रह जायगा ?" ललई ने गले में जोर देकर कहा।

"भाई, हमने तो देखा नहीं, लेकिन रामनाथ सुकुल की कही कहते हैं कि किसुन अब लखनऊ में चमार का काम कर रहे हैं—जूता पालिश करते हैं।"

मारे घृणा के सब लोग गड़ गये।

यथार्थ धार्मिक स्वर से बोले, "पाप है और कुछ नहीं, मति भ्रष्ट हो गयी !"

कुछ देर तक लोगों में सन्नाटा रहा। कामता दुबे दूसरे हार से घर जाते हुए, लोगों को देखकर मुड़े। पास आकर अपने आने की सूचना दी, "किसकी नानी मरी, हो ?"

भिन्न भाव की तरंग फैली। ललई कामता के काका लगते थे, कहा, "तेरी।"

"मेरी तो मेरे आने से पहले मर चुकी थी," बाजपेई को देखकर, "पलागों बाजपेईजी।"

खुश होकर, "आओ, दुबे; किसुन की बातें हो रही हैं।"

"अब क्या, अब तो किसुन के पौ बारह हैं। राह में चिट्ठीरसा मिला था। पचास का मनीआर्डर भेजा है।" राम राम करके कामता भी एक बगल बैठ गये।

लोगों में आश्चर्य का भाव फैल गया। मन्नी बोले, "कलजुग है। बड़ा कड़ा मुकाम। राम का नाम लो, खाने को न मिलेगा। दूर से ठेंगा दिखाओ, सब मजे में देखेंगे।"

गुरुदीन गर्म पड़कर बोले, "धिरकार है उसको, जो धर्म छोड़कर जिया। गाँव में रहना मोहाल न कर दिया तो छानबे नहीं," जनेऊ से अँगूठा निकालकर —"बंजर अमले थे; चार बिगहा में छः पेड़, बेदखल करा दिया। मालिक बोले —स्याबास गुरुदीन, हम खेत भी इनके वेदखल करेंगे, आठ बिगहा लिखाये हैं, बैल एक नहीं—बटाई देते हैं। हमने गवाही दी, तीन पुश्त के खेत छूट गये। अब घर घर है।"

"कानपुर में दो मकान हैं, वे रेहन हैं; कलकत्ते में घाटा आया, सारा खेल खतम हो गया। अफसोस, अफसोस गिरिजाशंकर कूच कर गये। लड़के का मुँह भी न देख पाये।" मन्नी और कहने को दम भरकर रह ही गये। ललई ने रोक लिया, "कहते हैं, महाजन की एक रजिस्टरी आयी थी, लखनऊ भेज दी गयी।"

"अब कुछ चुकाया थोड़े चुकने का है रुपया, घर भर तौल जायँगे!" कामता रुपये के महत्त्व में डूबे हुए बोले।

गुरुदीन हँसकर बोले, "नाक तक आ गये हैं। लेकिन वाह री औरत; मिजाज वैसा ही है। अपने हार से पानी लाती है। और रमचन्दा वहीं नहाने भी जाता है।"

"अब काहे का हार!" ललई बोले, "जब तक मालिक खेत नहीं उठाते तब तक भर लें कुएँ से पानी। फिर?"

"फिर बेटा जूता गाँठे, अम्मा खाल सेहलावे।" बेनीप्रसाद भाववाली दृष्टि से देखते हुए बोले, "क्यों गुरुदीन भाई?"

"यह तो होना ही है! मालिक ने कहा था कि खेत तुमको देंगे, अब की लिखवा लेना पट्टा। माँगते बहुत हैं।" गुरुदीन ने सरल भाव से कहा।

"अरे भाई, बंगाली और पुलिस, ये बाप के नहीं होते।" कामता ने कहा, "जाड़े भर हम कलकत्ते में बनियाइन बेचते हैं, हमको अच्छी तरह मालूम है। उधार दे दो तो वसूल नहीं होने का। तगादे जाव तो कानून बताते हैं।"

"अब धर्म नहीं रहा।" गुरुदीन ने नाक सिकोड़कर जैसे किसी पर घृणा करते हुए कहा।

ललई भाव समझकर जैसे मुस्कराये। मन्नी ने आँख का इशारा किया। बाजपेई ने भी गोलवा मुस्की छोड़ी।

कामता बोले, "मालिक सब ऐसे ही होते हैं, पहले कौल करते हैं, फिर बदल जाते हैं।"

लोगों ने देखा—स्टेशन से रथ और रब्बा आ रहा है। ललई ने कहा, "हाँ, मालिक के आने की बात थी। अब के अस्ली मालकिन, बिटिया आ रही है।"

सब उठकर धीरे-धीरे उसी तरफ बढ़े।

दस

रामपुर आते-आते निरुपमा के दिल का क्या हाल था, वह काव्य का विषय है। नीली भी नील आकाश की चिड़िया थी, चपल सुख के पंख फड़काकर उड़ती हुई। मुश्किल से एक रात डेरे में रही। सुबह होते ही गाँव घूमने निकली। निरू ने रोका नहीं। केवल उसे सजा दिया। कुछ कहा भी नहीं। नीली को कोई भय नहीं। वह जानती है, उसकी दीदी वहाँ की जमीदार है। वहाँ की कुल जमीन पर उसकी दीदी का अधिकार है। वहाँ उसकी गति अप्रतिहत, शक्ति अपराजेय है, वह वहाँ के आदमियों को कटाक्ष मात्र से अमीर और गरीब बना सकती है, उस दीदी की वह छोटी बहन है।

लोगों में बड़प्पन का एक प्रभाव पड़ गया। रात को काफी बातचीत हो चुकी थी। बड़े-छोटे प्रायः सभी सुरेश बाबू के पास हाजिरी दे आये थे। कुछ से सुरेश ने हली के हल ले आने के लिए कहा था। यद्यपि लोग अपने खेत नहीं बो पाये थे, फिर भी जमींदार का काम आगे होता है, सोचकर चुप रह गये थे।

नीली जिस गली से निकलती है, सब उसे एक दृष्टि से देखते हैं। उसका पहनावा ऐसा है सबकी आँखों में ऐश्वर्य का भाव मुद्रित हो जाता है। लड़के, लड़कियाँ, उसकी उम्र के होने पर भी उससे बोलने का साहस नहीं करते। वह भी विशेषता की दृष्टि से उन्हें नहीं देखती। उसका लक्ष्य और है। सामने एक पण्डितजी स्नान कर राम नाम जपते हुए आ रहे थे, नीली को उन पर श्रद्धा नहीं हुई, उनका मुख और मुद्रा देखकर। पर रामपुर के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए उन्हें ही उसने पण्डित समझा। यद्यपि उनके प्रति नहीं, फिर भी, प्यार से भरे और प्रतिष्ठा से मजे, ललित और ओजस्वी कण्ठ से उसने पूछा, "कुमार बाबू का कौन-सा मकान है ?"

"कौन कुमार बाबू ?" वृद्ध ने एक धक्का खाकर जैसे पूछा।

"कृष्णकुमार बाबू, और कौन कुमार बाबू !" नीली ने तेज निगाह डाली।

"वह है, वह। जो पक्का मकान है।" कहकर, वृद्ध घृणा से मुँह फेरकर पूर्ववत् श्रद्धापरायण हो राम नाम जपते हुए चले। कुछ याद कर लोटे से चार बूंद पानी मुँह में डाल लिया।

नीली बिना हिचक के भीतर घुस गयी और जूते समेत आँगन में जाकर खड़ी हुई; एक प्रौढ़, किन्तु आँखों को तृप्ति देनेवाली मूर्ति देखकर उसी तरह बिना रुकावट के पूछा, "यह कुमार बाबू का मकान है ? कुमार बाबू आपके कौन हैं ?"

देवी को बालिका की हिन्दी बड़ी भली मालूम दी, मुस्किराती बढ़ती बालिका को देखती हुई बोलीं, "कुमार मेरा बाप है।" वे बंगला अच्छा जानती थीं। पढ़ी भी थीं। बालिका के पास आकर सर पर हाथ फेरकर पूछा, "अब मालूम हुआ ?"

नीली लजा गयी। लजाकर भी यह दबनेवाली नहीं, तुरन्त उत्तर देना उसका पहले का स्वभाव है, बोली, "नहीं आपके लड़के हैं।"

"आओ, बैठो"—बालिका को सस्नेह पलँग पर बैठालकर कहा, "तुम बड़ी

अच्छी हिन्दी बोलती हो।"

"मैं स्कूल में हिन्दी पढ़ती हूँ, कुमार बाबू कहाँ हैं?" नीली कुछ हताश हो चली।

"वह तो वहीं है, तुम उसे नहीं ले आयीं?"

नीली फिर लजा गयी, बोली, "इधर एक महीने से मैंने उन्हें नहीं देखा, पहले हमारे सामने के होटल में रहते थे; होटलवाले ने उन्हें नहीं रहने दिया।"

कुमार अपना सब हाल लिख चुका था; होटल छोड़ने का। देवी सावित्री कुछ संकुचित हुईं, पर डरीं नहीं। नीली को जलपान कराने के लिए कुछ पकवान घर के बनाये, लेने के लिए गयीं। नीली बैठी हुई घर देखती रही।

एक छोटी रकाबी में रखकर नीली को देते हुए कहा, "थोड़ा जलपान कर लो।"

स्नेह के स्वर से नम्र होकर, खाने की इच्छा न रहने पर भी, सभ्यता की स्वाभाविक प्रेरणा से नीली ने रकाबी ले ली और निर्विकार चित से खाने लगी। देवी सावित्री ग्लास में पानी ले आयीं।

नीली का हाथ धुलाकर, तौलिया पकड़े हुए पोंछवाकर, स्नेह से कहा, "कुमार बाबू की तुम्हारी अच्छी जान-पहचान है? तुम्हें खोजते हुए बड़ी गिहनत करनी पड़ी।"

नीली की सरलता उमड़ी कि कुमार बाबू के पेशे की बात कहे। पर एक अज्ञात दबाव से दब गयी, बोली, "हाँ मेरे सामने रहते थे, मैं भी जानती हूँ, दीदी भी जानती है।" जबान फिसल गयी, सोचकर चुप हो गयी।

"दीदी कौन?"

"दीदी, दीदी, और कौन," अबकी सँभलकर नीली ने उत्तर दिया।

"रामलोचन बाबू की लड़की?"

"हाँ," नीली लजाकर बोली।

माँ की दृष्टि में पुत्र का सांसारिक प्रसंग, सूक्ष्मतम कारणरूप में रहने पर भी, कार्यरूप से आ जाता है। कारण, संसार के मार्ग में माँ आगे चली हुई होनी है। जो प्रेम बीजरूप में रहकर भी नीली की समझ में आ गया था, वह नीली की ध्वनि से माँ के हृदय में भी स्पष्ट हो गया। कुमार उन्हीं का कुमार है। वे उसे और अनेक रूपों से जानती हैं। इस निश्चय को विशेष महत्त्व न देकर, हँसकर उन्होंने बंगला में नीली से पूछा, "तुम्हारा नाम?"

मुस्किराकर नीली बोली, "श्री नीलिमा देवी।"

"बड़ा अच्छा नाम है; हम लोग नीलिमा के भीतर रहते हैं।"

नीली खुश हो गयी।

हँसकर देवी सावित्री ने पूछा, "तुम्हारी दीदी नहीं आयी?"

"आयी है।"

"नहीं, हमारे यहाँ, तुम तो हमारी माँ हो? हमारा निमन्त्रण उनसे कह देना।"

सम्मति की सूचना में जैसे, नीली ने गर्दन हिलायी। इसी समय रामचन्द्र बाहर से आया। माँ को देखकर बोला, "हमारे खेत सुरेश बाबू जुतवा रहे हैं।"

"हमारे खेत क्यों हैं ?" माँ ने कहा, "हमने खरीदे हैं ? उनके खेत हैं, उन्होंने ले लिये।"

"इनका मुँह कुमार बाबू के मुँह से मिलता है," नीली बोली।

"हाँ !" सस्नेह देखती हुई सावित्री देवी ने कहा, "यह कुमार बाबू का छोटा भाई, रामचन्द्र है।"

नीली चलने के लिए उठकर खड़ी हुई। माता ने पुत्र से डेरे तक भेज आने के लिए कहा। रामचन्द्र नीली से दो ही तीन साल का बड़ा है। साथ लेकर चला। देखा, कई आदमी घर के इधर-उधर खड़े हैं। देखकर अपने-अपने रास्ते से जैसे चल दिये। रामचन्द्र नीली को डेरे ले आया।

नीली दौड़ी हुई भीतर गयी और फिर दौड़ी हुई बाहर आयी, रामचन्द्र कुछ ही कदम घर को चला था, "ऐ रामचन्द्र, यहाँ आओ।"

रामचन्द्र नीली के पास आया। नीली ने भरे प्यार के गले से कहा, "मेरे साथ, आओ, भीतर।"

रामचन्द्र भीतर गया। निरुपमा को देखकर दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। निरू निष्पलक हो गयी। थोड़ी देर तक देखती रहकर, उस अविकच मुख-श्री में एक विकच पूर्ण पुष्ट मुखच्छवि प्रत्यक्ष कर, स्नेह के ललित कण्ठ से पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

विनीत स्वर से रामचन्द्र ने कहा, "जी, मुझे रामचन्द्र कहते हैं।" मन से रामचन्द्र ने समझ लिया, यही हमारे गाँव की मालकिन हैं।

"रामचन्द्र कृपाल भजु मन हरनभवभय दारुणम्," निरुपमा हँसती आँखों देखती हुई बोली, "रामचन्द्र हमारे राजा हैं। हमारे बड़े भाग हैं जो हमारे यहाँ आये हुए हैं।" कुर्सी की ओर हाथ से इंगित करती हुई बोली, "बैठिये।" लजाया हुआ रामचन्द्र बैठ गया। निरू ने दासी से जलपान लाने के लिए कहा।

निरू की आँख नहीं हटती। मुख की मधुरता में अपार तृष्णा बुझ रही है। दासी के हाथ से तश्तरी लेकर बड़े प्यार से हाथ पर रखी और शौक करने के लिए कहा। बालक निस्संकोच भाव से खाने लगा।

गाँववालों के असद् हृदय अमानुषिक बर्ताव का प्रभाव बालक पर माँ से अधिक पड़ा था। जिन्हें वह भक्ति करता था, अपना समझता था, जिनके प्रति संसार के अन्य सभी लोगों से उसका अधिक आकर्षण था, जब वही संसार के सबसे बड़े शत्रुओं में बदल गये, तब बालक एकाएक कवाकर रह गया। मनुष्य-मनुष्य के प्रति इतना बड़ा वैर कर सकता है, यह कभी उसकी कल्पना में न आया था। उसके लिए गाँव भर के द्वार बन्द हैं। कोई उससे प्रीतिपूर्वक नहीं बोलता। गाँव के कुओं में उसका पानी भरना बन्द है। नाई, धोबी, कहार कोई अब उसकी प्रजा नहीं, उसका काम नहीं करते। उसके डाढ़ी-मूछें नहीं, बाल हैं; शहर जाकर बनवाता है। छुट्टियों में केवल रास्ता और घर; केवल माँ का मुख देखने के लिए आता है। माँ की इच्छा रामपुर रहने की नहीं, पर लाचारी है; और कहीं जगह नहीं। भाई प्रसिद्ध विद्वान् है; पर कहीं किसी ने जगह नहीं दी। अब वह···। बालक सोच भी नहीं सकता कि उसका भाई चमार का काम करता है, और इस कमाई से उसने

रुपये भेजे हैं। केवल भाई के ओजस्वी शब्द, निर्जीव पत्र में भी आग के अक्षरों से लिखे हुए जैसे, उसे धर्य और शक्ति देते हैं, वह चुपचाप प्रहार सहता जा रहा है। उसकी माँ का स्नेह उसे शान्त करता है। उसकी माँ, जिसने कभी पानी नहीं भरा, दूर खेत के कुएँ से पानी लाती है। इस प्रकार साँसत में पड़े बालक को आज गाँव की सबसे कड़ी शक्ति से स्नेह मिला। खाता हुआ सोचने लगा, 'क्या ये मेरा बाग बेदखल कर सकती हैं? क्या इन्होंने मेरे खेत छीन लेने की सलाह दी होगी?—मेरे खेत जुतवाने के लिए आयी हैं?' आप ही आप एक दूसरे मन ने उत्तर दिया, 'नहीं, यह सब सुरेश बाबू का चलाया चक्र है; ये ऐसा नहीं कर सकतीं।'

रामचन्द्र के भोजन कर चुकने के बाद दासी ने हाथ धुला दिये। एक दूसरी कुर्सी पर निरू बैठी थी। नीली कुर्सी का पिछला हिस्सा पकड़े हुए खड़ी हुई।

"राजा रामचन्द्र, पढ़ते हो?" निरू ने पूछा।

"जी, हाँ।" लड़के ने सम्मान के स्वर में कहा।

"किस क्लास में हो?"

"जी, एइट्थ में।"

"अच्छा! हाँ, राजा रामचन्द्र को कम उम्र में ज्यादा अक्ल होनी ठीक भी है।"

बालक मुस्किराया।

"अच्छा रामचन्द्रजी, तुम्हारे और भाई कहाँ हैं?"

बालक फिर मुस्किराया, बोला, "दादा लखनऊ में हैं।"

"नाम?"

"डॉ. कृष्णकुमार।"

निरू हँसी, "उलट गया, राजा रामचन्द्र के तो छोटे भाई को कृष्णकुमार होना था।" नीली भी हँसी।

बालक लजाकर झुक गया। तब तक फिर स्नेह से देखती हुई निरू ने पूछा, "आपके छोटे भाई साहब वहाँ क्या करते हैं?"

बालक मर्म की बात कह न सका। निरू से आँखें मिलाकर हँसता रहा।

"जानती हूँ।" निरू बोली, "मेरे यहाँ भी आये थे।"

बालक और खिल गया। फिर अपनी ही प्रेरणा से उठकर खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर प्रणाम कर बोला, "दीदी, चलता हूँ।"

निरू को किसी ने गुदगुदा दिया। उठकर जल्दी से बढ़कर, लड़के को पकड़कर, एक अननुभूत स्पर्शसुख अनुभव करती हुई, खींचकर बोली, "अभी तो आप आये, बातचीत जम भी न पायी कि चलने लगे। बैठिये।" बालक बैठ गया।

"हाँ, तो आपके भाई साहब डॉ. कृष्णकुमार क्या करते हैं?" अबकी गम्भीर होकर पूछा। नीली रामचन्द्र को देखकर मुस्किराती रही।

"मैं नहीं जानता।" कुछ रुखाई से, सिर झुकाये हुए बालक मुस्किराता रहा।

फिर प्रश्न हुआ—"किस विषय के डाक्टर हैं—होमिओपैथी के?"

"अँगरेजी के।" लड़के ने उसी तरह मधुर स्वर से उत्तर दिया।

"अँगरेजी के डाक्टर जो चीर-फाड़ करते हैं?" निरू प्रीति से देखती रही।

"चीर-फाड़ वाले डी. लिट्. होते हैं?" कुछ तीव्र स्वर से लड़के ने कहा। निरू

की तीव्रता में माधुर्य मिला।

"तो आप इसी तरह के डी. लिट्. होंगे, क्यों ?" स्वर में कुमार का ध्यान करती हुई बोली।

"अभी तो मुझे बहुत पढ़ना है।"

प्रसन्न होकर पूछा, "आपका खर्च आपके भाई साहब देते हैं ?"

"अब लिखा है कि देंगे। अभी तक माँ चलाती थीं।"

"आप अपनी अम्मा को माँ कहते हैं ?"

"जी, कलकत्ते में हम लोग पैदा हुए थे।"

निरू सोचती रही; फिर पूछा, "तुम्हारी माँ बंगला समझती हैं ?"

"हाँ, वे पढ़-लिख भी लेती हैं।"

"दीदी," नीली बोली, "मैं भी वहाँ गयी थी, मुझे हिन्दुस्तानी मिठाई दी। बड़ी अच्छी बंगला बोलती हैं। मुझसे कहा—तुम अपनी दीदी को नहीं ले आयी हो, उनसे मेरा निमन्त्रण कहना।" निरुपमा ने न जाने क्या सोचकर पलकें मूंद लीं।

कुछ देर बाद पूछा, "कितना खर्च लगता है ?"

"अभी तो 15) में चल जाता है।"

"आपको 20) महीने के पहले सप्ताह में मिल जाया करेंगे। फिर बढ़ा दिया जायगा, ज्यों-ज्यों आप बढ़ते जायेंगे।"

"लेकिन दादा," बालक संकुचित होकर न कह सका।

"दादा क्या कहेंगे ?" निरू ने डाँट दिया।

खेत से सिपाही खबर लेकर आया—दासी ने कहा, "दादा बुलाते हैं, खेत बोआया जा रहा है, देखने के लिए।"

"अपनी माँ से मेरा प्रणाम कहना," उठती हुई निरू बोली, "और कहना, मैं कल उनके दर्शन करूँगी।"

बालक चलता हुआ अपने खेत के बोआये जाने की बात सोचता रहा।

ग्यारह

जूते पहनकर नीली को लेकर निरुपमा चली। बाहर निकलकर गली के घरों को पार करने लगी तो काम करती हुई किसानों की स्त्रियाँ आकर जमा हो गयीं और चारों ओर से घेर लिया। स्नेह से उच्छ्वसित होकर उन्हीं में से एक वृद्धा ने कहा, "हमारी तो भाग फूट गयी, बिटिया रानी; मालिक हमें छोड़कर चले गये। किसानों को लड़के से बढ़कर मानते थे, कभी नजर नहीं ली, लगान नहीं बन पड़ा—खेत में नहीं पैदा हुआ तो घर से दिया है, किसी पर दूब की छड़ी नहीं उठायी, कभी डाँड़ नहीं लिया।"

"चल, हट, राह छोड़," सिपाही ने आगे बढ़कर डाँटा।

"रहने दो," शान्त खड़ी हुई निरुपमा बोली।

"रत्ती-रत्ती जिउ देने से एक साथ मर जाना अच्छा है।" बुढ़िया ने आवेश में आकर कहा। हटाई हुई काई की तरह स्त्रियाँ फिर सिमट आयीं।—"यह देखो, यह देखो"—बुढ़िया एक-एक स्त्री की कोंछी की धोती फैलाकर दिखाती हुई—"किसी तरह लाज बचाये हैं, असाढ़ का महीना है, अनाज नहीं रहा; छः-छः रुपये वाले खेत के तीन साल में अठारह-अठारह रुपये पड़ने लगे। डेढ़ी का अनाज तुम ही से लें, नजर नियाद ऊपर से। कहाँ तक दें? खेत न जोतें तो नहीं बनता, पापी पेट!" कहनेवाली वृद्धा रोने लगी। और-और युवती-प्रौढ़ा किसान नारियाँ भी नीरव अश्रुपात करने लगीं। निरू की भी आँखें छलछला आयीं। नीली हैरान होकर दोनों ओर देख रही थी। तब तक उन्हीं में से सँभली हुई एक ने कहा, "देखो, रो रही हैं, अभी ये यह सब क्या जानें!"

रोती हुई बुढ़िया बोली, "तुम्हरा गुलाम मलिकवा नहीं रहा!"

"चुप रह बुढ़िया, बहुत न बढ़।" सिपाही ने डाँटा।

"क्यों क्या हुआ?" सिपाही की तरफ कुटिल भ्रूक्षेप कर रुँधते गले को सँभालकर निरू ने पूछा।

अभय पाते ही उच्छ्वसित होकर रोती हुई आवेग से रुकते कण्ठ की बाधा न मानकर बुढ़िया कहने लगी, "किसुन कुमार के खेत मलिकवा बँटाई जोते था। तब खेत बेदखल न हुए थे। गाँववाले किसुन से नाराज थे—किसुन बिलायत गये थे पढ़ने। मलिकवा से बोले—किसुन के खेत छोड़ दे; मलिकवा इनकार कर गया। फिर गाँववाले मालिक से मिले। एक दिन डेरे में मालिक बुलाकर छोड़ने को कहते रहे कि गाँववालों का साथ दे। मलिकवा कुछ न बोला। फिर अँधेरे में कुछ जन खेत में पकड़कर अकेला जानकर," बुढ़िया वहीं पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

निरू सन्न हो गयी। सिपाही से पूछा, "फिर क्या हुआ उसका?"

मुस्किराकर सिपाही बोला, "यह पक्की बदमाश है। मलिकवा को मिरगी आती थी। रात को गड़ही में डूब गया था, सुबह को उसकी लाश मिली, थानेदार आये, उन्होंने भी यही माना; पर यह शैतान की खाला वहाँ भी आँय-बाँय बकती रही; रात को छाँह देखकर—आ गये, कहकर चिल्लाती है!"

कृषक नारियों ने क्रूर दृष्टि से सिपाही को देखा और बुढ़िया को आँचल से हवा करने लगीं, एक पानी लेने गयी। निरू इस आशा से खड़ी रही कि वे भी बुढ़िया के इस प्रसंग पर कुछ कहें, पर वे न बोलीं; केवल कटाक्ष पढ़कर निरू खड़ी रही। सिपाही ने चलने को कहते हुए कहा कि देहात के ऐसे मामले हैं, आगे मालिक से इसका ठीक-ठीक पता चलेगा। बुढ़िया होश में आ रही थी।

निरू धीरे-धीरे खेत की ओर चली। सिपाही से पूछा, "मलिकवा बुढ़िया का लड़का था?"

"जी हाँ।" जैसे कुछ लाना भूल गया सोचकर सिपाही लौटा, "वे बाबू खड़े हैं, मेड़-मेड़ जाइये," कहकर।

द्वार पर द्वारिका नाई बैठा था। बुलाकर सिपाही ने कुर्सी ले चलने के लिए

कहा। द्वारिका मुँह बिगाड़कर उठे और पीछे-पीछे कुर्सी लेकर चले।

कुमार के बेदखल किये बाग के एक आम के नीचे सुरेश कुर्सी पर बैठे थे। निरू धीरे-धीरे मेड़ों के ऊपर से चलती हुई गयी। आगे-आगे नीली। तब तक सिपाही भी आ गया। खेतों में द्वारिका कुर्सी लेकर दौड़े। बाग की खाईं पार करते हुए पैर फिसल जाने पर, गिर पड़े। नीली खिलखिलाकर हँसने लगी। कुर्सी का एक पाया टूट गया। सिपाही मारने दौड़ा, निरू ने रोक दिया। सिपाही सुरेश की ओर देखकर रह गया। सुरेश द्वारिका को घूरते रहे। फिर सिपाही से कहा, "इसे रखवाकर दूसरी कुर्सी ले आओ।" द्वारिका को लेकर सिपाही फिर लौटा।

गुरुदीन तिवारी, सीतल पाठक, मन्नी सुकुल, ललई मिसिर, कामता दुबे आदि मुख्य सब-के-सब जन जोत रहे थे। सुरेश के गाँव आने पर शिष्टाचार करने गये थे, हली के लिए पकड़ लिये गये। कुछ और भी किसान थे। जमींदार के खेत पहले बोये जाते हैं; कायदा है; बुलाने पर लोग चले गये थे। कुर्सी आ गयी। नीरू खड़ी हुई कभी जनेऊ देखती थी, कभी जनेऊवालों की हल-चलाने की निपुणता। हँस नहीं रही थी; पर हँसी की हल्की रेखा होंठों पर खिंची थी। इसी समय खेत के उस तरफ कुएँ के पास एक स्त्री आती हुई देख पड़ी, स्वस्थ, प्रौढ़। घूंघट से केवल ललाट ढँका हुआ। नीली पहचानकर आनन्द से उच्छ्वसित होकर बोली, "कुमार बाबू की माँ।"

सुरेश वहीं थे। "कुमार बाबू की···।" डाँट के स्वर से कहकर नीली को दबा दिया। निरू ने एक दफा बगल की ओर मुँह कर भाई को देखा। इसी समय जोतते हुए हलवाहे खेत के इस तरफ आये। गुरुदीन के साथ सबने बैल खड़े कर दिये और बाग की तरफ चले। और जातिवाले खाईं के पास छाँह में बैठ गये। ब्रह्ममण्डली बाग के भीतर, सुरेश बाबू से पास, आयी।

"मालिक, तीन बाह हो गये। जुवार के लिए अब और भी जुताइयेगा?" गुरुदीन कृपाकांक्षा की दृष्टि से देखते हुए बोले।

"रहने दो; बो जाये तो एक बाह करके पाटा दे दो।" सुरेश ने कहा।

"मालिक," सीतल बोले, "गाँव में पानी नहीं भरने दिया जाता—अब कौन बेधरम हो?—यहाँ आती है।"

समझकर भी निरू ने जैसे न समझा हो, "क्या बात है?" सुरेश से पूछा।

"कुछ नहीं, यह सब जानकर क्या होगा, जहाँ की जैसी रीति।" उसी तरह बंगला में बोले। निरू चुप हो गयी।

"अगर यह खेत सीर बनाया जायगा तो कुआँ सरकारी होगा। हार में लोग आते हैं, दुपहर को लोग प्यासे भी होते हैं, अगर इनका पानी भरना जारी रहा तो लोग क्या बरगद दुह-दुहकर पियेंगे। और किसी कुएँ का पानी नहीं अच्छा।" गुरुदीन ने कहा।

"न गाँववाले इनके काम के हैं, न ये गाँववाले के काम के; व्यर्थ दूसरों का सगुन बिगाड़ती हैं।" मन्नी ने कहा।

निरू के हृदय की गति तेज हो गयी। नीली सूखकर जैसे गाँववालों को देखने लगी।

"तुम बातचीत करो, उनका और तो कुछ यहाँ है नहीं—घर घर है, वे बेचते हों तो ले लें।" सुरेश ने तटस्थ समझदार की तरह कहा।

निरुपमा ने स्फारित आँखों से एक बार सुरेश को देखा, जैसे खासतौर से यह रूप देख लेने, इससे परिचित हो जाने की इच्छा हुई हो। यह वह सुरेश नहीं, जिसके प्रति उसकी श्रद्धा है।

"बाग यह बंजर था ही; सरकार में आ गया; खेत सरकारी ही थे; अब घर घर है।" सिपाही ने उद्दण्ड स्वर से उसी लकीर पर जबान फेरी और लाठी का गूला एक दफा जोर से दे मारा और सहारा लिया।

यह समस्त सम्प्रदाय निरू की दृष्टि में छाया-रूप से चक्कर काटने लगा, जैसे स्वार्थ पर चाटुकारिता उसे ग्रस्त करना चाहती है। हृदय के बल और विश्वास के साथ वह उभड़ी। पर फिर वहाँ की प्रकृति उसे दबाने लगी। उसी समय दृष्टि उस महिला के मुख से जाकर लिपट गयी। वे पानी भर चुकी थीं। उबहनी फँदिया रही थीं।

अपना काम कर, चलने से पहले उन्होंने फिर निरू को देखा। दूर होने पर भी दोनों की दृष्टि स्पष्ट रूप से एक दूसरी की आँखों में चुभ गयी। इधर मूर्तिमती नवीन प्रीति थी, उधर संसार की क्रूरता को सहनेवाली करुणा। महिला ने विलम्ब न कर कन्धे पर उबहनी डालकर दोनों घड़े एक-एक कर उठा लिये। निरू ने आँखें झुका लीं! श्रद्धा से नत हो जैसे प्रणाम किया।

इसी समय गुरुदीन बोले, "मालिक, कहो तो कह दें, सरकारी कुएँ में पानी भरने न आया करे, अब कुआँ उसके—"

"अहमक है क्या? अपना काम क्यों नहीं देखता?" सुरेश ने डाँटा।

निरू प्रसन्न होकर हिली। नीली गोद के सहारे थी। खड़ी होकर गुरुदीन को देखने लगी।

गुरुदीन गऊ हो गये। बोले, "मालिक, खेत तो तैयार है, अब बोने का हुक्म हो तो काम जारी किया जाय।"

स्नेह-स्वर से सुरेश बोले, "हम जमींदार हैं तो किसी को उजाड़ने के लिए नहीं। जो सरकार के राज्य में है, वह किसी गाँव में बसा हुआ हो, उसका पानी नहीं बन्द कर सकता कोई। वह मुसलमान हो जाय तो उसी कुएँ में भर सकता है या नहीं पानी?"

"भरते ही हैं, मालिक।" मन्नी ने जोर देते हुए कहा और बाग छोड़कर खेत की तरफ चला, अपने गमछे की झोली में बीज लेकर—अरहर, ज्वार, तिल्ली मिले हुए।

यद्यपि बातचीत से सबकुछ निरुपमा की समझ में आ गया था, फिर भी अब परिस्थिति शान्त हो जाने पर और अच्छी तरह समझ लेने के लिए सुरेश से पूछा, "दादा, यहाँ के खेत बाबा के समय तो सीर में न थे?"

"नहीं," सुरेश गम्भीर होकर बोले, "इसका गिरिजाशंकर के नाम पट्टा था। वे दो-तीन पुश्त से इसके काश्तकार हैं। इसलिए बहुत कम लगान उन्हें पड़ता था। वे भी खुद काश्त न करते थे। कलकत्ते में रहते थे। फिर शहर में रहने के विचार

से कानपुर में अड्डा जमाया था। उनके न रहने पर, उनकी स्त्री बटाई में दियां करती थी। पर बटाई के खेत की हैसियत बिगड़ जाती है। इसलिए हमें बेदखल कराना पड़ा।"

विषय को समझकर निरू ने पूछा, "यह बाग किसका है?"

"यह भी गिरिजाशंकर का है। पर उनके यहाँ न रहने से इसकी भी हैसियत बाग की नहीं रह गयी। बहुत से पेड़ सूख गये, नये लगवाये नहीं गये। अब इसकी बाग की हैसियत नहीं रही। ऐसी जगह जमींदार की होती है। हमने दावा कर इसे भी अपने कब्जे में कर लिया है।"

कहकर सुरेश कुर्सी से उठे और खेत की तरफ बढ़े। इसी समय निरुपमा की दासी घर के कार्यों स निवृत्त होकर स्नान आदि के लिए उसे ले जाने आयी। उठकर नीली को लेकर निरुपमा घर की ओर चली।

बारह

भोजन के पश्चात् आराम करते हुए सुरेश ने नीली को बुलाया। गाँव की हवा में नीली लहर की तहर मुक्त हो रही थी। लिखने-पढ़ने का कोई दुख न था। भाई के सामने प्रसन्न मुख आकर खड़ी हुई। सुरेश बंगला उपन्यास की किताब बगल में रखकर प्रसन्नता से देखते हुए बोले, "गाँववाले बड़े बदमाश हैं?"

नीली के हृदय की बात थी। भाई से सहयोग करने के लिए खुलकर बोली, "हाँ।"

"लेकिन तीन आदमी बड़े अच्छे हैं, रामचन्द्र की माँ, रामचन्द्र और मलिकवा की माँ।" सुरेश गम्भीर होकर बोले।

"हाँ," पूरी प्रसन्नता से नीली ने कहा, "मैं सुबह रामचन्द्र के घर गयी थी, उसकी माँ ने मुझे जलपान कराया।"

"क्या खिलाया?" सुरेश ने पान निकालकर खाया।

"पीठे, उनके भीतर ओया, मेवा और चीनी थी।"

"उन्होंने तेरे लिए बना रक्खे होंगे, जब उन्हें मालूम हुआ होगा कि हम लोगों के साथ तू भी आ रही है। पहले से चिट्ठी लिखी थी न हमने सवारी ले आने के लिए?"

"हाँ दादा," नीली हवा की तरह निर्विरोध बहती हुई जैसे बोली, "रामचन्द्र को फिर मुझे छोड़ आने के लिए साथ भेजा। और दीदी को कल बुलाया है।"

सुरेश और गम्भीर हो गये, पर चेहरे से मुस्किराते रहे। पूछा, "तू अकेली चली गयी?"

"हाँ, रास्ते में एक आदमी नहाकर लौट रहा था, मैं मकान के पास ही थी,

पूछा, उसने बता दिया।"

सुरेश समझ गये कि इसने कृष्णकुमार बाबू का मकान पूछा होगा। पूछा, "तू जब बाहर निकली तब तेरी दीदी थी ?"

"हाँ, आज उन्हीं ने तो कपड़े पहनाये।"

सुरेश समझ गये। वे बहुत पहले से सजग थे। यामिनी बाबू नीली की बातें सुरेश से कह चुके थे। उन्हें अनेक बार निरू का वह मुख, वह दृष्टि याद आ चुकी थी, जो सुरेश के परिचय के समय मकान में उन्होंने देखी थी। शंका हो जाने पर सफेद भी सियाह दिखाता है। फिर निरू ने अपनी तरफ से भी शंका को सत्य-रूप देने के कार्य किये थे। लखनऊ में, कुछ दिनों बाद जब यामिनी बाबू रुपये लेने की तैयारी करके आये और निरू टाल गयी, कहा कि मामा से कर्ज लेते उसे लज्जा लगती है, सुरेश की शंका को सत्य का आभास मिला। कुछ दिनों बाद बहुत समझाकर जब फिर उससे कहा गया और उसने जवाब दिया कि मामा का सहृदय रूप ही उसकी आँखों में है, वहाँ उनका वैषयिक रूप रखकर वह दृष्टि को कलंकित नहीं करना चाहती, तब सुरेश को सत्य की सत्ता कुछ प्रत्यक्ष दिखने लगी। फिर कुछ दिन बाद ज्यादा दबाव पड़ने पर उसने जब नीली से कहला भेजा कि कहो दीदी कहती हैं अभी समय है, मुमकिन, तब तक यामिनी बाबू के पास रुपये आ जायें, अभी से रुपये लेकर वे खर्च कर डालेंगे तो मुझे फिर कर्ज लेना पड़ेगा, सुरेश सुने हुए कथन का सत्य रूप देखने लगे। निरू के गाँव चलने की बात इस संशय का सत्य में बदलने की आधार-भूमि थी --इसी पर कर्ज न लेने पर हुई, शंका की मूर्ति सत्य के रूप में प्रतिष्ठित हुई। उन्होंने पिता से कहा। अनुभवी पिता ने इसे नयी उम्र की तरंग कहकर, विशेष महत्त्व न देते हुए, ऐसा युवक-युवती मात्र के जीवन में होता है समझाकर, सावधानी से उद्देश की सिद्धि की सलाह दी और निरू का गाँव जाना न रोका। आज दुपहर को खेत से लौटने पर गाँववालों ने जब सुरेश को समझाया कि गाँव से छुटे हुए से मालिकों का मेल है—सुबह छोटी बिट्टी किसुन के घर गयी थी और रामचन्द्र मालिकों के यहाँ आया था, तब सुरेश को सत्य की वह मूर्ति हिलती-डुलती देख पड़ी। पर पिता की सलाह के अनुसार उद्देश की सिद्धि के लिए सावधानी न छोड़ी।

वैसे ही गम्भीर, पर उससे अधिक स्नेह करके उन्होंने कहा, "तुम लोग दूसरे की खातिर करना नहीं जानतीं। उन्होंने तेरी खातिर की; पर रामचन्द्र को तुम लोगों ने खदेड़ दिया होगा !"

"नहीं," नीली हँसकर बोली, "लखनऊ से हम लोग जो मिठाई ले आये थे; दीदी ने उसे खाने को दी तो।"

"हाँ," सुरेश ने कहा, "तब तो अच्छा किया। कुछ मीठी बातचीत भी की या गाल फुलाये बैठी ही रही ?"

"दीदी देर तक उससे बातें करती रही, क्या पढ़ते हो, कैसे खर्च चलता है। फिर उसे बीस रुपया महीना खर्च देने के लिए कहा। उसने अपने दादा की आड़ ली; पर सब कह भी न पाया था कि दीदी ने डाँट दिया।"

सुरेश के मुख पर अधीरता स्पष्ट हो आयी। पर जब्त कर गये। पूछा, "और

मलिकवा की माँ क्या कहती थी ?"

"वे सब मलिकवा के मरने की बातें थीं, मैं अच्छी तरह नहीं समझी।"

इसी समय, पूछने के लिए कि उपन्यास समाप्त हो चुका हो तो ले जाय, निरुपमा कमरे में आयी।

सुरेश ने स्नेहकण्ठ से कहा, "निरू, तुम्हें शायद पता नहीं, रामचन्द्र को गाँव-वाले छोड़े हुए हैं। हमको रहना तो गाँववालों के साथ है।"

"तो क्या गाँववालों की मूर्खता के साथ भी रहना है !" मधुर मन्द स्वर से निरू ने कहा।

"नहीं, फिर भी अधिक संख्यक लोगों का ख्याल होना जरूरी है जमींदार के लिए। सरकार भी संख्या का विचार रखती है।"

"पर जबरदस्त कमजोर पर हमला न करे, इसका भी ख्याल सरकार रखती है और जमींदार को रखना चाहिए।" निरू सामने की कुर्सी पर बैठकर सरल ओजस्वी स्वर से बोली।

"तुम ठीक कहती हो। पर हम अगर कोई उपकार करें मान लो, तो हमें इसका विचार रखना चाहिए कि गाँव में जिसका हम उपकार कर रहे हैं, उससे भी गिरी दशावाले हैं या नहीं; अगर हैं तो वह उपकार उपकार न होकर कुछ दिनों में जमींदार के लिए अपकार सिद्ध हो सकता है।"

चोट खाकर निरू चुप हो गयी। सुरेश की वक्तृता का वेग बढ़ा—"तुम तो जानती नहीं। जमींदारी दरअस्ल एक पाप है। फूफाजी कर गये हैं, हम भुगत रहे हैं। कभी इस पर, कभी उस पर मुकद्दमा लगा रहता है। अधिक आदमियों का गरोह न देखें, तो हमारी गवाही कौन दे ! गाँव भर मिल जायँ तो जमींदार जमींदार न रह जाय ! सब मिलकर बात-की-बात में उसे पीट लें। इसलिए बड़ी समझ से काम लेना पड़ता है।"

निरू चुप रही। मन में सुरेश की युक्तियाँ बैठती गयीं। सुरेश कहते गये, "अब तुम्हारे आने की खुशी में यहाँ ब्राह्मणों को भोज देना है; पाँच-छः दिन के अन्दर-अन्दर करने का विचार है। कह दिया है कि बड़ी अच्छी सगाई है, चूँकि यहाँ से विवाह नहीं हो रहा, इसलिए इसे तिलक का भोज समझो। बहन, दुनिया बड़ी टेढ़ी है। गाँववालों को मिलाकर रहना पड़ता है। अपने से बड़े की बात मानकर चलो तो सारे देवता प्रसन्न होते हैं ! कहा भी है—इस समय याद नहीं आ रहा।"

"पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः"—कहकर बड़े कष्ट से निरू ने हँसी को दबाया।

सुरेश संस्कृत के किनारे से न गुजरे थे, गम्भीर होकर बोले, "हाँ, यह सब युगों तक तपस्या करके सोचकर ऋषियों ने लिखा है। इसके अनुसार हम चलें, तब न हमें इसका फल मिले ?"

निरुपमा कुछ देर साँस तक रोके बैठी रही। सोचा, यह स्नेह का फन्दा है। मन-ही-मन ऊपर उड़ती हुई, इस पाश को पार कर जाना चाहा, पर सब जगह इससे अपने को बँधी हुई देखा। कुमार को चाहती है, पर वह पहुँच से बाहर है।

समर्थ मन बराबर पहुँच से बाहर की चीज लड़कर भी लेना चाहता है, वह मानसिक समर करती है; पर अपनी संस्कृति से आप परास्त हो जाती है। मामा, भाई आदि के प्रति हुए स्नेह और संस्कारों के मायाजाल में बँधकर नहीं बढ़ पाती। कुमार भी हर तरह उसकी पहुँच से बाहर है। अन्त में पहले की तरह निश्चय बँध गया, एक साँस छोड़कर यथार्थ ही कमजोर होकर समझी—मेरे लिए यामिनी ही है, सुबह का कुमार नहीं।

"बात यह है"—सुरेश बाबू निरू का मतलब दूर तक लगाते हुए बोले, "हम अकारण दूसरे के लिए क्यों सरदर्द लें। अपनी दवा कर लेंगे। संसार ऐसा ही है।"

निरू गम्भीर होकर उठकर चल दी। सुरेश देखते रहे। फिर नीली से कहा, "नील, अपनी दीदी से कह दे कि दादा ने जब सुना कि रामचन्द्र के लिए निरू ने बीस रुपया महीना वजीफा बाँध दिया है तब कहनेवाले से कहा कि जो दान दिया जा चुका है, वह वापस नहीं लिया जा सकता, अब आगे से ऐसा न होगा। और कृष्ण की माँ ने बुलाया है तो जाना चाहिए, अहा, बेचारी को गाँववाले कितना सताते हैं, आज कुएँ से पानी भरना भी बन्द करवा रहे थे, तेरे सामने ही डाँटा था न मैंने गुरुदीन को ?"

नीली खुश होकर चली तो बुलाकर पूछा, "पान तो हैं न काफी ? नहीं तो आदमी भेजकर बाजार से मँगा लिये जायँ, अभी समय है, आज शायद गाँव की औरतें निरू से मिलने आयेंगी।"

तेरह

शाम चार बजे से निरू को देखने के लिए गांव की स्त्रियों का आना शुरू हुआ। एक बड़े कमरे में दरी और चादर बिछा दी गयी थी; स्त्रियाँ आ-आकर बैठने लगीं। सब सर से पैरों तक भारी भूषणों से लदी, जैसे सांस्कृतिक स्वच्छता ने हल्के-पन की जगह, जिससे हाथ-पैर जल्द उठते हैं—हृदय में स्फूर्ति आती है—मन प्रसन्न रहता है, दैन्य के चिह्न स्वरूप भूषणों का भार चढ़ रहा हो और यह भार का आधिक्य ही प्रसन्नता का कारण बन रहा हो। उचित आसन पर नीली को लिये हुए निरू बैठी थी। समागत देवियों को सम्मान के साथ दासी बैठा रही थी। निरू शान्त भाव से बैठी हुई बैठने के लिए इंगित कर देती थी। घण्टे भर में जगह भर गयी। पान-इलायची आदि सम्मान के विधि-विधान चलते रहे।

उनमें से पुरानी अधिकांश देवियाँ निरू को देख चुकी थीं, पहचानती थीं। निरू भी पहचानती थी, पर कुछ के मुख याद आये, कुछ के भूल गये थे। वे अपने बड़े नथ का छोटा लटकन घुमाकर, मुस्किराकर कहती हुई निरू के सम्बन्ध की विशेष बात याद दिला देती थीं; याद आने पर निरू परिचय की प्रसन्नता से

स्फीत हो उठती थी, न आने पर सहज कण्ठ से कह देती थी—मैं भूल गयी। उसके समय की लड़कियों में कोई न थी, सब अपनी-अपनी ससुराल में थीं जिन्हें निरू कुछ अच्छी तरह पहचानती थी, सिर्फ रामरानी थी, वह सबसे पहले आयी हुई थी और निरू ने बिलकुल पास बैठाला था; रह-रहकर उसके लड़के का गाल खोद देती थी स्नेह की दृष्टि से देखती हुई। उसी से उसने पहचान की लड़कियों के समाचार मालूम किये। सबकी विशेषता उनके लड़कों से सूचित हुई। भागभरी सबसे आगे ठहरी। उसके तीन लडके हैं और सब राम की इच्छा से जीते हुए।

जिस तरह यह प्रसंग निरू के लिए मनोरंजक था, उसी तरह निरू के उतनी बड़ी स्त्री रूप में बदल जाने पर भी विवाह न होना स्त्रियों के लिए। निरू उनके चाँदी के गहने देख-देखकर मन-ही-मन हँस रही थी, वे निरू का पोर-पोर ताड़ रही थीं और सोचकर भी थाह न पा रही थीं कि आगे भी निरू को ब्याह करने की क्या आवश्यकता हो सकती है। मन-ही-मन उसकी उम्र का हिसाब भी तरह-तरह का लगा, स्त्रियों को यह महीनों तक के निर्णय करने का विषय मिल गया।

साथ-साथ बातचीत भी चल रही थी। पहले निरू के लिए करुण रस का स्रोत बहा। वह जब गयी थी, उसके माँ-बाप साथ थे। इस बार वह अकेली है। उसके भाई जमींदारी सँभाले हैं। भगवान् की करनी अकथ है। बस क्षण में चाहे जो करें। फिर गाँव की बातचीत उठी। गाँव की बातचीत का मुख्य विषय कृष्णकुमार का घर था। औरों पर चल नहीं सकती। क्योंकि प्रायः वे सब मौजूद थीं। निरू का हृदय धड़का जब रामलाल की अम्मा ने लम्बी साँस छोड़ी और रामदीन की काकी ने ललाट पीटकर समझा दिया कि सब यहीं का लिखा होता है।

बेनी बाजपेई की स्त्री गम्भीर होकर बोली, "सपूत ने पचास रुपये का मनी-आर्डर भेजा है।" फिर दोष की भावना से भ्रू कुंचित कर रह गयी।

गुरुदीन की स्त्री ने कहा, "तुम्हारे बाजपेई तो कहते थे कि—"

"भाई हमारे उनको बदनाम न करो"—बेनी की स्त्री आँखें फाड़ तरेरकर बोलीं, "फलाने क्यों कहते हैं, संसार कहता है।"

"संसार कहता होगा, गाँव में तो उन्होंने कहा है।" गुरुदीन की स्त्री विश्वास पर प्रमाण कर जोर देकर बेनी की स्त्री की त्योरियों की परवा न करती हुई बोलीं।

"तो तुझी से कहा होगा?" स्वर चढ़ाकर भाव में बँधकर बेनी की वीणा झंकृत हुई, "मुझसे कहे, किसी की मजाल है?—मूछें न उखाड़ ली जायँगी?" गुरुदीन की सरस्वती ने अपने काव्य की एक पंक्ति सुनायी।

निरू घबरायी। बात क्या है, अभी तक इसी का फैसला नहीं हुआ, और और स्त्रियाँ समझदार की तरह बैठी रहीं। उनके लिए ये सब बातें अभी ध्यान देने योग्य थीं ही नहीं। निरू ने विनयपूर्वक बेनी की स्त्री से पूछा, "क्या बात है?"

"कुछ नहीं, किसुनकुमार लखनऊ में जूता गाँठते हैं खबर फैली है। यह कहती है मेरे उनके लिए कि उनकी फैलायी बात है! जिनके यहाँ हम (क्रिया विशेष का

उल्लेख कर कहा) पानी नहीं लेते—"

निरू की दृष्टि में प्रलय की सम्भावना खुल रही थी। घबराकर कहा, "तो इसमें क्या हुआ ?—यह तो सच है। जूता पालिश तो वे करते हैं। मेरे यहाँ भी आये थे।"

"अब बोल," बेनी की स्त्री ने गुरुदीन की स्त्री को ललकारा।

"बोलूंगी तो रोते न बनेगा।"

"भइ, ऐसी बातें न करो।" निरू क्षुब्ध हो उठी।

मातादीन की माँ उम्र में सबसे बड़ी थीं। कहा, "दोष किसी का नहीं, अब चुप हो जा। एक गाँव का रहना, आज बैर, कल मेल ! जो कुआँ फाँदेगा वह आप गिरेगा।"

"उनकी बात ही अब क्या है, गाँव से जब जायँ। वे कहते हैं, नीघस हैं, नहीं तो आज निकल जाते।" ललई की पत्नी बोलीं। "पहले कलकत्ता रहे, फिर कानपुर। जब रुपया चुका तब गाँव आये। अभी डेढ़े बरस भी तो नहीं हुआ।" हजारी की अम्मा बोली।

"गाँव में किसी से पहले भी मेल न रखती थी।" मन्नी की स्त्री ने कहा।

"परदेश की ठसक थी।" सीतल की श्रीमती बोलीं।

"अब सब धो गयी। कानपुर के घर, कहते हैं कि बिक गये, उन्हीं के रुपये से रहती थी किराये के मकान में।" गुरुदीन की स्त्री ने धार्मिक स्वर में कहा।

"अब यह घर भी बेचें।" बेनी की स्त्री ने सहयोग किया।

"घर घर है। घर में तो पशु भी नहीं रह सकता।" मातादीन की माँ ने नीति कही।

"रामचन्द्र कहीं कहते थे कि गाँव छोड़ देंगे।" मन्नी की स्त्री ने कहा।

निरू सुनती रही। इन्हें प्रशमित करना और इनकी जान लेना एक ही मानी रखते हैं, उसने निश्चय किया। चुपचाप बैठी रही। उसके आने के समय रामचन्द्र की माँ न थी, वह समझी। सुरेश ने यद्यपि जाने के लिए कहला भेजा था, फिर भी अब मिलने के लिए जाना उसे आत्म-सम्मान के खिलाफ मालूम देने लगा ! बैठी हुई निश्चय करने लगी क्या करे। नीली ने लौटकर भाई से हुई सब बातें बता दी थीं। निरू भी समझ चुकी थी। बड़ी लाज लगने लगी। रामचन्द्र की माँ स्वयं मिलने न आयेंगी, उसने सोचा कि अगर आना होता तो उसे न बुला भेजतीं, और वह न जायेगी तो कितना बुरा होगा।

स्त्रियों के चलने का समय हुआ। शाम हो गयी ! प्रसन्नमुख निरू उठकर द्वार के पास खड़ी हुई और चलती हुई देवियों को पान देकर, नमस्कार करके विदा किया।

चौदह

दूसरे दिन निरू ने कई मर्तबे कुमार के घर जाने की इच्छा की, पर उधर चलते पैर ही न उठे। सुरेश के मन में जो भाव पैदा हो गया है, उससे अधिक लज्जास्पद उसके लिए दूसरा नहीं। जाते हुए जैसे उसकी सम्पूर्ण शोभा चली जायगी, जिसे लेकर बहन की तरह सर ऊँचा कर वह सुरेश के सामने खड़ी होती है। निरू अपनी शोभा न छोड़ सकी। वह उसी की रक्षा के सौर-मण्डल में तैयार हुई है; उसकी पहले वह शोभा है, फिर और कुछ; उसके साथ उसका अछेद्य सम्बन्ध है। भाई के जाने के लिए कहने में उसे साफ इन्कार के तार बजते हुए सुन पडे, उन्होंने जैसे उसकी इच्छा का विचार कर वैसा कहा हो! जो कुछ भी हो, निरू के दादा हैं; वह स्नेह में पली है, स्नेह न तोड़ सकी।

साथ ही मनुष्यता का भी विचार आया। कुमार की माँ क्या सोचेंगी! उन पर जो बर्ताव गाँववाले कर रहे हैं वह किसी बुद्धिमती द्वारा समर्थन न पा सकेंगे। जमींदार के धर्म का पालन करते हुए उसके दादा ने एक प्रकार कुमार का सर्वस्व हर लिया है, जितने से वे उस गाँव के बाशिन्दा रह सकते. पुनः उनके साथ—उनके जैसे सुधरे हुए विद्वान् के साथ विद्याभाव का सहयोग नहीं किया—एक जमींदार होकर सामाजिक मुआमलों में उनका बाजू नहीं बचाया, बल्कि अपना ही स्वार्थ देखा है (जो वास्तव में निरू का है)। अपने घर तथा समाज की आज्ञा और मर्यादा के अनुसार उसे भी एक प्रकार कुमार के कानपुरवाले मकानों के लिए यामिनी बाबू को कर्ज लेकर रुपया देना होगा, मामा छल करने पर भी छल नहीं कर सकते और यह इतना-सा अर्थ लेकर वह उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते—यह उनके कार्यों का पुरस्कार भी नहीं ठहरता, अस्तु इस प्रकार उसे भी विरोध करना होगा, कुमार को वह मदद नहीं पहुँचा सकती। रामचन्द्र को उसने खर्च देने के लिए कहा है; मुमकिन, अब उसकी माँ खर्च लेना मंजूर न करे। सोचती हुई निरू जब-जब आवेश में आयी, चलने को तैयार हुई, पर दूसरे ही क्षण, लौटने पर उसका कैसा भाव होगा, सोचकर लज्जित हो गयी। जो निरू कभी-कभी इसके कवल से मुक्ति पाने की सोचती थी, वह दूसरा खाली मकान देखकर भी न जा सकी। वह अपनी ही इच्छा से नहीं जा सकती। लजाकर, मुरझकर, असभ्य व्यवहार के कारण मन में मरकर रह गयी।

नीली की इच्छा जाने की थी। उसने याद दिलायी और कहा कि दादा ने अन्त में जाने की राय दी है। पर निरू ने कहा, "जहाँ गाँववाले नहीं जाते, वहाँ मेरा भी जाना ठीक नहीं, पहले मुझे मालूम नहीं था।" इतना कहकर नीली को भी जाने के लिए न कह सकी। नीली ने भी सोचा कि वहाँ उसका जाना ठीक नहीं। ऐसा सिर्फ अपनी पराधीनता का विचार कर सोचा। मन से वह दीदी का विरोध किये रही। कारण, कुमार बाबू की माँ से ज्यादा भली और स्नेहवाली महिला उस गाँव में कोई हैं, यह वह न मान सकी।

उस रोज निरू टहलने न निकली, नीली भी कहीं न गयी। सुरेश बाबू पते

पर थे कि निरू क्या करती है। उसके न निकलने से खुश होकर बोले, "आज रामचन्द्र की माँ ने तुम्हें बुलाया था, अच्छा हुआ तुम नहीं गयीं। उनके यहाँ जाने पर दूसरी भी तुम्हें बुलातीं और न जाने से अच्छा न होता। जमींदारी करने पर प्रतिष्ठा का विचार रखना पड़ता है। अभी तुम समझती नहीं। रामचन्द्र की माँ भी तुम्हारे यहाँ आ सकती हैं, पर वे आवेंगी नहीं। वे इसका विचार रखती हैं। पर न आयें, तुम बुलाना भी मत, नहीं तो अपमान होगा अगर वे न आयीं। हम सिपाही से कहला भेजेंगे कि रामचन्द्र को आज्ञानुसार 20) महीने भेज देंगे।"

भाई की बात सुनकर निरू ने कुछ न कहा। सुरेश बाहर से गम्भीर और मन से खुश होकर चला गया।

देवी सावित्री ने निरू के लिए अच्छा-अच्छा जलपान, सुबह पाँच बजे उठकर बंगाली पसन्द के अनुसार मुलायम-मुलायम, सूरज खुलते-खुलते बना रक्खा और स्नेह के हृदय और आदर की दृष्टि से प्रतीक्षा करती रहीं। धीरे-धीरे दस बज गये, ग्यारह बजे, निरू न आयी। तब हताश होकर जलपान रामचन्द्र को देकर पहले एक चिट्ठी लिखी फिर तीसरे पहर भोजन बनाया। रामचन्द्र जलपान कर चिट्ठी डाकखाने छोड़ने गया।

देवी सावित्री के मन में अनेक प्रकार के भाव आये। उन्होंने निरू को स्नेहवश होकर बुलाया था, वह जमींदार की लड़की या स्वयं जमींदार है यह सोचकर नहीं। पर वह नहीं आयी। तो क्या रामचन्द्र के लिए उसने कल जो कुछ कहा है, उसे सहायता देने की जो उदारता दिखायी है, वह इसलिए कि रामचन्द्र एक गरीब विद्यार्थी है और वह उस पर दया करनेवाली उसके गाँव की मालकिन? —क्या इसी दयाभाव के कारण फिर उसके मकान आमन्त्रित होकर जाना उसने उचित नहीं समझा? मुमकिन, उसके भाई ने उसे रोका हो अथवा गाँव की हवा देखकर उसके अनुकूल रहना ही उसने युक्तियुक्त समझा हो; पर उन्होंने केवल स्नेहवश उसे बुलाया था। वे धीर महिला थीं, इधर दुःख का पहाड़ उन पर टूटा था, धैर्य से वे उसे सँभाले हुई थीं, जब तक वह प्राकृतिक नियम से पूर्ववत् हट न जाय। कुमार की इच्छा के अनुसार उसे विलायत भेजने के लिए उन्होंने स्वयं पति से आग्रह किया था। धन का मोह छोड़कर मकान रेहन कर देने के लिए कहा था। फिर परिस्थिति के उत्तरोत्तर बिगड़ते रहने से लेकर पति के स्वर्गवास तक का वज्रप्रहार धीरतापूर्वक सहन किया था। पुत्र की भविष्य-आशा में गाँववालों के भी असह्य लांछन नत-मस्तक होकर धारण किये थे। वैसी दीनता में भी मलिकवा की माँ का भरण-पोषण कर रही थीं। कभी पानी नहीं भरा, पर ऐसे अपमान के साथ गाँव से बाहर जाकर पानी भर लाना भी उन्होंने स्वीकार किया। कुमार की इच्छा पूरी हुई, पर वह स्थितिशील नहीं हो रहा, इसका असह्य ताप भी उन्होंने शान्त होकर धारण किया। रामचन्द्र पर इस परिस्थिति का बुरा प्रभाव न पड़े, इसके लिए माँ की तरह उसे पहला ही स्नेह देती रहीं, उसे बराबर गाँव तथा देश की मनोवृत्ति की समुचित धारणा कराती रहीं! पर अब उनके लिए बरदाश्त से बाहर हो गया। निरू को उन्होंने बुद्धिमती सोचा था और उनकी स्थिति निरू को मालूम होने पर निरू शिक्षित बंगाली बालिका होकर भी उनके प्रति सहानुभूति न

रक्खेगी, यह वे नहीं सोच सकीं। यही उनके लिए बरदाश्त से बाहर हुआ। इसी समय मलिकवा की माँ आयी और कहा कि कल बिटिया बाग गयी थीं, उसका दुःख सुनकर चली गयीं, कुछ न बोलीं, गाँववाले अब इस उपाय में लगे हैं कि खेतवाले कुएँ से पानी भरना बन्द करा दें और कल गाँव की औरतें डेरे पर बिटिया से मिलने गयी थीं, बरमभोज की खबर है। कुमार की माँ धैर्य से सुनती रही।

पन्द्रह

कई रोज हो गये। निरू बाहर नहीं निकली। ज्यों-ज्यों निरू अँधेरे में रहने लगी, सुरेश प्रकाश देखने लगे। अनेक प्रकार के काल्पनिक चित्र, आकाश में रंगीन पंख खोलकर उड़ते हुए पक्षियों की तरह सजीव जान पड़ने लगे। सुरेश की पहले की शंका सत्य के आलोक में लीन हो गयी।

तीन-चार दिन तक निरू तूफान के समय की नौका-विहारिणी की तरह कूल से बँधी बन्द नाव के भीतर जैसे बैठी रही। वेग कुछ शान्त होने पर, नाव को विहार के उद्देश पर नहीं, जैसे स्वास्थ्य, शरीर-नियमन, दिन-चर्या आदि के विचार से, कूल-ही-कूल वाहित करने लगी। सुरेश को बुलाकर उसने कहा, चुपचाप बैठे-बैठे मन निष्क्रिय हो रहा है, कुछ अच्छा भी नहीं लग रहा, किताबें थोड़ी ले आयी थी, मैं चाहती हूँ,—आप जमींदारी का हिसाब मुझे समझा दें। निरू का रुख इधर हुआ तो सुरेश का मानसिक विकास कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की तरह बहीखाते खोलकर एक-एक बात बताकर समझाते समय, एक-एक कला ह्रास पाने लगा। निरू सुरेश की सचाई की परीक्षा न कर रही थी, उस दृष्टि से हिसाब देखने का उसका उद्देश न था, वह केवल अपने मर्ज की दवा कर रही थी उचटते हुए चित्त को एकमुखी करती हुई, पर मरीज सुरेश बाबू उसके प्रश्न से जैसे क्षतस्थान की वेदना का अनुभव करने लगे। मुकद्दमों के खर्च का ब्योरेवार हिसाब नहीं, कार्य की अधिकता से उन्होंने एक ही दो अंकों में खर्च लिख दिया है, 15) के दावे में 45) का खर्च। बौचर नहीं। आमदनी और खर्च का हिसाब देखकर निरू मन-ही-मन असन्तुष्ट हुई। पिता के समय के बहीखाते मँगवाये। सीर की पैदावार आधी रह गयी थी। लगान बढ़ गया था। पर फायदा आधा भी नहीं। रकम-सिवा की आमदनी पाँच आने रह गयी। और जितनी बातों में मुख्तार की सफाई दिखाने की गुंजाइश रहती है, उधर निरू ने ध्यान नहीं दिया। उसके पिता के समय चोरी की कोई बात न थी। वे स्वयं देखते थे और हिसाब साफ रखवाते थे। सुरेश बाबू ने लगान की वृद्धि तो दिखायी, मुकद्दमों में वृद्धि से अधिक खर्च था। जमींदारी के और बहुत-से हथकण्डे थे जो निरू की समझ में नहीं आये। सुरेश कच्ची रसीद देते थे। पन्द्रह के पट्टे पर जबानी पच्चीस तय कर लेते थे। लोगों से बेगार लेकर खर्च का

हिसाब जोड़ते थे ।—बबूलों की बिक्री में आधी रकम साफ कर जाते थे ।

इस प्रकार दो-तीन रोज निरू ने खाता देखते हुए पार किये। सुरेश का स्नेहवाला स्वर मन्द पड़ने पर भी निरू की भक्ति अचल रही। कल ब्रह्मभोज होगा। आज से तैयारियाँ शुरू हो गयीं। आटा-घी आदि सुरेश के स्वस्थ क्षणों में आ चुका था। न्योते फिर चुके थे। लोगों ने सलाह पक्की कर ली थी। एकान्त में पहले बहुतों ने ओजस्वितापूर्वक विरोध किया था, कहा था, सीधा लेंगे, उनके यहाँ जाकर खाना ठीक नहीं; वहाँ औरतें बेलाने जायँ, यह अपमान की बात है। कुछ लोगों ने कहा, कहा जाय कि गाँववालों की सलाह है कि मालिक कथा सुनें और फिर उसका ब्रह्मभोज किया जाय,—कुछ जन दूसरे गाँवों से भी बुला लिये जायँ। लोगों को बात बहुत पसन्द आयी। उन्होंने कहा कि इस तरह दूसरे गाँव-वाले भी हमारे साथ रहेंगे तो कहने की कोई बात न रहेगी। फिर सुरेश बाबू से ऐसा कहे कौन, यह विचार होता रहा। कहा गया कि मुखिया कहें। पर मुखिया सुरेश बाबू के सरस मुख और अपनी मधुर कथा की कल्पना कर मुकर गये, कहा —क्या हमारा ही जी भारू है ? तब तक किसी ने कहा—मालिक हमारे गाँव के राजा हैं, राजा में भगवान् का अंश रहता है, राजा का धन, उनके घर पर भी ग्रहन करने पर ब्राह्मण को दोख न लगेगा। बात लोगों को पसन्द आयी और मुखिया यह संवाद देने के लिए तैयार हो गये। एक ने आपस में दूसरे को मुखिया की पत्नी सम्बन्ध से याद करते हुए इशारा किया। कड़ाही पर कौन-कौन बैठेगा, निश्चित हो गया, और यथासमय लोग डेरे पर आकर इकट्ठे होने लगे। अगर दो-एक रोज पहले सुरेश बाबू से सलाह ली होती तो उन्होंने इन्कार कर दिया होता।

धीरे-धीरे, शाम हो जाने पर, प्रबन्ध जोरों पर आया। नीली को गाँव की लड़कियों के बीच बड़ी खुशी है, जैसी जनता के बीच नेता को होती है। बिस्तर बिछे हुए। चारों ओर बड़ी-बड़ी परातों पर माड़ा हुआ आटा और मैदा रक्खा हुआ। लालटेन और मशालें जलती हुईं, बड़े आँगन के बगल गुइल। बिछे बिस्तर और पत्तलों पर स्त्रियाँ कचौड़ियाँ बेल-बेलकर फेंक रही हैं। साथ गीत चल रहे हैं। कार्य की महत्ता से शोरगुल बढ़ा हुआ। एक बगल निरू बैठी हुई मन में अनेक प्रकार की आलोचना-प्रत्यालोचना में लीन। इसी समय एक युवती ने घूंघट हटा-कर उसकी तरफ देखकर पूछा, "ए गुइयाँ, ब्याह के गीत तो नहीं सुनने की इच्छा ?"

"सुनाओ !" मन्द हँसकर देखती हुई निरू बोली।

"तुम्हारा ब्याह कब हो रहा है ?" चपला सखी ने स्वर में दूरदर्शिता सूचित की।

"बहुत जल्द।" निरू गम्भीर होकर बोली।

"बड़ी उतावली होगी ?" मर्मज्ञता से देखती हुई।

"रात को नींद नहीं आती, तारे गिना करती हूँ, कमरे में धन्नियाँ।" वैसी ही गम्भीरता से निरू ने कहा।

युवती जोर से हँस पड़ी। उसकी सास कुछ दूर उसके पास ही बैठी गीतों का

नेतृत्व कर रही थी। उसके हँसने के साथ ही गीत बन्द हुआ था, "क्या ही ही ही ही कर रही है, चल बेल जल्दी।" कहकर, निरू को देखकर मुँह फेरकर नये गीत के प्रारम्भ में स्वर भरा।

बहू ने फिर प्रश्न किया, "तो इतनी बेचैनी क्यों सहती हो ? ब्याह कर लिया होता।" चलते गीत के महोच्च स्वर की छाया में रहकर पूछा।

"इच्छा तो थी, पर अच्छा कोई देख ही नहीं पड़ा।" निरू बहू की कचौड़ी देखती हुई बोली। वह पहले से अभी तक पूरी न हुई थी। बहू भी रस को छोड़-कर कर्कश कचौड़ी की चारुता बढ़ाने में न थी।

पूछा, "तो इन्हें तुम्हीं ने पसन्द किया है ?"

"हाँ।"

"कहाँ के हैं ?"

"अब तो विलायत के कहना चाहिए।" निरू अपना सेण्टेड रुमाल नाक से लगाकर बोली, जैसे घी की तीव्र सुगन्ध से उकता गयी हो।

वाक्य ने बहू के हृदय को हिला दिया। सँभलकर सूक्ष्मदर्शी आलोचक के स्वर में पूछा, "कैसे तुमने उन्हें देखा ?"

"वे हमारे यहाँ आया करते हैं, वहीं खाना खाते हैं, कभी-कभी भाई साहब के साथ।" निरू जान-बूझकर कह रही थी।

"घर में काम है। मैं अभी आती हूँ। दूध जल जायगा। दुधहँड़ उतारकर रख देना है।" कहकर युवती उठी और आपाद-मस्तक ढकी हुई बाहर निकल गयी।

निरू सभ्यता के विचार से बैठी थी। उसके जाने पर मन को कचौड़ियों का पकना देखने की ओर लगाये। एक साथ मोटी-मोटी कितनी पड़ और निकल रही थीं। निरू निश्चय कर रही थी कि उसका भीतरी भाग कच्चा रहता होगा। इसी समय "हाँ—हाँ—हाँ" की आवाज आयी। दरवाजे के पास बैठी हुई स्त्रियाँ चिल्लायीं। स्वर में समझ भरी हुई।

"क्या है ?—क्या है?"—कड़ाही पर बैठे मर्दों ने आवाज दी, स्वर से विषय की अज्ञता सूचित होती हुई।

"मर गया आकर, देखे हुए था जैसे, चमार कहीं का !" एक वृद्धा ने बेलना उठाकर कहा, "जाता है या दूँ एक तानकर कनपटी पर ?"

प्रकाश काफी था। तब तक औरों ने भी देखा, "इसने तो पैर रोप दिया ! हद है। जाता है या दिया जाय परसाद ?" कड़ाहीवाले उठकर बोले।

निरू ने भी देखा। तुरन्त उठकर पास चली। "छूना मत उसे"—इधर की स्त्रियों ने आतुरता से कहा। निरू को हिन्दू-संस्कारों ने जैसे जकड़ लिया। ज्यों-की-त्यों खड़ी रह गयी। पर दृष्टि आगन्तुक से बँधी हुई।

"दीदी।" रामचन्द्र बोला। जैसे बड़े कष्ट से बोल पाया हो, आँखें छलछलाई हुईं। वह उसी को खोज रहा था। छाये वाष्प की आँखों से दृष्टि रुद्ध हो रही थी, पुनः अनेक आदमियों में आदमी-ही-आदमी देख रहा था, परिचित कोई मुख नहीं। इस समय जो कुछ समझ में आया वह अवज्ञासूचक स्वर था। बालक गया भी वहीं तक जाने के लिए था। वह जानता था, आज ब्रह्मभोज है और ऐसे शुभ मुहूर्त्त में

वहीं तक मेरी गति है, उससे अधिक एक अछूत की नहीं होती, मैं नाई-कहार की इज्जत भी नहीं रखता, इसीलिए दूर, दरवाजे पर खड़ा, जिसके लिए गया था, उसे खोज रहा था। बालक की मुखाकृति और आमन्त्रितों की अवज्ञा से निरू की सहानुभूति उद्वेलित हो उठी। पर पैर न उठे। देह और प्राणों की भेदात्मिकता का स्पष्ट रूप उसके भीतर और बाहर लक्षित हो रहा था।

"क्या है रामचन्द्र !" उसी सहानुभूति के स्वर से निरू ने पूछा; उसके दर्द की अव्यर्थ दवा हुई। आँखों से आँसुओं का तार बँध गया। बालक खड़ा सिसकियाँ भर-भरकर रोने लगा। यह उसके लिए, निर्दोष के लिए कितना बड़ा अपमान था, वहाँ कोई नहीं समझा; उसकी प्रकृति रुला-रुलाकर समझा रही थी। भाव-रस की बूंदें कपोलों से बह-बहकर पृथ्वी पर टपकीं। कुछ देर बाद, बरसे हुए मेह के बाद के आकाश की तरह बालक का मन आप हल्का हो गया, जैसे क्रोध और अपमान का आँसुओं द्वारा पूर्णरूप से बदला चुका लिया गया और यह कठोरता का कोमलता से दिया उत्तर अन्तर्यामी के समझाने के लिए रह गया, भविष्य के विश्व के निर्माण के लिए। निरू प्राणों से उसके बिल्कुल नजदीक थी, जैसे अपने आँचल से उसके गाल और आंसू पोंछ रही हो। सुरेश दूर कुर्सी पर बैठे देखते हुए।

निरू के कोमल भाव के लेप से बालक बिल्कुल शान्त हो गया। मराल-कण्ठ पर झंकृत वीणा-वादिनी के स्वर-सा परिष्कृत हिन्दी में बोला, "दादा ने कहा है।" सुनते ही निरू जैसे नयी चेतना से आप्राण पुलकित हो गयी, सम्पूर्ण एकाग्रता दोनों आँखों से निकलकर बालक की दोनों आँखों पर आशीर्वाद की तरह न्यस्त हुई। बालक कहता गया—"हम आपके बड़े कृतज्ञ हैं—दादा ने कहा है—जो आपने बीस रुपये की स्कालरशिप देने की आज्ञा की; पर चूंकि मैं अपने भरण-पोषण भर के लिए उपार्जन कर लेता हूँ, इसलिए आपकी कृपा का फल दूसरे के लिए छोड़ता हूँ। इस गाँव में हमारी जो स्थिति है, इससे हम यहाँ रह नहीं सकते, यह आप समझती होंगी। अन्य जिन कारणों से किसी को गाँव में रहने का मोह होता, वे हमारे लिए नहीं रहे। हम आपके कुएँ से पानी भर भरने के गुनहगार थे, हालाँकि कुआँ हमारा ही खुदाया हुआ है। फिर भी, खेत बेदखल हो जाने के कारण आपकी जमीन पर है, आपका है। आप ज्यादा जनों के लिए हैं, मैं अकेला हूँ। सिर्फ घर है। पर आगे बिना मरम्मत के पुराना होकर, थोड़ा-बहुत बैठकर, वह भी नियमानुसार आपका होगा। इस तरह यहाँ हमारा कुछ नहीं। मैं आज ही आया हूँ और घरवालों को लेकर आज ही चला जाऊँगा।" कहकर, प्रणाम कर बालक लौट पड़ा, फिर उधर नहीं देखा।

निरू के प्राण जैसे बालक के पीछे लगे हुए उच्च स्वर से पुकारकर कहते गये —'रामचन्द्र लौट आओ, तुम्हारा जो कुछ था, वह सब तुम्हारा ही है। तुम्हारे लिए जैसे स्नेह सगे के लिए, सत्य मनुष्य के लिए, पहले स्थान है।' पर निरू चित्रार्पितवत् खड़ी रही।

सोलह

दूध उतारने के बहाने युवती घर गयी। पति वहीं घर ताक रहे थे। युवती के मन में सुरासुर-करों की कर्षित रज्जु से जो समुद्र मन्थन हो रहा था, उसका निकला हुआ गरल पति को एकान्त में बुलाकर, महादेव की तरह का समर्थ समझ, अपनी देवता-समाज की रक्षा के लिए सावधानी से पिला दिया।

बिटिया रानी की जिनसे सगाई हो रही है, वे विलायत से लौटे हुए हैं, सुरेश बाबू के साथ बैठकर जेंये हुए, इस तरह अपने साथ इन्हें भी बहा ले गये हैं। युवती ने बड़े ढंग से बिटिया रानी से बातें करते हुए यह मतलब की बात निकाल ली। इनके साथ पान-पानीवाला सम्बन्ध रखना ठीक न होगा। ये इस तरह गाँव को भ्रष्ट कर देंगे, सबके साथ बिटिया भी बैठी हैं। गीले आटे का छुआव है। ऐसा जान-बूझकर धर्म लेने के लिए किया गया है कि फिर आगे कहने का मुँह न रहे। बिटिया सिर्फ देखने को उतनी बड़ी हो गयी है, शऊर बिलकुल नहीं है। युवती दिल्लगी के पद से दिल्लगी करने लगी तो वे अपने ही मुँह ब्याह की बात कह चलीं। भगवान की इच्छा थी, नहीं तो कल किसी का धर्म न रह जाता।

पति से एकान्त सामीप्य प्राप्त कर फिसफिसाते मधुर विश्वस्त स्वर से युवती ने कहा। महावीर सुनकर भौंएँ कुटिल कर पदक्षेप से कोने में खड़ी की तेलवाई लाठी लेकर बाहर निकला। युवती ने मुड़कर देखकर कहा, "किसी से लड़ाई न करना, अभी से कहे देती हूँ।"

"बैठ चुपचाप," गम्भीर स्वर से कहकर धर्म-रक्षा के लिए सन्देशवाहक अग्रदूत की तरह महावीर बाहर निकला, और गाँव के मुखिया के द्वार पर पहुँचकर जोर से लाठी का गूला दे मारा और "मुखिया हो" कहकर ऊँची आवाज लगायी।

मुखिया थे। बाहर निकले। अँधेरे में मुस्किराकर महावीर से पूछा, "क्या है, इतनी रात कैसे आये?"

महावीर ने संक्षेप में हाल कहा। मुखिया महावीर न थे। पुलिस, महाजन और जमींदार के प्रति उनकी समदृष्टि थी। मन में अपना मतलब गाँठकर महावीर को बढ़ावा देकर गाँव के चार भलेमानसों को बुला लेने के लिए कहा। साथ-साथ इस धर्म की रक्षा के उद्देश से आये महावीर को धन्यवाद देना भी न भूले।

जो लोग कड़ाही में थे, उन्हें महावीर जानता था; इसलिए न्योतेवाले दूसरे लोगों को बुलाने चला, जिनकी दूसरों पर धाक थी। अत्यन्त आवश्यक समस्या है, कहकर चार-पाँच अच्छे किसान ब्राह्मण एकत्र कर लिये और मुखिया के यहाँ लिवा लाया। मुखिया बैठे हुए तम्बाकू थूक रहे थे। द्वार पर दिया भी मँगवा लिया था। अपने विचार के निष्कर्ष पर भी पहुँच चुके थे और भविष्य में प्राप्त उनके फल की कल्पना कर रहे थे कि महावीर आदमियों को लिवाकर पहुँचा। बार-बार कहना पड़ेगा, इसी विचार से वहाँ विषय की चर्चा नहीं सुनायी। नमस्कार-पलागों करके समागत ब्राह्मण चारपाई पर बैठे।

महावीर को मर्म तक देखते हुए जैसे, आये हुए आदमियों के सामने समाचार

कहने के लिए मुखिया ने आज्ञा की। महावीर धर्म के रक्षक श्री रामचन्द्रजी का स्मरण कर कह चला और लोगों को शंकित, चकित, त्रस्त, क्षुब्ध, उद्वेलित और धर्म की रक्षा के लिए बद्धपरिकर करते हुए कथा समाप्त की।

"क्या राय है ?" मुखिया ने पूछा।

"जैसी पंच की राय।" बलई सुकुल बोले।

"हाँ भाई, पंच परमेसुर बराबर हैं।" कालिका मिसिर ने कहा।

"रामअधार गाँव का साथ छोड़नेवाले नहीं।" जोरदार गले से रामअधार पाण्डे ने कहा।

देवीदीन दुबे जनेऊ की कसम खाकर बोले, "सब आदमी सलाह कर लेव, फिर देख लेव देवीदीन आगे ही हैं, नहीं तो यह छानबे नहीं ताँत।"

महावीर से न रहा गया। किसी को अस्लियत पर न आते हुए देखकर गर्म पड़कर बोला, "भाई सुनो, धर्म पहले है। भगवान धर्म के लिए बनवास को गये और रावण को मारा। हमारे सामने तो बस पूड़ी ही कचौड़ी है।"

"अरे तो कौन पहुँचा पेले देता है ?" बलई बोले।

"यह सिड़ी है।" कालिका मिसिर ने कहा, "जैसे यही भगवान को जानता है। हम स्नान कर रामायण पढ़े बिना पानी नहीं पीते। सलाह कर लेव, जैसी ताल पड़े वैसा किया जाय—क्यों मुखिया ?"

"हाँ भाई," ढीले स्वर मुखिया बोले, "अब हमारा तो समझा-बूझा नहीं कि कहाँ विवाह हो रहा है। हम तो जानते हैं कि मालिक हैं, बुलाया है, अपनी कड़ाही है, कुछ दोख नहीं।"

रामअधार जीभ से ओठ चाटकर बोले, "मुखिया, समझदारी की बात तो यही है, फड़फड़ाना ठीक नहीं। सब काम सलाह से होना चाहिए।"

"तेरे तो लार टपकती है पूड़ी देखकर।" महावीर से न रहा गया।

देवीदीन ने कहा, "सब खायेंगे तो तू उपास न करेगा। पाव-भर औरों से ज्यादा खायगा। बहुत बलक मत। पंचों की राय से काम होगा। मुखिया पुराने हैं, इनको आगे-आगे चलने दे।"

"भाई सुनो," मुखिया बोले, "आँख और कान से चार अंगुल का फरक है। बस समझ लेव।"

समझ में किसी के नहीं आया, पर सब समझदार की तरह सर हिलाने लगे। "तो क्या कहते हो मुखिया ?" बलई ने पूछा।

"भाई सुनो," मुखिया सर झुकाये और आँखें उठाये हुए बोले, "हम तो कह चुके ! पाप देखे का है सुने का नहीं।"

सहमत और असहमत दोनों भाववाले एकाग्र होकर सुनने लगे। कुछ देर तक जवाब न मिलने पर मुखिया ने फिर कहा, "जगन्नाथजी में सातों जात के लोग एक साथ खाते हैं। घर लौटकर अपना-अपना धर्म-कर्म करते हैं।"

अभी लोगों की समझ में विशेष बात नहीं आयी। सिर्फ रामअधार को कुछ आशा बँधी और महावीर जगा।

फिर भी किसी को कुछ कहते न देखकर मुखिया बोले, "जब कहो कि रेल में

मुसलमान, किरस्तान सब रहते हैं, पानी न पियेंगे धर्म चला जायगा, तो इस तरह धर्म नहीं जाता। कहा है, 'आपतकाले मर्जादा नास्ति।' हमारे गाँव के मालिक हैं। कहा है, 'राजा जोगी अगिन जल इनकी उलटी रीति।' न जाने कब क्या कर बैठें। इनसे विग्रह ठीक नहीं ! फिर हमारे अपन नहीं। और हमारा सरबस इनके हाथ में है। काछी, कुर्मी, तमोली, तेली, बरमभोज करते हैं, सब लोग जाते हो। खाते हो और दच्छिना ले आते हो। तब धर्म कहाँ बह जाता है ? हमारा इनका जितना व्यवहार है, उतना न तोड़ना चाहिए, क्योंकि हमारा इनका सदा सम्बन्ध-व्यवहार रहेगा। ये जिमींदार हैं, हम रियाया। फिर जब कड़ाही हमारी है तब क्या बात है, चाहे जिनके घर ब्याह करते हों ये।"

"ब्याह हो जायगा तो भी खावेंगे सब लोग ?" अकेले विरोध की पूरी शक्ति रखने की दुर्बलता को अस्वीकृत करते हुए महावीर ने पूछा।

"यह तो मूसर है पक्का, न आज समझे, न कल।" सब लोग उठकर मुखिया से पैलगी करके अपने-अपने घर चले। महावीर परास्त होने पर भी मन से पराजय स्वीकार न करता हुआ कन्धे पर लट्ठ रक्खे सोचता हुआ चला।

सबके चले जाने पर मुखिया उठकर डेरे चले सुरेश बाबू से मिलने, यह सोचकर कि आज रात-भर जगमग रहेगी।

महावीर घर आकर पत्नी से बोला, "सब-के-सब चमार हैं री, जायँगे। धरम-धरम करते ही हैं, जी से डरते हैं कि खेत छूट जायँगे।"

सत्रह

रामचन्द्र के चले जाने पर निरू को एक जबरदस्त धक्का लगा। वह उस जगह जाकर अवस्थित हुई, जहाँ उसकी अक्लेद नारी-सत्ता है—समस्त विश्व की नारियों की एक ही चेतन संस्कृति, जो स्वयं रीति-नीतियों का सृजन करती है और तदनुकूल चलने की शिक्षा देती है। निरू ने सोचा, रीतियों की जो रंगीन साड़ियाँ समय-समय पर शोभा-वृद्धि के लिए वह पहनती है, वे आत्मिक सौन्दर्य पर पर्दा डाल देती हैं, यहाँ तक कि देह का भी पूरा सौष्ठव उनके कारण स्पष्ट नहीं होता, पुन: चिक के भीतर की महिला की तरह यह दूसरे के मुख की रूपरेखा भी साफ नहीं देख पाती।

सोचा, जिन सामाजिक रीतियों के कारण कुमार जैसे शिक्षित मनुष्य को पीड़ा पहुँचती है, उनका समर्थन करके वस्तुत: ज्ञान की ओर बढ़ने का उसने विरोध किया है, यह रीति के अनुसार धर्म नहीं; जिसे कहीं भी सहारा नहीं मिला, वह समझदार के सहारे की आशा करता है; अगर वहाँ से भी निराश हुआ, तो चाहे जितने भी पुष्ट और अनुकूल तत्त्वों पर वह समझदार अवलम्बित हो, एकाएक

प्रबल भूकम्प से गिरे सुदृढ़ ऊँचे सौधों की तरह वे तत्त्व नष्ट-भ्रष्ट हो अपनी आदिम सत्ता में पर्यवसित होते रहते हैं; वह जमींदार है, उसका पहला कर्तव्य पीड़ित की रक्षा करना है, फिर कुमार देश और काल के अनुसार गुण भी धारण करता है, जो देश और काल की पीड़ा के मिटानेवाले हैं, ऐसे मनुष्य ने मनुष्यता के मार्ग पर क्या सोचा होगा उसके लिए !

निरू क्षुब्ध हो उठी । कल्पना में देखने लगी, निस्सहाय एक शिक्षित की दृष्टि गाँव की दृष्टि-दृष्टि से फिर रही है, बड़े स्नेह से उनसे सहयोग चाहती है, उन्हें क्षुद्र सीमा से बँधी रहने का ज्ञान देकर वृहत्तर की तरफ ले चलने के लिए, अपने बड़प्पन को भूलकर उन्हें अपने में मिलाने के लिए, फिर भी चारों ओर से दृष्टियों द्वारा जहर उस पर क्षिप्त होता हुआ, शिक्षित चुपचाप सहन करता हुआ, मन-ही-मन उनके प्रसार की कामना करता हुआ, उन्हीं की अवज्ञा के फलस्वरूप हमेशा के लिए अपनी प्रिय पितृभूमि से नतमस्तक हो चलता हुआ । देखा, वह दृष्टि सहानुभूति की आशा से निरू पर भी स्थित हुई थी; उसे समझदार समझा था, पर वह हल्की तुष्ट करनेवाली दृष्टि उसे भी भार मालूम दी—उसने भी उसका तिरस्कार किया, वह उस पर से भी उसी धैर्य के साथ उठ गयी । देखा, उन आँखों में घृणा नहीं—केवल एक समझ है । वह दृष्टि की समझ उसके समस्त पर्दे पार कर जहाँ वह अचल रीतियों की गोद में बैठी हुई उन्हीं की तरह दुर्बल हो रही है वहाँ तक पहुँचकर उसे देख चुकी है । बड़ी ग्लानि हुई । वह इतनी दुर्बल है ! इतनी सहानुभूति करते ही जैसे वही दृष्टि निरू को प्राप्त हो गयी । उसी दृष्टि से उसका तादात्म्य हो गया । वह जीवन के भीतर से क्षिप्रगति से उठने लगी और क्षणमात्र में वहाँ के समस्त जीवन के ऊपर हो गयी । उसने स्पष्ट अनुभव किया, वह वहाँ के सभी लोगों से ऊपर, बहुत ऊपर है । वहाँ के समस्त मनुष्य एक अन्धकार में पड़े हैं । एक बार देखकर फिर न देख सकी । वहाँ न रह सकी । उस विकृति के प्रति उसे हार्दिक घृणा हुई । धीरे-धीरे अपने कमरे की ओर चली और उसी दृष्टि को लिये हुए, उसी उच्चता के चरण-क्षेप से । वहाँ का जो कुछ भी उसे स्पर्श करने के लिए आता है; यह सब जैसे कलंकित हो, गिरा देनेवाला । वहाँ की आकृति, स्वर, सब जैसे प्रतिक्षण, प्रति इंगित से अपने पतित होने की सूचना दे रहे हों । इन्हीं से वह सहयोग किये हुए है और यह कौन-सी सत्ता, कौन-सी चीज है, जिसने स्पर्श मात्र से मानव और अमानव, स्वर्ग और पृथ्वी का बोध करा दिया ? निरू उसी तरह भावनयना अपने पलँग पर बैठ गयी । एक छोटी मेज पर दीपक जल रहा है।

निरू उसी ऊर्ध्व दृष्टि से देखने लगी, जो जल सरोवर के किनारों से बँधा हुआ सरोवर का जल कहलाता है, न बहता हुआ, वह मुक्त मेघ से मुक्त होकर आया है और तप से वाष्पाकार होता हुआ सरोवर के किनारों को छोड़कर ऊपर उठता—मुक्त होता है । सोचा, उसी जल की कुछ बूँदें नदी में डाल दी जायँ तो वे नदी के जल की व्याख्या प्राप्त करती हैं, फिर समुद्र से मिलकर समुद्र के जल की; इस तरह, जल की व्याख्या विशेष भले दी जाय, है वह जल सूक्ष्म रूप में एक ही प्रकार, स्थूल रूप में कूप, सर, नदी, समुद्र का बनता हुआ, भिन्न रूप, गुण और व्याख्या प्राप्त करनेवाला ।

निरू को हृदय का बल प्राप्त हुआ। वह कुमार को चाहती है, उसने दृढ़ कुमारी की तरह सोचा, कुमार ने भी उसे देखा है, वह भी प्यार करता है या नहीं वह नहीं जानती, पर दृष्टि से पहले ही दर्शन में जो कुछ कुमार से उसे मिला है, उसके अतिरिक्त प्यार की दूसरी व्याख्या वह मानने के लिए तैयार नहीं, अगर होगी भी तो भी वह उस पहली अनुभूति की तरफ होगी—उसी के पाने की इच्छा रक्खेगी। संसार में भी वह वस्तु, हृदय में वैसी मधुरता भर देनेवाली, उसे नहीं मिली। यामिनी उस तत्त्व के मुकाबले एक जड़ विशेष है। वही विद्वान् उसके मकान में जूता पालिश करने के लिए गया था। यह कितना बड़ा आदर्श है। ब्राह्मणत्व का कहीं नाममात्र के लिए अहंकार नहीं। योरप की शिक्षा का ज्वलन्त उदाहरण। कहाँ विश्वविद्यालय के सम्मान्य पद की प्रतियोगिता, कहाँ सामान्य जूता पालिश करना।—एक ही व्यक्ति इन दोनों कार्यों की समता रखता हुआ। कहाँ यह और कहाँ यामिनी, आत्म-सम्मान-लोलुप—मनुष्य का रूपमात्र रखने-वाला।

'कुमार अविवाहित है, मैं कुमार को चाहती हूँ; भले वह बंगाली नहीं; पर मनुष्य है, कुछ हो या न हो, मैं चाहती हूँ, पहली बात यह है।' सोचती हुई निरू कुछ तनकर बैठी, 'मेरे है कौन ! मैं लज्जा करूँ भी क्यों ? विवाह मन का है, मेरा मन जिसे नहीं चाहता, मैं क्यों उससे विवाह करूँ ?'

साथ ही निरू को गाली देनेवाली बात याद आयी; सोचा—'वह गाकर चिढ़ानेवाला कुमार ही होगा !' 'कुमार' शब्द के अस्फुट उच्चारण में वह आत्म-सम्प्रदान कर रही थी, 'कितना चालाक है। मैं जब गयी तब मौन। माँ की जब ऐसी बंगला है, तब उसकी क्यों न वैसी होगी।'

'मैं अगर मिलूँ भी तो क्या बुरा है ? वे मुझे लड़की समझती हैं, इसीलिए बुलाया भी। मैं नहीं जा सकी थी। कमजोरी। यह ठीक नहीं। लज्जा अनुचित थी। पहले तो पति को बुलाते भी किसी को लज्जा नहीं लगी, न रुक्मिणी को लगी, न संयोगिता को। वह मेरी कमजोरी थी। दादा दादा हैं, बस। मैं उनका अहित तो चाहती नहीं, फिर उनके सामने मेरी आँखें क्यों झुकें ? अपने लिये मैं जैसा उचित समझती हूँ, क्यों नहीं कर सकती ? मुझे उनसे मिलना चाहिए। अभी वे गयी न होंगी। अगर मैं बुलाऊँ तो ठीक नहीं, क्योंकि पहले वे बुला चुकी हैं; जमींदारी का अभिमान सूचित होगा; फिर हम लोग गुनहगार हैं, अत्याचार इधर से हुआ है, उन्होंने सहन किया है।'

निरू ने दासी को बुलाया। आने पर नीली को बुला लाने के लिए कहा। निरू की इच्छा चलते-चलते रामचन्द्र की माँ से मिलने की हुई। रामचन्द्र के आने के बाद, यह मालूम कर कि कुमार बाबू आये हुए हैं, नीली रामचन्द्र के जाने से पहले उसके घर पहुँची और अब तक वहाँ पुरानी पड़ गयी। जितनी बातें पेट में थीं और कहने लायक उसने समझीं, सब कह दीं, और जानने लायक जो उसे मालूम दीं, सब पूछ लीं। कुमार से नीली का ऐसा अकृत्रिम व्यवहार देखकर सावित्री देवी को दुःख के समय भी हँसी आ गयी। पुत्र के कार्य-वैचित्र्य से उन्हें प्रसन्नता हुई। नीली से उन्होंने भी बहुत-सी बातें कीं और भोजन कराया।

सावित्री देवी ने नीली से कहा, "तुम्हारी दीदी हमें गरीब जानकर हमारे यहाँ नहीं आयीं—क्यों ?" नीली मुस्किराकर रह गयी। सावित्री देवी उसे उभाड़ने के लिए फिर बोलीं, "तुम्हीं ने मना कर दिया है, लोग कहते थे।" नीली ने मार्जित गले से प्रतिवाद कर दिया—"मैंने तो उन्हें और चलने के लिए कहा था, यह भी कहा था कि दादा ने तो जाने के लिए कह भी दिया है; पर दीदी फिर न जाने क्यों नहीं आयी !"

कुमार मुस्किराया। सावित्री देवी इतने से दूर तक समझ गयीं। पर सन्देह न रहे, इस विचार के कहा, "तुम्हारे दादा कौन बड़े ज्योतिषी हैं, जब तुमने बताया तब मालूम हुआ कि तुम्हारी दीदी वहाँ जा रही हैं।"

"मैंने पहले कब कहा ? दादा ने पूछा तब कहा।" नीली निश्चिन्त हो गयी। देवी सावित्री का अनुमान पूरा उतरा।

इस तरह नीली दरबार जमाये हुए थी, इसी समय निरू की दासी गयी और 'बुलाती हैं' कहकर चुपचाप साथ लेकर बाहर चली आयी। नीली इस बार भी दासी से पहले, हाँफती हुई, बहन के पास पहुँची और पूछा, "दीदी, तुमने बुलाया है ?"

"हाँ, तू गयी कहाँ थी ?"

"कुमार बाबू के यहाँ।" पलँग से बँधा मशहरी बाँधनेवाला लट्ठा पकड़े, नाचती हुई जैसे प्रसन्नता से नीली ने कहा।

"लड्डू बँट रहे थे न कुमार बाबू के यहाँ ?" स्नेह के स्वर से निरू ने कहा।

नीली विषम दृष्टि से देखती रही।

हँसकर निरू ने पूछा, "क्या बातें हुईं कुमार बाबू से ?"

नीली फिर भी कुछ न बोली।

निरू ने कहा, "मैंने तुझे बुलाया था भेजने के लिए कुमार बाबू के यहाँ; पर तू हो आयी, अब क्या जायगी !"

"जाऊँगी क्यों नहीं ?" सीधी होकर नीली ने कहा।

"तो पहले बता कि वहाँ क्या बातें हुईं ?"

"कुमार बाबू ने कहा—हमारे गाँव के जमींदार की बहन आ गयी।"

"फिर ?"

"फिर कुमार बाबू की माँ ने कहा—गाँव भर को खिला रही हैं, हमें पूछा भी नहीं। फिर मलिकवा की माँ गयी और चलने के लिए कहा। कुमार बाबू उसे साथ ले जाने को राजी हो गये। फिर मैंने कुमार बाबू से उनका पता पूछा।"

निरू मन-ही-मन खिल गयी। कहा, "वहाँ भी अड्डा जमाने का विचार है—क्यों ? क्या कहा ?"

"57 नम्बर लाटूश रोड ?"

"फिर ?"

"फिर कुमार बाबू की माँ ने कहा कि इसने मना कर दिया है, इसलिए इसकी बहन नहीं आयीं। मैंने कहा—नहीं, दीदी तो आ रही थीं।"

"दीदी तो आ रही थीं ! नानसेन्स।"

"नहीं, मैंने कहा—दादा से बातें हुई थीं, दादा ने बाद को जाने के लिए कहा

भी था; पर—फिर कुमार बाबू की माँ बोलीं—फिर तुम्हारी दीदी नहीं आयीं —क्यों ?"

निरुपमा लज्जा से वहीं गड़ गयी, चलने का विचार जाता रहा। नीली का कान पकड़ा; पर धीरे से खींचकर छोड दिया। मन में सोचा—'इसने न जाने और क्या-क्या कहा हो;' फिर पूछा, "फिर क्या हुआ ?"

"फिर मुझे खाना खिलाया। कुमार बाबू यहाँ खाना नहीं खायेंगे। यहाँ का पानी पीना पड़ेगा, इसलिए। स्टेशन पर खायेंगे।"

निरुपमा गम्भीर हो गयी।

दासी खाने के लिए बुलाने आयी। निरू ने कहा, "नीली को ले जा, भोजन महाराज से यहीं रख जाने के लिए कह दे। कुछ देर बाद खाऊँगी।"

निरू की इच्छा खाने की न थी। पर नीली के सामने न कह सकी।

नीली चली गयी। निरू सोचती रही।

अट्ठारह

रामचन्द्र, मलिकवा की माँ और अपनी माँ को लेकर कुमार लखनऊ चला गया। गाँव में किसी से मिला भी नहीं। पहले से वह इसी धातु का बना हुआ है। किसी की समझ पर दबाव डाले, उसका ऐसा स्वभाव नहीं।

जब परीक्षाएँ पास कीं और एक सुन्दरी कन्या के धनी पिता भावी जामाता की कानपुर की इमारतें और विश्वविद्यालय की सर्वश्रेष्ठ पदवी देखकर उसके पिता के पास आये और कन्या के साथ दान में यथेष्ट धन देकर उन्हें प्रसन्न करने के लिए कहा—पिता विवाह के पक्ष में हो गये—माता की आँखों में अदृश्य बहू का मुख कुछ-कुछ दृश्य हो चला—विवाह के लिए वे ललचा उठीं, उसने किसी की समझ पर नासमझी नहीं की—सीधे विलायत की तरफ देखा। विलायत का नाम सुनकर कन्या के पिता खिंचे; वे ऐसे न थे कि जो धन देकर धर्म भी देते।

विलायत से लौटकर, भारत के बृहत्तर समाज पर जो कल्पनाएँ उसने की थीं—जाति-निर्माण का जो नक्शा खींचा था—इस पद-दलित धारा पर उसकी सहानुभूति की धारा जिस वेग से बहती थी—जिस सहृदयता से वह शिक्षित-मात्र को देखता था, वे सब, जीविकार्जन के क्षेत्र पर उसके पदार्पण करते ही संकुचित होकर, सूखकर अपने ही सूक्ष्म-तत्त्व में विलीन हो गयीं। पर उसने किसी की समझ पर नासमझी नहीं की। चुपचाप एक पेशा इख्तियार कर लिया, जहाँ किसी को धोखा खाने की बात न थी। बीच रास्ते पर उसका व्यवसाय लोग स्पष्ट रूप से देख सकते थे।

जब माँ की चिट्ठी मिली कि गाँव में रहना दुश्वार है, शायद लोग जमींदार

पर दबाव डाल रहे हैं कि कुएँ से पानी भरने न दिया जाय, तब ऊँची-ऊँची किताब और ऊँचे-ऊँचे मनुष्यों के व्यवहार की इस जानकारी ने तुच्छ जमींदार और गाँववालों के उस विरोध को उनकी स्थिति के अनुकूल हुआ जानकर उनके खिलाफ एक शब्द नहीं कहा, चुपचाप गाँववालों को अपने साथ ले आया, यह समझकर कि जूते की पालिश रोटियों का सवाल अच्छी तरह हल कर लेती है। और उसकी माँ जैसी मार्जित हैं, उनके विचारों को कोबरा की स्याही न लगेगी; रामचन्द्र के अभी अपने विचार कुछ नहीं, भविष्य में उनकी अधिक पुष्टि की आशा है। केवल मलिकवा की माँ की चिन्ता हुई कि कहीं उसकी समझ कुन्द न हो जाय। उसे गाँव में कष्ट था, विशेष काम कर नहीं सकती थी, उसका लड़का जब पक्ष लिये हुए मरा तब, पक्ष छोड़ना ठीक नहीं—इस विचार से माँ बराबर उसे खाने-पीने को देती रही, चलते समय बुलाकर कहकर रोकर उसके आग्रह करने पर साथ लेकर आयीं; तब उसकी समझ को धक्का न लगे इस विचार से उसने रामचन्द्र से मजाक में कहा, "ब्रश और ब्रांको की वस्तु का अगर तू निर्देश न करेगा, तो मलिकवा की माँ इस जिन्दगी में न समझ पायेगी कि मैं क्या करता हूँ।" कहकर, दूसरे दिन, अपने जीविकार्जन के महास्त्र लेकर बाहर निकला।

लखनऊ में कुमार अब तक काफी प्रसिद्ध हो चुका है। हैट-कोट पहनकर रास्ते पर बैठकर जूता-पालिश करनेवाला मामूली आदमी नहीं, फर्राटे से अँगरेजी बोलता है, कोई-कोई कहते हैं विलायत भी गया हुआ है, अँगरेजी खत्म किये हुए है, यह देश को शिक्षा देने के लिए ऐसा करता है कि न कोई बड़ा है न छोटा, यह चर्चा घर-घर है। चमार, जिस रास्ते से वह निकलता है, चौकन्ने होकर देखते हैं। चमार चार पैसे लेते थे, वह एक पैसा लेता है। बाज़ार तब से गिर गया है। लोग चमारों को हेय दृष्टि से देखते हैं। छावनी में कुमार की बड़ी कद्र है। गोरे बड़ी प्रीति से उसे काम देते हैं उसकी बातें सुनते हैं। एक-दूसरे को देखकर मुस्किराते हैं। उसकी इज्जत करते हैं। वह भी योरप की, तरह-तरह की, उन्हें पसन्द आनेवाली बातें सुनाता है। बँगलों में भी जाया करता है। सभी जगह यथेष्ट आमदनी होती है। उसके सीधे निरभिमान, प्रसन्न और प्रिय स्वभाव को सभी प्यार करते हैं। कभी-कभी लोग चारों ओर से घेरकर विस्मय, आदर और स्नेह की दृष्टि से देखते रहते हैं।

आज वह बँगलों की तरफ चला। कमल साधारण घरेलू सुन्दर पहनावे में सजी फाटक के पास खड़ी हुई, आकाश भरकर उतरती हुई वर्षा की पीन श्यामच्छवि एकटक देख रही थी। मुख पर काव्य का नैसर्गिक प्रकाश पड़ा पृथ्वी और स्वर्ग को एक कर रहा था।

कुमार ने देखा। मन में निश्चय हुआ कि यह विदुषी है। अपने कार्य के लिए आगे बढ़ा। आहट पा कमल ने उसी भाव की दृष्टि से देखा। कुमार ने अँगरेजी में कहा, "जूते पालिश करता हूँ। आप देखकर खुश होंगी। मिहनत बहुत कम लेता हूँ।"

कमल भाव की आँखों से मुस्किराकर सोचने लगी, 'यह चमार है। थोड़ी-सी अँगरेजी पढ़ ली है। आजकल के बाबू अँगरेजी सुनकर खुश होकर काम ज्यादा

देते हैं।' हिन्दी में पूछा, "तुम्हारा नाम ?"

"कृष्णकुमार," नम्रतापूर्वक कुमार ने कहा।

'कृष्णकुमार चमार, सानुप्रास है।' मन में सोचकर, खुलकर कहा, "बड़ा अच्छा नाम है। अब तुम लोग भी अच्छे नाम रखने लगे।" सोचती हुई गम्भीर होकर बोली, "यह देश की उन्नति के लक्षण हैं।"

"जी हाँ," सारा मतलब समझकर, मुस्किराते हुए कुमार ने कहा।

"लेकिन तुम मुझसे अँगरेजी क्यों बोले ?"

"मैंने कहा मेम साहब नाराज न हों।"

"मैं मेम साहब नहीं।"

कुमार कुछ न बोला। कमल ने भाव स्पष्ट कर दिया, "अभी मेरी शादी नहीं हुई।"

"मुझसे गलती हुई।" क्षमा चाहते हुए जैसे कुमार ने कहा।

कमल लापरवाही से बँगले के सामनेवाले टेनिस ग्राउण्ड की ओर बढ़ी, पीछे-पीछे कुमार।

"तुम अँगरेजी साफ बोलते हो; किसी साहब के यहाँ थे शायद ?"

कुमार को बड़ा बुरा लगा। पर प्रश्नकर्त्री का अनुमान व्यर्थ नहीं, सोचकर कहा, "नहीं, मैंने पढ़ी है।"

इसे स्पर्द्धा समझकर बी. ए. फाइनल की विद्यार्थिनी कमल ने दबाने के भाव से कुछ तिरछे देखते हुए उँगली जरा ऊपर को उठाकर पूछा, "वह क्या है ?"

काम की तलाश में आकर परीक्षा देते हुए कुमार को बुरा लगा, जैसे कोई बच्चे से पूछ रहा हो; पुनः वह चमार है इसलिए बड़ी सभी बातें उसके लिए अनावश्यक, अप्रत्याशित-सी हो रही हैं—व्यक्ति होकर वह पद और मर्यादा में बड़ा नहीं, तो बराबर है; पर यह विचार भी नहीं रहा, नहीं तो उँगली उठाकर इस तरह प्रश्न करने का क्या अर्थ, सोचकर, यथाभ्यास क्षोभ को दबाकर कहा, "बादल !"

"हाँ इस पर पाँच मिनट जरा अँगरेजी में बोलो।"

प्रश्नकर्त्री की गम्भीर मुद्रा वैषम्य की दृष्टि से देखता हुआ कुमार बोला, "आये थे हरि भजन को ओटन लगे कपास," हो रहा है।

"नहीं, मैं तुमसे हरि भजन ही कराना चाहती हूँ, इसलिए कहती हूँ।"

"लेकिन पारिश्रमिक तो कपास ओटने से ही मिलेगा।"

"ऐसी कोई बात नहीं है।"

"तो इसका तो बहुत ज्यादा पारिश्रमिक होगा।"

"जब तुम पास होगे।"

"तो कितना पारिश्रमिक मिलेगा, अगर मैं पास हुओं में सबसे आगे रहा !" कुमार ने मुस्कराते हुए कहा।

कमल चौंककर देखने लगी। कहा, "तुम जितनी आशा करते हो, उतना मुझे सन्देह है। पर दो सौ रुपये समझ लो।"

कुमार प्रसन्न हो गया; बोला, "सन्देह ठीक है, पर भ्रम सभी को होता है। अच्छा, आपका आदर्श किस कोटि का होगा।"

"अच्छी अँगरेजी का आदर्श तुम्हें मालूम होगा तो मुझे समझने में दिक्कत न होगी, तुम सीधी कहो या सजी हुई।"

"विषय तो सजी हुई का ही है। मैं यह और पूछता हूँ कि आपके विषय पर अँगरेजी के कवियों का कहना और उसका हवाला सुनाऊँ या अपनी तरफ से कहूँ। अवश्य आप 'बादल' पर वैज्ञानिक व्याख्या नहीं सुनना चाहतीं।"

कमल को जैसे कुछ होश हुआ। पूछा, "तुमने कहाँ तक पढ़ी है अँगरेजी ?"

"मैं लण्डन-विश्वविद्यालय से डी. लिट्. हूँ अँगरेजी-साहित्य का।" कुमार का पौरुष न छिप सका।

कमल लज्जित हो गयी। नम्र हँसती हुई बोली, "तो आपने यह कैसा स्वाँग रच रक्खा है ?"

"यह स्वाँग नहीं, यह मेरे साथ भारत का सच्चा रूप है।"

कमल भाव में डूबी हुई खड़ी रही। गौरव अपनी महत्ता में भरकर उसे हृदय की दृष्टि से विद्या का प्रांजल प्रकृत-पथ दिखाता रहा, जिससे कुमार उसके पास चलकर आया था। नत होकर बोली, "मैं बी. ए. फाइनल की विद्यार्थिनी हूँ। आइए, मैं बाबा से कहती हूँ, आप दो सौ मासिक लीजिए मुझे सुबह दो घण्टे अँगरेजी पढ़ा जाया कीजिए!" कहकर, अपने बँगले की ओर चलती हुई, "आप, अवश्य हिन्दू हैं।"

नत मुस्कराहट से—"हाँ।" शिष्या के विचार मात्र से कुमार आप न कह सका।

"आपकी जाति ?"

"कान्यकुब्ज ब्राह्मण।"

कुमार के भार से झुकी हुई कमल एक कुर्सी की ओर बैठने का इंगित कर भीतर पिता के कमरे में गयी, और संसार के आठवें विस्मय की चर्चा से पिता को बाहर ले आयी, बंगला में कहा—"ये डाक्टर कृष्णकुमार कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं; लण्डन के डी. लिट्. हैं, जगह न मिलने से यह पेशा इख्तियार किया है।" कुमार का ब्रश उठाकर दिखाया, "जूता पालिश करते हैं। मैं इनसे अँगरेजी पढ़ूँगी, कहा है, सुबह दो घण्टे के लिए, दो सौ मासिक पर।"

दिनेश बाबू प्रसिद्ध वकील थे। कई हजार मासिक की वकालत थी। मनोविज्ञान के पूरे जानकार। ऐश्वर्य और सम्मान सबके ऊपर उनकी प्यारी कन्या प्रतिष्ठित थी। ब्राह्मसमाजी थे। अतः किसी तरह विचलित न हुए; सोचा—'कमल इस युवक को प्यार करती है। यदि भविष्य में दोनों सदा के लिए बँध भी गये तो बुरा क्या है ? युवक विद्वान् और सुन्दर है, पुनः ब्राह्मण है। अवश्य इसका सामाजिक बहिष्कार हुआ होगा। ब्राह्मसमाज को एक योग्य मनुष्य प्राप्त हो सकता है।' कमल की बातें स्वीकार कर, देर तक कुमार से बातें करते रहे और बहुत प्रसन्न हुए।

ब्रह्मभोज के दूसरे दिन निरुपमा नीली को लेकर लौट आयी। चित्त में समाज के विरोध में जगा हुआ क्षोभ बराबर उसे बहका रहा था; सोच रही थी, प्राणों की मैत्री के लिए समाज की आवश्यकता है, वैषम्य की सृष्टि करे—इसके लिए नहीं; जो समाज शान्ति नहीं दे सकता, उसका त्याग करना ही उचित है, और विवाह जो जीवन की ऋजु-कुंचित गति को सहजसाध्य और रसमय करने के लिए है, अगर रत्ती-भर अनुकूल न हुआ—सारी वृत्तियाँ विरोध पर रहीं तो किसी नीति या लोक-रुचि के विचार से करना आत्महत्या तुल्य होगा।

निरू कक्ष में बैठी थी। विचार के बाद ही उसे वृन्त म्लान होते हुए स्थलपद्म की याद आयी। उसी का चित्र देखती हुई मन में मुस्किरायी। नारी का रहस्यपूर्ण हृदय सहसा अपार शक्ति चमत्कार से जैसे खुल गया। सान्त्वना मिली। कक्ष के झरोखे खुले थे। वर्षा की आर्द्र वायु बहती हुई। एकाएक दृष्टि उस स्थान पर गयी जहाँ कुमार को सर्वस्वदानवाली दृष्टि से देखा था। एक गर्म साँस सिक्त वायु से मिलकर बह गयी। निर्जन बैठी हुई उसी जगह को देखती रही। कल्पना की कलियों की कितनी प्यालियाँ भरती-ढुलकती रहीं। इसी समय दासी आयी। निरू ने नीली को बुला लाने के लिए कहा, खुद उठकर आईने के सामने खड़ी होकर बाल ठीक कर लिये।

"क्या है दीदी ?" चपल आती हुई नीली ने पूछा।

"चल, टहल आयें।" कहती हुई निरू जूते पहनने लगी।

हाथ पकड़, घर से बाहर होकर सड़क पर आते ही पूछा, "नीली, कुमार बाबू का पता मालूम है ?"

"हाँ," खुश होकर गर्दन टेढ़ी कर नीली ने कहा।

"तू अभी गयी तो नहीं ?"

नीली हो आयी थी। घर आने के आधे घण्टे बाद पहले पता लगाने गयी थी। लेकिन भीतर नहीं गयी। सिर्फ मकान पहचानकर चली आयी थी। बोली, "सिर्फ मकान देखने गयी थी।"

निरू सन्तुष्ट होकर चली। नीली के मन में किसी प्रकार के उद्वेग का कारण न रह गया। ह्विवेट रोड से, लाटूश रोड और क्रमशः कुमार बाबू के मकान के पास दीदी को लेकर खड़ा कर दिया; बोली, "यही है।"

"आवाज दे।" लज्जित स्वर से निरू ने उत्साह दिया।

नीली दरवाजा भड़भड़ाती आवाज देती रही। रामचन्द्र ने आकर दरवाजा खोल दिया, और निरू को देखकर भीतर बुलाये बगैर माँ के पास खबर देने के लिए दौड़ा गया। भीतर जाने की यह मुमानियत नहीं बल्कि बड़ी आवभगत है, यह निरू उसी वक्त समझ गयी और धीरे-धीरे लज्जिता नववधू की तरह पैर रखती बढ़ती रही, तब तक देवी सावित्री आ गयीं, और बंगला में आओ-आओ, कहकर, हाथ पकड़कर बड़े स्नेह से भीतर ले चलीं। नीली आँगन में पहुँचकर राम-

चन्द्र से आलाप-परिचय करने लगी, रामचन्द्र के गाँव से लखनऊ का जो फ़र्क है, उसी हिसाब से अपने को श्रेष्ठ नागरिक मानकर पूछा, "लखनऊ कैसा है?"

रामचन्द्र नीली से दबनेवाला न था। स्वर की पहचान करते उसे दिक्कत न हुई। बोला, "कलकत्ते के मुकाबले कूड़ाखाना।"

निरू ने देखा, छोटा पर सुघर घर है, हवादार, दोमंजिला। इसके गृहस्थ की, साधारण अवस्था होने पर भी कलाप्रियता स्पष्ट है, इसकी प्रत्येक सजावट कहती है। सारी चीजें कायदे से रक्खी हुईं, देशी-विलायती फूलों के गमले बरामदे में, पलँग, बिस्तर, कपड़े साफ।

देखती हुई निरू ने पूछा, "माँ, यह सब आपका सजाया हुआ है?" शुद्ध हिन्दी में निरू ने पूछा, सावित्री देवी के साथ दोमंजिले के सोनेवाले कमरे में मकान देखकर जाती हुई।

"नहीं, माँ, मेरे आने से पहले सजावट के सामान कुमार ने ले रक्खे थे। घर की चीजें ले आकर मैंने सुथरे ढंग से लगा दी हैं।" सावित्री देवी स्नेह से देखती हुई बंगला मिले सम्बोधन से हिन्दी में बोलीं; बिछे पलँग पर हाथ पकड़कर निरू को बैठाती हुई, "यह कुमार का पलँग है," कहकर परीक्षा की दृष्टि से देखने लगीं। बैठी हुई लज्जित निरू सप्रतिभ हुई कुमारी-कण्ठ से बोली, "अब आपको बड़ा कष्ट होता है। गाँव में कितना काम आप करती थीं। यहाँ कुछ सुबीता हुआ। पर कुमार बाबू की शादी आप क्यों नहीं करतीं?"

उन्हें अपने समाज में लड़की मिलना मुश्किल है, इस भाव को दबाकर सावित्री देवी ने कहा, "कुमार होश सँभालकर अपनी ही इच्छा से चल रहा है। उसके विलायत जाने में उसके पिता की राय न थी। उसे खिन्न देखकर मैंने समझाया। जो कुछ थोड़ा-सा था भविष्य के अवलम्ब के रूप में, वह कई साल कुमार के विलायत रहने पर खर्च हो गया। फिर उसके लौटने पर जो मुसीबतें आयीं, वे तुम्हें मालूम हैं। और अब मेरी रुचि का तो रहा नहीं, जैसा समझेगा, करेगा।"

"लेकिन दुनिया में दूसरे की रुचि भी देखनी पड़ती है। अगर किसी को," निरू एकाएक रुक गयी, जैसे उसके बनाते-बनाते विषय स्वयं स्वतन्त्र होकर बिगड़ा जा रहा हो।

सावित्री देवी ने कहा, "हाँ, माँ, ठीक कहती हो, संसार में दूसरे की भी रुचि देखनी पड़ती है। अगर किसी को कुमार प्यार करता होगा, तो उसकी रुचि के अनुसार भी उसे चलना होगा। मेल के यही मानी हैं।"

"अच्छा माँ, कुमार बाबू तो विलायत हो आये हैं, जरूर यहाँ उनके मन में मेम का रूप होगा। अगर वे मेम ले आयें या किसी ऐंग्लो इण्डियन लड़की से शादी करें, तो आपको बड़ी अड़चन होगी?" कहकर निरू मर्म में छिपी हुई सावित्री देवी को बड़ी-बड़ी आँखों से देखती हुई मुस्किरायी।

"अड़चन क्यों होगी, माँ? पुत्र-कन्या का जिस पर स्नेह होता है, उसकी ओर स्वभावत: माँ की स्नेह-धारा बहती है, यदि उस धारा के काटने के क्षुद्र कारण न हुए।" सावित्री देवी बाजार से मिठाई, नमकीन मँगाने के पैसे निकालने

चलीं, फिर बाहर जाकर रामचन्द्र को देकर अस्फुट शब्दों में जल्द ले आने के लिए कहकर भीतर आयीं।

उनके कुर्सी पर बैठने पर निरू ने कहा, "माँ, मैं रामपुर की जमींदार हूँ! फिर भी जमींदारी की तरफ से आप पर जो अत्याचार हुए हैं--आपके बाग और जमीन बेदखल किये गये हैं—आपको दूसरी तकलीफें पहुँचायी गयी हैं, इनका ज्ञान मुझे न था। इन सबके लिए आपसे माफी माँगने आयी हूँ, आपने मुझे बुलाया था, फिर भी मैं आपके वहाँ नहीं जा सकी। दादा का कहना था कि दूसरे भी बुलायेंगे और जाना होगा, न जाना व्यवहार के विरुद्ध होगा।"

मलिकवा की माँ पान लगाकर ले आयी। तश्तरी बगल में रख दी। निरू ने एक इलायची उठा ली और मलिकवा की माँ को देखकर दुखी होकर---गर्दन झुकाकर सोचने लगी।

"क्षमा क्या है, माँ?" मलिकवा की मृत्यु तथा अपने दुःखों की स्मृति से गम्भीर होकर सावित्री देवी ने कहा, "तुम्हारा था, तुम्हारा हुआ। ईश्वर जब स्नेह का धन--बुढ़ापे का सहारा भी माता-पिता से छीन लेता है, तब वैसे साधारण अधिकार के जाने का क्या क्षोभ? मलिकवा की माँ को देखो!"

कुछ देर सहानुभूतिजनक मौन छाया रहा। मलिकवा की माँ खड़ी थी। आँखों से आँसू झरने लगे। वह बाहर चली गयी।

"माँ, तुम्हें देखकर वह विचार मन में नहीं आता कि तुम दूसरे घर की हो। रामचन्द्र के लिए जो स्नेह तुम्हारा बहता है, उसी स्नेह का प्रवाह तुम्हारी दृष्टि से आता हुआ मैं अनुभव करती हूँ। तुम्हारी दृष्टि को मेरे सत्य और असत्य का पता अवश्य लग जायगा। और मैं बड़प्पन नहीं जता रही। यह तुम समझती हो और तुम्हारे सामने सदैव मेरा छुटपन ही तुम्हारा श्रेष्ठ दान-स्नेह प्राप्त करेगा। कुमार बाबू की रुचि में मैं बाधा नहीं डालती। पर रामचन्द्र की पढ़ाई के लिए हुई मेरी सेवा जो उन्हें मंजूर नहीं हुई, इसके क्या यही मानी नहीं कि उन्होंने मुझे समझाया कि रामचन्द्र पर उन्हीं का अधिकार है। खैर, मैं उनके अधिकार पर हस्तक्षेप नहीं करना चाहती; सिर्फ कहना चाहती हूँ कि मेरा जो अधिकार था, उसका मैंने भी उचित प्रयोग किया है--आपके बाग और खेत ज्यों-के त्यों आपके होंगे, जमींदार ने उन पर से अपना कब्जा उठा लिया है। आप कहें तो बाग की हैसियत जो नहीं रही, ठीक करा दी जाय।"

सावित्री देवी स्नेह से पूर्ण हो मधुर स्वर से बोलीं, "माँ, तुम्हारी सहानुभूति दूसरे को ठीक नहीं समझती है, मुझे उसकी पहचान है; पर यह ठीक नहीं, गाँव में सभी तुम्हारे हैं, सबके लिए तुम्हारा एक ही भाव होना चाहिए। दूसरे इससे दुखी होंगे। कानूनन वह सब तुम्हारा है। मुझे मिलना होता तो कानूनन तुम्हीं मुझे मिली होतीं।" सावित्री देवी ने सीधे विचार से कहा। निरू हृदय की गहनता में निश्चल थी, स्वल्प लज्जित हो गयी।

अपने को कुमारी-रूप से फिर सँवारकर बोली, "मलिकवा की माँ को तीन बीघे माफी देने का प्रबन्ध मैंने कर दिया है। वह जब तक जियेगी, खायगी, मैं आपसे और कुछ कहना चाहती थी, आपने पहले ही मुझे चोट पहुँचाकर निराश कर दिया।"

"चोट नहीं, मैं कायदे की बात कर रही थी; पर तुम्हें दुःख पहुँचा हो तो मैं कहती हूँ, जैसा तुमने दावा पेश किया है,—रामचन्द्र पर तुम्हारा वैसा ही अधिकार है जैसा कुमार का; तुम्हें जो कुछ देना है रामचन्द्र को दो, मैं उसे लेने के लिए कहूँगी और उसे तुम्हारी दी वस्तु-सम्पत्ति लेते हुए खुशी होगी—मैं जानती हूँ।"

प्रसन्न होकर निरू मुस्किरायी, कहा, "बाग और खेत तो हुए ही रामचन्द्र बाबू के। आपके दो मकान भी कानपुर में हैं ?"

"हाँ," कुछ व्याकुल होकर सावित्री देवी ने कहा, "कुमार के पढ़ाई के खर्च में रेहन किये गये थे।"

"हाँ, महाजन को रुपये की जरूरत है; मैं रुपये देकर रजिस्ट्री खरीद रही हूँ। वे मकान भी रामचन्द्र बाबू को मिलेंगे।"

सावित्री देवी सविस्मय मुँह की ओर ताककर रह गयीं। इसी समय मलिकवा की माँ कुछ पूछने के लिए सावित्री देवी को बुलाने आयी। उन्होंने संयत प्रसन्नता से पूछा, "मलिकवा की अम्मा, इन्हें पहचानती है, गाँव की मालकिन हैं।"

मलिकवा की माँ ने सर हिलाकर सूचित किया कि पहचानती है।

मुस्किराकर सावित्री देवी ने कहा, "तीन बीघा माफी तुझे इन्होंने दी है; माथा टेककर पैरों पड़।"

मलिकवा की माँ विक्षिप्त आश्वासन से हँसकर उसी तरह पैरों पड़ी। इसी समय बाहर गया हुआ रामचन्द्र आया और दोमंजिल के आँगन से माँ को आवाज दी। नीली रामचन्द्र के साथ रह गयी थी।

बीस

कमल भीतर कपड़े बदल रही थी, बाहर कुमार प्रतीक्षा करता हुआ। नये-नये सम्बन्ध की घनिष्ठता की डोर कमल के स्नेह-कर में जो थी, कुमार उससे बँधता जा रहा था—उसने बुलाया था, वह गया हुआ है। यद्यपि कुमार पहले से प्रकृति का पूरा स्वतन्त्र था, फिर भी इधर की परिस्थिति ने उसके लिए लक्ष्य-विशेष नहीं रक्खा। कमल सजकर बाहर निकली और कहा, "बड़ा अच्छा मौसम है, है न ?" नीचे-ऊपर देखती हुई।

कुमार ने भी नीचे-ऊपर देखा और कहा, "हाँ, आकाश और पृथ्वी दोनों का पेट भरा हुआ है, इसलिए हँस रहे हैं।"

चलती हुई कमल बोली, "आप लिखें तो सैटायर बहुत अच्छा लिख सकते हैं; आपको किसके सैटायर पसन्द हैं—ड्राइडन के ?"

"बहुत हैं," गम्भीर शिक्षक के कण्ठ से कुमार ने कहा, "आजकल तो ब्यूटी

सैटायर की ही हो रही है। शा की सारी विट सैटायर में लगी है। तुम्हारी बंगला में इसके कई अच्छे लेखक हैं; रविबाबू के सैटायर तो बड़े ही साफ उतरते हैं।"

"आप बंगला-साहित्य की भी जानकारी रखते हैं!" चकित होकर कमल ने पूछा।

"हाँ, मैं वहीं इतना बड़ा हुआ। शिक्षा भी वहीं पायी, ग्रैजुएट मैं वहीं—कलकत्ते का हूँ। बंगला मेरी वनाक्यूलर थी। मैंने कुछ अच्छी ही तरह बंगला-साहित्य पढ़ा है।" शिष्टाचारपूर्वक मन्दोच्चरित शब्दों में कहा।

अपनी एक खास कल्पना पर जोर देती हुई उल्लसित होकर कमल ने पूछा, "आप बंगला गाते भी होंगे?"

"हाँ," सोचकर खुश करने के अभिप्राय से कुमार ने कहा, "पर गाना तो तुम लोगों का है, यानी स्वर जिन्हें स्वर्गीय दान के तौर पर बारीक मिला हुआ है, पुरुषों का गाना तो—बात यह है कि ईश्वर ने स्त्रियों के कण्ठ में वीणा बाँधकर उन्हें पृथ्वी पर उतारा है और पुरुषों के गले में हण्डी।"

"आप शायद कहें—डूब मरने के लिए?" तिर्यक दृष्टि से कुमार को देखती हुई कमल ने चोट की।

"नहीं, स्त्रियों की तारीफ करने के लिए।" गम्भीर होकर कुमार ने कहा।

कमल लज्जित हो गयी। कुमार ने पूछा, "तुम तो गाती होगी, कमल? मुझे भी अपना गाना सुनाओ एक दिन।"

"अच्छा लौटकर। आज हमारे यहाँ खाना खाइए। आपको खाने में परहेज जरूर न होगा।"

दोनो बातें करते हुए जा रहे थे। रास्ते में कुछ बंगाली खड़े थे। दो-एक कमल को जानते थे। यों उसके पहनावे और चाल-ढाल से जाहिर था कि वह ब्राह्मसमाज की है, बंगाली हिन्दू-समाज के थे। कुमार के साथ कमल को देखकर मुस्किराये और आपस में बातें करने लगे जैसे सुनाकर, "कोई कौम छोड़ेंगी नहीं ब्राह्मसमाजी छोकड़ियाँ।"

"छ: महीने हुए, एक ने रावलपिण्डी के सिक्ख से शादी की।"

"हाँ हाँ, शादी के दूसरे ही दिन, ऐसा मन्त्र फूँका कि उसने बाल-वाल सब कटा दिये और बंगाली ढंग से धोती पहनकर निकला।"

"अब देखो, काबुल और ईरान पहुँचती हैं।"

दोनों सुनते हुए निकल गये। कुमार गम्भीर, कमल मुस्किराती हुई। बढ़कर कमल ने पूछा, "आपकी समझ में आया कुछ।"

"हाँ, क्योंकि मैं काबुली या ईरानी नहीं हूँ; पर नहीं समझ में आता कि ब्राह्म-समाज का यह विश्वप्रेम काबुली और ईरानियों को कैसे समझायेंगी तरुणियाँ।"

कमल लज्जित-पग चलती गयी। सोचकर कहा, "यहाँ आपका अनुमान भी काम नहीं करता। कहते हैं, कवि लोग कल्पना में समझ लेते हैं सारी बातें। आप कवि होने की कोशिश कीजिए।"

"तुम समझीं नहीं। मैं कहता हूँ कि कवि होकर मैं जैसे समझ गया; पर तरुणियों का मतलब समझनेवाले ये अफगानी और ईरानी भी कवि होते हैं?"

कमल को जैसे भरपूर किसी ने गुदगुदा दिया। प्रसन्न हँसकर बोली, "आपने थियेटर में पार्ट भी किया है, जान पड़ता है। कम-से-कम कालेज में ड्रामा जरूर खेले होंगे।"

'ड्रामा भी खेले और सजीव एक्टिंग भी दिखायी, तुम देख चुकी हो। ईश्वर की कृपा पहले से मुझ पर ऐसी है कि जितने कदम उठाये सब पीछे की ओर शुमार किये गये।"

कमल समझी। हृदय में दुख की छाप पड़ते ही बात बदल दी; कहा, "आप ईरानियों की कविता समझने की बात कर रहे थे ? आप यह तो जानते हैं कि पेड़ों की भाषा और मेघमाला की भाषा भिन्न हैं; पर, पेड़ों की प्यास, उनका आकर्षण मेघमाला समझती है और आर्द्र होकर उन पर स्नेहसिक्त धारा बरसाती है। मरुभूमि के लिए उसका यह नियम नहीं।"

"हाँ, मैं समझा; पर यह जरूर कहूँगा कि काबुली-हृदय की प्यास बुझानेवाली कल्पना में काव्य-रस अधिक है।"

"वे गँवार हैं। हम लोगों को बनाया करते हैं। ब्राह्मसमाज का मुकाबला करें, देर है। आज भारत के सर्वश्रेष्ठ पुरुष, हर विषय के सर्वोत्कृष्ट योग्य—"

बीच में बात काटकर कमला को उत्तेजित जान, कुमार ने कहा, "इसमें क्या शक है। काव्य, विज्ञान, दर्शन, इतिहास, राजनीति यहाँ तक कि सम्पादकत्व में भी ब्राह्मसमाज सबसे आगे है।" मन में कहा, 'इसी तरह प्रेम में भी बढ़ गया, तो क्या बुरा हुआ ?' खुलकर कहा, "यह मेरा घर है।"

कमल बोली, "आपका घर देखूँगी। आपकी माँ हैं, मिलूँगी। उनसे, आइए।" कहकर जीने से खटाखट चढ़ती हुई गयी। पीछे-पीछे कुमार, दोमंजिल पर गयी। निरू जलपान कर बैठी थी। देवी सावित्री, कुमार आ रहा है जानकर बैठी रहीं। निरू को देखकर एकाएक खुशी से उद्वेलित हो "अच्छा तुम भी हो" कहकर, मन्द-स्मित हाथ जोड़कर सावित्री देवी को नमस्कार किया। कुमार के पढ़ाने की खबर सावित्री देवी को मालूम हो चुकी थी। उठकर अपनी कुर्सी पर कमल को बैठाला। कुमार भी आ गया। परिचय करा दिया। पर कुमार के गले में उसका साधारण स्वर न था। सावित्री देवी ने एक बार निरू को देखा। उसे निष्पलक अपूर्व भाव से कुमार को देखते हुए देखकर रामचन्द्र को आवाज दी। रामचन्द्र नीली के साथ छत पर खेलता हुआ बातें कर रहा था। माँ से दूसरे कमरे से कुर्सी ले आने की आज्ञा सुनकर उतर आया और कुर्सी लेने गया।

कुर्सी पर कुमार को बैठने के लिए कहकर सावित्री देवी पलँग पर निरू के एक बगल बैठ गयीं। नीली भी उतर आयी और रामचन्द्र के साथ बाहरवाले बरामदे से देखने लगी।

"माँ, इन्हें ही पढ़ाने के लिए नियुक्त किया गया हूं। श्री कमल सुषमा चटर्जी इनका नाम है।" आदर के स्वरों में कुमार ने माँ से कमल को परिचित किया।

कमल की बिलकुल खुली हुई, निस्त्रास, हवा-हवा पर उड़ती हुई जलभारानत मेघमालावाली प्रकृति के सामने सावित्री देवी एक अज्ञात दबाव से जैसे संकुचित हो गयीं। उनके गृहस्थ-जीवन में वैसी प्रकृति का परिचय न हुआ था। उनकी

परिचित बंगाली समाज की महिलाओं का गृह की सीमा में ही कुशल, क्षिप्र, शिक्षित और उन्नत रूप था। ब्राह्मसमाज का नाम वे सुन चुकी थीं, और दूसरी बंगाली महिलाओं की तरह शिष्ट भाव से उन्हें ब्रह्मज्ञानी कहती थीं। उनके मन में निरू शिक्षित लड़कियों की चरम विकसित रूप थी। बिलकुल मेम या मिस का स्वभाव उनकी प्रकृति पर एक अज्ञात दबाव छोड़ता था। जैसे उनकी संस्कृति की वह रूप-रेखा नारी-स्वभाव के प्रतिकूल मालूम देती हो। अपने में समायी हुई मधुर क्षीण स्वर से बोलीं, "मैंने अनुमान कर लिया था।"

क्षणमात्र देर किये बिना, जैसे पहले से घनिष्ठ परिचय रहा हो ऐसे स्वर से कमल ने पूछा, "इनसे आपका कैसा परिचय है ?"

"ये मेरी मालकिन हैं।" सावित्री देवी मधुर मुस्किरायीं।

इससे कमल की शंका निवृत्त न हुई। वैसे ही खुली आवाज में पूछा, "आपके मकान का किराया वसूल करनेवाली ?" निरू जल उठी। पर बैठी रही। कुमार की माँ को देखती आँखें मुस्किरा दीं।

"नहीं," सावित्री देवी ने कहा, "हमारे गाँव की जमींदार। पहले इनके पिता थे, अब ये हैं।" कहकर स्नेह से निरू को देखने लगीं। कुमारी गाम्भीर्य की स्वर्गीय-महत्ता से निरू मौन थी। रह-रहकर एक विशेष भाव से कुमार को देख लेती थी।

बहुत-सी बातें कुमार के भी मन में उठीं; पर दम साधे बैठा रहा। निरू ज्यों-ज्यों गम्भीर हो रही थी, कुमार चंचल। जब से आया, सम्वर्धना का शब्द नहीं निकला, सोचकर, त्रुटि से बचने के लिए, बहुत कुछ अपने को सँभालकर, कहा, "बड़ी कृपा हुई जो यहाँ आने का कष्ट स्वीकार हुआ आपको।" कहकर मन में सोचा, जैसे त्रुटि हो गयी। निरू कुछ न बोली। सावित्री देवी कमल की अभ्यर्थना के विचार से उठकर दूसरे कमरे की ओर मन में एक निश्चय से प्रसन्न होकर चलीं कि कमल ने निरू से कहा, "तुम तो ऐसी मौन हो जैसे ससुराल आयी हो।"

"इन्हें पश्चात्ताप है।" कुमार ने कहा। कमल एकाग्रता से कुमार को देखने लगी। कुमार कहता गया, "एक रात बगैर पहिचाने मुझे 'गोरू' कह दिया था।" कमल खिलखिलाकर हँस दी। कुमार कहता गया, "कुछ चिढ़ गयी थीं, हालाँकि कसूर मेरा न था। जैसा कि मैंने अभी-अभी कहा है, उसी स्वर से गा रहा था। लेहाजा गाने में एक हक मेरा था। बाद को ये गाने लगीं। इनके मधुर स्वर के आगे मुझे अपना स्वर भूल गया। रास्ता भूला राही जैसा मैं इनके अगियाबैताली स्वर के पीछे-पीछे चला।"

निरू पहले की तरह चुपचाप प्रतिमा-सी बैठी रही। कमल जानती थी कि निरू अच्छा नहीं गाती। समझी, यह उस पर मजाक है। खुशी से भरी हुई, पूछा, "फिर ?"

"फिर ये अपने सत्य रूप में प्रकट हुईं और मुझे रास्ता बता दिया।"

इसी समय तश्तरी में जलपान सजाकर सावित्री देवी आयीं और कमल की बगल में खड़ी हुईं। उनके पूछने से पहले ही वह ढंग देखकर जलपान उसी के लिए लाया गया है समझकर कमल ने कहा, "मैं इस वक्त जलपान नहीं करूँगी, आप ले

जाइए।" सावित्री देवी लौट गयीं। मलिकवा की माँ पान ले आयी। "मैं पान नहीं खाती।" कहकर कमल ने एक इलायची उठा ली, फिर निरू से सस्नेह, उसी सखीभाव से कहा, "हम लोग टहलने निकले हैं, लौटकर मेरे घर चलो, डाक्टर साहब गाना सुनेंगे।" कमल ने स्वर से समझा दिया कि मैं भी गाऊँगी। अगर उस दिन कोई कसर रह गयी हो, तो पूरी कर लेना। पर निरू ने निमन्त्रण स्वीकार न किया। मन में एक अशान्ति एकाएक पैदा हो गयी थी। बहुत सँभल-कर, जैसे कहीं से भी न खुले, कहा, "नहीं कमल, मुझे फुर्सत न होगी।"

नीली एकटक, खड़ी हुई, कमल को देख रही थी। कुमार के लौटने पर निरू का हाल कहने का विचार कर सावित्री देवी कमरे में आयी कि निरू उठी और हाथ जोड़कर प्रणाम किया। कुमार और निरू के सम्बन्ध का स्वल्पमात्र कारण सावित्री देवी को जितना दृढ़ बाँध सकता था, बाँध चुका था; इसलिए निरू के प्रति उनकी वैसी स्नेहधारा उसके दर्शन मात्र से प्रवाहित हो चलती थी। हाथ पकड़कर, "हमें फिर तुम्हें जल्द देखने की प्रतीक्षा रहेगी।" कहकर साथ-साथ नीचे उतरीं। नीली एक दफा कमल को असह्य दृष्टि से घूरकर बहन के साथ हो ली। कमल इस वैषम्य का जैसे कोई कारण न समझ पायी ऐसी दृष्टि से निरू की ओर देखती रही। कुमार चुपचाप बैठा रहा, जैसे यह सब अन्धकार हो, इसके भीतर दृष्टि साफ हो ही नहीं सकती समझ रहा हो।

सावित्री देवी के लौटने पर शिष्टाचार के विचार से कुछ देर तक बैठी साधारण बातचीत कर, रामचन्द्र की ठोढ़ी हिलाकर कुमार को लेकर कमल घर लौटी।

इक्कीस

"नीली" उधर से जाती हुई नीली को योगेश बाबू ने बुलाया।

मार्ग में बाधा पाकर पिता को देखकर नीली टेढ़ी होकर आँखों से स्नेह बरसाने लगी।

"सुन," भावभरे गुप्त मन्त्रणा के स्वर से पिता ने बुलाया। नीली गयी। योगेश बाबू ने पास बुलाया, और हाथ पकड़कर बिलकुल नजदीक बैठा स्नेह-स्वर से कहा, "तू बड़ी बदमाश हो गयी है।" पीठ पर हाथ फेरने लगे। कहा, "कल तुझे खोजा कि बाजार ले जायँ, बड़ी मोटर, रेलगाड़ी और फुटबाल खरीद दें, परन्तु तू मिली ही नहीं।" फिर अभ्यस्त आलोचक की दृष्टि से देखते हुए नली मुँह से लगाकर मन्द-मन्द खींचा।

"मैं दीदी के साथ गयी थी।" नीली ने कहा।

"कहाँ?"

"कुमार बाबू के घर।"

योगेश बाबू का जैसे योग भंग हो गया; पर आसन पर सिमटकर नली फिर हाथ में लेकर बड़े स्नेह-स्वर से पूछा, "फिर ?"

नीली ने दानवाली कथा न सुनी थी। बोली, "कुछ नहीं, फिर कुमार बाबू की माँ ने जलपान कराया; इसके बाद कुमार बाबू कमल के साथ आये। फिर दीदी चली आयी।"

"फिर कुमार से कुछ कहा था तेरी दीदी ने ?"

"नहीं, कुमार बाबू ने दीदी के लिए कमल से कहा था कि इन्होंने एक दिन मुझे 'गोरू' कहा था।"

"ठीक कहा था। बुला तो अपनी दीदी को।" फिर डटकर, दृढ़-प्रतिज्ञ होकर नली मुँह में लगायी।

निरुपमा आयी और सँभलकर एक बगल बैठ गयी। योगेश बाबू देखकर हँसे। कहा, "यामिनी कह रहा था, मुझे चिट्ठी का जवाब निरू ने नहीं दिया।"

"उस चिट्ठी का क्या जवाब था, कुछ मेरी समझ में नहीं आया।" निरू सर गड़ाये नाखून खोंटती रही।

योगेश बाबू हँसे। "यह तुम्हारे लिए उचित ही हुआ है। घर कौन-सा है! लोग कितनी बातें कह गये। हमने कहा—कुत्ते हैं कुत्ते, भूकने के सिवा जानते क्या हैं? निरू किस माँ की लड़की है, यह मैं जानता हूँ।" निरू हृदय से डरी, साहस बाँधती हुई भी कमजोर पड़ती गयी, मामा की जानकारी पर अनेक प्रकार की भावनाएँ आने-जाने लगीं। योगेश बाबू आप ही सोचकर हँसे। बोले, "वह हिन्दुस्तानी! भ्रष्ट कहीं का! आवारा! विलायत में कितने चमार डाक्टर हैं। डाक्टर होने से कोई किला नहीं फतेह कर लिया। समाज में किस तरह रहना चाहिए, ज्ञान नहीं। अकेले आकाश पार जायेंगे! भले-भले एम. ए. हो गये थे, भले आदमियों से मिलते, जगह मिल जाती छोटी-मोटी, खाते-पीते मजे में रहते; नहीं आसमान-आसमान चलने लगे! जो कुछ था उड़ गया। अपने भी पराये हो गये। कोई पानी छुआ नहीं पीता, यह कोई बुद्धिमत्ता है? जब समाज में मिलने की ताकत नहीं, तब उतना ही बढ़ो जिससे मिले रहो।" योगेश बाबू सोचकर जोर से हँसे, "अब मिला भी वैसा ही समाज; बाप चटर्जी, माँ चमारिन। लड़की?" निरू को स्नेह से देखकर, "निरू हम कहते हैं,—यह संसार है; इसमें सब तरह के जीव हैं। कितने बहते हैं। दूर से देखना चाहिए; छूना महापाप। देखो अब दोनों कहाँ जाते हैं। बात यह कि जो जैसा होता है, उसे वैसा ही मिलता है। कमल की माँ का हाल तू तो जानती नहीं, हम जानते हैं। हमारी तो इच्छा नहीं थी कि कमल घर आये। पर अब दूसरी हवा है, हम लोग बचकर निकल जायेंगे, यह सोचकर हम चुप थे।" कहकर गम्भीर भाव से कश खींचने में तल्लीन हुए।

निरू के हृदय को चोट पहुँची। कुछ न बोली। कुमार और कमल का सम्बन्ध स्थायी होगी, यह सोचकर सँभलने लगी। पहले उसने गलत सोचा था। मामा का विरोध ठीक नहीं। और भाग्य की बात जो हिन्दू घराने में प्रचलित है वह

ठीक है। कुमार मुमकिन है, सही हो; पर कुमार की ओर बढ़ती हुई उसकी मनोवृत्ति ठीक नहीं। उसके लिए कुमार के स्वर में वह सुहृदयता नहीं—कैसा कहा पहचाने बगैर 'गोरू' कहा था ! सोचती हुई थकी, स्वर को भक्तिपूर्ण करके पूछा, "मामा, आपने मुझे बुलाया क्यों है ?"

"वह बात भूल गयी थी। इस वक्त यामिनी ने आने के लिए कहा है, रुपयों के लिए। पहले कई बार टाल चुकी हो, शायद मजाक में यामिनी को हैरान करने के लिए—क्यों ?"

नौकर ने खबर दी, "यामिनी बाबू आये हैं।"—"ले आओ"—कहकर योगेश बाबू निरू की ओर देखकर बोले, "बड़ी उम्र है यामिनी की—मैंने पहले सब ग्रह-नक्षत्र बिचरवा लिये थे, मुझे किसी ओर से धोखा दे जाना मजाक नहीं, मैंने कहा और सब बाद का होगा—पहले देख लिया जाय कि हमारी निरू दीर्घ काल तक सुखी तो रहेगी।" यामिनी बाबू के आने की आहट मिलने पर वृद्ध गम्भीर हो गये, निरू ज्यों-की-त्यों शुभ-प्रतिमा सी, निश्चय और अनिश्चय की कल्पना की डोर छोड़कर, अपने भाग्य-चक्र को आलोचिका की दृष्टि से देख रही थी। वह जहाँ बैठी थी, वहाँ से खुला आकाश अपनी असीमता लिये हुए देख पड़ता था। वह समझ रही थी कि दृष्टि को घेरे में उतना आनन्द नहीं, जितना मुक्त आकाश के दर्शन में है, जैसे दृष्टि आकाश में अपनी असीमता प्राप्त कर अपने स्वरूप-दर्शन का आनन्द पाती हो। सोच रही थी कि फिर छोटे-छोटे बन्धनों से मनुष्यों की इतनी प्रीति क्यों है।

इसी समय यामिनी बाबू आये। आकाश ताकती हुई नलिन-आँखों की नवीन कान्ति को एक मुग्ध दृष्टि से देखकर योगेश बाबू को प्रणाम किया। योगेश बाबू के आशीर्वाद देने के समय निरू ने आँख फेरी और यामिनी को देखकर उठने को हुई कि योगेश बाबू ने कहा, "बैठो, अभी काम है।"

निरू की भावना को प्राकृत कविता में बदलने के विचार से यामिनी बाबू बोले, "आसमान ताकने के दिन अब नहीं रहे। अब तो वायुयान तैयार हो गये हैं और लखनऊ के आकाश में मँडलाया भी करते हैं, दर्शकों के लिए हुए।"

"क्यों निरू, वायुयान पर चढ़कर आकाश में ही रह आओ कुछ देर !" योगेश बाबू ने हँसकर सम्मति दी।

निरू का भाव दूसरे समझ गये, पहले सोचकर लजा गयी; फिर लज्जा को अपमान जानकर सिर उठाकर कहा, "अच्छा तो है एक दिन चला जाय, नीचे से ऊपर ताकने की जरूरत ही न रह जायेगी—आप ईश्वर से दो बातें करके पूरा समझौता कर लीजिए।"

बातें योगेश बाबू से कही थीं। दूरदर्शी वृद्ध पहले चौंके। पर भांजी को हँसती हुई देखकर मजाक करती समझकर कहा, "यह है कि स्वर्ग में नन्दनवन, पारिजात, देवदूत और इन्द्र की अप्सराएँ भी हैं और यमराज भी। तुम लोगों का जाना नन्दन-विहार है और हमारी यमराज से मुलाकात होगी।"

डा. यामिनी वृद्ध की साहित्यिकता पर मुस्किराये। वृद्ध ने भाव बदलकर कहा, "रुपये के मामले में तुम्हारा और इसका टग-आफ-वार जो चला, उसमें

तुम्हारी हार हुई—क्या कहते हो ?"

"जी हाँ, हार तो मेरी हर तरह है।"

"तो तुम स्वयं इससे प्रार्थना करो, जिससे इसे कर्ज लेना मंजूर हो। और वह जो कहा था, वह भी हो जाना चाहिए।"

यामिनी बाबू बड़े दूरदर्शी थे, रुपये के मामले में। यह रुपया वृद्ध मजे में निरू के सर हाथ फेरकर ले रहे हैं, वे समझते थे; पर बचाने पर सदा के लिए वंचित रहना पड़ता था। निरू की सम्पत्ति तीस-चालीस हजार रुपये के मुकाबले बहुत ज्यादा है। वृद्ध दूसरी जगह निरू का विवाह ठीक कर सकते हैं, यह सब सोचकर मंजूर कर लिया था। कानपुर में दूसरी जगह उन्हें रुपया मिल सकता था; पर सम्पत्ति के पुनः हस्तगत होने की सम्भावना उन्हें इधर प्रेरित कर रही थी। वृद्ध की ओर मुँह करके कहा, "मैं तो हाथ जोड़कर हार स्वीकार करता हुआ रुपयों की प्रार्थना करता हूँ।"

एक लम्बी साँस छोड़कर निरू ने कहा, "मैं तैयार हूँ। मामाजी जब और जिस तरह देंगे, लेकर दे दूँगी। मैं मामाजी की किसी इच्छा का विरोध नहीं करती।" जैसे किसी ने निरू का हृदय मसल दिया। पर धैर्य से बैठी रही। अनिच्छा ही संसार की इच्छा है, सोचती रही।

वृद्ध ने सुरेश को बुलाया।

बाईस

दिन का तीसरा पहर है। रामचन्द्र बाहर खेलने गया है। मलिकवा की माँ दुपहर के बरतन मल रही है। उसने अपने कर्त्तव्य का स्वयं निश्चय कर लिया है। देहात में अपनी जाति की रीति के अनुसार वह किसी के यहाँ का चौका-टहल नहीं कर सकती थी—ब्राह्मणों के यहाँ का भी नहीं, पर यहाँ यह सोचकर कि अब उसके आगे-पीछे कोई नहीं और ऐसे उपकारी ब्राह्मणों की सेवा से उसका परलोक सुधरेगा, करने लगी है। उसके लिए और काम भी न था कि क्षण-भर जी लगा रहता; इस तरह उसे आत्मा में सन्तोष होता कि वह अपनी मिहनत की कमाई खाती है, उसकी निगाह बराबरी लिये घर के लोगों से मिलती है। सावित्री देवी पान लगा रही हैं। मुख पर एक चिन्ता की रेखा खिची हुई है।

कुमार आराम करके उठा। लोटे का ढक्कन खोलकर गिलास में पानी ढाला। बरामदे के एक बगल चलकर मुंह धोया, फिर गिलास जगह पर रखकर तौलिये से मुँह पोंछने लगा। माँ निविष्ट-चित्त होकर पान लगा रही थी। देखने लगा। देखते-देखते एक अव्यक्त करुणा से ओत-प्रोत हो गया। उसकी सम्पूर्ण स्वतन्त्रता माँ की दी हुई है, उसके मनोभावोंकी अनुकूलता माँ ने की है, सब प्रकार तिरस्कृत होकर

भी किसी प्रकार का अभियोग इन्होंने नहीं किया, आज जिस वेदना की छाप यह उनके मुख पर पड़ी हुई है, उसका निराकरण करे, यह उसका परम धर्म है। वे किसी हार्दिक व्यथा से खिन्न हैं, कुमार पलँग पर बैठा हुआ सोचता और देखता रहा। माँ के दुःख के कारण की अनेक प्रकार से जाँच करते हुए उसने सोचा, हो-न-हो मेरे विवाह की याद कर सामाजिक मर्यादा से गिर जाने के कारण माँ को खिन्नता है। सामाजिक मर्यादा की कल्पना से उसे हँसी आ गयी—कैसा ढोंग है! और कोई कष्ट तो माँ को है नहीं, अब तो पहले की अपेक्षा काफी अच्छे दिन आ गये हैं। सोचता हुआ, अपने को संयत कर, जैसा उसका स्वभाव था, बोला, "मैं विलायत न गया होता तो अब तक तुम्हें कुछ कामों से छुट्टी मिल गयी होती, माँ।" माँ पुत्र की बातचीत का ढंग पहचानती थीं, समझकर, चिन्ताशीलता के भीतर से हँसकर बोलीं, "हाँ।"

"तुम्हें बहुत काम करना पड़ता है, अभी तक—।"

"हाँ, मदद करनेवाली नहीं आयी।" कहकर पुत्र को प्रसन्न मुखच्छवि से देखती हुई सावित्री देवी पान लेकर उठीं।

"क्या करूँ, कोई मिलती ही नहीं, नहीं तो मैं आज घर में लाकर बैठा दूँ।"

माँ मारे आनन्द के रँग गयीं। पान देकर प्रसन्न कण्ठ से बोलीं, "और जो मिलेगी वह मुझसे दूना काम लेगी।" कुमार नहीं समझ सका कि माता ने कमल पर चोट की। पुत्र के मुख पर छायी अज्ञता को पढ़कर, मुस्किराकर, माता ने पूछा, "रामलोचन बाबू की लड़की को पहले-पहल तुमने कहाँ देखा था?"

कुमार कुछ भावुक हो गया। कहा, "वह बड़ी लम्बी कथा है।" वह लम्बी कथा इतने से माता के पास संक्षिप्त हो गयी। उन्होंने समझ लिया, निरुपमा और कमल में कौन कुमार के मन के ज्यादा नजदीक है। बहकाकर कहा, "लम्बी कथा है। रहने दो। तुम्हें अभी कमल के यहाँ भी तो जाना है?" अपनी प्रसन्नता को हृदय में छिपाकर माँ ने पुत्र को देखा।

"निरू क्या फिर आयी थी, माँ?" कुमार ने ओजस्वितापूर्ण आग्रह से पूछा; माँ उतनी ही सहज होकर बोलीं, "न, फिर तो नहीं आयी।" कुमार गम्भीरता से कपड़े पहन रहा था, इसी समय नीली और रामचन्द्र कमरे में आये। कुमार को देखते ही मुस्किराकर सावित्री देवी की ओर फिरकर ऊँचे गले से नीली ने कहा, "दीदी का विवाह आज पक्का हो गया है, अगले सप्ताह सोमवार की रात को होगा।"

सुनकर सावित्री देवी जैसे कुछ चौंकी; पर वह दूसरे की समझ में न आया। कुमार कुछ कह न सका। कपड़े पहनकर धीरे पदों से नीचे उतरा। कमरे में सन्नाटा छाया रहा।

धीरे-धीरे कुमार नीचे उतरा कि दरवाजे पर चिट्ठीरसा मिला। सावित्री देवी के नाम की एक चिट्ठी दी। माँ के नाम किसकी चिट्ठी हो सकती है, सोचता हुआ कुमार ऊपर चढ़ा। हस्ताक्षर पहचाने हुए नहीं मालूम पड़ रहे थे।

ऊपर कमरे के द्वार पर आकर माँ से कहा, "आपकी चिट्ठी" कहकर पास खड़ी नीली को बढ़ा देने के लिए दे दी। नीली चिट्ठी हाथ में लेकर उस पर निगाह

डालते ही खुश होकर चिल्ला उठी, "दीदी की चिट्ठी है," मन-ही-मन उसने निश्चय किया, दीदी यामिनी बाबू से विवाह नहीं करेगी, कुमार बाबू से करेगी, इसलिए चिट्ठी लिखी है। यामिनी बाबू के प्रति मन से उसका पूरा विद्रोह था। खुलकर कह दिया, "दीदी यामिनी बाबू को चाहती नहीं, बाबा जबरन विवाह कर रहे हैं।"

सुनकर खुशी के मारे सावित्री देवी को लिफाफा फाड़ना भूल गया और आनन्द के लिए बढ़ीं, उसी तरह हाथ में लिफाफा लिये पूछा, "फिर दीदी तुम्हारी किसको चाहती है?"

नीली कुमार की ओर देखकर मुस्किराकर आँखें गड़ाकर रह गयी। मारे लाज के कुमार का मुँह लाल हो गया। माँ के सामने ऐसी बेहयायी उससे कभी नहीं हुई।

उसे चिट्ठी देकर चला जाना था, वह खड़ा रहा; वह अवश्य चिट्ठी का मजमून जानना चाहता है। वह निरू के हस्ताक्षर भी पहले से पहचानता था, तभी नहीं गया माँ यही सोचेगी, सोचकर और लज्जित होकर नीचे उतरने के लिए चला। माँ ने लिफाफा फाड़ा था, चिट्ठी पढ़ी नहीं थी, मुड़ते देखकर कहा, "ठहर जाओ जरा।" कुमार खड़ा हो गया। चिट्ठी पढ़कर सावित्री देवी ने कुमार को पढ़ने को दी। लिखा है, "माँ, आपके मकान मैंने खरीद लिये, विधाता की इच्छा से अगले सोमवार को मेरा विवाह है। विवाह हो जाने पर मैं रामचन्द्र के नाम की लिखा-पढ़ी करूँगी, शायद इधर समय न होगा। आपकी स्नेहप्रार्थिनी—निरू।" कुमार ने पढ़कर एक नशे मे जैसे, धीरे-धीरे माँ को चिट्ठी बढ़ा दी; फिर धीरे-धीरे नीचे उतर गया। कमरे में वैसा ही सन्नाटा छा गया। नीली कुछ समझ नहीं पा रही थी, केवल सन्नाटे का अनुभव कर चुप थी। रामचन्द्र रह-रहकर माँ की ओर देख लेता था।

सावित्री देवी फिर चिट्ठी पढ़ने लगीं। एकाएक निगाह एक धब्बे पर गयी। एक अक्षर फैल गया था। 'यह स्याही की बूंद नहीं' उन्होंने निश्चय किया, 'क्योंकि अक्षर फीका पड़कर फैल रहा है। बरसात के पानी की बूंद नहीं हो सकती क्योंकि इसके पड़ने की सम्भावना तब है, जब पत्र पोस्ट कर दिया जायेगा, और इधर-उधर लाया-भेजा जायगा या जब चिट्ठीरसा के हाथ में आयेगा, यों कमरे में लिखते समय झरोखे के पास बैठने पर बूंद पड़ सकती है।' नीली पास खड़ी थी, कुछ आग्रह से पूछा, "तुम्हारी दीदी ने यह चिट्ठी कब लिखी, तुम्हें मालूम है?"

"न," नीली निगाह से इस प्रश्न पर प्रश्न कर रही थी कि ऐसा क्यों पूछती हो?

जरा ठहरकर सावित्री देवी ने फिर पूछा, "तुम्हारी दीदी पत्र कहाँ लिखती हैं?"

"अपने कमरे में।"

"झरोखे के किनारे मेज है?"

"नहीं, उनकी मेज दीवार के किनारे है।"

"दीवार के किनारे!" सावित्री देवी ने निश्चय किया, 'यह अवश्य आँसू है।

किनारे हाशिये के पास है। दाहिनी आँख का है। बायीं का बाहर पड़ा होगा!' देखते-देखते गम्भीर हो गयीं और पत्र पढ़ने लगीं अगर कुछ समझने लायक अभी छुट रहा है, सोचकर।

'विधाता की इच्छा से' को कई बार देखा, मनन किया, एक निश्चय के साथ उनकी श्री प्रसन्न हो गयी। नीली से बोलीं, "माँ, तू मेरी मदद करेगी?"

नीली ने पूरी सहानुभूति से कहा, "हाँ।"

"किसी से कहना मत।"

नीली ने गम्भीर भाव से सर हिलाया।

आश्वस्त होकर सावित्री देवी ने कहा, "अपनी दीदी से कहना, रामचन्द्र की माँ ने तुम्हारा पत्र पढ़ा है, वे जब तक तुमसे न मिलेंगी, जल ग्रहण न करेंगी। कल अवश्य-अवश्य मिलें।"

नीली गम्भीर होकर बोली, "मैं ले आऊँगी।"

तेईस

कमल ढलते दिन के कमल की तरह उदास बैठी है। हाथ में एक पत्र है, जिसे बार-बार देखती है। रह-रहकर बँगले के सामने सड़क की ओर एक ज्ञात आकर्षण से जैसे निगाह फेर लेती है। अभी दिन काफी है; पर प्रतीक्षा करते उसे देर हो गयी। जी ऊब रहा है। एक बार पत्र को फिर पढ़कर झपट से भीतर गयी और पैड ले आयी। सोचती हुई चिट्ठी लिखने बैठी। क्या लिखे, किस तरह लिखे, कुछ समझ में नहीं आ रहा, केवल उत्तेजना बढ़ रही है। पत्र में घटना-चक्र ऐसा है, जो हर एक स्त्री-हृदय में पुरुष के प्रति विरोध भाव उभाड़ देगा। ऐसी ही ओजस्विनी भाषा में वह उत्तर लिखने लगी। मुख्य बात यह है कि वह हर तरह पिता से मदद करने के लिए कहेगी; पर अच्छा यह होगा कि एक बार उसके घरवाले उसके पिता से आकर मिल जायँ और फ़ुर्सत हुई तो इस बीच में वह पत्र-लेखिका से साक्षात् करेगी। पता लिखकर चिट्ठी लिफाफे में बन्द कर दी और फिर सड़क की ओर देखा। कुमार आ रहा था; देखकर खिल गयी। उठकर कुछ कदम आगे बढ़कर लिया। कुमार बिलकुल पास आ गया, तो उच्छ्‌वसित कण्ठ से बोली, "जनाब यह दो का समय है? चार बजने को पन्द्रह मिनट हैं; अब कानपुर तो हम लोग चल चुके। चलें भी, तो बस जाना-आना होगा।"

कुमार कुछ ऐसी उधेड़-बुन में था कि उत्तर की नाप-तोलवाली हालत से परे था। जैसा साधारण भाव आया, कह दिया—"तो न हो होटल में रह जायेंगे।" कुमार को न कानपुर जाने की आवश्यकता थी, न होटल में रहने की। कमल का प्रस्ताव था एक साथ जरा टहल आने का, उसने एक तरह कह दिया।

लज्जित होकर मुँह फेरकर कमल एक पूरे जोर की छिपी हँसी हँस ली। तब तक कुमार बढ़कर उसी कुर्सी पर बैठ गया, भीतर से बिलकुल दूसरे रूप का भरा हुआ।

कुमार के आज के भाव की ओर कमल दूसरे दिनों से अधिक आकृष्ट हो रही है। आज वह उसकी निगाह में और पवित्र और परिमार्जित मालूम दे रहा है। आज उसे देखकर उसके हृदय का स्नेह का फौवारा रुकना नहीं चाहता। आज उसमें न जाने कौन-सा आकर्षण है कि उसके संगमात्र से जैसे वह ऊपर उठती जा रही है और ऐसी जगह पहुँची है, जहाँ जड़ बन्धन का ज्ञान भी उसे नहीं रह गया, केवल आनन्द मान रही है।

एकाएक इस आनन्द के भीतर उद्भावना पैदा हुई, कहा, "चलिए एरोड्रोम, आकाश में उड़ आया जाय।" घण्टी दी, नौकर से मोटर ले आने के लिए कहा। कुमार निर्विकार भाव से बैठा रहा। कमल ने सोचा—'कानपुर जाना नहीं हुआ, इसलिए इनका दिल बैठ गया है।'

ड्राइवर ने गाड़ी सामने लाकर लगा दी। कमल सजी बैठी थी। कुमार से बैठने के लिए कहा। नौकर ने गाड़ी खोल दी। कुमार सामने ड्राइवर के पास बैठा। कमल लजाकर शिष्या की तरह भीतर बैठी, मन में एक प्रश्न उठता रहा, ये यहाँ बैठते तो छूत लगने की भी कोई बात थी? चलते समय नौकर से कागज उठाकर रख देने के लिए कह दिया।

गाडी चल दी। कमल अकेली बैठी रही। ऊपर एरोप्लेन के उड़ने की घर-घराहट हो रही थी। कुमार कल्पना के नेत्रों से निरू का विवाह देख रहा था। रह-रहकर सुबहवाली सूरत, वह फूली लता के भुजों के भीतर का मुख, वह पीछे का सूर्य-मण्डल, वे एकटक काली-काली बड़ी-बड़ी आँखें याद आ रही थीं। उस दृष्टि का भाव याद आते ही एक अज्ञात दर्द उठता था। जब जूता-पालिश करने के लिए गया था, उस समय जिस तेजी में वह उसके सामने गयी थी, जिस निरवरोध अपनाव से, उसे देखा था, भीतर से आज उसे पाने के वही भाव कुमार में उठ रहे हैं, पर हाय, यहाँ वह निरुपमा कहाँ, यहाँ तो उसकी छाया है!

देखते-देखते एरोड्रोम आ गया। कमल उतर पड़ी। कुमार का दरवाजा खोल दिया। कुमार फिर भी बैठा सोच रहा है। देखकर कहा, "Sir, sleeping or thinking?" (जनाब, सो रहे हैं या सोच रहे हैं?)

कुमार होश में आ, सँभलकर लज्जित होकर नीचे उतरा। एरोप्लेन अभी आकाश में उड़ रहा था। इसके बाद के जानेवाले गर्दन उठाये देख रहे थे। कमल कुमार के पास ही, एक प्रकार सटकर खड़ी थी, बोली, "काफी भीड़ होती है, हमें कुछ देर होगी शायद?"

देखते-देखते एरोप्लेन उतरा। कमल और कुमार की आँखों में विस्मय था। निरू और यामिनी बाबू उतरकर उसी ओर बढ़ रहे थे। अभी इन्होंने न देखा था। निकट आने पर कुमार के साथ कमल को सरल आँखों से निरू ने देखा और आँखें फेर लीं। मुँह फेरने का भाव दोनों के हृदय में अंकित हो गया। कमल ने कुछ देर ठहरकर, निरू से मिलने की अपनी बढ़ती हुई इच्छा को रोककर, यामिनी बाबू

को देखा, जैसे मनुष्य किसी कीट को देखता है । उसके साथ कुमार की जल्द होने-वाली शादी के भाव को उपेक्षा की दृष्टि से उल्लंघन कर जैसे यामिनी बाबू ने कुमार को देखा । तब तक बिलकुल नजदीक आ गये थे । उपेक्षा के स्वर से कहा, "अब जूता पालिश करना छूट गया जान पड़ता है ।"

वैसी ही उपेक्षा से कुमार ने कहा, "हाँ, तुम्हें उतनी शिक्षा देनी थी, वह दे चुका ।"

"बाकी जितनी रह गयी है, वह मैं पूरी कर दूँगी ।" कमल ने कहा ।

यामिनी बाबू झेंप गये । कुछ मतलब न समझे । तरह-तरह के अर्थ करने लगे मतलब कोई नहीं समझा; पर निरू खुश हुई, यद्यपि भीतर से अप्रसन्न रही और यामिनी बाबू के साथ खुश आकर कुमार को अप्रसन्न करने की न सोची । एक बार ललित दृष्टि से कमल को देखा; जिस लालित्य में शृंगार नहीं, करुणा थी, बेबसी का बयान था । आज कमल सबकुछ समझी—यदि कुमार के लिए उसके भीतर प्यार न होता, तो कमल को देखकर उस तरह वह आँखें न फेर लेती । अगर यामिनी को चाहती होती तो भी नहीं । खुलकर पहले कही बात को याद दिलाना चाहा कि मैंने पहले तुमसे पूछा था और मैं अब भी वही हूँ । तुम्हें बहुत बड़ा भ्रम हुआ है; पर वहाँ खड़े इक्के-दुक्के आदमियों की तरफ ध्यान गया, फिर यामिनी बाबू के लिए भी सोचा कि कुछ-का-कुछ सोच लेंगे; मुमकिन, दर्द पर हाथ जाय, यह अच्छा नहीं । सोचकर, कुमार का साथ छोड़कर, यामिनी बाबू के संग बढ़ती हुई निरुपमा को एक बगल से बुलाया । निरू चलने को हुई, तो यामिनी बाबू ने स्नेह से कहकर रोका, "हमें अब जल्द चलना चाहिए, निरू, और भी तो बातें हैं ।"

"हाँ, जरा बात सुन लूँ ।" सलज्ज कहकर निरू कमल की ओर चली । एक साथ होकर दोनों एकान्त की ओर बढ़ती चलीं ।

"निरू !"

नीरू एकाग्र हुई । पर कुछ कह न सकी ।

"एक बार और मैंने तुमसे पूछा था; पर तुमने उत्तर नहीं दिया, टाल दिया था । मेरी इच्छा होती है, अब मैं भी टाल जाऊँ और अच्छी तरह तुम्हारा सर्वनाश देख लूँ ।"

निरू काँप उठी । त्रस्त स्वर से कहा, "मैं समझ नहीं सकी ।"

"तुम जितना समझती थीं, मैं उतना ही तुमसे पूछ रही थी । अगर उतना ही तुम बता देतीं, तो आज इतने बड़े हास्यास्पद नाटक का तुम्हें पार्ट न अदा करते रहना पड़ता ।"

यह इतनी सहृदय बात थी कि निरू सत्य की जगह से दुर्बल पड़ गयी, वह छिपा सत्य जाहिर हो गया । उसने कहा, "मैं खुद अपने मर्ज की दवा के लिए चली थी, पर रास्ते में तुमने बाधा दी ।"

"मैंने बाधा दी ? कैसी बाधा ?"

"तुम कुमार बाबू को प्यार करती हो ?"

कमल आश्चर्य की दृष्टि से निरू को देखती रही; कहा, "प्यार करती हूँ,

इसका एक ही अर्थ मेरे पास है, उससे विवाह का कोई तअल्लुक है, यह मैं नहीं जानती; दूसरे अलबत्ते यही अर्थ-संयोग लेते हैं।"

निरू उदास होकर मुरझा गयी, फिर एकाएक अपनी प्रभा से चमक उठी; बोली, "कुमार बाबू के वहाँ तुम्हें उनके साथ देखकर मैंने वैसा ही निश्चय किया था; इसीलिए अपने दर्द की दवा से मैंने अपना हाथ खींच लिया; मैं नहीं चाहती थी कि मैं तुम्हारी प्रतिद्वन्द्विनी बनूं; नहीं तो कुमार बाबू की माँ का जैसा स्वभाव है, मैं जानती हूँ, वे मुझे अवश्य आश्रय देतीं; मैंने जान-बूझकर यह जहर पिया है; मुझे भ्रम था ही।"

"वे आश्रय अब भी देंगी, नहीं, तुमने स्वयं अपना आश्रय-स्थल खोज लिया; और यही तुम्हारे योग्य भी है; हृदय से तुमने धोखा नहीं खाया। इस जिस मनुष्य के साथ तुम आयी हो, यह, उफ!"

"क्या है?"

"फिर बताऊँगी। क्या तुम्हारा विवाह ठीक हो गया?"

"हाँ।" निरू ने डरे हुए गले से कहकर विवाह-तिथि बतायी।

"तो ये तैयारी अवश्य कानपुर से करेंगे और वहीं से बारात भी लायेंगे?"

"हाँ।"

"कब जायँगे?"

"कल सुबह।"

"ठीक है। अच्छा, अब यह बताओ कि तुम कुमार बाबू को प्यार करती हो या नहीं?"

निरू लज्जित होकर देखने लगी।

"बोलो," कमल ने जोर दिया।

"करती हूँ," कुछ बेहयाई से निरू ने कहा।

"आह—ऊह—ओह वाला प्यार?"

"हाँ।"

कमल खिलखिलाकर हंसी।

तब तक यामिनी बाबू ने बंगला में कुछ उद्धत स्वर से, "देर हो रही है"—कहकर निरू को बुलाया।

निरू ने बिलकुल स्वतन्त्र दृष्टि से देखा, कमल से कहा, "इसे कह दूं चला जाय।"

"नहीं, नहीं, मजा न बिगाड़ो। जब नाटक यहाँ तक हुआ तब पूरा किये बगैर क्यों छोड़ा जाय।"

"यानी?"

"और बातें फिर कहूँगी, इस समय तुम निश्चिन्त होकर जाओ, इन्हें अच्छी तरह अब हवा खिलाना।"

निरू अभिवादन कर हँसती हुई चली। कमल कुमार के पास आयी।

चौबीस

नीली प्रतीक्षा में थी। मोटर के आने की आहट मिली। नीली ने ऊपर से झाँककर देखा। यामिनी बाबू के साथ दीदी को देखकर जल गयी। निरू उतरकर यामिनी बाबू से स्नेह-सम्भाषण कुछ किये बगैर जीने पर चढ़ने लगी। कुछ द्रुत-पद अपने कमरे में आयी। घरवालों की बेहयाई, स्वार्थपरता आदि सोचकर हृदय से झुलसती हुई। उसके आते ही नीली सामने आकर खड़ी हो गयी और बड़े धीमे और विश्वस्त स्वर से कहा, "दीदी, कुमार बाबू की माँ कहती थीं, कि तुम्हारी दीदी का पत्र हमें मिला है, पर जब तक तुम्हारी दीदी हमसे न मिलेगी, हम जल ग्रहण न करेंगी, और मुझे यह बात किसी दूसरे से कहने को मना किया है।"

निरू ने स्नेह की दृष्टि से बहन को देखा। फिर वैसे ही धीमे स्वर से कहा, "नीलू, तू अभी मुझे वहाँ ले चल, वे जरूर रात को फिर भोजन न करेंगी।" नीली प्रसन्न होकर उछल पड़ी। पूछा, "कोई पूछेगा तो क्या कहूँगी ?"

"कहना, दीदी अमीनाबाद कुछ सामान खरीदने गयी थीं।" निरू पुनः-पुनः पुलकित होने लगी। आनन्द की भी बाढ़ आती है। बार-बार मन कहने लगा, "अवश्य कोई शुभ संवाद है।" भीतर से श्रद्धा ने कहा, "ये धर्म की माँ हैं, इनके स्नेह की तुलना नहीं हो सकती, ये पत्र से सबकुछ समझ गयी हैं।"

निरू ने अपनी साड़ी की ओर देखा। घृणा हो गयी। इसका यामिनी के वस्त्रों से स्पर्श हुआ है। इससे उस गृह में प्रवेश नहीं हो सकता। दासी को नहीं बुलाया। नीली से रोज की पहननेवाली सादी साड़ी ले आने के लिए कहा। स्वयं स्नानागार चली गयी। नहाकर कुल कपड़े वहीं छोड़ दिये। वस्त्र बदलकर हाथ जोड़कर भगवान को प्रणाम किया और प्रार्थना की कि अब कभी ऐसे दूषित संग में न फँसना पड़े। हृदय में एक अपूर्व साहस आया। जो साहस लेकर वह कुमार के घर एक दिन गयी थी, वह फिर मिला। अब उसे संसार में किसी का भय नहीं। भय-वाला पहला-स्वरूप सोचकर उसे हँसी आती है। वह कैसी यन्त्र की तरह बन जाती थी। इसी समय एकाएक दासी सामने आकर खड़ी हुई—"नहाने के कमरे में जो कपड़े छोड़ आयी हूँ, ले लेना।" दासी प्रसन्न होकर चली गयी मन में सोचती हुई कि आज जमाई बाबू के साथ टहलने गयी थीं, उसकी खुशी है।

निरू नीली को लेकर बाहर चली। निःसंकोच सीधे कुमार के मकान के सामने आकर खड़ी हुई। नीली ने आवाज दी, दरवाजा ढकेलकर देखा, खुला था; बिजली जल रही थी, निरू नीली को आगे कर भीतर गयी।

सावित्री देवी भोजन पकाकर दाल छौंकने के लिए घी गर्म कर रही थीं। एक तरफ मलिकवा की माँ बैठी थी। रामचन्द्र भीतर पढ़ रहा था।

नीली की आवाज से सावित्री देवी समझ गयीं कि अब के नीली अकेली न होगी। तब तक दोनों बिल्कुल पास आ गयीं। "चलो, बैठो, मैं अभी आ गयी" कहकर सावित्री देवी घी के नीचे और आँच करने के लिए फूँकने लगीं। नीली दीदी को उसी कमरे में ले गयी। साथ मलिकवा की माँ भी गयी। रामचन्द्र ने

पढ़ते हुए आवाज न सुनी थी। निरू को देखकर खड़ा हो गया। निरू ने सस्नेह रामचन्द्र की ठोढ़ी पकड़कर हिला दी, "पढ़ रहे हैं ?" और उसी पलँग पर बैठ गयी।

निरू को जैसा सुन चुकी थी, नीली भी सावित्री देवी को माँ कहकर पुकारती थी। रसोई के पास जाकर कहा, "माँ, दीदी तुम्हें खिलाने के लिए आयी हैं।"

सावित्री देवी हँसीं। कहा, "हाँ, पर यह तो बताओ कि तुम्हारी दीदी आज ही मुझे खिलायेंगी या हमेशा ?"

नीली आशय समझ गयी; बिना कुछ कहे जैसे वह हृदय से छोटी हुई जा रही थी, ऐसा सोचकर सप्रतिभ कण्ठ से बोली, "हमेशा।" यह कण्ठ जैसे नीली का नहीं, किसी सत्य का हो। निरू सुन रही थी, हृदय भर गया, अपने हृदय की शक्ति से हृदय को बाँधने लगी। सावित्री देवी रसोई से बाहर निकलीं। निरू को देखकर उसकी प्रसन्न मुखछवि से ऐसी प्रसन्न हुईं कि जैसे उनकी समस्त साधना आनन्द बनकर भर गयी हो। प्यार से निरू की ठोढ़ी उठाकर बलाएँ लीं, पीठ और कन्धे पर हाथ फेरती रहीं। निरू पालतू चिड़िया की तरह बैठी रही। सावित्री देवी एकटक देखती रहीं। उनके सोचे हुए भावों का कहीं से भी विरोध न था।

बंगला में बुलाकर निरू को दूसरे कमरे में ले गयीं। हाथ में चिट्ठी देखकर निरू ने आँखें झुका लीं। बंगला में ही सावित्री देवी ने कहा, "माँ, हृदय का भाव कहीं इस तरह छिपाया जाता है? इससे तुम्हें कितना कष्ट हुआ। मैं तो गाँव में नीली की बातों से ही समझ चुकी थी; फिर तुमसे मिलकर और यहीं एक जगह तुम्हें और कुमार को देखकर समझी। कहो तो, यह पानी का बूंद है या तुम्हारा आँसू ?"

"आप माँ हैं, आपकी दृष्टि में भ्रम न था, आपने ठीक देखा और ठीक समझा है।" निरू नत-दृष्टि सरल गम्भीर कण्ठ से बोली।

"तो इस सम्बन्ध में तो तुम्हें ही अपने संचालन का भार लेना होगा, तभी तुम सफल होगी, मैं तुम्हारी केवल अनुकूलता कर सकती हूँ।" सावित्री देवी बिलकुल माँ की तरह मिलकर बोलीं।

"मैं ऐसा ही करूँगी। कमल के सम्बन्ध में मुझे भ्रम न हुआ होता, तो उसी रोज मैं इसका आभास दे गयी होती।"

सावित्री देवी समझकर मुस्किराकर बोलीं, "फिर भी तुमने बहुत कुछ आभास दिया था। जाओ, कुमार की कुछ किताबें वहाँ हैं, कोई ले लो और पलँग पर लेटकर आराम से पढ़ो, तब तक मैं कुछ भोजन और बना लूँ, मुँह जुठार जाओ, कुमार भी तब तक आ जायगा, तुम्हें छोड़ आयेगा, उससे निश्चय भी एक कर लेना।"

सम्मति की सूचना के तौर निरू धीरे-धीरे कमरे के बाहर निकली और उसी तरह पसन्द की एक किताब लेकर देखने लगी। सावित्री देवी ने फिर चूल्हा जलाया।

थोड़ी देर में कुमार के साथ कमल भी आयी। कमल को देखते ही प्रसन्न

सावित्री देवी ने कहा, "आज हमारे बड़े भाग्य हैं।"

"अच्छा!" निरू को देखकर कमल ने कहा, "इसलिए, लेकिन हमारे भी भाग्य क्यों न जगें, माँ?" बाहर निकलकर कहा। सावित्री देवी अज्ञ दृष्टि से देखने लगीं, देखकर बोलीं, "यानी इनके पीछे हमें भी गर्मागरम भोजन क्यों न मिले?" सावित्री देवी लजा गयीं; कमल कहती गयी, "यद्यपि बहू अपनी अधिक है और उसकी थाली में घी के अधिक पड़ने की सम्भावना है।" मकान का सारा वायुमण्डल और हो गया। चारों ओर जैसे तीव्र प्राणों का स्पन्दन हो चला। उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना कमल भीतर गयी और निरू की बगल में उसी पलँग पर बैठती हुई कुमार से बोली, "आप तो जानते होंगे, कहा है 'उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः. काक्या कनक सूत्रेण कृष्णसर्पो निपातितः'।"

निरू मुस्किराकर बोली, "यानी तुम काकी हो।"

"मैं काकी हूँ, नानी हूँ, काले साँप को कैसा खेलाती हूँ, देखो, बल्कि कहना चाहिए, तुम्हारी इस वैवाहिक विचित्रता में कैसे फिनिशिंग टच देती हूँ—देखो।"

निरू जानती थी, इससे ज्यादा बातें करने पर जगह-जगह नीचा देखने की यथेष्ट सम्भावना है। इसलिए चुप हो गयी। कुमार अखबार उलट रहा था। मलिकवा की माँ दोमंजिले के आँगन पर पान लगा रही थी। कमल कहती गयी, "पी-एच. डी. महोदय को Doctor's Phial (डाक्टर की शीशी) न बनायी मैंने तो नाम क्या!" फिर नीली की तरफ निगाह गयी। कहा, "उस मकान में अगर कोई समझदार है तो सिर्फ नीली।" नीली सीधी होकर बैठी। कमल कहती गयी, "दुनिया के गुप्त कार्य जितने ऐसी उम्र में होते हैं, उतने किसी उम्र में नहीं। इस उम्र के कार्य में रोचकता काफी रहती है, करनेवाले को भी आनन्द मिलता है, देखनेवालों को भी, और नीली के लिए मुझे पूरा विश्वास है कि इस कार्य में नीली दक्षता दिखा सकती है—डा. यामिनी को डाक्टर की शीशी बना देगी।" नीली खुश होकर हँसी।

"अच्छा नीली, दबने की कोई बात नहीं, तेरी दीदी जब कि है, तब विवाह भी जरूर होगा, तू यह बता कि अपनी दीदी के योग्य तू किसे समझती है—यामिनी बाबू को या कुमार बाबू को?"

"कुमार बाबू को"—इम्तहान देती हुई, जैसे उच्छ्वसित होकर नीली बोली।

"ठीक कहा तूने; मेरी भी यही राय है। अच्छा यह बता कि इस काम में अगर पूरी मदद की जरूरत तुझी से हो, तो तू पूरी कर सकती है या नहीं?"

"कर सकती हूँ।" नीली बिल्कुल तनकर बोली।

"अच्छा, भेद खोलने के लिए अगर तेरे घरवाले तुझे कमरे में बन्द कर बेंत लगाना शुरू करें, तो तू कितने बेंत सह सकती है?"

"पचास।"

"शाबाश! तू अवश्य काम कर सकती है।"

फिर निरू से कहा, "निरू, तुम्हें काफी कड़ा होना होगा। यह राहुग्रास बगैर टेढ़ा पड़े दूर न होगा। तुम्हारा सेन रोडवाला बँगला खाली है न?"

"हाँ, है शायद।"

"तुम्हें इतना भी नहीं मालूम। वह खाली है। यामिनी बाबू के चले जाने पर उसे सजवा लेना और नीली को लेकर उसी में आकर रहना, जब विवाह के चार रोज रह जायँ।" कहकर निरू का हाथ पकड़कर उठी और जीना पार कर छत पर ले चलने के लिए चली। निरू चली।

छत पर पहुँचकर निरू से कहा, "अब तुम नाबालिग तो नहीं, सबकुछ समझती हो। तुम्हारे मामा वगैरह कैसे हैं, इसका तुम्हें परिचय मिल चुका है। और भी अच्छी तरह यह परिचय पा लोगी। जरा इसे भी देखो।" कहकर जेब से आयी हुई चिट्ठी निकालकर दी और दियासलाई जलायी, कहा, "पढ़ो।" निरू पढ़ने लगी। पढ़कर गुस्से से तमतमा उठी। "हूँ, समझी। तुम जो कुछ भी कहो, मैं करने के लिए तैयार हूँ। मेरी आँखों से जितना अन्धकार था, सब कटता जा रहा है। मैं अच्छी तरह अब तुम्हारी पहली और अब तक की बातों का मतलब समझ रही हूँ।"

"हाँ, वहाँ जाकर तुम अपने मामा को ऐसा पत्र लिखो, जिसमें बात तो स्पष्ट न हो; पर यह साफ-साफ उन्हें मालूम हो जाय कि तुम उनकी चालबाजियों को जानती हो और तुम्हें उनकी मदद की जरा भी परवाह नहीं।—मदद तो वही चाहते हैं और चाहेंगे, क्योंकि वह मदद तुम्हारे पास है और तुम दे सकती हो अगर चाहो। लिख देना कि बँगले में ऊपर कोई न आ सकेंगे, और जब बुलाओ, विवाह के ठीक पहले तभी वे लोग वहाँ जायँ। भोजन-पान का कुल प्रबन्ध करायें। वर-यात्रियों को खिलायें-पिलायें जो उनका काम है। घर की स्त्रियाँ भी नीचे ही रहेंगी। तुम इच्छानुसार नीचे उतरकर उनसे मिल लोगी। इस तरह उन्हें अपनी लघुता के ज्ञान से दुख होने पर भी वे विशेष बुरा न मानेंगे, पहले तो यही समझेंगे कि यह पाठ यामिनी का पढ़ाया है। साथ-साथ यह भी ख्याल करेंगे कि विवाह हो जाने पर पहलेवाले पराये और बादवाले अपने होते हैं। निरू कुछ जल्दी कर गयी। यह भी लिख देना कि तुम्हारे बाबा की इच्छा थी कि तुम्हारा हिन्दुस्तानी ढंग से विवाह हो, इसलिए तुम उनकी इच्छा पूरी करना चाहती हो। विवाह में एक योग्य हिन्दुस्तानी पण्डित को तुमने आमन्त्रित कर दिया है। कुछ सन्देह लोगों को हो सकता है; पर जब तुम सशरीर मौजूद हो तब वह केवल सन्देह ही रहेगा, उनमें उसकी जड़ जम नहीं सकती," फिर निरू से अपने प्लैन की सारी बातें कहीं। निरू बहुत खुश हुई, "तुममें मौलिक चिन्ताशीलता अवश्य है।" कमल की सम्वर्द्धना की।

भोजन तैयार हो चुका। पत्तलें पड़ गयीं। रामचन्द्र ऊपर बुलाने के लिए गया। कमल ने बालक को पकड़कर पूछा, "इन्हें तुम क्या कहते हो?"

"दीदी।"

"यह ठीक नहीं," गम्भीर होकर बोली, "भौजी कहा करो।"

"हाँ तो अभी ब्याह कहाँ हुआ?" रामचन्द्र हँसी न रोक सका।

पच्चीस

यामिनी बाबू दूसरे दिन चलते समय निरू से बिदा होने गये, तो निरू ने कहा, "मेरी इच्छा है कि मेरा विवाह मामा के घर से नहीं, मेरे घर से हो। इस समय सेन रोडवाला मेरा बँगला खाली है। बारात वहीं आये। आप मामा से कह दीजिएगा कि आपकी भी यही राय है। मैं इधर बहुत मिलना-जुलना नहीं चाहती। मुझे अच्छा नहीं लगता। आखिर सबका विवाह होता है, मेरा भी हो रहा है। स्त्रियों के मजाक के तीर ऊपर से सहने पड़ते हैं। हाँ भोजन, पान, रोशनी, बाजे और नाच-गाने में खर्च है, वह सब मामा के हाथ रहेगा।" यामिनी बाबू गम्भीर होकर सहमत हुए और विदा होते समय सारी बातें मामा को समझा दीं।

उनके चले जाने पर कमल ने बड़ा काम किया। प्रोफेसर दुबे को समझाया कि जब कि क्रिश्चियन रहने में अब विशेष आर्थिक फायदेवाली बात नहीं रह गयी और हिन्दू होने में एक फायदा नजर आता है तब घर भर फिर हिन्दू क्यों न बन जायँ? अगर हिन्दुओं में शुद्ध करने की ताकत नहीं, तो आर्यसमाजियों में तो है। आर्यसमाजियों और हिन्दुओं में उतना फर्क नहीं, जितना हिन्दू, मुसलमान या क्रिश्चियन, यहूदी में है। प्रोफेसर दुबे को जितनी तरह के आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक लाभ हो सकते थे, एक-एक कर कमल ने सब समझाये। प्रोफेसर दुबे मान गये। कमल को धन्यवाद दिया। कमल पिता के साथ अच्छे-अच्छे वकील, बैरिस्टर, सरकारी अफसर, यहाँ तक कि शहर कोतवाल से भी मिली और सबको आमन्त्रित किया। फिर छपा निमन्त्रण भेजवाया। यद्यपि निरू अपने बँगले में रहती थी, फिर भी बँगला विवाह के लिए किराये पर उठाया जा रहा है, ऐसी लिखा-पढ़ी हुई। सब तरफ से कमल ने पूरा-पूरा ध्यान रक्खा और थोड़े समय में पूरी सफलता प्राप्त कर ली।

धीरे-धीरे विवाह का समय निकट हो आया। कमल ने निरू के बँगले में चौबीसों घण्टे पहरे के लिए आठ गोरखा सिपाही कर लिये। एक पहरा गेट पर लगाया, एक दोमंजिले के जीने पर। देखते-देखते विवाहवाली सुहावनी शाम हो आयी। एक साथ बिजली के रंगीन बल्ब तरह-तरह के आकार से सजाये जल उठे। जैसे आकाश, सहस्रों पृथ्वी, लतागुल्म, सब विवाह देखने के लिए आमन्त्रित हों। सामने बड़ा शामियाना तना, चारों ओर कायदे से कुर्सियाँ रखी हुई, एक ओर कीमती मखमली गद्दीदार बड़ी कुर्सी, चुने हुए आमन्त्रित। एक-एक करके आते हुए सब पूरी अभ्यर्थना के साथ कुर्सियों पर बैठाये जाने लगे। तरह-तरह की खुशबू से हवा मत्त हो उठी। प्रसिद्ध नर्तकी का गाना होता हुआ। रास्ते के एक छोर से दूसरे छोर तक मोटरों का ताँता लग गया। शाम होने के कुछ बाद वर-यात्री भी आ गये। उनके लिए एक ओर की कुर्सियाँ निश्चित की हुई थीं। सब बैठे। यामिनी बाबू की अँगरेजी ढंग की बंगाली सज्जा देखने लायक थी। सभा में पूरा सन्नाटा था, यद्यपि इधर-उधर तरह-तरह का शोरगुल हो रहा था।

एक दूसरी ओर आमन्त्रितों को समय पर जल्द भोजन करा देने का इन्तजाम

हो रहा था। योगेश बाबू इसी जगह मनोनिवेश किये हुए थे। कतार-की-कतार कुर्सियाँ पड़ी हुई, मेजें सटी हुई। पाचकगण पटुता से प्रस्तुत कि क्षणमात्र में यन्त्र से जैसे काम होने लगे।

नियमानुसार घर की स्त्रियों को विवाह के दिन शाम से कुछ पहले आना था। जो मामा के घर की महिलाएँ थीं, उनके नाम की एक-एक छपी सूचना नीचे एक-एक कमरे में थी। उनके स्वागत का भार कमल पर था। जीने पर पहरा, कोई ऊपर नहीं जा सकती थी। उनके साथ उनकी परिचित आयी हुई सखी रह सकती थीं। अन्य महिलाओं के लिए अलग-अलग कमरों में प्रबन्ध था; एक साथ तीन-चार के रहने का; महिलाओं के निमन्त्रण की सूची कमल के हाथ में थी। यह प्रबन्ध देखकर प्राचीनाओं ने सोचा यह नया फैशन है। निरू के ममानवालियों ने सोचा, यह यामिनी बाबू की उपज है। नवीनाओं ने सोचा, यह आदर्श है, ऐसा ही होना चाहिए। इससे औरतों का एक साथ गड्डबड्ड भेड़धसान नहीं होता।

नियत समय पर आमन्त्रित महिलाओं के आने पर निरू विवाह के साज से सजी हुई, मस्तक पर चन्दन, मुक्तकेश, रक्तवास आभरणों से झलमलाती हुई, नीली को लिये हुए ऊपर से नीचे उतरी। एक-एक करके वह सबके कमरे में गयी और पूज्य महिलाओं को प्रणाम किया। सबने प्रसन्न दृष्टि से नीचे से ऊपर तक उसे देखा और आशीर्वाद दिया। उसके ममानवाली कुछ नाराज हुईं, क्योंकि अपने हाथों उसे सजा नहीं पायीं। एक ने व्यंग्य भी किया—"अगर विवाह हिन्दुस्तानी ढंग से होगा, तो यह बंगला सज्जा फिर किसलिए?"

"हिन्दुस्तानी ढंग से विवाह होने की बात है, पहनावे की नहीं"—थोड़े में उत्तर देकर निरू निवृत्त हो गयी। फिर वहाँ से दूसरी ओर चली। इस प्रकार सबसे मिलकर नीली के साथ ऊपर चली गयी।

अब रात के दस का समय हुआ। सबको जिवांने का प्रबन्ध होने लगा। इधर हिन्दुस्तानी पण्डितजी बड़ा पग्ग बाँधे एक ओर बनाये हुए मण्डप में आ विराजे; साथ-साथ प्रजाजन और उनके सहायक। कमल मुस्तैदी से उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करती हुई। महिलाओं को विवाह देखने का आमन्त्रण फिर गया। सब मण्डप में आकर एकत्र होने लगीं। और पण्डितजी का अद्‌भुत वेश देखकर एक दूसरे को धीरे से धकेल-धकेलकर मुस्किराने लगीं। शिक्षित पण्डितजी की गम्भीरता में फर्क न पड़ा। उन्होंने स्वरचित संस्कृत भाषा में वर और अवगुण्ठनवती वधू को ले आने की आज्ञा की। वर डाक्टर यामिनी बाबू शिष्टतापूर्वक आकर अपने आसन पर विराजमान हुए, यद्यपि उस हिन्दुस्तानी असभ्य वेशवाले पण्डित के प्रति उन्हें हृदय से घृणा थी। कमल अवगुण्ठनवती वधू को लेने के लिए दोमंजिले पर गयी। वधू तैयार थी। आज्ञा के अनुसार उसे लेकर कमल मण्डप में आयी। महिलाएँ आनन्दपूर्वक ऊल्-ध्वनि करने लगीं। पण्डितजी ने कर्मकाण्ड शुरू किया और शिक्षित वर की रुचि का जैसा रूप उनके सामने पहले रक्खा गया था, तदनुसार विवाह को संक्षेप में ही समाप्त किया, एक घण्टे के अन्दर-अन्दर। अब तक आमन्त्रित सज्जन भोजन कर चुके, और शहरवाले मण्डप में आकर विवाह देखकर प्रसन्न होकर हर्षध्वनि कर गये।

विवाह हो गया। कुछ लोकाचार रह गया। यह बंगाल की फूल शय्यावाली प्रथा है। कमल वधू को लेकर चली और यामिनी बाबू को अनुसरण करने के लिए कहा। महिलाओं से कहा कि कुछ देर बाद अब वे सब ऊपर चलने की कृपा करें। वधू को लेकर कमल ऊपर गयी। पीछे-पीछे यामिनी बाबू जा रहे थे। देखा, ऊपर भी एक वेदी है और एक ब्राह्मण आसन पर बैठा हुआ है। ब्राह्मण ने बंगला भाषा में यामिनी बाबू से कहा, "यह आपकी मातृवेदिका है, इसे भूमिष्ठ होकर प्रणाम कीजिए।" यामिनी बाबू ने इसे भी कर्मकाण्ड की एक धारा समझा और भक्ति-पूर्वक भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। कमल बहू को कमरे में ले गयी। पीछे से यामिनी बाबू भी गये। कोमल सुगन्ध-युक्त फूलों की शय्या पर बहू को बैठा दिया और यामिनी बाबू से सुखपूर्वक रात्रियापन के लिए कहकर बाहर निकल द्वार पर साँकल चढ़ा दी।

नीली बाहर थी, महिलाओं को बुला लाने के लिए भेज दिया, आप वहीं बिजली के प्रकाश में, बीच के हाल के बिछे फर्श पर बैठ गयी। सिपाही ने जीने का रास्ता छोड़ दिया। महिलाओं का दल देखते-देखते एकत्र हो गया।

इसी समय यामिनी बाबू ने द्वार भड़भड़ाया। पर वह बन्द था। वे भीतर से चिल्लाये—"मेरे साथ विश्वासघात किया गया है, खोल दो द्वार।"

"चुप रहो मूर्ख"—कमल उत्तेजित होकर बंगला में बोली, "पुलिस के आदमी अभी यहाँ से नहीं गये, तुम स्वयं समझो कि तुम्हारे साथ न्याय हुआ है या अन्याय।"

यामिनी बाबू चुप हो गये। महिलाओं में कोलाहल उठा। सबने—"क्या बात है, क्या बात है"—कहकर कमल को घेर लिया। कुछ देर तक कमल चुप रही। पर मिस दुबे की अवस्था का विचार कर सबसे कह देना ही उचित समझा। यद्यपि उसने देर तक सांगोपांग यह प्रसंग महिलाओं को सुनाकर कहा, फिर भी यहाँ संक्षेप में उसकी समाप्ति की जायगी, तो किसी के लिए समझने की कसर कदापि न रहेगी। कमल ने कहा, "डाक्टर यामिनी को जैसी विलायत की हवा लगी तदनुकूल अपनी जोड़ी की तलाश वे करने लगे। मिस दुबे मेरे साथ पढ़ती हैं। बी. ए. की छात्रा हैं। कोई गवाँर-गावदी लड़की नहीं। लखनऊ आकर एक दिन डा. यामिनी ने इन्हें कहीं देख लिया, फिर अनेक दिन इनके यहाँ इनके पिता के पास गये, एक साथ उठे-बैठे। इनके पिता प्रो. दुबे किसी कारण से क्रिश्चियन हो गये थे। डा. यामिनी पहले उनसे अपने धर्म-परिवर्तन के सम्बन्ध में सलाह लेते रहे, उनके साथ चर्च भी जाया करते थे। प्रो. दुबे को मालूम हो गया कि डा. यामिनी उनकी कन्या को प्यार करते हैं। लेकिन फिर भी उन्होंने उदारता दिखलायी, उनसे कहा कि आप चाहें सिविल मैरेज कर सकते हैं! डा. यामिनी अविवाहित थे, और चूंकि हर तरह अपना प्यार जता चुके थे—अपना धर्म छोड़ने को तैयार थे; इसलिए दूसरी तरफ से प्यार पाना कुछ अस्वाभाविक या अनुचित न था। कुमारी दुबे भी इन्हें प्यार करने लगीं। क्रिश्चियन समाज में कुछ अधिक आजादी है ही, दोनों एक साथ आधी रात तक टहलते-फिरते, मिलते-जुलते रहे, विवाह से पहले दोनों का चारित्रिक पतन भी हुआ, जिसका परिणाम सिफलिस-

गनोरिया बाबू के रूप से यामिनी बाबू में न होकर गर्भ-रूप से मिस दुबे में हुआ। यह गर्भ अभी बहुत छोटा है; पर शंका के कारण बहुत बढ़ा। कुछ दिनों बाद यामिनी बाबू की निरू से विवाह की बातचीत हुई। इधर कुछ अधिक फ़ायदा था, आर्थिक रूप से, नये प्रेम से भी अधिक फायदा हो सकता है या नहीं, इसका ज्ञान आप लोगों को मुझसे अधिक हो सकता है। खैर, इन्होंने उधर जाना बन्द कर दिया। मिस दुबे को घबराहट हुई। उन्होंने मुझे एक चिट्ठी लिखी। मैंने बाबा से पूछा। फिर उनकी सलाह से काम करती रही। प्रो. दुबे को फिर धर्म परिवर्तन की सलाह दी, क्योंकि अदालत में बदनामी होती, खर्च भी होता। प्रो. दुबे ने वैसा ही किया। अब वही दोनों वर और वधू के रूप से उस कमरे में हैं, जिसके लिए डा. यामिनी का कहना है कि उनके साथ धोखा किया गया।"

महिलाएँ प्रसन्न हो गयीं। यह बहुत अच्छा हुआ, चारो ओर से सन्तोष-ध्वनि गूंजने लगी।

कमल उत्तेजित थीं; पर समय पर अपना मनोभाव दबा गयी, कहा—"आज निरू का भी विवाह यहाँ हुआ है, ऊपर। वह पहले अपने घरवालों की इच्छा से चल रही थी, पर बाद को सब हाल मालूम कर अपनी अनुवर्तिता की। खुद सोच-समझकर योग्य वर चुना। वर लण्डन का डी. लिट्. है।"

महिलाओं में वर और वधुओं को देखने का मधुर गुंजन फैल चला। कमल ने निरू के कक्ष का द्वार खोला। निरू और कुमार अलग-अलग दो कुर्सियों पर बैठे थे। एक ओर फूलों की सेज बिछी थी। महिलाओं को देखकर निरू उठकर खड़ी हो गयी। कुमार ने बैठे-ही-बैठे प्रणाम किया। महिलाएँ देखकर प्रसन्न हो गयीं।

फिर मिस दुबे के कमरे में गयीं। यामिनी कुर्सी पर बैठे थे। मिस दुबे जिसका नाम सुशीला है, पलँग पर। सुशीला को देखकर महिलाएँ आपस में कहने लगीं—वर का कुछ दिमाग खराब है क्या? सुशीला अप्रसन्न थी, चुपचाप बैठी रही। महिलाएँ चली गयीं; अन्त में कमल ने अंग्रेजी में कहा,—"यामिनी बाबू, इस शुभ मुहूर्त के लिए धन्यवाद!"

रुक्ष स्वर से यामिनी बाबू ने कहा—"धन्यवाद!"

*　　*　　*　　*

गाँव में भी खबर फैली। बड़ा सन्नाटा छाया। लोग बहुत डरे। आखिर मुखिया के दरवाजे बैठक हुई। सबने सलाह ली। मुखिया ने कहा—"पागल हो, राजा से कोई बैर करता है। अब वे दिन नहीं हैं। लखनऊ में कितने बिलइतिहा हैं, उनके हाथ का पानी बन्द है?"

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

जन्म : 21 फरवरी, 1899 (स्थान : बंगाल के मेदिनीपुर जिले का महिषादल नामक देशी राज्य। मूल निवास : उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले का गढ़ाकोला नामक गाँव) **मृत्यु** : 15 अक्टूबर, 1961 (दारागंज, इलाहाबाद) **शिक्षा** : हाई स्कूल तक। हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी और संस्कृत का ज्ञान स्वतन्त्र रूप से प्राप्त किया। **वृत्ति** : प्राय: 1918 ई० से लेकर 1922 ई० के मध्य तक महिषादल राज्य की सेवा में। उसके बाद से सम्पादन, स्वतन्त्र लेखन और अनुवाद-कार्य। 1922-23 ई० में 'समन्वय' (मासिक, कलकत्ता) का सम्पादन। 1923 ई० के अगस्त से 'मतवाला'-मण्डल में। 'मतवाला' से सम्बन्ध किसी न किसी रूप में 1929 ई० के मध्य तक बना रहा। इस बीच स्वतन्त्र लेखन और बाजार का काम' भी करते रहे। कलकत्ता छोड़ा तो लखनऊ आये, जहाँ गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय और वहाँ से निकलनेवाली मासिक पत्रिका 'सुधा' से 1935 ई० के मध्य तक सम्बद्ध रहे। प्राय: 1940 ई० तक लखनऊ में। तत्पश्चात् कभी इलाहाबाद और कभी उन्नाव में। 1942-43 ई० से स्थायी रूप में इलाहाबाद में रहकर स्वतन्त्र लेखन और अनुवाद-कार्य। **साहित्य** : पहली प्रकाशित कविता : 'जन्मभूमि' ('प्रभा', मासिक, कानपुर, जून, 1920)। पहला प्रकाशित निबन्ध : 'बंगभाषा का उच्चारण' ('सरस्वती', मासिक, प्रयाग, अक्तूबर, 1920)। पहली प्रकाशित पुस्तक : **अनामिका** (1923 ई०)। प्रमुख कृतियाँ : **परिमल, गीतिका, द्वितीय अनामिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नये पत्ते, अर्चना, आराधना, गीत गुंज, सान्ध्य काकली** (कविता). **अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरुपमा, कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा** (उपन्यास). **लिली, चतुरी चमार** (कहानी), **रवीन्द्र-कविता-कानन, प्रबन्ध-पद्म, प्रबन्ध-प्रतिमा, चाबुक, चयन, संग्रह** (निबन्ध) और **महाभारत** (पुराकथा)।

यह कवि अपराजेय निराला,
जिसको मिला गरल का प्याला;
ढहा और तन टूट चुका है,
पर जिसका माथा न झुका है;
शिथिल त्वचा, ढलढल है छाती,
लेकिन अभी सँभाले थाती,
और उठाये विजय पताका—
यह कवि है अपनी जनता का।

रामविलास शर्मा

राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड नयी दिल्ली - पटना